'मध्यकाली
नामक ग्रन्
द्वारा रवीन्द्र
की भारत
मध्यकाली
कृतियों के
पर विष
रूप और
स्वतन्त्र
ग्रन्थों के
सिद्धान्तों
कलेवर क
जन्य रस
आनन्द त

मध्यकालीन हिन्दी कृष्ण-काव्य में
रूप-सौन्दर्य

मध्यकालीन

हिन्दी कृष्ण-काव्य में रूप-सौन्दर्य

डॉ० पुरुषोत्तम दास अग्रवाल
एम ए (हिन्दी, सस्कृत) पी-एच डी,
प्रवक्ता हिन्दी-विभाग
पी० जी०, डी० ए० वी० कॉलेज
(दिल्ली-विश्वविद्यालय)
पहाड़गज, नई दिल्ली-५५

रोशनलाल जैन एण्ड सन्स
बोरडी का रास्ता, जयपुर-३

प्रकाशक : बोहरा प्रकाशन
बोरडी का रास्ता, जयपुर-३

आवरण शिल्पी : श्री प्रेमचन्द गोस्वामी

मूल्य : पच्चीस रुपये

मुद्रक : स्वदेश प्रिन्टर्स
तेलीपाड़ा, चौड़ारास्ता,
जयपुर-३

चिरसंगिनी

पुष्पलता अग्रवाल

को

सप्रेम समर्पित

अनुक्रमणिका

प्राक्कथन

वासना रूप मे स्थित मानव के सस्कार अपनी भावनाओ एव रुचियो के अनुसार विषयो की ओर प्रवृत्त होते है। जगत के नाम और रूप युक्त पदार्थों से सम्बन्ध स्थापित होने पर उनसे आनन्द का अनुभव होता है। इस सम्बन्ध की सघनता अथवा न्यूनता के आधार पर ही आनन्द का निर्धारण होता है। आनन्द के घनीभूत होने पर उसमे आकर्षण की महाप्राणता आ जाती है और रसानुभूति अलौकिक भूमि पर होने लगती है। मानव-बुद्धि की विकल्पावस्था समाप्त हो जाती है। वह रस की परम चर्वणा मे लीन हो जाता है। यहाँ लौकिक धरातल की स्थूलता महत्वहीन हो जाती है तथा अलौकिकता की परिधि मे कल्पना-वृत्ति सचेष्ट रहती है। इससे प्राप्त आनन्द काव्य की भूमि मे रस का आनन्द है। दर्शन मे वही आत्मानन्द है और आध्यात्मिक क्षेत्र मे परम सत्ता के लाभ का आनन्द भी है। काव्यानन्द का मूलकारण रसानुभूति है। रसो मे शृङ्गार की रसराजता सर्वमान्य और व्यापक है। इसका प्रभाव चर-अचर सभी मे दीख पडता है। पशु-पक्षियो से आरम्भ कर प्राणियो मे उच्चतम सृष्टि मानव तक मे इसकी महत्ता सर्वमान्य रही है। मानव मे रस की यह अनुभूत उसमे स्थित, सस्कारगत कुछ विशेष स्थायी भावो के माध्यम से होती है। इनमे रति मूलक भाव की प्रधानता है। रति के प्रधान माध्यम नायक और नायिका है। इनके पारस्परिक आकर्षण से ही मगलमय काम का आविर्भाव होता है। इस आकर्षण के मूल मे आलम्बन और आश्रय का रूप-सौन्दर्य कार्य करता रहता है। अत रूप और सौन्दर्य ही शृङ्गार-रस की अनुभूति कराने के प्रमुख साधन है। इसी रूप-सौन्दर्य को आधार मानकर यहाँ कृष्ण-काव्य मे उसकी अभिव्यक्ति तथा माध्यमो का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

रूप और सौन्दर्य जगत् की सभी वस्तुओ मे रहता है। इसकी व्यापकता अनादि अनन्त सम्पत्ति के रूप मे विश्व मे अपनी महत्ता का उद्घोष करती हैं। सम्पूर्ण जगत् ही नाम-रूपात्मक है। रूप के साथ सौन्दर्य की सत्ता जड-जगत से लेकर चेतन-जगत् तक सब कही वर्तमान है। सागर की उत्ताल तरगो, गिरिराज के उत्तुङ्ग शिखरो, भयावह चक्रवातो और गहन कान्तार की

गुफाओ आदि मे यदि सौन्दर्य का उदात्त रूप है तो बालक की निश्छल मृदु मुस्कान और क्रियाओ, रमणी के मधुर हाव-भावो, प्रकृति की कोमल कलिकाओ आदि मे रमणीयता, सुगन्धि और वर्णादि का अनुपम और आकर्षक सौन्दर्य वर्तमान है। कही ऋजुता एवं रूप का भौतिक आकर्षण है और कही महाप्राणता का विशाल आकर्षण मानव को अपनी लघुता का आभास कराता रहता है। इसी लघुता और महाप्राणता के बीच मानव का मन सौन्दर्यान्वेषी होकर रूप-रस का आस्वादन करता है और दूसरो के लिये भी इसे सुलभ बना देता है। वह रूप से उत्पन्न अपनी निजी प्रक्रियाओ को कल्पना के योग और अभिव्यञ्जना कौशल से प्रेषणीय बनाकर उस भाव को सामान्य धरातल पर ले आने मे सफल होता है। यह कार्य मुख्यत काव्य के क्षेत्र मे आसानी से सम्पन्न हो जाता है। इससे सदा से काव्य मे रूप-सौन्दर्य की महत्ता रही है। इसी महत्ता को ध्यान मे रखकर प्रस्तुत प्रबन्ध का नामकरण किया गया है।

नामकरण

प्रस्तुत प्रबन्ध का नाम 'मध्यकालीन हिन्दी कृष्ण-काव्य मे रूप-सौन्दर्य की अभिव्यञ्जना है। प्रबन्ध का सम्बन्ध हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल और रीतिकाल की परिधि मे आने वाली श्रीकृष्ण विषयक रचनाओ से है। ऐसी रचनाओ मे कवियो की दृष्टि श्रीकृष्ण के अनन्त, असीम और अनिर्वचनीय रूप-सौन्दर्य के उद्घाटन मे लगी हुई है। भक्तिकाल मे अपने आराध्य श्रीकृष्ण के रूप की अतिशयता का वर्णन सभी कवियो ने किया है। इन कवियो का अलौकिक आराध्य सर्वाङ्ग सुन्दर और सर्वश्रेष्ठ है। इसके विपरीत रीतिकाल मे श्रीकृष्ण के लौकिक एव मानवीय रूप-सौन्दर्य की अभिव्यञ्जना होने लगी थी। दोनो की दृष्टिभेद के परिणाम से उत्पन्न वर्णन-भेद को लक्षित कराना प्रबन्ध का उद्देश्य है।

'रूप' मे आकारगत शोभा का महत्त्व रहता है और सौन्दर्य उस आकार मे स्थित छबि का बोधक है। रूप-सौन्दर्य का अभिप्राय शृङ्गार-रस के आलम्बन के शारीरिक आकर्षण से है। इससे प्रस्तुत प्रबन्ध मे मानवीय रूप-सौन्दर्य के शारीरिक पक्ष को ही विशेष महत्त्व दिया गया है और आकर्षण को बढाने वाले सभी साधनो एव उपकरणो को भी इसी के अन्तर्गत समेट लिया गया है।

'अभिव्यञ्जना' शब्द का प्रयोग यहाँ सामान्यार्थक ही है। उससे अभिव्यक्ति या वर्णन का ही अभिप्राय है, अभिव्यक्ति शैली का नही। रूप तथा सौन्दर्य का सम्बन्ध जीव-जगत् से है और उसी सीमा तक वह हमे भी अभीष्ट

है । उसके प्रस्तुतीकरण के कौशल की यहाँ अपेक्षा नही है । यही कारण है कि कवि–कौशल के शिल्पादिक रूपो का वर्णन यहाँ अलग अध्याय मे न करके वर्ण्य-विषय के सन्दर्भ मे यत्र–तत्र आवश्यक रूप से प्रस्तुत किया गया है ।

शोध का कारण —

हिन्दी-साहित्य मे रूप-सौन्दर्य सम्बन्धी सामग्री का नितान्त अभाव तो नही है, परन्तु जितनी सामग्री उपलब्ध है, उनमे विश्लेषणात्मक प्रवृत्ति का अभाव सा ही है । विभिन्न शोध-ग्रन्थो मे यत्र-तत्र बिखरी हुई कुछ सामग्री मिल जाती है, परन्तु इस सामग्री का समुचित विश्लेषण एव विवेचन नही हो सका है । इससे रूप-सौन्दर्य की वास्तविक भावना का विकास शृङ्खलाबद्ध रूप मे प्रस्तुत नही हो सका है । काल-विशेष का आधार लेकर डा० रामेश्वर खण्डेलवाल और डा० बच्चनसिंह ने अपना-अपना प्रबन्ध प्रस्तुत किया है । डा० खण्डेलवाल ने 'आधुनिक हिन्दी-कविता मे प्रेम और सौन्दर्य' नामक प्रबन्ध लिखा है । इसमे उन्होने प्रेम और सौन्दर्य को शील-सयम तथा शालीनता प्रदान करके उसका विवेचन किया है । उन्होने लिखा है कि 'प्रेम और सौन्दर्य की मूल-भावना को अस्वाभाविक जीवन दृष्टियो से मुक्त कराकर तथा शुद्ध मानवीय परिवेश मे अवस्थित कर उसे एक सास्कृतिक प्राण प्रदान करना मेरा केन्द्रीय अध्यवसाय रहा है ।' उनके मत से प्रेम और सौन्दर्य दोनो ही गभीर, उज्ज्वल और उदात्त अनुभूतियाँ है और इन्ही का स्पष्टीकरण उनका प्रमुख ध्येय है । डा० बच्चनसिंह ने रीतिकाव्यो मे वर्णित प्रेम को ही अपना प्रधान विवेच्य विषय बनाया है । स्वच्छन्दधारा का उन्मुक्त और एकनिष्ठ प्रेम उनकी दृष्टि मे गौण हैं । इसीमे उन्होने प्रेम-वर्णन प्रसग मे रूप का यत्किञ्चित् सकेत मात्र कर दिया है । अन्य स्थलो पर भी रूप-सौन्दर्य सम्बन्धी विचारो का प्राय अभाव सा ही है । उसी अभाव की पूर्ति के लिये प्रस्तुत प्रबन्ध की रूप-रेखा तैयार कर मध्यकालीन हिन्दी कृष्ण काव्य को रूप-सौन्दर्य विवेचन का आधार बनाया गया है ।

इस सदर्भ मे यह कहना उचित होगा कि विषय की विशदता के लिए यत्र-तत्र कृष्णेतर काव्यो से भी पक्तियाँ उद्धृत करके प्रस्तुत विषय का प्रतिपादन किया गया है ।

प्रस्तुत प्रबन्ध की रूप-रेखा—

प्रबन्ध की सम्पूर्ण सामग्री को निम्नलिखित अध्यायो मे विभक्त किया गया है —

(१) पूर्व पीठिका ।
(२) रूप और सौन्दर्य—स्वरूप-निर्वचन ।
(३) रूप और सौन्दर्य—अभिव्यक्ति-निर्वचन ।
(४) भक्तिकाल मे रूप-सौन्दर्य ।
(५) रीतिकाल मे रूप-सौन्दर्य ।
(६) उपसहार ।

इनमे पूर्व पीठिका के अन्तर्गत श्रीकृष्ण की साहित्यिक अभिव्यक्ति का संक्षिप्त विकास दिया गया है । विकास की इस भूमिका पर प्रस्तुत विषय का विवेचन सरल हो गया है ।

दूसरे प्रकरण मे रूप और सौन्दर्य के स्वरूप का विश्लेषण हुआ है । इसमे रूप ओर सौन्दर्य सम्बन्धी भारतीय विचारो का स्पष्टीकरण हुआ है । सौन्दर्यानुभूति की परम्परा को देते हुए सौन्दर्य के तत्त्व, व्युत्पत्ति, अर्थ, अन्य समानार्थक शब्द, तथा भारतीय मतो का विवेचन हुआ है । यही पर सौन्दर्य और कुरूपता, तथा सुन्दर और उदात्त के सम्बन्धो को स्पष्ट किया गया है । इसमे विचारको की परिभाषाओ को देते हुए रूप और सौन्दर्य के सूक्ष्म भेद पर विचार किया गया है । सौन्दर्य को आत्मगत मानकर उसके स्वरूप को समझने की चेष्टा की गई है । भारतीय दृष्टि की आध्यात्मिकता के कारण आत्मा की सत्ता सर्वोपरि रूप मे स्वीकृत है । यही आधारभूत तत्त्व है । सौन्दर्य के इस आत्मतत्त्व के साथ वैज्ञानिक मान्यता का विवेचन वस्तुपरक दृष्टिकोण से हुआ है । इस प्रकार आत्म-परक और वस्तुपरक व्याख्याओ को प्रस्तुत करके समन्वयवादी मध्यम मार्ग को अपनाया गया है । इसमे रूप और सौन्दर्य के स्वरूप-निर्धारण मे दोनो ही विचारो का अपने विषय के अनुकूल समर्थन एव सहयोग लिया गया है । यही पर रूप और सौन्दर्य के स्वरूप की शास्त्रीय व्याख्या भी प्रस्तुत की गई है । इसी व्याख्या को आधार मानकर आगे के अध्यायो का विचार किया गया है । अन्त मे सौन्दर्य के तत्त्वो का विवेचन किया गया है ।

तृतीय अध्याय मे रूप और सौन्दर्य के अभिव्यञ्जना पक्ष पर विचार हुआ है । सिद्धान्त विवेचन के रूप मे इस अध्याय का विशेष महत्त्व है, इस अध्याय मे रूप और सौन्दर्य के अभिव्यक्ति पक्ष पर विचार है । सम्पूर्ण प्रबन्ध मे इस अध्याय का वही महत्व है, जो शरीर मे रीढ की हड्डी का है । इसी का आधार लेकर प्रबन्ध का सम्पूर्ण कलेवर निर्मित किया गया है । इस अध्याय

मे सौन्दर्य के मुख्यत तीन भेद कलात्मक, मानवीय और [illegible] (प्राकृतिक)
सौन्दर्य–किये गये है । इन तीनो मे मानवीय सौन्दर्य की मीमांसा करना ही इस प्रबन्ध का प्रमुख ध्येय है । इस सौन्दर्य के विभिन्न स्वरूपो का विवेचन शास्त्रीय आधार पर किया गया है । मानवीय सौन्दर्य मे सौन्दर्य के उद्दीपन के मुख्य चार माध्यम स्वीकार किये गये है । गुण, चेष्टा, अलकृति और तटस्थ साधनो से आलम्बन के बढे हुए सौन्दर्य को देखने की चेष्टा की गई है । मानवीय सौन्दर्य के बाह्य और आन्तरिक तत्त्वो का विश्लेषण किया गया है । इन सभी आधारो पर मानवीय सौन्दर्य के विश्लेषण की एक समुचित कसौटी तैयार हो जाती है ।

चतुर्थ और पचम अध्यायो मे रूप-सौन्दर्य का व्यावहारिक पक्ष ग्रहण किया गया है । मध्यकाल के दो भेद, भक्तिकाल और रीतिकाल करके दोनो मे रूप सौन्दर्य को देखने की चेष्टा की गई है। चतुर्थ अध्याय मे भक्तिकाल के जिस रूप-सौन्दर्य का विवेचन हुआ है उसका आधार तृतीय अध्याय मे स्थापित सिद्धान्त ही है । उन्ही सिद्धान्तो को निकष बनाकर भक्तिकालीन कृष्ण साहित्य का व्यावहारिक पक्ष प्रस्तुत करते हुए बताया गया है कि इस युग की रचनाओ मे रूप-सौन्दर्य किन-किन रूपो मे उपलब्ध है । अपने विचारो की पुष्टि मे भक्त कवियो की रचनाओ मे से पुष्कल उदाहरण देते हुए विषय-विश्लेषण एव विवेचन को ग्राह्य बनाया गया है । मुख्यत वल्लभ सम्प्रदाय के अष्टछाप के कवियो तथा राधावल्लभ सम्प्रदाय के अनेक कवियो की रचनाओ मे से उदाहरण दिये गये है । इन दोनो सम्प्रदायो के रूप-सौन्दर्य निरूपण मे प्रमुख भेद यह है कि प्रथम मे श्रीकृष्ण के रूप-सौन्दर्य की महत्ता और द्वितीय मे प्रधान पद राधा को प्राप्त है, जिसे रसेश्वरी मानकर उनके रूप का अनुपम, मोहक सौन्दर्य वर्णित हुआ है । प्रचुर उदाहरणो द्वारा इस विचार की पुष्टि की गई है । इस काल मे श्रृङ्गार का जो स्वरूप वर्णित हुआ है, उसी को आधार मानकर परवर्ती रीतिकालीन कवियो ने सामयिक प्रवृत्तियो के अनुकूल अपना काव्य प्रस्तुत किया है ।

रीतिकाल के रूप-सौन्दर्य का निरूपण पचम अध्याय मे हुआ है । इस अध्याय मे भी तृतीय अध्याय मे स्थापित सिद्धान्तो का ही आधार लिया गया है । सामयिक सामाजिक विशेषताओ के कारण रूप-सौन्दर्य निरूपण की भावना मे परिवर्तन आ गया था । इन परिवर्तनो का यथास्थान निर्देश कर दिया गया है । भक्ति-विषयक आध्यात्मिक भावनाओ के उच्च स्तर से गिर जाने के कारण रूप-सौन्दर्य निरूपण का भक्तिकालीन भाव कवियो मे न रह गया । दास्य एव सख्य भाव की गहनता लगभग समाप्त हो गयी । श्रीकृष्ण और

राधा का आध्यात्मिक स्वरूप लुप्त हो गया। फल यह हुआ है कि रूप-सौन्दर्य वर्णन की भक्तिकालीन मर्यादित एव रूपकातिशयोक्ति वाली साकेतिक पद्धति समाप्त हो गई। राधा-कृष्ण का स्पष्ट और विलास भावना से युक्त ऐसा चित्र प्रस्तुत किया गया, जो गौरव सम्पन्न और भक्तिभाव का उद्रेक करने वाला न होकर मासल हो गया। इस मासल रूप-सौन्दर्य मे शरीर के वाह्य आकर्षण और अवयवो की वनावट का सूक्ष्म वर्णन किया जाने लगा। नारी सौन्दर्य को महत्ता मिल गई। वह पुरुष के आकर्षण की साधन बन गई। नारी भोग्या बनी और पुरुष उसका भोक्ता। इससे नारी रूप-चित्रण मे उसके अवयवो के उभार, बनावट आदि के मादक सौन्दर्य का वर्णन हुआ। पुरुष-सौन्दर्य अधिकाश कवियो की दृष्टि से ओझल रहा। एक-दो कवि इस परम्परा के अपवाद भी है। इन सभी कवियो की रचनाओ से उद्धरण दे देकर विश्लेषण करते हुए अपने विचारो की पुष्टि की गई है।

उपसहार मे प्रस्तुत प्रवन्ध के विचारो एव विश्लेषणो का सार दिया गया है। इसमे एक निर्णय पर पहुँचने की चेष्टा की गई है। इसी अध्याय मे पूर्व विवेचित विचारो के आधार पर मध्यकालीन कृष्ण-काव्य मे रूप-सौन्दर्य की समता विभिन्नताओ का सकेत किया गया है। बदलती हुई काव्यधारा को दृष्टि मे रख कर रूप-सौन्दर्य चित्रण के विभिन्न प्रकार, अभिव्यञ्जना और प्रवृत्तियो आदि का सकेत कर दिया गया है। अन्त मे रूप-सौन्दर्य की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए मानवीय-हित मे उसके योगदानमूलक विशेषताओ का सकेत करके प्रबन्ध की समाप्ति की गई है।

प्रस्तुत प्रबन्ध की विशेषता—

आज तक के उपलब्ध प्रकाशित शोध ग्रन्थो मे या तो केवल प्रेम की व्यञ्जना हुई है अथवा प्रेम के साथ सौन्दर्य का भी विवेचन प्रस्तुत किया गया है। 'रूप' के विवेचन का प्रयास शोध ग्रन्थो मे नही दीख पडा। रूप और सौन्दर्य दोनो के युगपत् विवेचन एव विश्लेषण का अभाव अभी तक बना हुआ था। हिन्दी के मध्यकालीन कृष्ण-काव्य को आधार बना कर आज तक किसी शोधक ने उसमे रूप-सौन्दर्य की अभिव्यञ्जना का विश्लेषण प्रस्तुत नही किया है। यह प्रबन्ध उसी अभाव की पूर्ति का एक प्रयास है।

इस प्रबन्ध मे रूप एव सौन्दर्य सम्बन्धी सत्य का अनुसधान वैज्ञानिक पद्धति पर करते हुए पाश्चात्य एव पौर्वात्य मतो को सुव्यवस्थित रूप मे उपस्थित किया गया है। सौन्दर्य-विवेचन और उसके प्रभावो की व्यञ्जना मे आश्रय और आलम्बन की मन मे उठती हुई विभिन्न भावनाओ का विश्लेषण हुआ है। सौन्दर्य-दर्शन से उत्पन्न प्रतिक्रियाओ का साहित्यिक विवेचन विभिन्न

कवियो की कृतियो के उद्धरणो द्वारा किया गया है। ऐसी स्थिति मे आलम्बन की स्वत सभवी छवि और सौन्दर्य-साधक उपकरणो से बढ जाने वाली छवि को ही रूप-सौन्दर्य के विश्लेषण का निकष माना गया है। आलम्बन के आकर्षण को बढाने वाली सभी प्रसाधक सामग्रियो को भी सौन्दर्योपकारक रूप मे ग्रहण करके ऐसे सभी तत्वो का आत्मसात् सौन्दर्य के अन्तर्गत कर लिया गया है, जिनसे आश्रय आलम्बन के रूप-सौन्दर्य की वृद्धि होती है।

सौन्दर्य के स्वरूप-निर्धारण मे विभिन्न मनीषियो के अतिवादी विचारो की भिन्नता मे समन्वयात्मक प्रवृत्ति अपनाई गई है। व्यक्तिवादी अथवा आत्मवादी और विषयवादी या वस्तुवादी इन दोनो विचारो का समन्वय करते हुए प्रस्तुत प्रबन्ध मे सौन्दर्यानुभव मे व्यक्ति और वस्तु दोनो की महत्ता स्वीकार की गई है, क्योकि अनुभविता के अभाव मे वस्तु का सौन्दर्य महत्वहीन होता है और वस्तु मे सौन्दर्य की शून्यता अनुभवकर्ता की आत्मा को सन्तुष्ट नही करती। अत सौन्दर्यानुभव मे वस्तु के सौन्दर्य के साथ उसके अनुभवकर्ता की महत्ता भी रहती है। इन दोनो मे प्रमुखता मानवीय दृष्टिकोण की ही है। इस से मानव की महत्ता के सापेक्ष मे वस्तु-सौन्दर्य को स्वीकार किया गया है। इस से दो उद्देश्यो की सिद्धि होती है (१) आत्मपरक और वस्तुपरक दृष्टि से सौन्दर्य-विवेचन की दो अलग-अलग आधार भूमियाँ प्राप्त होती है। (२) सौन्दर्य-बोध से उत्पन्न आनन्द के महत्व का प्रतिपादन होता है। यह आनन्द काव्य के सौन्दर्यानुभव से ही उत्पन्न होता है। कला का आनन्द भी सौन्दर्यजन्य ही है। इस से काव्य का सौन्दर्य परक अनुशीलन उसके मूल ध्येय का ही अनुशीलन है। इस अनुशीलन मे विषय की एक सीमा है, उस सीमा मे रह कर ही अपना विचार व्यक्त किया गया है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के नामकरण से ही विषयवस्तु की परिधि का ज्ञान होता है। मध्यकालीन कृष्णकाव्य से अभिप्राय भक्तिकाल और रीतिकाल की कृष्ण सम्बन्धी रचनाओ से है। इन दोनो कालो की अनन्त रचनाओ का विवेचन करना प्रस्तुत प्रबन्ध का ध्येय नही है, अपितु इन कालो के प्रमुख कवियो की कृतियो का प्रवृत्ति-परक विश्लेषण ही सौन्दर्य-दृष्टि से किया गया है। भक्तिकाल मे वल्लभ-सम्प्रदाय और राधावल्लभ-सम्प्रदाय के कुछ कवियो की रचनाओ को प्रमुखता दी गई है, परन्तु आवश्यकतानुसार अन्य कृष्ण-भक्त कवियो के उद्धरणो आदि से भी प्रस्तुत विषय की पुष्टि हो सकी है। इन्ही कवियो की रचनाओ के माध्यम से सिद्धान्त पक्ष का निरूपण किया गया है। एक बार सिद्धान्त का प्रतिपादन कर लेने पर अलग-अलग अध्यायो मे भक्तिकाल और रीतिकाल का सौन्दर्य-विषयक विश्लेषण इसी आधार पर हुआ है।

इन दोनो कालो की सभी प्रवृत्तियो का गभीर विवेचन इस शोध प्रवन्ध की सीमा के अन्तर्गत नही आता । इससे सौन्दर्य-साधक पक्तियो की ही सहायता ली गई है । कही-कही पर विषय को ग्राह्य बनाने के लिए कृष्णेतर काव्यो से भी अनेक पक्तियो की सहायता ली गई है ।

भक्तिकाल के विवेचन मे भक्त कवियो की रचनाएँ ही आलोच्य रही है । इनकी भावनाओ से रीतिकालीन कवियो की भावनाओ मे महान् अन्तर आ गया था । आलम्बन और आश्रय की एकरूपता होते हुए भी उसके स्वरूप मे बदली हुई सामाजिक मान्यताओ का प्रभाव पडा है । राधा और कृष्ण वही है, परन्तु उनके स्वरूप मे अन्तर आ गया । रीतिकाल मे राधा-कृष्ण भक्ति के आलम्बन नही रह गये । वे सामान्य नायक-नायिका की स्थिति मे आ गये । यदा-कदा भक्ति भाव से आप्लावित होती हुई कवियो की रचनाएँ मुक्तको के रूप मे प्रस्तुत होती रही है । इनमे भक्ति की एक क्षीण होती हुई भावना दीख पडती है, परन्तु कलात्मक अभिव्यक्ति उच्च कोटि की होने से अभिव्यञ्जनात्मक सौन्दर्य अच्छा बन पडा है । प्रस्तुत प्रवन्ध मे रीतिकालीन कृष्ण-काव्य मे राधा-कृष्णादि से सम्बन्धित रचनाओ का आधार लिया गया है । कृष्ण से सम्बन्धित किसी भी पक्ति का चयन सुविधा और विषय के प्रतिपादन के उद्देश्य से ही किया गया है । प्राय सभी रीति-ग्रन्थो मे राधा-कृष्ण विषयक सामग्री प्राप्त हो जाती है । परन्तु प्रमुख कवियो की मुक्तक रचनाओ का ही सहारा लिया गया है और इन्ही के आधार पर रूप और सौन्दर्य की व्याख्या की गई है ।

रूप-सौन्दर्य को यहाँ मानवीय सौन्दर्य के सन्दर्भ मे ही उपस्थित किया गया है । इस सौन्दर्य की व्याख्या शृङ्गार-रस के सन्दर्भ मे की गई है । इससे शृङ्गार-रस मे रति का आलम्बन होने के कारण नायक अथवा नायिका रूप राधा-कृष्ण के शारीरिक-सौन्दर्य को महत्त्व दिया गया है । रूप या आकारगत विशेषताओ के कारण शरीर के आकर्षण की अभिव्यक्ति के साथ आकार से भिन्न लावण्य, छबि, नूतनता आदि विशेष गुणो से बढी हुई शारीरिक शोभा का वर्णन हुआ है । इस प्रकार मुख्यता मानवीय सौन्दर्य की ही है । इस सौन्दर्य को अभिव्यक्त करने अथवा शरीर को आकर्षक बनाने वाले ऐसे सभी साधनो को भी सौन्दर्य मे लिया गया है, जिनसे आश्रय के मन मे आलम्बन के प्रति कोमल भावनाओ का उदय होता है । ऐसे साधनो मे प्रसाधनो को माना गया है । मानव के इस भौतिक सौन्दर्य के अतिरिक्त भावनाओ को उद्दीप्त करके आलम्बन के आकर्षण को वढ़ा देने मे सहायक प्रकृति आदि की शोभा का

सकेत मात्र 'तटस्थ-सौन्दर्य' के नाम से कर दिया गया है। ऐसा शृङ्खला को जोड़ने के लिए ही किया गया है।

इस प्रबन्ध मे श्रीकृष्ण अथवा ब्रज से सम्बन्धित काव्यो को ही ग्रहण किया गया है। श्रीकृष्ण का मध्यकालीन वैष्णव भक्तो मे प्रचलित रूप अचानक समक्ष नही आ गया था, अपितु श्रीकृष्ण की साहित्यिक या धार्मिक अभिव्यक्ति शताब्दियो से होती चली आई है। वैदिक युग से आरम्भ कर पौराणिक युग तक श्रीकृष्ण के विभिन्न विकसित रूपो के आधार पर ही हिन्दी के मध्यकालीन साहित्य मे श्रीकृष्ण के रूप और सौन्दर्य की अभिव्यक्ति हुई है। इस परम्परा का ज्ञान कराने के लिये श्रीकृष्ण के वैदिक विष्णु रूप के विकास की एक शृङ्खला स्थापित की गई है। क्रमश महाभारत और श्रीमद्भागवत पुराण मे वर्णित श्रीकृष्ण के स्वरूप की व्याख्या करते हुए उनके भक्तिकाल मे ग्राह्य रसिकेश्वर रूप को ग्रहण किया है। उनके इसी रूप के सौन्दर्य का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार श्रीकृष्ण साहित्य मे श्रीकृष्ण या गोपागनाओ आदि का जो सौन्दर्य वर्णित है, उसका मूल आधार यह पौराणिक साहित्य ही है। यह साहित्य अपने पूर्ववर्ती ग्रन्थो को उपजीव्य मानकर परवर्ती साहित्य को प्रभावित करने वाला बन गया था। इसी दृष्टि से श्रीकृष्ण के पूर्व नामो और चरित्रो आदि की संक्षिप्त परम्परा भी उपस्थित की गई है।

कृतज्ञता-ज्ञापन—कारण और कार्य का अनवरत सम्बन्ध बना रहता है। कार्य की सिद्धि की मूल प्रेरणा प्रेरक कारण एव परिस्थिति के ऊपर अवलम्बित रहती है। सामयिक स्थितियो से परिचालित होकर व्यक्ति कार्य की ओर अग्रसर होता है और कार्य-काल मे उपस्थित अवरोधो को दूर करने मे निर्देशक का स्नेह और मार्ग-दर्शन उसके लिये सम्बल का काम करता है। इसके अभाव मे व्यक्ति का बल और धैर्य या तो समाप्त हो जाता है या वह कार्य से विमुख हो जाता है। मेरे लिये इस प्रकार की कोई बाधा उपस्थित नही हुई क्योकि मैं अपने निर्देशक का एक प्राचीनतम शिष्य रहा हू और उनके स्नेह का पूर्ण अधिकारी भी। इस स्थिति का लाभ उठाते हुए प्राय उनके निवास-स्थल पर ही रहकर अपनी शकाओ का समाधान करता रहा। वहाँ पर उनका सौहार्द्रपूर्ण पारिवारिक वातावरण मेरी प्रेरणा का कारण बनता रहा और नैराश्य के क्षणो मे भी आशा की ज्योति मुझे आगे बढाती रही। यही कारण है कि प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध आज पूर्ण होकर प्रकाशित हो रहा है।

इस प्रबन्ध के शीर्षक-चयन मे एक नाटकीय परिस्थिति का योग है। नवलगढ (राजस्थान) की सस्था 'श्री सूर्य-मण्डल' मे आमन्त्रित डा० सत्येन्द्र,

अध्यक्ष हिन्दी-विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर के साथ किये गये विचार-विनिमय ने मुझे उनके पास जयपुर जाने की प्रेरणा दी। वहाँ पर उनके सुझावो का लाभ उठाकर अपने निर्देशक डा० आनन्द प्रकाश दीक्षित सम्प्रति अध्यक्ष हिन्दी-विभाग, पूना-विश्वविद्यालय, पूना, की सहायता से इस शीर्षक को चुना गया तथा तदनुसार उसकी रूप-रेखा बनाकर उसी दिन डा० सत्येन्द्र की मौखिक स्वीकृति लेकर कार्य आरम्भ कर दिया गया था।

कार्य के आरम्भ कर देने पर कुछ मास के उपरान्त मुझे कई बाधाओ का सामना करना पडा। प्रथम यह कि इस ग्रन्थ का कलेवर बढता चला जा रहा है। द्वितीय बाधा के रूप मे समुचित ग्रन्थो का अभाव कार्य को अवरुद्ध कर देता था। तीसरी कठिनाई यह थी कि हमारे और निर्देशक के निवास-स्थान के बीच लगभग सौ मील की दूरी थी। क्रमश इन अवरोधो को दूर किया गया। ग्रन्थ की रूप-रेखा मे समुचित परिवर्तन करके उसे यथा सम्भव एक सीमा मे ही रखने का प्रयास किया गया। इससे उसके बढते हुए कलेवर को नियन्त्रित कर दिया गया।

ग्रन्थो के अभाव की पूर्ति अनेक स्थलो की यात्रा से की गई है। इस यात्रा मे चार मास का समय लगा। काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा, जयपुर, उदयपुर, गोरखपुर, पूना, नाथद्वारा, काकरौली से प्रस्तुत प्रबन्ध की सामग्री सगृहीत की गई। इनमे काशी नागरी प्रचारिणी सभा और नाथद्वारा से प्राप्त सामग्री विशेष उपयोगी सिद्ध हुई। नाथद्वारा के श्री आनन्दी लाल जी शास्त्री और लाला भगवान दास जी की सहायता से अनेक ग्रन्थ देखने को उपलब्ध हुए। यही पर गोस्वामी गोविन्द लाल जी महाराज का कृष्ण-साहित्य से सम्बन्धित अपूर्व सग्रह है। प्रत्येक शोधक यहाँ से लाभ उठा सकता है। पूना में कई हस्तलिखित ग्रन्थ मिले। यहाँ के सस्कृत-विभाग के डा० जोशी ने कई समस्याओ का समाधान किया। उदयपुर के एम० बी० कालेज के पुस्तकालया-ध्यक्ष ने वही पर बैठकर पुस्तको के अध्ययन की सुविधा दे दी थी। जयपुर, गोरखपुर और पूना विश्वविद्यालयो के पुस्तकालयो से लाभ उठाया गया। इन सभी स्थलो से सामग्री का चयन करके उनका समुचित उपयोग किया गया। इस कार्य मे सहायता देने वाले सभी लोगो के प्रति मै अपना आभार प्रकट करता हू।

शोध-प्रबन्ध को प्रस्तुत करने मे हमारी तीसरी कठिनाई मेरे और निर्देशक के बीच स्थान की दूरी थी। बीच-बीच मे कई शकाएँ उत्पन्न होती थी, जिनका समाधान पत्र-व्यवहार से नही हो पाता था। अत मुझे बार-बार

निर्देशक के पास जयपुर जाना पडता था। कालचक्र से यह दूरी और भी बढ गई। वे पूना विश्व-विद्यालय मे हिन्दी के अध्यक्ष होकर पदोन्नति पर चले गये। इस दूरी को कम करने के लिये मुझे पूना मे रहना पडा। अपनी शकाओ के समाधान हेतु जयपुर मे अपने निर्देशक के पास जाते हुए मुझे एक-बार एक दुर्घटना का भी शिकार हो जाना पडा। इस दुर्घटना एव शोध-प्रबन्ध की स्मृति स्वरूप अर्जित की गई शारीरिक पीडा सम्भवत आजीवन बनी रहेगी क्योकि आज भी यदा-कदा वह पीडा उमडकर समक्ष आ जाती है।

शोध-प्रबन्ध के सम्बन्ध मे मेरी यह धारणा है कि शोध-कार्य आरम्भ करने के पूर्व प्रत्येक शोधक को शोध सम्बन्धी कार्यों एव व्यवसायो का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिये कम से कम एक मास तक नियमित रूप से शोध-सम्बन्धी कक्षाओ मे उपस्थित रहना चाहिए तथा सम्बन्धित विश्वविद्यालयो द्वारा इसका प्रबन्ध होना चाहिए। ऐसा होने पर अनेक शकाएँ स्वत ही समाप्त हो जायेगी तथा कार्य-विधि का ज्ञान होने से व्यर्थ के अध्ययन मे भटकना न पडेगा।

डा. सरनाम सिंह जी शर्मा, जयपुर के प्रति भी अपनी कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। यद्यपि मैं उनके निर्देशन मे कार्य नही कर रहा था, और न ही उनसे मेरा कोई पूर्व परिचय ही था, फिर भी अपनी महती उदारता के कारण उन्होने प्रथम परिचय के क्षण से ही बडे मनोयोग पूर्वक मुझे अपनी अमूल्य सम्मतियाँ और सुझाव दिये थे।

अन्त मे अपनी सहधर्मिणी श्रीमती पुष्पलता अग्रवाल के प्रति भी आभार प्रकट करना अपना कर्तव्य समझता हू। वे सम्पूर्ण पारिवारिक उत्तरदायित्वो को स्वय वहन करते हुए मुझे अध्ययन के लिये पर्याप्त समय और प्रेरणा देती रही। इसी का फल है कि यह कार्य शीघ्र ही समाप्त होकर आपके हाथो मे प्रस्तुत है। अन्य भी अनेक लोगो से मुझे ग्रन्थ-निर्माण मे सहायता मिली, जिनकी स्मृतियाँ शेष हैं। उन सब के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हुए मैं केवल इतना ही कहूँगा कि—

"अन्ये चापि महाभागा सहायाग्रन्थनिर्मितौ ।
ये ते सर्वे प्रसीदन्तु नामतो न स्मृता इह ।

५६७०/३ देवनगर, नई दिल्ली ५,
आषाढ कृष्ण ११ स० २०२७।

पुरुषोत्तम दास अग्रवाल

पूर्व-पीठिका

(१) वेदो मे विष्णु
(२) नारायण और श्रीकृष्ण
(३) महाभारत मे श्रीकृष्ण
(४) पुराणो मे श्रीकृष्ण

वेदों में विष्णु

साहित्य मे भगवान श्रीकृष्ण के जिस रूप की आज इतनी अधिक महत्ता है, उसके मूल पर विचार कर लेना जिज्ञासुओ की तृप्ति का एक प्रधान साधन होगा। आज श्रीकृष्ण की सर्व व्यापकता के सम्बन्ध मे मत वैभिन्न नही है। यदि उनके इसी गुण पर ध्यान केन्द्रित कर दिया जाय तो स्पष्ट हो जाता है कि वैदिक युग मे 'विष्णु' के भी इसी गुण का बार-बार वर्णन किया गया है। इस दृष्टि से श्रीकृष्ण को अपने आदि रूप मे विष्णु मान लेने पर अत्युक्ति नही कही जा सकती है। विष्णु के इस व्यापकतापरक रूप पर विचार करना आवश्यक है।

'विष्णु' शब्द का व्युत्पत्तिगत अर्थ प्रवेश या व्याप्ति है। 'विश्' धातु से निष्पन्न इस शब्द से सम्पूर्ण विश्व मे व्यापकता का भाव व्यक्त होता है। यह शब्द जिस व्यक्तित्व का बोधक है, वह निश्चित रूप से अपने इस गुण के कारण सर्वमान्य रहा है। वेद के प्रसिद्ध भाष्यकार **सायण** ने विष्णु का अर्थ "व्यापनशील" माना है, **ब्लूमफिल्ड** (पाश्चात्य विचारक) के अनुसार 'पृष्ट पर होकर' (On the back) अर्थ किया गया है। **आप्टे** ने इस शब्द की निष्पत्ति 'विश्' धातु से मानते हुए कहा है कि चूकि उसी की शक्ति से यह सम्पूर्ण विश्व व्याप्त है, अत विश् धातु के 'प्रवेश मूलक अर्थ' के कारण उसे विष्णु कहा जाता है।[1] यास्क ने कहा है कि, "अथ यद् विषितो भवति तद् विष्णुर्भवति। विष्णुर्विशतेर्वा व्यश्नोतेर्वा'। दुर्गाचार्य ने अपने निरुक्त मे कहा है कि जो समस्त चराचर जगत् को व्याप्त करता है, वही विष्णु है 'वेवेष्टि व्याप्नोति चराचर जगत् स विष्णु'। एक अन्य स्थल पर कहा है कि रश्मियो द्वारा यह व्याप्त होता है अत विष्णु कहा जाता है।[2] यहाँ पर विष्णु को ही आदित्य के रूप मे स्वीकार किया गया है। विष्णु शब्द मे वि का अर्थ मोक्ष भी बताया गया है। अत मोक्ष की योग्यता रखने वाला या मोक्षदाता ही विष्णु कहा गया। वेदो मे इस मोक्ष का इन्द्र द्वारा वृत्र और पणिस से जलमोक्ष का अथवा

---

1 यस्माद्विश्वमिद सर्व तस्य शक्त्यामहात्मन ।
तस्मादेवोच्यते विष्णुर्विशधातो. प्रवेशनात् ।

2 यदा रश्मिभिरतिशयेनाय व्याप्तो भवति, व्याप्नोति वा रश्मिभि य सर्वम्।
तद् विष्णुरादित्यो भवति। निरुक्त २/३/३

वरुण द्वारा पाश मोक्ष का अर्थ लगाया जा सकता है ।[1] इस दृष्टि से यही विष्णु उपेन्द्र भी कहे जा सकते है और इनका प्रमुख गुण व्यापकता है ।

विष्णु की इस व्यापकता की चर्चा ऋग्वेद के कई मत्रो मे है । वहाँ पर विष्णु को 'कुचर' और गिरिष्ठा कहा गया है ।[2] इनका एक नाम त्रिविक्रम भी बताया गया है । अपने पगो से अखिल ब्रह्माण्ड को माप लेने वाली विशेषता के कारण विष्णु एक महान् और व्यापक शक्ति के प्रतीक बनकर हमारे समक्ष आते है । आदित्य वाचक भाव का बोधक होकर उनके जिन तीन पदो की चर्चा है उनमे दो पदो का आधार पृथ्वी और अन्तरिक्ष तो चक्षु का विषय है, परन्तु तृतीय 'परम पद' अदृष्ट है, आकाश की ओर दृष्टि रखकर विद्वान् उसे देख सकते है ।[3] विष्णु के इन तीन पदो की चर्चा वेदो मे अनेक स्थलो पर है । अपनी व्यापकता के कारण सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को माप लेने की शक्ति वर्तमान है । कहा गया है कि "अदम्य विष्णु गोप ने तीन पदो मे ब्रह्माण्ड बाँध लिया ।[4] उन्होने तीन पद किये और ब्रह्माण्ड को नाघ गये ।[5] विष्णु का यह तीसरा पद पक्षियो के लिये भी अगम्य है ।[6] यह तीसरा पद मधु का उत्स है ।[7] यही परम पद बाद के धार्मिक ग्रन्थो के साधको का प्राप्य बन गया । विष्णु के इन तीन पदो की चर्चा पौराणिक साहित्य मे की गई है । वामनावतार का मूल स्रोत इसे ही मान सकते है । उस अवतार मे भगवान वामन ने तीन पद से ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को माप लिया था । उपर्युक्त मत्र मे प्रयुक्त 'गोपा' का शाब्दिक अर्थ गौवो का पालन करने वाला है । श्रीकृष्ण का सम्बन्ध गायो से बहुत अधिक

---

1 सूर की झाँकी । डा० सत्येन्द्र पृ० १७ प्रथम सस्करण, शिवलाल अग्रवाल एण्ड क० आगरा ।

2 प्रतद् विष्णु स्तवते वीर्येणमृगो न भीम कुचरो गिरिष्ठा ।
यश्चोरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा । ऋग्वेद १/५४/२

3 इद विष्णुविचक्रमे त्रेधा निदधे परम् । ऋगवेद १/२२/१७
तद्विष्णो परम पदम् सदा पश्यन्ति सूरय
दिवीव चक्षुराततम् । १/२२/२० ऋग्वेद

4 त्रिणि पदानि विचक्रमे विष्णुर्गोपा अदम्य । ऋग्वेद १/२२/१८

5 इद विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् । ऋग्वेद १/२२/१७

6 द्वे इन्द्रस्य क्रमणे स्वर्दृशोऽभिख्याय मर्त्योभुरण्यति ।
तृतीयमस्य नकिरा दधर्षति वयश्चन पतयन्त पपत्रिण । ऋग्वेद १/१५५/५

7 उरुक्रमस्य सहिबन्धुरित्था विष्णये ।
पदे परमे मध्व उत्स. । १/१५४/५ ऋग्वेद

था । यहाँ पर जिस लोक की कल्पना की गई है, वहाँ सिगो वाली गायो की स्थिति भी बताई गई है ।[1] सिगो से युक्त गायो का यह स्थान विष्णु का परम पद कहा गया है जो सदा प्रकाशित होता रहता है । हो सकता है कि वैष्णव साधको ने यहीं से अपने वैकुण्ठ और विष्णु के वासस्थान गो-लोक का मूल बीज पा लिया हो । वृन्दावन की कल्पना मे भी यही भावना दीख पडती है । वेदो मे विष्णु के सम्बन्ध मे वर्णित अनेक बाते श्रीकृष्ण के अवतारो मे प्राप्त होती है । इससे ऐसा प्रतीत होता है कि विष्णु की यही भावना परवर्ती साहित्य मे श्री कृष्ण के व्यक्तित्व मे विकसित हो गई । श्रीकृष्ण जीवन से सम्बन्धित अन्य कई शब्दो का उल्लेख भी वेदो मे प्राप्त हो जाता है ।

विष्णु के अनेक पर्यायो का उल्लेख भी वेदो मे है । ऐसे शब्दो मे त्रिविक्रम, उरुगाय और गोपा आदि शब्दो का नाम लिया जा सकता है ।[2] यहाँ पर कृष्ण को वृष्णि कहना अकारण नही हो सकता । परवर्ती साहित्य मे पौराणिक आख्यानो के आधार पर श्रीकृष्ण विष्णु के अवतार और वृष्णि-वश मे उत्पन्न माने गये हैं । इन्हीं विष्णु के लिये वेदो मे ऋग्वेद १/२२/१८ और १/२२/१७ 'त्रीणि पदानि विचक्रमे' और 'त्रेधा निदधे पदम्' का प्रयोग किया गया है ।

श्रीकृष्ण की लीलाओ से सम्बन्धित अन्य बहुत से शब्द वेदो मे प्रयुक्त हुए है । राधा,[2] गौ,[3] व्रज,[4] अहि, वृषभानु,[5] रोहिणी,[6] कृष्ण, अर्जुन[7] आदि शब्द इसी प्रकार के हैं । ऋग्वेद के बहुत से **मंत्रो[8] के द्रष्टा** ऋषि श्रीकृष्ण का वर्णन भी मिलता है । इन्ही के नाम पर कार्ष्णायिण गोत्र चला था । हो

---

1 ता वा वास्तुन्युश्मसि गमध्ये यत्र गावोभूरि शृ गा अयास ।
यत्राह तदरुगायस्य वृष्ण परम पदमवभाति भूरि । ऋग्वेद १/१५४/६

2 प्रभविष्णवे शूषमेतुमन्म गिरिक्षत उरुगायाय वृष्णे । ऋग्वेद १/१५४/३

3 **स्तोत्र राधानां पते** । ऋ० १/३०/२६ ॥
३—गवामव्रज वृधि । ऋ० १/१०/७

4 दासपत्नी अहिगोपा अतिष्ठत । ऋ० १/३२/११

5 त्व नृचक्षा वृषभानुपूर्वी कृष्णास्वाग्ने अरुषो विभाहि । अथर्ववेद ३/१५/३

6 तमेदताधार य कृष्णा रोहिणीपु । ऋग्वेद ८/९३/१३

7 कृष्णा रूपाणि अर्जुना विवो मदे । ऋग्वेद १०/२१/३

8 ऋग्वेद मडल ८ सूक्त स० ८५, ८६, ८७, तथा मण्डल १०/४२–४३–४४

सकता है कि इस प्रचलित नाम का आधार ग्रहण कर वसुदेव ने अपने पुत्र का नाम श्रीकृष्ण रख दिया हो। वैदिक आख्यानक के अनुसार नाग जाति का एक नेता अद्रणक वर्ण मे काला होने के कारण मरुत ऋषि द्वारा कृष्ण कहा गया था।[1] वही बाद मे अपनी लोकप्रियता के कारण मूल पुरुषो मे गिना जाने लगा था। इस प्रकार विष्णु और कृष्ण नाम की प्रसिद्धि वैदिक युग मे हो चुकी थी, इसमे सन्देह नही है। यह बात दूसरी है कि उनके रूप का इतना अधिक विस्तार नही हो सका था।

इस स्थल पर तार्किको के मन मे यह एक सन्देह उत्पन्न हो सकता है कि श्रीकृष्ण तो अनादि और अनन्त है, तो वेदो के माध्यम से उनके अस्तित्व को कैसे स्वीकार किया जा सकता है ? यहाँ पर मेरा केवल इतना ही निवेदन है कि रचनाओ मे श्रीकृष्ण की अभिव्यक्ति होने के पूर्व ही वेद अस्तित्व मे आ चुके थे। श्रीमद् भागवत के अनुसार महाभारत मे इतिहास के माध्यम से वेदो के रहस्य का उद्घाटन हुआ है।[2] इससे ऐतिहासिक दृष्टिकोण और वैदिक रहस्य इन दोनो का युगपत् ज्ञान होता है। इस कथन से वेदो को महाभारत के पूर्व का ग्रन्थ स्वीकार किया गया है। महाभारत मे भी श्रीकृष्ण को वेद वेदाग वेत्ता बताया गया है। इस विचार से भी यह स्पष्ट है कि वेदो के पक्तिबद्ध करने अथवा अस्तित्व मे आ जाने के बाद ही श्रीकृष्ण नाम का परिचय प्राप्त होने लगा होगा। ऐसा मान लेने पर एक दूसरी शका यह उत्पन्न होती है कि ऐसी स्थिति मे वेदो मे प्रयुक्त राधा, गौ आदि शब्दो का क्या अर्थ लगाया जायगा। इस शका का निराकरण अत्यन्त सरल है। वैदिक व्याख्या ग्रन्थो मे इन सभी शब्दो का तत्कालीन अर्थ दूसरा था। राधा शब्द धन, अन्न और नक्षत्र का बोधक है, गो का अर्थ किरण और ब्रज का किरणो का स्थान द्यौ है। कृष्ण रात्रि, अर्जुन दिन, वृष्ण बलराम अर्थ को व्यक्त करते है। आरम्भ की वैदिक व्याख्याओ मे यही अर्थ प्रचलित था, परन्तु शब्दो के सतत् प्रयोग और अर्थ परिवर्तन से इनका सम्बन्ध श्रीकृष्ण से जोड दिया गया होगा। इस आधार पर यह निर्णय अत्युक्ति पूर्ण न होगा कि वेद मे प्रयुक्त राधा कृष्ण आदि शब्द ऐतिहासिक प्रसिद्धि प्राप्त व्यक्तित्व के वोधक नही, अपितु अपने मूल रूप मे एक अन्य अर्थ के ही प्रतिपादक रहे है। यह बात दूसरी है कि हमारी धार्मिक भावनाएँ प्रत्येक विचार का बीज वेदो मे खोज लेने की अभ्यस्त हो

---

1 साहित्यिक निबन्ध पृ ३५ पुरुषोत्तमदास अग्रवाल

2 भारत व्यपदेशेन ह्याम्नायार्थश्च दर्शित । भागवत १/४/२८

गई है और इसी भावना के फलस्वरूप इन शब्दो के मूल मे अवतार का रहस्य हमे प्राप्त हो गया है।

इस सम्बन्ध मे मनु का विचार है कि सभी नामो एव कर्मो का निर्माण वेदो से ही हुआ है।[1] डा० हरवश लाल शर्मा के अनुसार इन मन्त्रो मे जो नाम आये है, उनका यद्यपि गोपाल कृष्ण से कोई सम्बन्ध नही है, परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि जिस प्रकार वैदिक कृष्ण का सम्बन्ध महाभारत के कृष्ण से जोड दिया गया, उसी प्रकार इन सभी नामो का उपयोग पौराणिक युग मे कृष्ण के लिये कर लिया गया।[2] डा० मु शीराम शर्मा ने भी इसी विचार का समर्थन किया है कि 'इस प्रकार वेदो मे जो राधा, विष्णु, कृष्ण आदि शब्द आये है, वे ऐतिहासिक व्यक्तियो के नाम नही है। ऐतिहासिक व्यक्तियो एव पदार्थो के नाम वेद के शब्दो को देखकर रखे गये है। वेद के शब्द पहले है, ऐतिहासिक व्यक्ति बाद मे हुए है।"[3] अतः स्पष्ट है कि इन्ही शब्दो का प्रयोग अवतारो मे होने लगा होगा।

विष्णु के विभिन्न नामो मे उनके **आदित्य परक भावना** का उन्मेष भी मिलता है। ये विष्णु यज्ञ के सहायक और द्वादश आदित्य भी कहे गये है।[4] विष्णु देवताओ मे श्रेष्ठ है "तस्मादाहु विष्णुर्देवानाम् श्रेष्ठा।" अन्य स्थलो पर भी उनकी श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया गया है।[5] **मैत्रेय उपनिषद्** मे विष्णु को अन्न रूप मे पोषक माना गया है। आदित्य की उष्मा से अन्न का पोषण प्रसिद्ध ही है। विष्णु के विभिन्न कार्यो मे उसका दैनिक कार्य आदित्य रूप मे ही निष्पन्न होता है। इस रूप मे विष्णु के तीन पदो का अर्थ भूत, भविष्य और वर्तमान कालो से लगाये जाने की परम्परा रही है। इस विचार मे भिन्नता हो सकती है परन्तु इसमे कोई सन्देह नही है कि सूर्य, विष्णु और आदित्य एक ही देवता के भिन्न नाम उनके कार्यो के आधार पर बताये गये हैं। विष्णु मे सूर्य के गुणो का समावेश है यद्यपि यह शब्द आरम्भ मे विशे-

---

1 सर्वेषा तु स नामानि कर्माणि च पृथक्-पृथक्।
वेद शब्देभ्य एवादौ पृथक् सस्थाश्च निर्ममे। मनुस्मृति १/२१

2 सूर और उनका साहित्य–पृ० १२५ डा० हरवश लाल शर्मा।

3 भारतीय साधना और सूर साहित्य–पृ० १६६ स० २०१० वि०

4 एकादशास तथा त्वष्टा द्वादशो विष्णुरुच्यते।
जघान्याज स तु सर्वेषाम् आदित्यानाम गुणाधिकः। ४/५५/६

5 अथर्ववेद ५/२६/७ व ८–५,१। तैत्तिरीय सहिता १/७/५४ वाज सनेयी सहिता १/३०–२, ६, ८–५, २१

षणवाची रहा होगा, परन्तु बाद मे सतत् प्रयोग के कारण विष्णु की स्वतन्त्र सत्ता निर्धारित होने लगी ।

विष्णु को आदित्य का पर्याय मानने का एक विशेष रहस्य प्रतीत होता है । वेदो मे वर्णित विष्णु के तीन पदो मे तीसरे पद को 'परम-पद' कहा गया है । यह पद आकाश मे है । अपनी इस व्यापकता के कारण ही विष्णु शब्द पूषन्, मित्र आदि अन्य पर्यायो की भाँति सूर्य का पर्याय ठहरता है । तीन पदो द्वारा ब्रह्माण्ड को माप लेने वाली विशेषता के कारण अन्य विशेषणो की तुलना मे इस शब्द की महत्ता बढी और स्वतन्त्र देवता के रूप मे विष्णु का विकास होने लगा । यजुर्वेद के शतपथ ब्राह्मण के चौदहवे खण्ड की एक कथा द्वारा देवताओ के एक सघर्ष मे विजयी होकर ही विष्णु श्रेष्ठ बन गये और उनकी प्रतिष्ठा बढती चली गई । श्रीमद् भगवद् गीता मे भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन से स्वय कहा है कि मै आदित्यो मे विष्णु और देवताओ मे इन्द्र हूँ ।[1]

गीता के इस कथन से यह स्पष्ट है कि विष्णु ही आदित्य और इन्द्र के रूप मे प्रसिद्ध है । एक अन्य स्थल पर भी श्रीकृष्ण ने अपने को वेदो मे साम-वेद और देवताओं मे इन्द्र माना है ।[2] यहाँ प्रयुक्त 'वासव' शब्द इन्द्र का ही पर्याय है । इन्द्र की इस धारणा का कोई विशेष कारण रहा होगा । वेदो के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि वैदिक सूक्तो मे अग्नि और इन्द्र की स्तुति ही अधिक की गई है । ये ही दोनो प्रधान देवता के रूप मे ग्राह्य रहे है । इनमे इन्द्र को यदि हम राष्ट्रीय नेता माने, तो कोई अत्युक्ति नही होगी, क्योकि उन्होने वृत्रासुर का वध करके जल का मोचन किया था । उनकी स्तुति मे सूक्तो का आकर्षक रूप दीख पडा । बाद मे इनके व्यक्तित्व की विशेषताएँ ही विष्णु मे समाहित कर दी गई होगी । इसी से इन्द्र के साथ विष्णु की गणना परवर्ती मत्रो मे होने लगी ।

ऋग्वेद मे विष्णु की चर्चा इन्द्र सखा के रूप मे भी है । वृत्रासुर वध के अवसर पर विष्णु का विक्रम वर्णित है । विष्णु परमपद के अधिकारी होकर महादेव के रूप मे प्रतिष्ठित होने लग गये थे । तीन पदो मे ब्रह्माण्ड को नाप लेने वाली कथा से विष्णु की महिमा बढती गई और कालक्रम से इन्द्र का महत्व अपेक्षाकृत कम होता चला गया । अनेक वैदिक सूक्तो मे कभी स्वतन्त्र रूप मे कभी अन्य देवताओ के साथ उनका गान होने लगा । ऋग्वेद मे विष्णु

---

1 आदित्यानामह विष्णुर्ज्योतिषां रविरशुमान् । गीता १०/२१

2 वेदानां सामवेदोस्मि देवानामस्मि वासव । १०/२२

एक महत्वपूर्ण देवता के रूप मे नही थे, क्योकि स्वतन्त्र रूप में इनसे सम्बन्धित बहुत कम ऋचाएँ ही देखने को मिलती है। अन्य देवताओं के संग ही इनके महत्व का प्रतिपादन हुआ है, परन्तु यजुर्वेद मे यज्ञ की महत्ता के साथ ही विष्णु का भी महत्व बढने लगा। फलस्वरूप विष्णु को भी यज्ञ रूप ही मान लिया गया और इनके स्वतन्त्र व्यक्तित्व का विकास आरम्भ हो गया। इसी से विष्णु के लिये 'ऋतस्य गर्भम्' और 'यज्ञो ह्वै विष्णु' कहा गया है। इनका यह यज्ञ रूप अधिक प्रचलित होने लगा।

यजुर्वेद मे विष्णु, उपेन्द्र और इन्द्र सहायक अर्थ के भी द्योतक बने। यज्ञ को ही विष्णु की सज्ञा प्राप्त हो गई। कर्म क्षेत्र की यह प्रधानता यही तक सीमित न रहकर ज्ञान क्षेत्र मे भी पहुँच गई। यज्ञ का कर्म पक्ष ही सब कुछ नही था, अपितु उसके मानसिक स्वरूप को भी ग्रहण किया गया। वैदिक कर्मो के इस मानसिक रूप के साथ तथ्य पर विचार होने से 'ब्राह्मण' और आरण्यक' काल मे 'ब्रह्म' को परमतत्व के रूप मे मान लेने की परम्परा का सूत्रपात हुआ। यह ब्रह्म अन्य सभी देवताओ से ऊचा माना गया और सभी देवता इसमे समाहित हो गये। इस ब्रह्म का सम्बन्ध यज्ञ से बना रहने के कारण इसे सृष्टि का कर्ता भी मान लिया गया। इस ब्रह्म का बोध कर्म द्वारा न मानकर ज्ञान द्वारा माना गया। उपनिषद् इसकी व्याख्या करने मे अपनी विद्वत्ता लगाने लगे। इसे मोक्षदायी माना गया। इसकी सर्वव्यापकता की चर्चा विष्णु सदृश हो जाने से यज्ञ मे क्रमश शिथिलता आने लगी और वैदिक कर्मकाण्ड एव मान्यताओ के समक्ष जिज्ञासा का भाव उपस्थित होने लगा। फल यह हुआ कि विभिन्न वैष्णव सम्प्रदायो का मूल स्रोत यही पर स्पष्ट रूप से देखा जाने लगा इस प्रकार उपनिषद् मे विष्णु जगत पालक और परमपद अर्थात् सर्वोच्च स्थान के अधिकारी हो गये।[1]

अथर्ववेद के विभिन्न उपनिषदो के एक भाग मे शिव या विष्णु के विविध रूपो की व्याख्या और उनका स्पष्टीकरण किया गया है। ब्रह्म चिन्तन तो उपनिषदो का मुख्य विषय ही है। सामवेद के केनोपषिद मे ब्रह्म की शक्तिमत्ता और विचित्रता का कथन है। वहाँ ब्रह्म को अग्नि, इन्द्र वायु आदि सभी देवताओ से अधिक शक्तिशाली कहा गया है। ब्रह्म को देवताओ मे सर्वप्रथम माना गया 'ब्रह्म देवाना प्रथम सम्बरव।'[2] ब्रह्म ही पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, आगे

---

1 विज्ञान सारथिर्यस्तु मन प्रग्रहवान्नर।
सोऽध्वन परमाप्नोतितद्विष्णो परम पदम्। कठोपनिषद् ३/९

2 मुण्डकोपनिषद् ?

पीछे ऊपर नीचे सभी कही व्याप्त है।[1] ब्रह्म के इस गुण (सर्वव्यापकता के कारण) यह ऋगवेद के विष्णु के समकक्ष हो जाता है। परवर्ती ग्रन्थो मे भी विष्णु की चर्चा इसी रूप मे की गई है। ब्रह्म को परम सत्ता मानकर उसे स्वयभू माना गया और परम आत्मा के रूप मे ब्रह्म की प्रतिष्ठा हुई।

वेदो के अनिरिक्त अन्य वैदिक ग्रन्थो मे विष्णु रूप का विकास दीख पडता है। इन ग्रन्थो मे ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिपदो की गणना हो सकती है। **कठोपनिषद्** मे विष्णु के परमपद की प्राप्ति ही जीवन का ध्येय माना गया है। **मैत्रेय** मे विष्णु को अन्नरूप मे पोपक कहा गया है। शतपथ ब्राह्मण मे विष्णु को वामन के रूप मे स्वीकार किया गया है।[2] यह विष्णु ब्रह्म की भाँति ही कल्पनातीत है। वामनावतार का मूल स्रोत इसे ही मानना युक्ति सगत प्रतीत होता है। यज्ञ निष्ठा की दृष्टि से इसमे विष्णु को अग्रणी बताया गया है। उनकी अलौकिक कथा यहा चमत्कारिक ढग से स्पष्ट की गई है। वैदिक काल मे इन्द्र को प्राप्त होने वाला महत्व ब्राह्मण काल मे विष्णु को ही मिलने लगा और इसी मे अवतारो का वीज खोज लेने की चेष्टा भी की गई। **शतपथ मे** ही विष्णु के अन्य अवतारो–मत्स्य, कूर्म, वाराह और वामन आदि का वर्णन है।[3] यहाँ विष्णु के साथ नारायण की चर्चा भी हुई। तैत्तिरीय आरण्यक मे विष्णु को नृमिह कहा है।[4] **नृसिह तापनी** मे इस नाम की चर्चा है। यही विष्णु पुरुषोत्तम, वासुदेव और देवकी पुत्र भी हो-जाते है। **गोपाल तापनी** मे उनका दिव्य रूप दीख पडता है। विभिन्न सम्प्रदायो मे विष्णु ही नृसिह, राम, नारायण और कृष्ण के रूप मे विख्यात हुए। क्रमश इनका विष्णु रूप नारायण मे परिवर्तित होने लगा।

नारायण रूप

चराचर व्याप्त विष्णु की व्यापकता के आकर्षण से ही वैष्णव सम्प्रदायो ने इन्हे नारायण रूप मे ग्रहण किया। नर के अयन का अन्तिम लक्ष्य 'नारायण' कहे गये। **ऋग्वेद** की १०/२५/५–६ ऋचाओ मे नारायण का सकेत है। **मनुस्मृति** मे नारायण शब्द की व्याख्या की गई है कि नर का अयन

---

1 ब्रह्म वेदममृत पुरस्ताद् ब्रह्म पश्चाद् ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण।
अधश्चोर्ध्वञ्च प्रसृतं ब्रह्मवेद विश्वमिद वरिष्ठम।

2 शतपथ १/२/५

3 शतपथ/क्रमश १/८/१/२–१० । १४/३५ ।
१४/१/२/११ । १/२५/१–७

4 तै० आ०–१०/१/८

होने से ही इसे नारायण कहा गया है।[1] दशम मण्डल के पुरुष सूक्त मे जिस पुरुष की विशद चर्चा की गई है, उसके सम्बन्ध मे शतपथ ब्राह्मण का मत है कि वह पुरुष ही नारायण है।[2] इसी पुरुष के पञ्चरात्रि यज्ञ करने पर सभी वस्तुए उत्पन्न हुई। नर भी इसी नारायण से उत्पन्न माना गया। **तैत्तिरीय आरण्यक** के मत से नारायण ही वासुदेव है "नारायणाय विदमहे वासुदेवाय धीमहितन्नो विष्णु प्रचोदयात्।" इसी आरण्यक मे कूर्मावतार १/२३/१ और वासुदेव श्री कृष्ण १०/१/६ का वर्णन है। **ऐतरेय ब्राह्मण** मे विष्णु को परम देवता और अन्यो की गणना विष्णु के वाद की गई है।[3] इसी विष्णु से सम्बन्धित उनकी पूजा का जो रूप ग्रहण किया गया, उसी की नारायण सज्ञा मानी जा सकती है। **शतपथ ब्राह्मण** मे नारायण का नाम है।[4] वृहन्नारायणोपनिषद् मे विष्णु को हरि कहा गया और वासुदेव तथा हरि से नारायण का सम्बन्ध स्थापित किया गया। तैत्तिरीय आरण्यक मे विष्णु का नारायण से सम्बन्ध स्थापित किया गया। वे सर्वमान्य परमेश्वर का ऐश्वर्य प्राप्त करते है। इसीसे वे ब्रह्म स्थानीय हो जाते है १०/११/ इससे विष्णु की विशिष्टता का ज्ञान भी हो जाता है।[5]

ऋग्वेद मे सृष्टि के पूर्व जल की स्थिति और ब्रह्मा की उत्पत्ति नारायण की नाभि से बताई गई है।[6] इसी मे पाँच रात्र सत्र का प्रयोजक पुरुष एव पुरुष सूक्त के कर्ता के रूप मे नारायण को ही माना गया है।[7] शतपथ ब्राह्मण की एक कथा के अनुसार पुरुष नारायण ने एक बार स्वय यज्ञ स्थान पर निवास कर वसुओ, रुद्रो और आदित्यो को कही अन्यत्र भेज दिया और यज्ञ सम्पादित करके स्वय सर्वव्यापी बन गये। १२/३/४ इसीसे पुरुष द्वारा पाच रात्र करके सर्वश्रेष्ठ बन जाने का वर्णन आता है। अत नारायण पुरुष नारायण, परमात्मा के अवबोधक और विष्णु के समानार्थक बन गये।

---

1 आपो नरा इति प्रोक्ता आपो वै नर सूनव।
ता यदस्यायन पूर्वं तेन नारायण स्मृत। मनुस्मृति १/४

2 पुरुषम् हि नारायणम् प्रजापतिरुवाच। शतपथ १४/३-४

3 अग्निर्वै देवानाभवमो विष्णु परम, तदन्तरेण सर्वा अन्यादेवता।
ऐतरेय ब्राह्मण १/१

4 शतपथ १३/३/४

5 तै० आ० १४/१/१

6 ऋग्वेद १०/८२/६

7 ऋग्वेद १०/८२/६

नारायण और श्रीकृष्ण

विष्णु की सर्वव्यापकता पहले ही सिद्ध एव स्थिर हो चुकी थी। अवतार की कल्पना मे ब्राह्मण और उपनिषद् मे वर्णित नारायण को कृष्ण का अवतार[1] बताकर विष्णु और कृष्ण का तादात्म्य स्थापित कर दिया गया। उपनिषदो मे भी अवतार विषयक अनेक वर्णन आते है। **छान्दोग्य उपनिषद्** मे देवकी पुत्र श्री कृष्ण का वर्णन है।[2] यहा श्री कृष्ण को घोर आगरिस का शिष्य और देवकी का पुत्र माना गया है। **कौशितकी ब्राह्मण** मे भी श्री कृष्ण के गुरु घोर आगरिस की चर्चा है।[3] इन सभी नामो से एक ही व्यक्तित्व की व्यञ्जना होती है। **ब्रह्मपुराणकार** ने युग के अनुसार इन भिन्न-भिन्न नामो को एक ही माना है।[4] एक ही कृष्ण सास्वत धर्म के उपदेष्टा, ईश्वर और परब्रह्म माने गये है। **यजुर्वेद के पुरुष सूक्त** मे 'श्रीश्चते लक्ष्मी च पत्न्यौ ३१/२२ कहा गया है। इसमे विष्णु की दो पत्नियो श्री और लक्ष्मी का सकेत है। श्रीकृष्ण विष्णु और नारायण के अवतार है, इससे इनके सग लक्ष्मी का होना अनिवार्य माना गया।

उपर्युक्त विचार से स्पष्ट है कि ब्राह्मणकाल के समाप्त होते-होते **विष्णु के** नारायण रूप को परम देव मानने की परम्परा चल पडी थी। मानव-प्रकृति से युक्त सगुण रूप का निर्धारण भी हो चुका था। नारायण और विष्णु की एकता मानव प्रकृति से सम्बद्ध थी। इनका यही रूप परवर्ती ग्रन्थो मे वासुदेव कृष्ण के रूप मे दीख पडा, जिसका समर्थन एव वर्णन महाभारत मे अधिक हुआ है। अत कहा जा सकता है कि आरम्भ मे विष्णु का सम्बन्ध यज्ञ से था। वे यज्ञ पुरुष, उपेन्द्र या इन्द्र के सहायक रहे है। नारायण सृष्टि के मूलकर्त्ता के रूप मे ग्राह्य है। क्रमश दोनो मे ऐक्य हो गया। ब्राह्मण काल मे विष्णु यदि परम देव थे तो नारायण मे ईश्वरत्व का आरोप था। विष्णु वैदिक देवता, नारायण ब्राह्मणकालीन और श्रीकृष्ण पौराणिक हो गये।

---

1 शतपथ ब्राह्मण १२/३/४ और तैत्तिरीय आरण्यक १०/११

2 तद्धैतद् घोर आगिरस कृष्णाय देवकी पुत्राय उक्तवा उवाच। अपिपास एव स बभूव। सोऽन्तवेलायामेतत्त्रय प्रतिपद्येते। अक्षितमसि, अच्युतमसि, प्राणसशितमसि। छान्दोग्य उपनिषद् ३/१९/६

3 कृष्णो हि तदाङ्गिरसो ब्राह्मणान् छन्दसीय तृतीय सवन ददर्श। कौ० ब्रा०

4 विष्णुत्व श्रूयते यस्य हरित्व च कृते युगे। ७०/वैकुण्ठत्व च देवेषु कृष्ण-त्व मानुषेपु च ७१ नारायणी ह्यनन्तात्मा, प्रभवोऽव्यय एव च। ७२ ब्रह्मपुराण अध्याय ७०

पचरात्र का सम्वन्ध वासुदेव से था। नारायण का भागवत, वासुदेव तथा श्रीकृष्ण मे विलीनकरण हो गया। गीता का विश्वरूप विष्णु का ही रूप है। वैदिक विष्णु और वाद के विष्णु के रूप मे भी वहुत परिवर्तन आ गया था। इसी वैदिक विष्णु का विकसित रूप भक्ति कालीन साहित्य मे ग्राह्य हुआ, जो महाभारत काल मे परम पद को प्राप्त करता हुआ वैदिक इन्द्र से भी अधिक महत्वपूर्ण हो गया। वैदिक विष्णु से भगवान कृष्ण के क्रम मे जो परिवर्तन है, उसके मूलरूप मे एकता वनी हुई है। भक्ति काल के कृष्ण लोक रक्षक एव लोकरजक दोनो ही है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि विकास का जो क्रम आरम्भ हुआ, उसके वाह्य रूप मे भिन्नता रहते हुए भी उसकी आन्तरिक एकता पूर्णत वनी हुई है। परवर्ती साहित्य के कृष्ण वैदिक विष्णु एव इन्द्र के प्रतिरूप है। यदि यह कहा जाय कि विष्णु एव इन्द्र की गाथाएँ ही श्रीकृष्ण से सम्बद्ध कर दी गई है, तो इस कथन मे अत्युक्ति नही मानी जायगी। इनमे विष्णु और श्रीकृष्ण की एकता का आभास दिया जा चुका है। यहा पर इन्द्र और श्रीकृष्ण की कथाओ का सक्षिप्त परिचय देंगे.

वैदिक देवताओ मे इन्द्र की महत्ता सर्वमान्य थी। उसकी पराक्रम की गाथा वैदिक ऋचाओ मे गाई गई है। वह एक प्रिय राष्ट्रीय नेता है। अपने वज्र से अन्धकार या वृत्र को समाप्त कर देता है और दुश्मनो पर विजय प्राप्त करता है। सोम उसका प्रिय पेय पदार्थ है। वज्रवाहु विशेषण मे शोभित है। इन्द्र के साथ त्वष्टि का नाम भी लिया गया है। विष्णु का नाम भी इसके साथ लिया गया है। उसका रूप वहुत विशाल है। उसकी शक्ति को अन्य देवता या मानव प्राप्त नही कर सकते है। वह वृत्र और अहि का हन्ता है। इस द्वन्द्व से पृथ्वी और स्वर्ग दोनो काँप उठती है। वह पर्वतो मे छिद्र करके जल को मुक्त करता है। दस्युओ को मार भगाता है। दैत्य उससे भयभीत होते है। यह साधको का सहायक और रक्षक है। इसी की सहायता से देवदूत स्वर्ग से अमरत्व ले आते है। वह सम्पूर्ण विश्व का शासक है। इन आधारो पर श्री कृष्ण के जीवन से समता स्थापित की जा सकती है।

वैदिक युग मे विष्णु की उपेन्द्र सज्ञा भी थी। यहाँ विचार यह है कि वाद के श्रीकृष्ण को ही यदि हम वैदिक इन्द्र कहे, तो इसमे अत्युक्ति होगी या नही? इस प्रश्न के समाधान मे इन्द्र का परिचय देने वाले मत्रो का ध्यान देना आवश्यक हो जायगा।

१. यो जात एव मनस्वान्, देवो देवान्क्रतुना पर्यभूपत्।
यस्य श्रुष्माद्रोदसी अभ्यसेता, नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्र ।

अर्थात् हे लोगो, जिसने जन्म लेते ही देवताओ को पीछे छोड दिया, जिसकी शक्ति के समक्ष दोनो ससार काँपते है, वही इन्द्र है। श्रीकृष्ण भी जन्म ग्रहण कर परमदेव बन जाते है। उनकी शक्ति भी असीम है।

२ य पृथिवी व्यथमानामदृ हद्, य पर्वतान्प्रकुपिता अरम्णात्।
यो अन्तरिक्ष विममे वरीय, यो द्यामस्तभ्नात्स जनास इन्द्र ।

'जिसने काँपती हुई पृथ्वी को स्थिर किया, क्रुद्ध पर्वतो को ठीक किया, अन्तरिक्ष को माप लिया तथा स्वर्ग को सहारा दिया, वही इन्द्र है।'

३ यो हत्वाहिमरिणात्सप्तसिन्धून्, यो गा उदाजदपधा वलस्य।
यो अश्मनोरन्तरग्निं जजान, सवृक्समत्सु स जनास इन्द्र ।

जिसने सर्प को मारकर सातधाराओ को मुक्त किया, जिसने बल के घेरे से गायो को छुडाया, दो चट्टानो से अग्नि उत्पन्न किया, जो युद्धजयी है, वही इन्द्र है।

इन ऋचाओ मे वर्णित घटनाओ का परवर्ती कृष्ण कथा पर प्रभाव पडा है। श्रीकृष्ण और इन्द्र के जीवन की इन घटनाओ का साम्य दोनो की एकता के सम्बन्ध मे सन्देह उत्पन्न कर देता है। गोवर्धन पर्वत को उठाना, अन्तरिक्ष को मापना, कालिय नाग को नाथ कर जल को स्वच्छ बनाना आदि घटनाओ का साम्य आकस्मिक नही कहा जा सकता है। गायो को घेरे से मुक्त करना और युद्धजयी होना आदि से इसी तत्व का सकेत मिलता है कि वैदिक युग के इन्द्र के, जो उस समय के एक राष्ट्रीय नेता थे, सभी गुण महाभारत के श्रीकृष्ण मे [समाहित हो गये है। दोनो के गुणो एव क्रियाओ मे इतना साम्य है कि इमे देखकर ऐसा लगता है कि वैदिक इन्द्र ही श्रीकृष्ण के रूप मे पुन प्रतिष्ठित हुए है। अन्य भी बहुत से स्थलो पर यह समता दीख पडती है।

चौथे मण्डल के १८ वे मत्र मे इन्द्र के जन्म एव बाल जीवन का सकेत है। वहाँ इन्द्र की माता ने जन्म के समय ही देवता जानकर इन्द्र की स्तुति देवकी द्वारा कृष्ण की स्तुति की भाति की थी तथा उस नारकीय स्थान से उसे मुक्त कराने की प्रार्थना भी की थी। कृष्ण के कारागार मे जन्म लेने के वर्णन से कितना अधिक साम्य है। "अय पन्था अनुवित्त पुराणो यतो देवा उदजायन्त विश्वे। अतश्चिद् आ जनिषीष्ट प्रवृद्धो मा मातरममुया पत्तवेक ।" हो सकता है कि इन्द्र की माता भी वृत्र जैसे किसी असुर की वन्दिनी रही हो। यहाँ इन्द्र यह चिन्तन करते है कि अभी मुझे अन्य भी बहुत कार्य करने हैं, अत अभी उस दानव को मारना समीचीन न होगा। इनका यह चिन्तन

कस-वध के पूर्व श्रीकृष्ण के चिन्तन के ही तुल्य है। सोम की चोरी मे माखन चोरी का वीज मिलता है।[1] इन्द्र को 'कुशाव' नामक दैत्य द्वारा निगल लिये जाने की कथा भी है। इस प्रकार की वहुत सी समताएँ मिल जाती है। ऋग्वेद के २/१२/१–१५ मे अनेक वातो का वर्णन है जिनका साम्य श्रीकृष्ण के जीवन से प्राप्त हो जाता है। ऐसी स्थिति मे यदि यह कहा जाय कि इन्द्र ही अपने नाम को परिवर्तित करके श्रीकृष्ण के रूप मे हमारे समक्ष आगये है, तो इस कथन मे कोई अत्युक्ति नही होगी। वैदिक युग मे इन्द्र सर्वमान्य थे। इसी कारण उन्ही के गुणो का अवतरण श्रीकृष्ण मे कर लेना असंगत प्रतीत नही होता। व्यक्तित्व की यह एकता केवल नामो मे ही अपना अन्तर रखती हैं, गुणो मे नही। अत श्रीकृष्ण की साहित्यिक अभिव्यक्ति मे इन्द्र के गुणो एव क्रियाओ का महत् योग है। श्रीकृष्ण विकास क्रम मे पहले विष्णु, उपेन्द्र, यज्ञरूप मे इन्द्र से अधिक महत्वपूर्ण हो गये, विष्णु मे इन्द्र समा गये। यही विष्णु कृष्ण रूप मे अवतरित हुए। इन्द्र का विकसित रूप ही कृष्ण मे प्रकट हुआ। यही कृष्ण नारायण, हरि, वासुदेव आदि रूपो मे वैष्णव सम्प्रदायो मे मान्य हुए। भागवत की छाप के वाद इष्ट देव होकर भववान श्रीकृष्ण रूप मे इनकी मान्यता हुई। ऐसे श्रीकृष्ण का प्रथम विस्तृत वर्णन महाभारत मे है।

महाभारत में श्रीकृष्ण

वैदिक ग्रन्थो के उपरान्त श्रीकृष्ण का विस्तृत परिचय देने वाला प्रथम प्रसिद्ध ग्रन्थ महाभारत है। इसमे उन्हे परव्रह्म के रूप मे स्वीकार किया गया है। वे विष्णु के अवतार और विराट पुरुष है। श्रीकृष्ण के पूर्व सभी नामो मे समन्वय स्थापित करने की चेष्टा इसी ग्रन्थ से प्रारम्भ होती है। एक स्तुति मे कहा गया है कि 'हे श्रीकृष्ण तुम अदिति के पुत्र हो, इन्द्र के छोटे भाई हो, तुम विष्णु हो। वालपन मे ही तुमने ध्रुवलोक, अन्तरिक्ष और पृथ्वी को तीन पैरो से नाप लिया। युगान्त मे सव भूतो का सहार करके तथा आत्मा मे जगत् को आत्मसात् करके तुम स्थित होते हो। तुम्हारे जैसे कर्म पूर्व या अपर काल मे कोई नही कर सका। तुम व्रह्म के साथ वैराज लोक मे निवास करते हो। इस स्तुति से स्पष्ट है कि उपेन्द्र, विष्णु, वामन और व्रह्म को एक ही माना गया है। यही श्रीकृष्ण व्रज की लीलाओ के कर्ता हैं। अर्जुन के

---

१ परायतो मातरमन्वचष्ट न गान्यनुनूगमिमानि।
त्वष्टुगृहे अपिवत् सोममिन्द्र शतधन्य चम्वोसुतस्य।

अनुसार नर और नारायण एक है। एक स्थल पर कहा गया है कि जो भगवान नर तथा हरि है, वही नारायण भी है।[1] यही नारायण जगन्नियन्ता, देवाधिदेव, अखिल लोकपति वासुदेव श्रीकृष्ण के रूप मे पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए। सभा-पर्व मे भीष्म ने कहा है कि 'कृष्ण ही इस चराचर विश्व के उत्पत्ति स्थान एव विश्रामभूमि है और इस चराचर प्राणि जगत का अस्तित्व उन्ही के लिये है।' वासुदेव ही अव्यक्त प्रकृति, सनातन धर्म कर्ता और समस्त प्राणियो के अधीश्वर है, अतएव पूजनीय है।[2]

महाभारत मे श्रीकृष्ण को वासुदेव कहने का कारण यह है कि वे अपनी अलौकिक शक्ति से सभी प्राणियो को आच्छादित कर लेते है। स्वय श्रीकृष्ण कहते है कि मैं सूर्य के रूप मे अपनी किरणो से समस्त विश्व को ढक लेता हू और सभी प्राणियो का अधिवास हू। इसी से मुझे वासुदेव कहा गया है। शान्ति पर्व मे कहा गया है कि "सर्वेषामाश्रयो विष्णुरैश्वर्य विधिमाश्रित.। सर्वभूत कृतावासो वासुदेवेति चोच्यते।"[3] गीता मे भी वासुदेव नाम का समर्थन है, "वृष्णीना वासुदेवोऽस्मि।" एक अन्य स्थल पर कहा गया है कि जिसमे सब बसते है तथा जो सबमे रहता है, वही वासुदेव है।[4] विष्णु पुराण मे बताया गया है कि प्रभु समस्त भूतो मे व्याप्त है। समस्त भूत उन्ही मे रहते है। वे ही ससार के रचयिता है, रक्षक है अत वासुदेव कहलाते है।[5]

मथुरा के उत्तरी भाग मे रहने वाले राजवश की सन्तति को वासुदेव कहा गया है।[6] कौटिल्य के अर्थशास्त्र मे वृष्णि-वश का उल्लेख है। पाणिनी के अनुसार वासुदेव उपास्य देव है। इन्ही के साथ अर्जुन का नाम लिया गया

---

1 नरस्त्वमसि दुर्द्धर्प हरिर्नारायणो ह्यहम्। काले लोकमिम प्राप्तो नर नारायणावृषी। अनन्य पार्थमत्तस्त्व त्वतश्चरह तथैव च। नावयोरन्तर शक्य वेदितु भरतर्षभ। महाभारत १२/४६-४७

2 कृष्ण एव हि लोकानामुत्पत्तिरपि चाव्यय। कृष्णस्य हि कृते विश्वमिदभूत चराचरम्। एव प्रकृतिरव्यक्ता कर्ता चैव सनातन। परश्च सर्व भूतेभ्य-स्तस्मात् पूज्यतयो हरि। सभा-पर्व ३८/२३-२

3 शान्ति-पर्व ३४७/७४

4 सर्वे वसन्ति वै यस्मिन् सर्वेस्मिन् वसते च य।
तमाहुर्वासुदेव च योगिनस्तत्वदर्शिन। महाभारत ५२/८९

5 भूतेषु वसते सोऽन्तर्वसन्त्यत्र च तानि यत्।
धाता विधाता जगता वासुदेवस्तत प्रभु। विष्णुपुराण अश ६ अ. ५/८२

6 [illegible]

है ("वासुदेवार्जुनाभ्या वुञ् ४।३।९३)"। पतञ्जलि के अनुसार वासुदेव और बलदेव दोनो ही वृष्णि नाम है। बौद्ध ग्रन्थ 'निद्देश' मे वासुदेव के साम्प्रदायिक अनुयायियो की चर्चा है अत वासुदेव कृष्ण और देवकीपुत्र कृष्ण दोनो एक है तथा वासुदेव ही श्रीकृष्ण नाम के पूर्व रूप है।

महाभारत मे इन सभी नामो का समन्वय है। श्रीकृष्ण नाम मे उनके प्रमादात्री शक्ति की प्रबलता है। यह सब नामो मे श्रेष्ठ है। पृथ्वी के सुख पहुचाने के अर्थ मे इसका व्यवहार होता है।[1] दैत्यो से आक्रान्त पृथ्वी एक बार ब्रह्मा के शरण मे गई थी और भगवान् ने दैत्यो को मार करके पृथ्वी को सुख दिया था।[2]

महाभारत मे श्रीकृष्ण के नाम-पर्यायो को एक ही व्यक्ति का बोधक माना गया है। यहाँ विष्णु के माध्यम से जिस भागवत धर्म का समर्थन किया गया है उसके उपास्य श्रीकृष्ण ही है। नारायणी उपाख्यान मे श्रीकृष्ण और विष्णु को परमेश्वर माना गया है। शान्ति पर्व की इस कथा मे नारायण की पूजा करने वालो का निवास स्थान श्वेत द्विप बताया गया है। इसी नारायण को ब्रह्माण्ड पुराणकार ने वृन्दावन-विहारी श्रीकृष्ण के नाम से बताया है। इसी पुराण के अनुसार वैकुण्ठ मे निवास करने वाले भगवान पुरुषोत्तम, श्वेत-द्विपवासी नारायण ही श्रीकृष्ण है।[3]

महामुनि नारद ने बदरिकाश्रम मे नारायण को प्रकृति की पूजा मे सलग्न देखा था। सप्तर्षियो द्वारा पाञ्चरात्र धर्म का शास्त्र तैयार किये जाने पर नारायण उन्हे वेदो का सार बताते है। इस शब्द की व्याख्या मे मनु ने बताया है कि ईश्वर की प्रथम सृष्टि जल है (अप एव ससर्जादौ तासु वीर्यमथा सृजत्) जल को 'नारा' कहते है इसी मे निवास किये जाने से उन्हे नारायण कहते है।[4] वह स्वय अजन्मा है, परन्तु उसकी नाभि से ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई है। नारद की स्तुति से प्रसन्न होकर नारायण ने कहा है कि जो नित्य

---

1 कृषिर्भूवाचक शब्द णश्च निर्वृत्तिवाचक। विष्णुस्तदभाव योगाश्च कृष्णो भवति शाश्वत।

2 भूमिर्दृप्त नृप व्याज दैत्यानीक शतायुतै। आक्रान्ता भूमि भारेण ब्रह्माण शरण ययौ। भागवत।

3 यौ वैकुण्ठे चतुर्बाहुर्भगवान पुरुषोत्तम। य एव श्वेतद्विपेतो नरो नारायणश्च य। स एव वृन्दावन भू विहारी नन्दनन्दन। ब्रह्माण्ड पुराण।

4 आपो नरा इति प्रोक्ता आपो वै नर सूनव।
ता यदस्यायन पूर्व तेन नारायण स्मृत। मनु स्मृति।

अजन्मा शाश्वत और त्रिगुणो से परे है, जो आत्मा रूप मे प्राणियो मे साक्षी बनकर रहता है, वह परमेश्वर वासुदेव है। प्रलय मे सभी तत्वो के एक दूसरे मे समाहित हो जाने पर वासुदेव ही शेष रह जाते है। यही वासुदेव सूक्ष्म रूप मे शरीर मे निवास करते है। मार्कण्डेय मुनि ने प्रलय में सम्पूर्ण जगत को आत्मसात् करके वट वृक्ष पर शयन करने वाले विष्णु को नारायण एव युधिष्ठिर का सम्बन्धी श्रीकृष्ण जनार्दन बताया है।[1] इस प्रकार वासुदेव, नारायण और जनार्दन तीनो एक ही है।

शान्ति पर्व मे भगवान के अवतारो का वर्णन है। वहाँ हस, कूर्म, मत्स्य, वाराह, नृसिह, वामन, राम, सास्वत और कल्कि अवतारो की चर्चा है। अध्याय ३४१–३४२ मे नारायण के विभिन्न नामो की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे स्वय उन्ही के मुख से कहलाया गया है। वहाँ श्रीकृष्ण कहते है कि प्राणियो के शरीर मे मेरा अयन या निवास रहता है इससे मुझे नारायण कहा गया है। सारे विश्व मे व्याप्त होने और विश्व का मुझ मे स्थित होने के कारण मै ही वासुदेव हू। विश्व को व्याप लेने के कारण मुझे विष्णु कहते है। पृथ्वी, स्वर्ग और अन्तरिक्ष मै ही हू, इससे मै दामोदर कहा जाता हू। सूर्य, चन्द्र और अग्नि की किरणे मेरे केश है, इससे मै केशव हू। 'गो' पृथ्वी को ऊपर ले जाने के कारण मैं 'गोविन्द' हू। यज्ञ का हविर्भाग ग्रहण करने के कारण 'हरि' हू। सत्व गुण की प्रधानता से सास्वत और लोहे के काले फाल के रूप मे पृथ्वी जोतने और रग का काला होने से मै कृष्ण हू।[2]

इस उद्धरण से स्पष्ट है कि नारायण, वासुदेव, विष्णु, दामोदर, केशव, गोविन्द और हरि आदि विभिन्न पर्याय श्रीकृष्ण के ही बोधक है। ये भिन्न नाम उनके विभिन्न गुणो और क्रियाओ का बोध कराते है। इससे व्यक्तित्व की एकता मे कोई अन्तर नही आता। दूसरी बात यह भी स्पष्ट है कि काले वर्ण के कारण ही उन्हे श्रीकृष्ण कहा गया। वैदिक काल मे भी इसका समर्थन मिलता है। वहाँ पर अदृणक नामक व्यक्ति को वर्ण मे काले होने के कारण मरुत ऋषि द्वारा कृष्ण कहा गया है। इससे उनके वर्णगत इस गुण का समर्थन होता है। अत श्रीकृष्ण की इस विशेषता के साथ एक उपास्यदेव के रूप मे भी इनका विकास होने लग गया था। इनके विभिन्न नामो के एकीकरण की प्रवृत्ति दीख पडने लग गई थी। वैदिक ग्रन्थो मे परमेश्वर के

---

1 य स देवो मया दृष्ट· पुरापद्मायतेक्षण।
स एव पुरुष व्याघ्र सम्बन्धी ते जनार्दन।

2 महाभारत अध्याय ३४१–३४२

विभिन्न नामो का समन्वय भी दिखाई पडता है। इसी से दार्शनिक ग्रन्थो मे भी एकतत्व का प्रतिपादन है। वहाँ पर भी परमात्मा के समन्वित रूप की व्याख्या करके चतुर्व्यूह सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है।

यहाँ यह वताया गया है कि जो व्यक्ति अधिदेव चतुष्टय (अनिरुद्ध, प्रद्युम्न, सकर्षण और वासुदेव), अध्यात्म चतुष्टय (विराट्, सूत्रात्मा, अन्तर्यामि और शुद्ध ब्रह्म) तथा अवस्था चतुष्टय (विश्व, तैजस, प्राज्ञ और तुरीय) को क्रमश स्थूल से सूक्ष्म मे लय कर देता है, वह एक कल्याण पुरुष तक पहुँच जाता है। इसी पुरुष को योग मे परमात्मा, साख्य मे एकात्मा और वेदान्त मे केवलात्मा कहा गया है। एक रूप ये सभी भिन्न दर्शनो मे अलग-अलग ढग से वर्णित है। नाम की इस भिन्नता के होने पर भी स्वरूप मे किसी प्रकार का अन्तर नही है।

भगवान के इस चतुर्व्यूह सिद्धान्त का प्रतिपादन महाभारत मे भी है। इसमे भक्ति द्वारा भगवान की प्राप्ति वताई गई है। वसु उपरिचर के उपाख्यानो मे जहाँ हरि के महत्व का प्रतिपादन किया गया है, वही नारद-प्रसग मे चतुर्व्यूह भगवान के महत्व को भी स्वीकार किया गया है। ऐसा कहा गया है कि 'निर्गुणात्मक क्षेत्रज्ञ भगवान वासुदेव जो जीव रूप मे अवतार लेता है, वह संकर्षण है। सकर्षण से मन रूप मे अवतार लेने वाला प्रद्युम्न है, प्रद्युम्न से अनिरुद्ध का उद्‌भव होता है। वही अहकार और ईश्वर हैं।" यहाँ पर यह वताया गया है कि प्रद्युम्न (मन) अनिरुद्ध (अहकार) सकर्षण (वलराम) जीव के अवतार और वासुदेव के अवतार श्रीकृष्ण है। चतुर्व्यूह सिद्धान्त की यह कल्पना सास्वन सम्प्रदाय मे मान्य रही है और ये लोग श्रीकृष्ण के ही वशज थे। अत श्रीकृष्ण ही सास्वत, वासुदेव, नारायण और विष्णु रूप मे प्रतिष्ठित हो गये।

महाभारत की गणना इतिहास ग्रन्थ के रूप मे होती है। इसमे श्रीकृष्ण ही अधिकाश घटनाओ के नियामक और सूत्रधार है। वे सन्धि-वाहक, शान्ति-दूत और गीता के उपदेष्टा भी है। समदृष्टि के कारण दोनो पक्षो की सहायता करना उनका परम लक्ष्य है। वे राजसूय यज्ञ के नियामक विचारवान् व्यक्ति है। भीष्म ने कहा है कि श्रीकृष्ण वेद वेदाग वेत्ता और ऋत्विक होने से सबसे अधिक आदर के पात्र है।[1] अपनी दिव्यता के कारण कालगति मे पडे हुए कुल को नष्ट होने से नही वचाते है। गीता मे इसी दिव्यता का समर्थन किया गया है "जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्वत। त्यक्त्वा देह पुनर्जन्म

[1] सभा-पर्व अ० ३८

नेऽति मामेति सोऽर्जुन ।[1] महाभारत मे भी कृष्ण के विराट रूप का वर्णन है। युद्ध के उपरान्त उद्दग मुनि द्वारा श्रीकृष्ण से अध्यात्म दर्शन की व्याख्या करने को कहा है। यहाँ पर इस दर्शन को समझाने के साथ ही भगवान श्रीकृष्ण ने अपना विराट रूप दिखाया है। वहाँ उनके इस रूप को वैष्णव रूप की सज्ञा दी गई है।[2] आगे चलकर श्रीकृष्ण के विष्णु रूप की व्याख्या[3] करके नारायण और विष्णु रूप की एकता स्थापित की गई है।

महाभारत मे श्रीकृष्ण का मूल उद्देश्य धर्म की स्थापना है। अपनी समदृष्टि के कारण वे दुर्योधन और युधिष्ठिर दोनो की ही सहायता करते है। दुर्योधन की सहायता उनकी नारायणी सेना और युधिष्ठिर के पक्ष मे वे स्वय युद्ध क्षेत्र मे उपस्थित रहते हैं। द्रोपदी के चीर-हरण प्रसग पर अपनी अलौकिकता का सकेत करके लोगो को अपने स्वरूप का संकेत दे देते हे। इसी दिव्यता के आधार पर उन्होने राजनेतृत्व और नीति का निर्धारण किया है। लोगो की रक्षा करके अपनी लोक-दृष्टि का उन्मीलन किया है। वे आसक्तिहीन, समता-परायण और कर्मयोगी है। उनकी दिव्यता ज्ञान-विज्ञान-सम्पन्नता, व्युत्पन्नमतित्व आदि विश्व कल्याण से प्रेरित होकर ही प्रत्यक्ष होता है। इसी दृष्टि के पूर्त्यर्थ उनमे ईश्वरत्व का आरोप है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि महाभारत मे श्रीकृष्ण के अनेक नामो मे समन्वय स्थापित करने की चेष्टा की गई है। इस ग्रन्थ मे उन्हे उच्च कोटि का राजनैतिक योद्धा और विष्णु का अवतार माना गया है। महाभारत के ही एक अश गीता मे उन्हे अवतारी पुरुष माना गया है। इनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विश्लेषण करने से स्पष्ट हो जाता है कि भक्तिकालीन अनुराग के भाव भीने आलम्वन न होकर इस कृष्ण मे क्षात्र-धर्म का तेज और शक्ति ही अधिक प्रबल है। क्षत्रिय योद्धा सास्वतो द्वारा पाचरात्र धर्म का प्रचार हुआ था। इससे श्रीकृष्ण मे भी उन गुणो का आना अनिवार्य हो गया था। उनका यही व्यक्तित्व पौराणिक युग के अवतार में हिन्दी कवियो का आलम्बन बन गया। इस प्रकार जिस रूप का उद्घाटन हुआ, वह अपने पूर्व ग्रन्थो का आधार लेकर भी अपनी नवीनता मे आकर्षक और ग्राह्य था।

---

1 श्रीमद्भगवद्गीता ४/९

2 आश्वमेधिक पर्व अ० ५३–५४

3 शाति पर्व अ० ४८

पुराणों में श्रीकृष्ण

श्रीकृष्ण की साहित्यिक अभिव्यक्ति हमारे ग्रन्थो का एक प्रमुख उपादान है। आदि से ही श्रीकृष्ण के किसी न किसी रूप के प्रतिपादन की परम्परा रही है। वैदिक ग्रन्थो मे वेद, उपनिषद्, ब्राह्मण और आरण्यक आदि मे श्रीकृष्ण की अभिव्यक्ति मिलती है। वेदो से आरम्भ करके महाभारत तक श्रीकृष्ण के व्यक्तित्व का एक क्रमिक विकास दीख पडता है। वे विष्णु, उपेन्द्र आदित्य, नारायण, वासुदेव, जनार्दन और श्रीकृष्ण सज्ञा को धारण करते हुए दीख पडते हैं। महाभारत मे उनके विभिन्न नामो और व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओ के समन्वय की चेष्टा आरम्भ हो गई थी। पुराणो का प्रमुख उद्देश्य उनके माहात्म्य के वर्णन के साथ उनमे ईश्वरत्व का आरोप भी था। एक प्रमुख उपास्य देव के रूप मे श्रीकृष्ण की महत्ता वढती चली गई है। यही पौराणिक श्रीकृष्ण वाद मे साहित्यिक अभिव्यक्ति के प्रमुख आलम्वन वन गये और उनके स्वरूप का जो हृदय आवर्जक वर्णन किया गया, वह जन-जन के मानस को प्रफुल्लित कर देने मे पूर्ण समर्थ सिद्ध हुआ।

पौराणिक साहित्य मे श्रीकृष्ण का वर्णन कई पुराणो मे है। श्रीमद्-भागवत, हरिवश, ब्रह्मवैवर्त्य, विष्णु, ब्रह्म, पद्म, वायु, वामन, कूर्म, गरुण, अग्नि, ब्रह्माण्ड, वृहन्नारदीय आदि पुराणो मे श्रीकृष्ण की कथा है। इनमे भागवत, विष्णु, ब्रह्मवैवर्त्य, वृहन्नारदीय और पद्म पुराण का भक्ति से अधिक सम्वन्ध है। भक्तिकालीन रचनाओ से इनका प्रत्यक्ष और सीधा सम्वन्ध है। इनमे विष्णु को परब्रह्म स्वीकार किया गया है और श्रीकृष्ण उन्ही परब्रह्म विष्णु के अवतार हैं। वे ही सृष्टि के कर्ता, पालक और सहारक हैं। कही पर जनार्दन को सृष्टि का रचयिता, पालक और सहारक कहा गया है। इस प्रकार दोनो एक ही हैं। पुराणो मे अवतार वाद का पूर्ण विकास हुआ है। यही पर श्रीकृष्ण के जीवन से सम्वद्ध अनेक लीलाओ, पूतना-वध, शकट-भजन, यमला-र्जुन, माखनचोरी का वर्णन आरम्भ हो गया था। इन पुराणो मे से अधिकाश मे श्रीकृष्ण की लीलाओ का यत्र-तत्र सकेत है, केवल चार पुराणो—भागवत, हरिवश, ब्रह्मवैवर्त्य और विष्णु मे कुछ विस्तार भी प्राप्त होता है। क्रमश सभी पुराणो मे वर्णित श्रीकृष्ण का सकेत किया जायगा।

विष्णु पुराण मे रासलीला सम्वन्धी श्लोक हैं। यहाँ श्रीकृष्ण के मनोरम रूप का वर्णन है।[1] श्री कृष्ण का कमल सदृश खिलामुख गोपिकाओ

---

1 काचिद् भ्रूभगर कृत्वा ललाटफलक हरिम्।
विलोक्य नेत्रभृगाभ्या पपौतन्मुख पकजम्। विष्णु पुराण १३/४५

के सतृष्ण नेत्रो के आकर्षण का साधन है। उनकी नृत्य की गति और वलय का मधुर रव दोनो मिलकर गति एव ध्वनि सौन्दर्य के जनक हो जाते है, "तत स ववृते रासश्चलद्वलय निस्वन । अनुयात शरत्काव्य गेय गीतिरनुक्रमात् ।" इसी पुराण के चौथे अश के १५वे अध्याय मे कृष्ण जन्म और पाँचवे मे श्रीकृष्ण लीला का वर्णन है। इस पुराण मे परब्रह्म स्वरूप श्रीकृष्ण जगत-पालक कर्ता और सहारक है। स्वय ब्रह्मा ने श्रीकृष्ण की स्तुति मे कहा है कि 'हे देवताओ के अगोचर प्रभु! परा और अपरा ये दो विद्याए आप ही है। हे नाथ! दोनो आप ही के मूर्त और अमूर्त रूप है। हे अत्यन्त सूक्ष्म! हे विराट स्वरूप! हे सर्व, हे सर्वज्ञ! शब्द ब्रह्म और परब्रह्म ये दोनो आपके ब्रह्ममय रूप ही है।[1] ससार के सभी ज्योति पु ज तथा त्रिभुवन, वन, पर्वत दिशाएँ नदियाँ आदि भी विष्णु ही है। इस कथन मे विष्णु की यह सर्व व्यापकता इस शब्द के व्युत्पत्तिगत अर्थ को ही प्रतिपादिका है।[2] विष्ण पुराण के इस कृष्णावतार की समानता ब्रह्मपुराण मे वर्णित कृष्णावतार से है।

रासलीला के प्रसग पर राधा के व्यक्तित्व का प्रारम्भिक रूप इस पुराण मे है। जरासध-वध के साथ अन्य भी अनेक कथाएँ है। ब्रह्मपुराण मे व्यास द्वारा विष्णु की स्तुति विष्णु के सिर के वल से श्रीकृष्ण का उद्भव (अध्याय १८१) शकट-भग, पूतना वध, यमलार्जुन कथा, कालियदमन, कस-वध, रुकमिणि का राक्षस विवाह, पारिजातवृक्ष का ले आना द्विविध-वानर कथा श्रीकृष्ण का स्वर्ग-गमन आदि अनेक प्रसग है।

पद्म पुराण के पाताल खण्ड मे श्रीकृष्ण की कथा है। उत्तर खण्ड मे श्रीकृष्ण का अवतार व अन्य चरित्र है। वायु पुराण के अध्याय ९६–९७ मे श्रीकृष्ण के वश का वर्णन है। अग्नि पुराण मे कृष्णावतार की कथा है। ब्रह्माण्ड पुराण के २०वे अध्याय मे कृष्ण के आविर्भाव की चर्चा और देवी भागवत के चौथे स्कन्ध मे श्रीकृष्ण की कथा का वर्णन है। इन पुराणो के

---

1 द्वे विधे त्वमनाम्नाय परा चैवापरा तथा।
त एव भक्तो रूपे मूर्तामूर्तात्मिके प्रभो ।। ३४

द्वे ब्रह्मणो त्वणीयोऽतिस्थूलात्मन्सर्वसर्ववित् ।
शब्द ब्रह्म पर चैव ब्रह्म ब्रह्ममयस्य मत् । ५/१/३५ विष्णु पुराण

2 ज्योतिषि विष्णुर्भुवनानि विष्णुर्वनानि विष्णु गिरयो दिशाश्च । नद्य समुद्राश्च स एव सर्व यदस्ति यन्नास्ति च विश्ववर्य । २/१२/३८

अतिरिक्त अन्य भी बहुत से पुराणो जैसे पद्म[1], वायु[2], वामन, कूर्म[3] और गरुड[4] मे भी श्रीकृष्ण की कथा है। पद्म पुराण मे श्रीकृष्ण असुर सहारक और माखन-चोर है। इसमे पारिजात वृक्ष की कथा, वाणासुर कथा और रासलीला का वर्णन है। वृहन्नारदीय पुराण मे विष्णु को परमात्मा का रूप माना गया है। इसमे कहा गया है कि जगत के कर्ता ब्रह्मा इनकी नाभि से उत्पन्न हुए है। इसलिए ये विष्णु ही परमात्मा रूप है, इनसे परे अन्य कोई नही है। विष्णु से सभी चर और अचर उत्पन्न हुए है कुछ भी विष्णु से भिन्न नही है। ब्रह्मा ने इस विष्णु की स्तुति करते हुए उन्हे सबका मूल कारण और परमेश्वर माना है। पद्म पुराण के पाताल खण्ड अध्याय ६९ मे विष्णु परमात्मा और भगवान् है। वे ब्रह्मा की प्रार्थना पर जगत के लिए प्रकट हुए है। इसी श्रीहरि के अश से कोटि ब्रह्मा, विष्णु और शकर उत्पन्न होते है। इन्ही से सृष्टि का पालन, नाश और उत्पत्ति होती है।[5]

वायु पुराण मे श्रीकृष्ण जन्म, स्यमन्तक मणि, श्रीकृष्ण की सोलह सहस्र पत्नियो का वर्णन है, परन्तु राधा नाम की किसी गोपी का कोई उल्लेख नही है। इसी मे आभीरो के दश राजाओ का वर्णन है। वामन पुराण मे केशी, मुर और कालनेमि के वध की चर्चा है। वामनावतार और त्रिविक्रम की भी कथा है। कूर्म पुराण मे यदुवश, कृष्ण द्वारा महादेव की आराधना और श्रीकृष्ण के पुत्रो की कथा है। गरुड पुराण के आचार काण्ड मे श्रीकृष्ण की कथा को विस्तार दिया गया है। पूतना वध, यमलार्जुन कथा, गोवर्धन-धारण, केशी-चाणूर-वध, कालिय दमन शकटसुर प्रसग, सान्दीपनी द्वारा शिक्षा की प्राप्ति और श्रीकृष्ण की आठ पत्नियो आदि का उल्लेख है।

हरिवंश पुराण मे श्रीकृष्ण

हरिवश पुराण को महाभारत के परिशिष्ट के रूप मे स्वीकार किया गया है। पुराणो मे इसकी प्राचीनता असन्दिग्ध रही है। गोपियो के साथ श्रीकृष्ण का सर्वप्रथम वर्णन इसी पुराण मे है। कृष्ण की इस कथा को सौति उग्रश्रवा ने शौनक को सुनाया था। इसमे श्रीकृष्ण के सौन्दर्य का आकर्षक

---

1 पाताल खण्ड। वृन्दावन महात्म्य। अध्याय ५९ से ८३ तक

2 द्वितीय खण्ड। अध्याय ३४

3 पूर्वार्द्ध अध्याय २३–२७

4 आचार काण्ड। अध्याय १४४

5 पद्म पुराण। पाताल खण्ड अध्याय ६९

वर्णन हुआ है । इस भौतिक सौन्दर्य की समस्त निधियो के साथ ब्रह्म रूप श्रीकृष्ण का अलौकिक और अद्वितीय सौन्दर्य भी उल्लास का विशेष कारण है । यह सौन्दर्य रास के प्रसग पर और अधिक प्रस्फुटित हो जाता है ।

इस पुराण की प्राचीनता के कारण इसे प्रमाण रूप मे ग्रहण किया जा सकता है । इसमे श्रीकृष्ण के दैवी और मानवीय दोनो रूपो का समन्वय है । वे विष्णु के अवतार, परब्रह्म और विराट हैं । साख्य के पुरुष, वीर योद्धा और महापुरुष रूप मे इनको उपस्थित किया गया है । कृष्ण-चरित्र और विष्णु भक्ति का प्रारम्भिक रूप यही प्राप्त होता है । इसमे वर्णित कथाओ का प्रभाव परवर्ती साहित्य पर पडा है । यहाँ की अस्पष्ट और साकेतिक रूप मे वर्णित कथाएँ ही बाद के साहित्य मे विस्तृत रूप धारण करके आलोकित हो जाती है । इसी मे कृष्ण चरित्र को प्रभावित करने मे भागवत की भाँति ही इस पुराण का भी अधिक महत्व है ।

इसमे कृष्ण के गोपाल रूप और दार्शनिक कृष्ण का स्पष्ट समन्वय है । नारद ने बाल्यकाल से मथुरा तक की कथा मे उसके रहस्यपूर्ण अशो की साकेतिक व्याख्या प्रस्तुत की है । शिव ने श्रीकृष्ण की स्तुति करते हुए उन्हे ब्रह्मविद्, अग्नि और ज्योतिपति, सूर्यपुत्र और तेज का स्वामी कहा है। "अग्नयेऽग्निपतेतुम्य ज्योतिपा पतये नम । सूर्याय सूर्यपुत्राय तेजसा पतये नम ।" इसमे श्रीकृष्ण का सम्बन्ध ज्योति एव ज्योतिपति से करके उनके आदित्य रूप तेज पु ज की व्याख्या की गई है । यह उनका वैदिक रूप है, जिसका संकेत पीछे किया जा चुका है । इसमे प्रयुक्त इन दोनो विशेषणो का सम्बन्ध छान्दोग्य उपनिषद् और गीता मे वर्णित श्रीकृष्ण के सूर्य और ज्योति रूप विशेषणो का ही प्रतिरूप है । इससे इन दोनो ग्रन्थो के कृष्ण ही 'हरिवंश' मे आलम्बन बने हुए है । 'छान्दोग्य' मे कृष्ण स्वय भी सूर्यपूजक है, उन्हे उत्तम ज्योति की पूजा सिखाई जाती है । अन्य पुराणो मे श्रीकृष्ण के इस ज्योति-रूप का वर्णन नही है । इस वर्णन की दृष्टि से छान्दोग्य, महाभारत, गीता और हरिवश पुराण के श्रीकृष्ण की एकता स्वय सिद्ध हो जाती है । दार्शनिक एव उपास्य श्रीकृष्ण का समन्वय भी इन ग्रन्थो मे हुआ है । उत्तर वैदिक काल के गोपाल कृष्ण यहाँ आकर छान्दोग्य कृष्ण की भाँति अपने गुरु आगिरस के समान ही सूर्यपूजक और ज्योति को महत्व देने वाले बन जाते है । इस प्रकार विभिन्न ग्रन्थो मे वर्णित श्रीकृष्ण की एकता सिद्ध हो जाती है ।

श्रीकृष्ण की अनेक कथाओ का वर्णन इसमे है । कालियदमन, नाग-पत्नियो की स्तुति, रासलीला, कस, धनुर्भंग, कुवलयापीड-प्रसग, चाणूर-मुष्टिक

वध, बलराम का गोकुल गमन, रुकमिरणीहरण, काल यवन प्रसग, प्रद्य म्नकथा, वाणासुर आख्यान, पौण्ड्रक का द्वारिका पर आक्रमण, श्रीकृष्ण का कैलाश गमन, बदरिकाश्रम मे तपस्या आदि अनेक प्रसग इस पुराण मे आये है। इस प्रकार इसमे विष्णु भगवान और कृष्णावतार की कथा को विस्तार मिल गया है। वृष्णिवश और श्रीकृष्ण के जन्म पर भी विचार है। विष्णुभक्ति के विकास का क्रमिक रूप यहाँ से आरम्भ हो जाता है विभिन्न रूपो मे विष्णु के नामो का समन्वय भी आरम्भ हो जाता है। वासुदेव, नारायण, श्रीकृष्ण को विष्णु का ही अवतार माना गया। बाद मे तो कृष्ण को भगवान ही मान लेने की परम्परा चल पडी। भगवान कृष्ण की लीलाओ के बीच मे प्रकृति का वर्णन भी किया गया है। यही उनके रूप और सौन्दर्य की अभिव्यक्ति भी अनेक ढग से हुई है।

ब्रह्मवैवर्त्य पुराण में श्रीकृष्ण

हरिवश के अतिरिक्त ब्रह्मवैवर्त्य मे भी श्रीकृष्ण की अनेक कथाएँ मिलती हैं। श्रीकृष्ण के जन्मादि और लीलाओ से सम्बन्धित इस पुराण की बडी महत्ता है। इसमे श्रीकृष्ण परब्रह्म है। ब्रह्मा ने श्रीकृष्ण की स्तुति करते हुए कहा है कि आप ही जगत के स्वामी है, सुख दु ख और ससार के कारण है। शंकर भी आपसे पार नही पाते। जो कुछ ससार मे है, सब आपका ही अश है।[1] एक अन्य स्थल पर भी इसी भाव का समर्थन किया गया है कि—आप ही ब्रह्मधाम और निर्गुण निराकार है। आप ही सगुण है। आप ही साक्षी रूप है, निर्लिप्त है और परमात्मा है। प्रकृति और पुरुष के भी आप ही कारण है।[2] परमात्मा और जगत का प्रादुर्भाव भी आप से ही हुआ है। इस प्रकार सम्पूर्ण विश्व के मूल कारण के रूप मे श्रीकृष्ण का विशद वर्णन है।

ब्रह्मवैवर्त्य मे गोलोक, राधा-मन्दिर, राधा-कृष्ण का साख्य के अनुसार प्रकृति-पुरुष रूप मे सम्बन्ध, श्रीकृष्ण के अशावतारो आदि का वर्णन किया गया है। इसके सातवे अध्याय में श्रीकृष्ण जन्माख्यान, आठवे मे जन्माष्टमी व्रत, नौवे मे नन्द के पुत्रोत्सव का वर्णन है। कस-बध, मथुरागमन, उद्धव कथा आदि भी है। शृङ्गारिक वर्णनो मे उच्चता है। राधा के अस्तित्व और वर्णनो की विशदता की दृष्टि से इस पुराण की बहुत अधिक महत्ता है। पौराणिक साहित्य मे सर्वप्रथम इसी पुराण मे राधा की परिचय प्राप्त होता है, जबकि

---

1 ब्रह्मवैवर्त्य पुराण-श्रीकृष्ण जन्म खण्ड २०/४०–५१

2 ब्रह्मवैवर्त्य पुराण-श्रीकृष्ण जन्म खण्ड १/३६–३७

अन्य पुराण इस सम्बन्ध मे मौन ही है । भगवत की एक प्रिय गोपी ही कृष्ण के राग मे रंजित होकर यहाँ राधा नाम से प्रसिद्ध हो जाती है । इसी प्रसग मे प्रकृति और पुरुष के एकीकरण का सफल प्रयास किया गया है । साँख्य की यह दृष्टि अन्य स्थलो पर उपलब्ध नही है ।

इस पुराण मे राधा का विस्तृत वर्णन है । राधाकृष्ण की प्राणेश्वरी है, उनकी शक्ति है और प्रकृति है । कृष्ण कहते है कि हे राधा तुममे और मुझमे कोई अन्तर नही है । जैसे दूध मे सफेदी, अग्नि मे दाहकता और पृथ्वी मे गध रहता है, वैसे ही मै सदा तुझ मे रहता हू । तुम ससार की आधार हो और मै कारण रूप हू । मै जब तुझसे अलग रहता हू तो लोग मुझे कृष्ण और जब साथ रहता हू तो श्रीकृष्ण कहते है ।[1] इसी मे राधा के महात्म्य का वर्णन भी किया गया है । राधा शब्द मे प्रयुक्त रकार का उच्चारण करोडो जन्मो के अर्धे शुभ और अशुभ कर्मफलो को नष्ट करता है । आकार, गर्भवास और मृत्यु रोगादि से छुडाता है । धकार आयु की हानि से बचाता है और आकार भव-बन्धन से मुक्त करता है ।[2] इससे प्रतीत होता है कि तत्कालीन युग मे राधा को ही सर्वशक्तिशालिनी मानकर पूजा-उपासना प्रचलित हो गई थी । बाद के साहित्य मे इस राधावाद का पूर्ण प्रचार हो गया ।

इस पुराण की साहित्यिक दृष्टि भी दर्शनीय है । श्रीकृष्ण के जन्म पर उनके रूपाकार का आकर्षण स्तुत्य है । जलद्प्रभा से मण्डित कृष्ण का रूप अतीव सुन्दर था । वे सुन्दर, शरद पूर्णिमा के समान मुख और इन्दीवर तुल्य लोचनो वाले थे । सुविन्यस्त हस्त और लाल कमल के समान पद थे —

ददर्श पुत्र भूमिस्थ नवीन नीरद प्रभम् । अतीव सुन्दर नग्न पश्यन्त गृहशेखरम् ।
शरत्पार्वण चन्द्रास्य नीलेन्दीवर लोचनम् । ब्रह्मवैवर्त्य पुराण ६।५४-५८

इस स्थल पर वर्णित सौन्दर्य आलंकारिक पद्धति का अनुसरण करने वाला है । इसमे कृष्ण का रूप सौन्दर्य मूलक है । यही सौन्दर्य चेतना आगे के हिन्दी कवियो मे दीख पडती है । इस प्रकार यह स्पष्ट है कि राधा विषयक वर्णनो का मूल उपजीव्य स्रोत यही पुराण है । सर्व प्रथम इसी पुराण मे विस्तार से किया गया वर्णन मिलता है । इस दृष्टि से इसकी अत्यधिक महत्ता स्वीकार की जा सकती है । इसी पुराण के साथ श्रीमद्भागवत् पुराण भी श्रीकृष्ण की लीलाओ का स्रोत ग्रन्थ माना जाता है ।

---

1 ब्रह्मवैवर्त्य पुराण श्रीकृष्ण जन्म खण्ड १५/५६–६४

2 रेफोहि कोटि जन्मान्ध कर्मयोग शुभाशुभम् । आकारो गर्भवास च मृत्य च रोगमुत्सृजम् । धकारोमायुसि हानि आकारो भवबन्धनम् । ब्र० वै०पु०

श्रीमद् भागवत पुराण में श्रीकृष्ण—

श्रीकृष्ण के चरित्र से स्पष्ट और सीधा सम्बन्ध रखने वाले पुराणो मे भागवत प्रमुख है। हिन्दी के मध्यकालीन कवियो पर इस पुराण का अधिक प्रभाव पडा है। इसमे वैदिक युग से आरम्भ कर अब तक के वर्णित श्रीकृष्ण सम्बन्धी सभी सामग्रियो का सार-सग्रह समन्वित रूप मे दिया गया है। इस ग्रन्थ मे श्रीकृष्ण स्वय भगवान रूप है और अन्य अवतार अश रूप के ही बोधक माने गये हैं, "एते चाश कला पु स कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।"[1] ऐसे स्थलो पर यह बताया गया है कि श्रीकृष्ण और बलराम दोनो नारायण के दो रूप कृष्ण और शुक्ल है, जिन्होने असुरो के सहार के लिये अवतार लिया है।[2] इनका सोलहो कलाओ से युक्त पुरुषावतार है। सृष्टि के निर्माण प्रसग पर बताया गया है कि इन्ही से पचभूतो की रचना हुई है। वे ब्रह्माण्ड का निर्माण करके अपने अन्तर्यामी रूप से प्राणियो मे प्रवेश करके 'पुरुष' नाम को सार्थक करते है।[3]

ब्रह्म की स्तुति के अवसर पर भी यही भाव व्यक्त किया गया है कि, "हे अधीश! क्या आप नारायण नहीं है? आप अवश्य ही नारायण है, क्योकि आप सब जीवो की आत्मा और अखिल विश्व के साक्षी है।[4] धार्मिक दृष्टि से श्रीकृष्ण पर ब्रह्म के अवतार और भागवत धर्म के पुनरुद्धारक है। उनके इस अवतार रूप का समर्थन स्थान-स्थान पर है। इसी से 'भागवत' मे भगवान के छ गुणो-ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान, वैराग्य—का वर्णन है।

इस पुराण मे भगवान ने स्वय कहा है कि 'मैं सबका उपादान कारण होने से सबका आत्मा हू। सबमे अनुगत हू, इसलिये मुझसे कभी भी तुम्हारा वियोग नही हो सकता। "भवतीना वियोगो मे नहि सर्वात्मना क्वचित्। यथा भूतानि भूतेषुखवाय्वग्निर्जल मही। तथा हं च मन प्राण भूतेन्द्रिय गुणाश्रय।[5] आगे चलकर कहा गया है कि, "जगत का परम कारण मैं ही हू। मै ब्रह्मा और महादेव हू। मैं सबका आत्मा, ईश्वर और साक्षी हूँ तथा स्वय प्रकाश और उपाधि शून्य हूँ। अपनी त्रिगुणात्मिका माया को स्वीकार करके मै ही जगत की रचना पालन और सहार करता रहता हूँ। ऐसा ही भेद-रहित

---

1 श्रीमद्भागवत् १/३/२८
2 ,, ,, २/७/२६
3 ,, ,, ११/४/३
4 ,, ,, १०/१४/१४
5 ,, ,, १०/४७/२६

विशुद्ध परब्रह्म स्वरूप मै हूँ। इसमे अज्ञानी पुरुष ब्रह्मा, रुद्र, तथा अन्य समस्त जीवो को विभिन्न रूप मे देखता है।"[1]

ब्रह्मा ने भी अपनी स्तुति मे यही समर्थन किया गया है कि 'आपकी नाभि रूप भवन से मेरा जन्म हुआ है। यह सम्पूर्ण विश्व आपके उदर मे समाया हुआ है। आपकी कृपा से ही मैं त्रिलोकी की रचना रूप उपकार मे प्रवृत्त हुआ हूँ।" [2]इस ब्रह्मा की स्तुति से तथा गौ रूप मे पृथ्वी की प्रार्थना पर भगवान ने अवतार लिया था। भगवान का यह स्वरूप **लीला के निमित्त** है इसी से श्रीकृष्ण एक आराध्य के रूप मे मान्य है और इनकी अनेक लीलाओ का वर्णन भागवत मे है। कई नये प्रसगो का भी इसमे समावेश है। कृष्ण की **एक प्रिय गोपी** का वर्णन दशम स्कन्ध मे मिलता है। श्रीकृष्ण काव्य को प्रभावित करने वाला यह एक विशिष्ट पुराण है।

इसमे श्रीकृष्ण भक्ति के **आधार** है। इनके चरण कमल ससार सागर को पार करने के एक मात्र आधार हो सकते है। कहा गया है कि, "जो मन और इन्द्रिय रूप नगरो मे भरे हुए इस ससार-सागर को योग आदि दुष्कर साधनो से पार करना चाहते है, उसका उस पार पहुँचना कठिन ही है, क्योकि उन्हे कर्णधार रूप श्री हरि का आश्रय प्राप्त नही है। अत तुम भगवान के आराधनीय चरण-कमलो को नौका बनाकर अनायास ही इस दुस्तर समुद्र को पार कर लो।"

'कृच्छ्रो महानिव भवार्णवमप्लवेशा षडवर्गनुक्रम सुखेन तितीर्षन्ति।
तत्व हरेर्भगवतो भजनीयमङ्घ्रि कृत्वोडुप व्यसनमुत्तर दुस्तरार्णम्॥
४/२२/४० भागवत

उपर्युक्त विचारो के आधार पर हम इस निर्णय पर पहुँच जाते है कि श्रीकृष्ण की साहित्यिक अभिव्यक्ति का एक क्रमिक विकास ग्रन्थो मे दीख पडता है। परवर्ती रचनाओ मे महाभारत, गीता और भागवत का महत्व स्वीकार करना ही पडेगा। इन तीनो ही ग्रन्थो से श्रीकृष्ण के स्वरूप का सम्यक् उद्घाटन हुआ है। भगवान श्रीकृष्ण के दिव्य रूप का जो सकेत महाभारत मे मिलता है, उसका पूर्ण विकास भागवत मे है। महाभारत के आख्यानो मे ही भाववत धर्म का पूर्व रूप दीख पडता है। गीता मे इन दोनो का समन्वित रूप स्पष्ट है।

---

[1] श्रीमद् भागवत ४/७/५६-५२
[2] ,, ,, ३/६/२१

महाभारत और भागवत मे जो यिभिन्न आख्यानो का वर्णन है, उसके विश्लेषण से यह प्रकट हो जाता है कि महाभारत का नारायणी धर्म और भागवत का भागवत धर्म दोनो एक ही है। गीता का निष्काम कर्मयोग भक्ति के अभाव मे सफल नही हो सकता है। भागवत मे इसी भक्ति का पूर्ण रूप से प्रतिपादन किया गया है। गीता मे पुरुप रूप धारण कर अपने विश्व रूप का उन्मीलन करते है महाभारत के नारद प्रसग मे भी इसी रूप का वर्णन है। श्रीमद्भागवत मे श्रीकृष्ण पर ब्रह्म है। इनका यह रूप गीता के श्रीकृष्ण रूप से मिलता है। महाभारत मे श्रीकृष्ण के पर ब्रह्मत्व के रूप मे सशय बना रहता है। अत स्पष्ट है कि महाभारत मे श्रीकृष्ण एक वीर योद्धा, गीता मे पर ब्रह्म और भागवत मे रसिकेश्वर वृन्दावन विहारी गोपी प्रिय यशोदोत्सग लालित नन्दनन्दन है।

श्रीमद्भागवत मे यद्यपि उनके अनेक रूपो का उद्घाटन हुआ है, परन्तु प्रधानता उनके रासिकेश्वर रूप की है। उनमे सभी प्रवृत्तियो का समाहार है। वे एक माथ ही **असुर सहारक, वीर योद्धा, बालकृष्ण, गोपी बिहारी, राजनीतिवेत्ता** कूटनीतिज्ञ, योगेश्वर, पर ब्रह्म आदि सब कुछ है। इसमे बाल-लीला, गोपी-प्रसग, और अलौकिक चरित्रादि है। उत्तरार्द्ध मे श्रीकृष्ण असुर-सहारक, राजनीतिवेत्ता, कूटनीतिज्ञ आदि है। इनका यह रूप महाभारत से मिलता है। इस प्रकार समन्वय की प्रवृत्ति दीख पडती है। पुराणो मे श्रीकृष्ण को नारायण ऋपि, वामन, क्षीरोपशायी, सहस्रशीर्ष, वैकुण्ठनाथ और नारायण आदि कहा गया है। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि इन तीनो ग्रन्थो के माध्य से एक ही तत्व की व्याख्या भिन्न-भिन्न ढग से की गई है। भागवत मे श्रीकृष्ण लोकरजक और लोकरक्षक दोनो ही है। गीता का कर्मयोग ही भक्ति से मिलकर भक्ति की महत्ता का प्रतिपादक बन जाता है।

गीता मे भगवान श्रीकृष्ण परमपुरुष, सर्वव्यापक अव्यक्त और अमृत तत्व है। यही अव्यक्त व्यक्त होकर सगुण वन जाता है। श्रीकृष्ण उसी परम पुरुप के अवतार है। उन्होने अपने को पुरुष कहकर व्यक्त रूप की उपासना का समर्थन किया है। गीता मे ज्ञान, कर्म और उपासना इन तीनो का समन्वय है, परन्तु भागवत मे **श्री कृष्ण की भक्ति की महत्ता** सर्वोपरि है। इसमे श्री कृष्ण पूर्णावतार है, उनके षड्गुणो की चर्चा है। गीता ने भी इन गुणो का समर्थन किया है।

भागवत मे श्रीकृष्ण महाभारत के अनुसार ही पाण्डवो के सखा, गीता के उपदेष्टा और धर्म के सस्थापनार्थ प्रकट हुए है। वे ही व्रज के लीला-विधायक राज्य के सचालक और असुरो का संहार करने वाले हैं। योगेश्वर

रूप का पूर्ण विकास इस पुराण मे हो सका है। अर्जुन द्वारा सम्बोधित गीता के वार्ष्णेय कृष्ण ही सात्वत है। भागवत मे उन्हे 'सास्वतर्पभ' कहा गया है। देवकी और वासुदेव पुत्र दोनो एक है। श्रीकृष्ण की ही वासुदेव सज्ञा है। वे इस पुराण मे पूर्णब्रह्म है। इसीसे उनकी लीलाए लौकिक नही है, अपितु वें योगलीलाएं है। श्रीकृष्ण अपनी योग माया से एक का अनेक रूप धारण करके लीला मे प्रवृत्त होते है। यही कारण है कि लौकिक स्थूल शरीर से गोप-अगनाए अपने पतियो के समक्ष वनी रहती हुई भी योग माया के कारण दूसरा स्वरूप धारण कर श्री कृष्ण के सानिध्य का लाभ उठाती है। सच तो यह है कि श्रीकृष्ण परस्त्री का स्पर्श तक नही करते, अपितु अपना चिन्मय श्री विग्रह ही प्रकट करके उसी रूप मे रमण करते हुए अपनी दीव्यता का प्रतिपादन करते है। इनकी इच्छा रूप और आकार ग्रहण कर लेती है। वे स्वय इस रूप से मुग्ध नही होते। इसीसे वे अलौकिक है। यही नही, अपितु राजनैतिक स्थिति मे भी राज्य-धर्म को न्याय और सत्य की कसौटी पर कसने वाले वे एक ऐसे राज्य नियन्ता है जो भक्ति-प्लावित होकर ही हमारे समक्ष आते है। इसी कारण वे सर्वज्ञ, सर्वेश्वर और योगेश्वर है। वे भक्ति के आराध्य है और उनका रूप इतना आकर्षक है कि हिन्दी के भक्त कवियो का मूल उप-जीव्य ग्रन्थ इसे ही माना जाने लगा। श्रीकृष्ण के इसी मोहक रूप की व्यञ्जना मे कवियो ने अपनी सम्पूर्ण प्रतिभा लगा दी। इन भक्त कवियो ने अपने आराध्य के रूप के साथ ही उनके सौन्दर्य का जो अनिर्वचनीय रूप प्रस्तुत किया उससे सम्पूर्ण मध्यकालीन हिन्दी साहित्य आप्लवित है। श्रीकृष्ण का यह रूप सौन्दर्य भक्त कवियो के आकर्षण का परम प्रेरक तत्व था। इसीसे इन कवियो ने श्रीकृष्ण के साथ अन्य गोपागनाओ के रूप सोन्दर्य का भी वर्णन करके आश्रय और आलम्बन दोनो के ही सौन्दर्य का सम्यक रूप से उद्घाटन किया है। इस दृष्टि से आश्रय-आलम्बन दोनो के ही सौन्दर्य की उत्तमता की व्यञ्जना आवश्यक मानी जाती है। यही कारण है कि मध्यकालीन श्रीकृष्ण साहित्य मे रसेश्वर कृष्ण और रसेश्वरी राधा तथा अन्य गोपियो के रूप सौन्दर्य की अभिव्यक्ति उच्चकोटिक है। इसी रूप सौन्दर्य के व्यावहारिक पक्ष को प्रस्तुत प्रवन्ध मे वताया गया है। इसके पूर्व रूप-सौन्दर्य की अभिव्यक्ति की एक सक्षिप्त परम्परा प्रस्तुत करते हुए हिन्दी साहित्य पर उसके प्रभावो की चर्चा भी की गई है।

रूप सौन्दर्य-स्वरूप निर्वचन

(१) सौन्दर्य-स्वरूप और व्याख्या
(२) सौन्दर्य एव अन्य समानार्थक शब्द
(३) आलकारिको का सौन्दर्य सम्बन्धी मत
(४) सस्कृत कवियो का मत
(५) हिन्दी कवियो का मत
(६) सुन्दर और उदात
(७) सुन्दर और कुरूप
(८) सौन्दर्य के तत्व

सौन्दर्य : स्वरूप और व्याख्या

प्राय सभी देशो के साहित्य मे कवियो ने सौन्दर्य की अभिव्यक्ति करने मे अपनी-अपनी रुचि का प्रदर्शन किया है। धार्मिक और लौकिक दोनो ही प्रकार की रचनाओ मे इसकी अभिव्यक्ति मिलती है। 'वेदो' मे सौन्दर्य के प्रति अभिरुचि प्रकट की गई है। ऋग्वेद के कई मन्त्रो मे अनेक स्थलों पर इस शब्द का प्रयोग किया गया है।[1] इन स्थलो पर इस शब्द का वर्तमान रूप व्यवहृत नही हुआ है। यह शब्द विशेषण (सुनर) कारक (सुनरम्) सम्बोधन (सूनरि) अथवा प्रथमा विभक्ति (सूनरी) मे प्रयुक्त हुआ है। यही 'सुनर' शब्द भाषा-विज्ञान के एक विशेष नियम के आधार पर सुन्दर बन जाता है। यहाँ 'मध्यागम' हो जाता है। इससे अर्थ का विस्तार भी हो गया है। इस शब्द का व्युत्पत्तिमूलक अर्थ 'सुष्ठुनर इति सुनर' अर्थात् सुन्दर मानव है। इस व्युत्पत्ति से मानवीय सौन्दर्य ही लक्षित होता है, परन्तु अर्थ-विस्तार द्वारा इससे मानव और मानवेतर जगत के अतिरिक्त कलागत और मानवकृत सौन्दर्य का बोध भी कराया जाता है। सामान्य व्यावहारिक अर्थ मे सुन्दर शब्द का सम्बन्ध मूर्त वस्तु से ही लगाया जाता है और मानव-जगत तक इसकी सीमा मानी जाती है।

सौन्दर्य एवं अन्य समानार्थक शब्द :—

साहित्य मे प्राय बहुत से समानार्थक शब्दो का प्रयोग हुआ करता है। ऐसे शब्दो के मूल अर्थ मे अन्तर न होते हुए भी उनके व्यावहारिक अर्थ मे अन्तर दीख पडता है। यह अन्तर प्रबुद्ध एव शिक्षित मनीषियो की भाषा मे देखा जा सकता है। जन-सामान्य के भाषा-प्रयोग मे इस प्रकार का कोई अतर नही दीख पडता। इसका कारण शब्द-प्रयोग करने वाले लोगो की अबोधता है। ऐसे अबोध प्रयोगो द्वारा शब्दो के अर्थ का अन्तर समाप्त नही हो जाता, अपितु बना रहता है। फिर भी अपनी अज्ञानता के कारण हम उन सभी शब्दो को एकार्थक मान लेते हैं।

सुन्दर के समानार्थक शब्दो मे रूप, लावण्य, मनोहर, रुचिर, चारु, सुषम, साधु, शोभन, कान्त, मनोरम, रुच्य, मनोज्ञ, मञ्जु, मञ्जुल, मनोहारि, सौम्य, भद्रक, रमणीय, रामणीयक, वन्धूर, पेशल, वाम, राम, अभिराम,

---

[1] ऋगवेद—८/२६/१, १/४०/४, १/४८/१०;४/५२/१, १/४८/५; १/४८/८,७/८१/१

नन्दित, सुमन, वल्गु, हारि, स्वरूप और दिव्य आदि बताये गये है।[1] अमर कोश मे भी लगभग इन्ही शब्दो का प्रयोग हुआ है। सुन्दर, रुचिर, चारु, सुषम, साधु, शोभन, कान्त, मनोज्ञ, मनोरम, रुच्य, मजु और मञ्जुल आदि शब्दो का प्रयोग हुआ है।[2] ऋग्वेद मे सौन्दर्य के पर्याय रूप मे अप्स' लावण्य, शुभ, पेशल, हिरण्यपेशस् आदि शव्द प्रयुक्त हुए है। इन शव्दो मे 'अप्स' विषयगत सौन्दर्य का बोध कराता है। मानस-शरीर अथवा अन्तर्वाह्य अवस्था का ज्ञान कराने के लिये सुन्दर के स्थान पर 'लावण्य' शव्द का प्रयोग किया गया है। 'पेशल' शब्द को अन्त करण के सौन्दर्य का बोधक माना जा सकता है। 'विश्वपेशस्' व्यापक सौन्दर्य को बताने वाला है। हिरण्य पेशस् को यास्क उपदेशात्मकता तथा आनन्द का, आत्मा और अर्थ का समन्वय द्योतक मानते है। अत. 'पेशस्' शब्द द्वारा वस्तु तथा शैली के समन्वित रूप का ही ज्ञान होता है। ऋग्वेद मे ही मरुत को शुभ और अश्विनो को शुभस्पति कहा गया है। इसके द्वारा वाह्य एव आभ्यन्तर सौन्दर्य को स्वीकृति मिलती है। यही कारण है कि सौन्दर्य-प्रेमी अश्विन् को शुभस्पति कहा जाता है।[3]

ऋग्वेद के अतिरिक्त कोशगत सुन्दर शब्द के अन्य समानार्थक शव्दो पर भी विचार कर लेना चाहिए। इन शव्दो मे 'रूप' और 'लावण्य' प्रसिद्ध शब्द है। रूप की व्युत्पत्ति करते हुए बताया गया है कि 'रुप्यते कीर्त्यते रौति वा रूप।' इस शब्द की निष्पत्ति 'रू+प्वष्प शिल्प शष्पेति प दीर्घश्च' सूत्र से होती है। 'भोग-तत्व' के समुचित विन्यास से 'रूप' का आविर्भाव होता है। 'रूप' मे आकार की महत्ता होती। 'लावण्य' 'रूप मे स्थित चमक या कान्ति का बोध कराता है। 'लवणस्य भाव लावण्य'। खाद्य पदार्थो मे नमक की महत्ता के समान ही रूप मे लावण्य का महत्व रहता है। दोनो शव्द वोल-चाल मे 'सुन्दर' के पर्याय रूप मे प्रयुक्त होते है।

'मनोहर' शब्द मनोज्ञ या मनोहारि अर्थ मे प्रयुक्त होता है। 'मनसो हरमिति मनोहर —हृ+अच् प्रत्यय से इस शब्द की निष्पत्ति होती है। मन को हरण करने वाला मनोहर कहा जाता है। रूप और सौन्दर्य सम्पन्न मानव मे ही यह गुण होता है। इससे किसी चेतन मे मनोहरता का गुण होता है। 'मनोरम' वस्तु या प्राणी का ऐसा गुण है जिसमे मन रम जाय।

---

1 हलायुध–कोश, पृ० ७१४

2 सुन्दर रुचिर चारु सुषम चारु शोभनम्।
कान्त मनोरम रुच्य मनोज्ञ मञ्जु मञ्जुलम्। अमरकोश ३/१/५२-५३

3 सौन्दर्य तत्व–भूमिका भाग, पृ० ३७ अनु० डा० आनन्दप्रकाश दीक्षित

'सुन्दर' के साक्षात्कार से मन मे लीनता आती है। वस्तु के सौन्दर्य को देखकर वहुधा उसमे लीन होते हुए देखा गया है। कभी-कभी जड और कलात्मक वस्तुओ मे भी मन रम जाता है। इससे मन को रमाने का साधन जड पदार्थ और चेतन प्राणी दोनो मे ही पाया जाता है। 'रुचिर' शब्द रुच् धातु मे किरच् प्रत्यय लगकर निष्पन्न होता है। 'रुच्यते इति रुचि', जो रुचिकर हो, उसे 'रुच्य' कहते है। इस रुच्य से वना हुआ रुचिर शब्द 'सुन्दर' अर्थ को वताता है। 'रुचिर' मे मन की प्रियता रहती है, मनोरम और मनहर शब्दो मे मन के स्तम्भन का भाव दीख पडता है। प्राय 'सुन्दर' के साक्षात्कार से मन निश्चल होकर उसमे लीन हो जाता है। वस्तु मे मन की यह लीनता उसके स्तम्भन की दशा को व्यक्त करने वाली होती है।

नैसर्गिक सौन्दर्य से आकृष्ट करने वाले रूप को 'रामणीयक' 'रमणीय' और 'हारि' कहा जा सकता है। आकारगत प्रशसनीय सौन्दर्य को 'अभिराम' सज्ञा दी जायगी। 'अभित राम इति अभिराम' अर्थात् सर्वाङ्ग सुन्दर 'अभिराम' है। 'राम' शब्द की व्याख्या 'रमयति मन अस्माकमिति राम' है। इस व्याख्या मे मन के रमण करने की व्युत्पति वताई गई है। इससे अभिराम ऐसे सर्वाङ्ग सुन्दर के लिये प्रयुक्त होगा, जिसमे आकारगत शोभा प्रशसनीय हो। इस शोभा मे आनन्ददायकता का गुण भी वर्तमान रहता है। अत आनन्ददायक सुन्दर रूप को 'अभिराम' की सज्ञा दी जा सकती है आकार मे रहने वाली शोभा या चमक के लिये 'लावण्य' और 'कान्त' शब्द उपयुक्त होता है। रूप का वह तत्व जो नेत्रो को प्रिय लगे, वह 'शोभा' है। 'शोभा' मे प्रियता का कारण आलम्बन के सौन्दर्य की सहजता और भोलापन है। अग्रेजी मे इसके लिये Gracefullness का प्रयोग किया जा सकता है। 'चारु' मे चित्त को दोलायमान कर देने की शक्ति वर्तमान रहती है। इसकी नैसर्गिक शोभा से ही मन की यह अवस्था होती है।

कोमलता-जन्य सौन्दर्य की अभिव्यक्ति के लिए सुन्दर शब्द के समानार्थक कई शब्दो का प्रयोग होता है। इन शब्दो मे मञ्जु, मञ्जुल, पेशल की गणना हो सकती है। मञ्जु और मञ्जुल की मृदुता दृष्टि गत है, 'पेशल' मे स्पर्श-सुख का सौन्दर्य रहता है। इसमे शारीरिक मार्दव की महत्ता रहती है। स्पर्श के अतिरिक्त घ्राण और दृश्य की मृदुता का वर्णन भी होता है।

आकारगत सौन्दर्य के लिए 'वन्धुर' शब्द का प्रयोग हुआ है। सुविन्यस्त अवयवो से युक्त 'रूप' 'वन्धुर' कहा जाता है। विन्यासगत सौन्दर्य के लिए 'वल्गु' शब्द का प्रयोग हुआ है। औचित्य-मूलक प्रयोग मे 'साधु' शब्द

उपयोगी सिद्ध हुआ है। इसमे उपयोगितावादी दृष्टिकोण माना जा सकता है। 'वाम' शब्द मे जय प्राप्त कर लेने वाले सौन्दर्य का गुण रहता है। इसे Winsome Beauty कहेगे। यह प्राप्तव्य सौन्दर्य है। इस सौन्दर्य के गुण द्वारा आश्रय का मन जीत लिया जाता है।

'सौम्य' शब्द का प्रयोग सामान्य रूप से सम्बोधन के लिए किया जाता है। शान्त-चित्त, व्यक्ति मे इस गुण के कारण उत्पन्न होने वाले आकर्षण से ही उसे 'सौम्य' कहा जाता है। सौम्य मे शान्त स्वभाव का आकर्षण रहता है। इससे चरित्रगत सौन्दर्य का बोध होता है। सामाजिक-सदर्भ एव लोक-कल्याण की भावना से युक्त अनेक शब्दो मे सौन्दर्य की समानअर्थता मिल जाती है। भद्र, भद्रक आदि शब्दो मे कल्याण की प्रवृत्ति और व्यवहारगत सौन्दर्य का औचित्य रहता है। यह सौन्दर्य क्रिया पारस्परिक सम्बन्धो एव व्यवहारो के सदर्भ मे औचित्य का ज्ञान कराता है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम इस निर्णय पर पहुँचते है कि सौन्दर्य के पर्याय मे अनेक शब्दो का प्रयोग होता रहा है। इन सबका समान अर्थ होते हुए भी उनके प्रयोग विधि मे अन्तर आ जाता हे। रूप, अभिराम, बन्धुर और वल्गु द्वारा आकार के विन्यास से उत्पन्न सौन्दर्य का बोध होता है। लावण्य और काति आकार मे स्थित चमक या आभा का द्योतक है। मञ्जु, मञ्जुल आदि शब्दो द्वारा रूप की दृश्य कोमलता की प्रतीति और पशल शब्द से स्पर्श-सुख की अनुभूति होती है। आकार के रग-वैभव से उत्पन्न सौन्दर्य को 'सुषम' कहते है। इन सभी शब्दो की सौन्दर्य मूलकता मे आकार का महत्व किसी न किसी रूप मे अवश्य बना रहता है। मन को प्रभावित करने वाले सौन्दर्य अर्थ के व्यञ्जक अनेक शब्दो का प्रयोग होता है। इन शब्दो मे मन की प्रियता का सम्बन्ध 'रुचिर' शब्द से होता है। मन को स्तम्भित कर देने वाला सौन्दर्य मनोहर, मनहर, मनोहारि शब्द से ज्ञान होता है। मनोज्ञ, मनोरम मे आकर्षण है। नैसर्गिक शोभा के लिए रमणीय, रामणीयक और हारि शब्द प्रयुक्त होते है। चित्त को दोलायमान कर देने की शक्ति 'चारु' शब्द मे है। इन आकार मूलक और मन से सम्बन्धित सौन्दर्य के पर्याय शब्दो के विभिन्न प्रयोगो के अतिरिक्त औचित्य मूलक और कल्याण भावना के द्योतक अनेक शब्दो का प्रयोग होता है। ऐसे शब्दो मे साधु से औचित्य का, भद्र और भद्रक द्वारा कल्याण भावना का और सौम्य तथा वाम द्वारा मध्यम पुरुष के गुणगत सौन्दर्य का बोध होता है। अत सौन्दर्य के समानार्थक प्रयुक्त शब्दो की तीन प्रमुख कोटियाँ हो जाती है—

(१) आलम्बन का आकारगत सौन्दर्य ।

(२) आलम्बन का आकार और गुणगत सौन्दर्य तथा आश्रय के मन के सदर्भ मे इन शब्दो का प्रयोग ।

(३) औचित्य मूलक और कल्याण भावना के द्योतक सौन्दर्य के समानार्थक प्रयोग ।

इन सभी शब्दो के सौन्दर्यमूलक प्रयोग की भिन्नता को ऊपर बताया जा चुका है ।

आलंकारिको का मत

काव्य के स्वरूप का निर्धारण करते हुए वामनाचार्य ने लिखा है कि 'काव्यम् ग्राह्यम् अलकारात् । सौन्दर्यमलकार . अर्थात् काव्य का ग्रहण अलकार से होता है और सौन्दर्य ही अलकार है। इस कथन द्वारा इन्होने सौन्दर्य को अलकार कहकर चारुत्व, सौन्दर्य और अलकार को एक कर दिया है । इस प्रकार दोनो मे अभेद स्थापित किया गया है । और काव्य मे सौन्दर्य की महत्ता स्वीकार करली गई है । अलकार विरोधियो ने इसे अप्रस्तुत योजना के अन्तर्गत काव्य-परिच्छद के रूप मे स्वीकार किया है । यदि इस मत को भी मान लिया जाय तो काव्य-सौन्दर्य के हृदयगम करने एव सम्यक विश्लेपण के लिए इस बाह्य रूप की सत्ता का भी महत्व कम नही होता । सौन्दर्य की अवधारणा के लिए अप्रस्तुत तत्व कभी उपेक्षणीय नही रहे है । रस और भावो की रमणीयता के उपरान्त सौन्दर्य-विधायक तत्वो मे अप्रस्तुत योजना या अलकारो का महत्व निर्विवाद रहा है । हिन्दी के अलकार वादी केशव ने तो अलकारो से रहित रचना को सौन्दर्य युक्त माना ही नही है ।[1] उन्होने अप्रस्तुत योजना मे वर्ण्य वस्तु और वर्णन प्रणाली के पार्थक्य को स्वीकार करके सामान्य और विशिष्ट अलंकार से अभिहित किया है । इनमे वर्णन शैली को अभिव्यञ्जना पक्ष के अन्तर्गत माना जाता है ।

सौन्दर्य के लिये चारुत्व शब्द का प्रयोग आनन्दवर्द्धन ने किया है । इनके मत से अलकार चारुत्व के हेतु है । इनमे अनुप्रासादि शब्दगत चारुत्व हेतु और उपमादि अर्थगत चारुत्व हेतु तथा अर्थ के सघटनागत चारुत्व हेतु वर्ण-सघटना धर्म माधुर्यादि गुण है ।[2] यही पर सौन्दर्य के लक्षण का सकेत

---

1 यदपि सुजात सुलक्षणी, सुवरन सरस सुवृत्त ।
भूषण बिनु नहि राजही, कविता, वनिता, मीत । केशव ।

2 तत्र केचिदाचक्षीरन्, शब्दार्थशरीरन्तावत् काव्यम् । तत्र शब्दगताश्चारुत्वहेतवोऽनुप्रासादय प्रसिद्धा एव । अर्थगताश्चोपमादय । वर्णसघटना

किया गया है कि वस्तु के दर्शन से हमारे हृदय मे नवीन भावनाओ और प्रेरणाओ का सचार उसी प्रकार होता चला जाता है, जैसे घण्टे के निनाद का अनुरणन दीर्घकाल तक हमारे कानो मे गू जता रहता है। यहाँ वस्तु की नवीन भावनाओ को सचरित करने वाली शक्ति को स्वीकार किया गया है। यही शक्ति उसका आन्तरिक मूल्य है और इसे ही सौन्दर्य नाम देना असगत नही होगा। काव्य-शास्त्र मे इसे ध्वनि नाम से बताया गया है। यही काव्य की आत्मा है। इसीमे सौन्दर्य का चिरन्तन रहस्य छिपा रहता है। आनुषगिक रूप मे सौन्दर्य को बाह्य उपकरण मानते है, फिर भी वह अन्तर्तत्व की रमणीयता को बढाने वाला ही सिद्ध होता है। ध्वनिकार का मत है कि वह परम तत्व रमणियो के प्रसिद्ध तत्-तत् अगो से भिन्न लावण्य के समान दीप्तिमान् रहता है।[1] यह सौन्दर्य अवयवो से भिन्न पृथक रूप मे ही सुन्दरियो मे दीख पडता है। अभिनव गुप्त ने इस सौन्दर्य को 'विच्छित्ति' के रूप मे स्वीकार किया है। यह प्रतिभासित होने वाली छवि है जो अगो मे ही वर्तमान रहती है।

आचार्य कुन्तक ने भापा और अभिव्यक्ति के जिस समन्वय को काव्य माना है उसमे भी अर्थ-चमत्कार और अर्थ सौन्दर्य बना रहता है। वहा पर काव्य के लिये 'सौभाग्य' और 'लावण्य' इन दो शब्दो का प्रयोग है। सौभाग्य छन्दोमयी वाणी के आन्तरिक धर्म का बोधक है और लावण्य द्वारा उसकी बाह्य रमणीयता और सुन्दरता का ज्ञान होता है। इस प्रकार बाह्य और आन्तरिक दोनो पक्षो का बोध इन शब्दो द्वारा हो जाता है।

सौभाग्य के अन्तरीण धर्म के लिये लावण्य के बाह्य-सौन्दर्य को स्वीकार करते है, क्योकि उनके मत मे सौन्दर्य विषयीगत है। 'लावण्य के आधार से ही 'सौभाग्य' का स्फुरण होता है। सौन्दर्य की अनुभूति मे विषय की सत्ता निर्विवाद है, फिर भी तज्जन्य आनन्द का उपभोग करने वाला ही उस सौन्दर्य को सार्थक करता है। अत विपयी मे ही सौन्दर्य की भावना माननी चाहिए। कुन्तक के 'लावण्य' का यह सौन्दर्य बोध आधुनिक अर्थ मे प्रयुक्त सौन्दर्य को अपने मे पूर्णत आत्मसात् नही कर पाता। उन्होने वाक्य विन्यास मे भी

धर्माश्च ये माधुर्यादयस्तेऽपि प्रतीयन्ते। ध्वन्यालोक प्रथम उद्योत–पृ० ६-७ गौतम बुक डिपो–दिल्ली सन् ६६५२

1 यत्तत् प्रसिद्धावयवातिरिक्त विभाति लावण्यमिवाङ्गनासु। ध्वान्यालोक १/४

सौन्दर्य-वोध की वात 'वन्ध-सौन्दर्य सम्पदा' के कथन द्वारा की है, तथा शब्द और अर्थ सहित विचित्र विन्यास पर ही उनका काव्य अवलम्वित है ।[1]

आचार्य क्षेमेन्द्र ने काव्य के वाह्य आवरण मे सौन्दर्य देखा है । उन्होने उचित स्थान-विन्यास मे सौन्दर्य को माना है ।[2] क्षेमेन्द्र ने चमत्कृति की सिद्धि के लिये 'लावण्य' का प्रयोग किया है ।[3] इसमे वताया गया है कि लावण्यहीन युवती निर्दोष का लेश होने पर भी किसके चित्त मे उदित होती है । इन्होने चमत्कार के दश भेदो मे से अविचारित रमणीय और विचार्यमाण रमणीय चमत्कार का सम्वन्ध 'लावण्य' और 'रमणीय' से माना है । इस दृष्टि से **चमत्कृति और रमणीय** एक दूसरे के पर्याय कहे जायगे । रस का सार हमारे यहाँ चमत्कार को ही माना गया है । 'रसे सारश्चमत्कार ।' अत चमत्कार और रस का अविच्छिन्न सम्वन्ध माना जायगा । हमारे यहाँ चमत्कार की नवीनता का अर्थ है उस रचना की अनन्तता, अमेयता, अखण्डता और अभूत पूर्वता । यदि चमत्कार को हम रस का पर्याय माने, तो सोन्दर्य की अनुभूति भी रसानुभूति के समान अनन्त, अगेय, अखण्ड और अपूर्व है । इससे स्पष्ट है है सौन्दर्य मे 'नाविन्य' नामक गुण की महत्ता है । इस गुण की चर्चा अनेक मनीषियो ने की है ।

जगन्नाथ का मत

पण्डित राज **जगन्नाथ** की सौन्दर्य विपयक मान्यता स्पष्ट है । उनका 'चिदाभरणभग' इसी रहस्य के उद्घाटन के लिये है । इसमे चित्त पर पडे हुए आवरण का भग होकर रसानुभूति होने लगती है । यहाँ चमत्कार अनुभूति रूप मे स्वीकृत है । इन्होने सौन्दर्य मे जिस चमत्कार को देखा है, वह उनके मत से 'जाति-विशेष' है ।[4] यहाँ रमणीयता नामक चमत्कार आनन्द से

---

1 शब्दार्थौ सहितौ वक्रकविव्यापारशालिनी ।
वन्धे व्यवस्थितौ काव्य तद्विदाह्लादकारिणी । कुन्तक

2 औचित्य रससिद्धस्य स्थिर काव्यस्य जीवितम् । उचितस्थानविन्यासादल कृतिरलकृति । औचित्यादच्युतानित्य भवन्त्येव गुणागुणा ।। औचित्य विचार चर्चा–श्लोक ५–६ हरिदास सस्कृत ग्रन्थ माला ।

3 एकेन केनचिदनर्घमणिप्रभेण काव्य चमत्कृति पदेन विना सुवर्णम ।
निर्दोष लेषमपि रोहति कस्य चितेलावण्य हीनमिव यौवनमगनानाम् ।
कविकण्ठाभरण ३/२

4 लोकोतरत्व पाह्लादगतश्चमत्कारत्वापरपर्यायोऽनुभवसाक्षिको जाति विशेष । कारण च तदवच्छिन्न भावना विशेष पुन पुनरनुसन्धानात्मा ।

भिन्न है । यह अनुभूति का विषय है । यहाँ पर प्रयुक्त 'भावना विशेष' वाक्याश उद्बोधित सस्कार-विशिष्ट को व्यक्त करता है । इस प्रकार सौन्दर्य बोध मन मे जागृत भावो का परिणाम है । दूसरे प्रयुक्त पद 'अनुसन्धानात्मक' द्वारा बताया गया है कि मन पर सस्कार रूप मे पडे भाव ही समान नई वस्तु के अवलोकन से आह्लाद की सृष्टि कर देते है। अत प्राचीन भागवत सस्कार ही वर्तमान ज्ञान के सग भावात्मक सयोग से सौन्दर्य या रस व्यञ्जना या अभिव्यक्ति के कारण बनते है । इस दृष्टि से उनके सौन्दर्य बोध के दो पक्ष हो जाते है.—प्रथम द्वारा पुरातन सस्कारो का उद्बोधन होता है । 'पुन पुन अनुसन्धानात्मा भावना विशेष ।' द्वितीय पक्ष मे नित नूतन आकर्षण और अनुसधान की प्रवृत्ति बढती है । इस दृष्टि से रमणीयता पार्थिव मात्र न रह कर आध्यात्मिक भी हो जाती है । सहृदय की आत्मा और पार्थिव वस्तु-जगत के सम्मिलन मे ही सौन्दर्य की अनुभूति होती है । इस आधार पर निस्सकोच रूप मे यह निर्णय दिया जा सकता है कि भाव के अभाव मे केवल वस्तु सुन्दर नही हो सकती और वस्तु के अभाव मे सौन्दर्य निराधार और अशरीरी होकर टिक नही सकता । ऐसी स्थिति मे वह मात्र सस्कार ही रह जायगा ।

पण्डित राज ने रमणीयता के साथ रस को स्वीकार किया है । काव्य स्वरूप निर्धारण मे **रमणीय तत्व** को प्रधानता दी गई है । रमणीय अर्थ का प्रतिपादन करने वाला शब्द ही काव्य माना गया है ।[1] यहाँ रमणीय के अन्तर्गत सौन्दर्य को भी मान लिया गया है । भारतीय काव्य साधना मे रस या रमणीयार्थ को सोन्दर्य-बोध का मूल स्वीकार किया गया है । इसका कारण भारत की अन्तर्मुखी प्रवृत्ति प्रतीत होती है । इसी से पाश्चात्य मनीषियो के समान इन्होने सौन्दर्य को बाह्य अलंकरण का साधन न मानते हुए रस-प्रतीति मे इसे प्रमुख माना है ।

भारत के अन्य आलकारियो ने सौन्दर्य की अपेक्षा रस की महत्ता की ओर अधिक रुचि दिखाई है । रस की प्रधानता को मानकर रमणीयता और रस दोनो का पार्थक्य बताया गया है । जगन्नाथ के मत से यदि रस को ही

रस-गङ्गाधर पृ–१०–११, व्याख्याकर पण्डित मदनमोहन झा, १९५५ ई० चौखम्भा विद्या भवन–बनारस १ ।

1　रमणीयार्थ प्रतिपादक शब्द काव्यम् । पृ० ९ रस गङ्गाधर ।

काव्य माने तो वस्तु और अलकार वर्णन प्रधान रचना काव्य के अन्तर्गत नही आ सकती। दूसरी कमी यह होगी कि ऐसा मानने पर परम्परागत कवि परिपाटी मे गडबडी उत्पन्न हो जायगी क्योकि कवियो ने जो स्थान-स्थान पर जल-प्रवाह, वेगादि का वर्णन किया है, यदि वे सभी रस से सम्वन्धित कर दिये जाँय, तो 'बैल दौडता है' जैसा वाक्य भी काव्य कहा जायगा, परन्तु ऐसा सम्भव न होने से इसे उचित नही कहा जा सकता है।[1]

पण्डित राज ने जिस सौन्दर्य को स्वीकार किया है उसके सम्बन्ध मे बताया गया है कि विशिष्ट सामञ्जस्य अथवा विशेष परिचय बोध को ही सौन्दर्य कहेगे। इसे न तो विशेपात्मक या विशिष्ट बोध कह कर ही इसका लक्षण स्थिर किया जा सकता है और न इसे लाल, नीला या हरा अथवा मधुर, तिक्त आदि बताकर ही इसका लक्षण दिया जा सकता है "सौन्दर्य बोध तो मन की एक विशिष्ट अनुभूति हे। इसका **तटस्थ लक्षण** तो फिर भी देना सम्भव है, परन्तु **स्वरूप लक्षण** उपस्थित करना सम्भव नही है[2]। ऐसी स्थिति मे यह कहा जा सकता है कि हमारे मन मे स्थित सस्कार देश काल पात्रादि से सम्बद्ध होकर उत्तेजक वस्तु के साक्षात्कार से उद्‌बुद्ध हो जाते हे। ऐसी उद्दीपक सामग्री के द्वारा उद्‌बुद्ध उपचेतन मे स्थित सस्कारो का जो आत्म लाभ है, उसे **सौन्दय मान सकते** है। इसमे उद्दीपक एव उद्दीप्त सस्कार दोनो की ही महत्ता है। इस पर विचार करते हुए डा० दीक्षित ने कहा हे कि इसी कारण जहाँ एक ओर हम सौन्दर्य-बोध सम्वन्धी विशिष्ट जातीय अनिवचनीय अन्तर बोध हर्ष को ग्रहण करते हे, वहाँ साथ ही वस्तु को भी सुन्दर कहते हे अर्थात् सौन्दर्य से एक ओर संस्कारो का उद्‌वोध ज्ञान होता है और दूसरी ओर उद्‌-वोधक सामग्री की प्रतीति भी रहती है।[3] इस प्रकार सौन्दर्य बोध के समय

---

1 सौन्दर्य तत्व डा सुरेन्द्रदास गुप्ता अनु डा आ० प्र० दीक्षित पृ ६९—७०

2 यतु रसवदेव काव्यमिति साहित्यदर्पणे निर्णीतम् तन्न। रसवदलकार प्रधानानाम् काव्यानाम् अकाव्यत्वापते। न चेष्टापति। महाकवि सम्प्रदायस्य आकुलीभाव प्रसगात्। तथा च जलप्रवाहवेगपतनोत्पतने भ्रमणानि कविभिर्वर्णितानि कोऽपि वालादि विलसितानि च। न च तत्रापि यथा कथचित परम्परया रस स्पर्शोऽस्त्येव इति वाच्यम्। ईदृशो रसस्पर्शस्य गोश्चलति मृगोधावति इत्यादौ अतिप्रसक्तत्वेन अप्रयोजकत्वात्। अर्थ मात्रस्यविभावानुभावव्यभिचार्यन्यतमत्वात्॥

3 सौन्दर्य तत्व अनु० डा० आनन्द प्रकाश दीक्षित पृ० १०४—१०५

हमने वस्तु को जान लिया है यह ज्ञान भी बना रहता है अर्थात् सौन्दर्य बोध मे सौन्दर्य और उसके विषय दोनो की युगपत् प्रतीति होती रहती है। न्याय दर्शन इसी तत्व को 'प्रामाण्य वाद' के अन्तर्गत स्पष्ट करता है। इनमे वस्तु की स्वतन्त्र सत्ता का ज्ञान और बाद मे उस ज्ञान का ज्ञान होता है। अर्थात् 'वस्तु है' तथा 'मैने इस वस्तु को जान लिया' इस प्रकार इसमे ज्ञान की दो श्रेणियाँ होती है।

आचार्य ने जिस रमणीयता को स्वीकार किया है, उसका स्पष्टीकरण भी वही कर दिया गया है "रमणीयता च लोकोत्तराह्लादजनकज्ञानगोचरता" अर्थात् "लोकोत्तरस्यालौकिकस्य आह्लादस्यानन्दस्य, जनकमुत्पादक यज्ज्ञान, तद्गोचरतातन्निरूपितविषयता रूपाऽर्थ निष्ठा रमणीयतेत्यर्थ ।[1] यहाँ जिस लोकोत्तर आनन्द की बात कही गई है, इसे केवल अनुभव द्वारा ही समझा जा सकता है। साहित्य दर्पणकार **विश्वनाथ** ने भी इसका समर्थन किया है कि 'सचेतसामनुभव प्रमाण तत्र केवलम्'। इस प्रकार चित्त पर पडे हुए सस्कार का अनुसधान जिस चमत्कार को उत्पन्न करता है, वह अलौकिक है। इसे दो रूपो मे ग्रहण करेगे।

(१) रमणीयता या सौन्दर्य का स्वरूप लोकोत्तर होने से इसकी अलोक सामान्य स्थिति है।

(२) यह चमत्कार ज्ञान, आह्लाद तथा क्रिया-वृत्ति का सश्लिष्ट रूप उपस्थित करता है।

इस स्थल पर ध्यान देने की एक बात यह है कि रमणीयता का यह आनन्द व्यक्तिगत सुख-दु ख-जन्य सासारिक प्रयोजन की तृप्ति के आनन्द से भिन्न होता है इसी कारण यह रमणीय भी है। इस दृष्टि से इस आनन्द प्राप्ति की तीन उत्तरोत्तर श्रेणियाँ मानी जा सकती है—(१) किसी चमत्कार युक्त रचना द्वारा किसी विषय का अभिव्यञ्जित होना। (२) इस अभिव्यञ्जना से ज्ञान की सक्रियता। (३) आनन्द की प्राप्ति। इससे स्पष्ट हो जाता है कि किसी माध्यम द्वारा कथित विषय की अभिव्यक्ति से आनन्द की उपलब्धि हो पाती है। काव्य के लिये इस माध्यम के साथ अर्थ की महत्ता भी रहती है। इसी से अपना निर्णय देते हुए **जगन्नाथ** ने बताया है कि इस प्रकार लोकोत्तर आह्लाद का जनक भाव के अर्थ के प्रतिपादक शब्द मे काव्य है। यह रमणीयता

---

[1] रस गङ्गाधर। पृ० १० व्याख्याकार-बदरीनाथ झा। चौखम्भा विद्याभवन बनारस स० १०११

का आधार लेता है और यही लोकोत्तर आह्लाद सौन्दर्य-जनक है। इस प्रकार यह स्पष्ट हो गया कि काव्य का रस सौन्दर्य की अनुभूति ही है। वस्तु दर्शन का विषय होकर शब्दो के माध्यम से जब रमणीय और चमत्कार युक्त रूप मे अभिव्यक्त हो जाता है, तो वही काव्य सज्ञा को धारण करता है। सुन्दर भाव या वस्तु ही अन्तर्मन की चेतना से सम्बद्ध हो सस्कारो के उद्बुद्ध होने पर सत्व का उद्रेक कर देता है। यही जब अभिव्यञ्जनात्मक सौन्दर्य का साहाय्य पा लेता है तो सुन्दर हो जाता है। इस प्रकार भारतीय काव्य शास्त्र की सौन्दर्य चेतना मन की चेतनापूर्ण सत्ता अथवा चेतन अश के स्वीकार से अन्त-र्मुखी ही मानी जायगी, पाश्चात्यो के समान बहिर्मुखी नही।

यही पर सौन्दर्य शब्द के अन्य अर्थो पर भी विचार कर लेना चाहिए इसके विभिन्न प्रयोगो का निर्देश निम्नलिखित रूप मे किया जा सकता है।

(क) **व्युत्पत्तिगत अर्थ**—(१) सौन्दर्य शब्द की रचना 'सुन्दर' विशे-षण से भाव अर्थ मे 'ष्यञ्' प्रत्यय लगाकर हुई है। सुन्दर+ष्यञ् (य) अर्थात् सुन्दरस्य भाव सौन्दर्य। इसमे 'सुन्दर' के आदि उ को औ तथा अन्त्य अकार का लोप होकर सौन्दर्+य→से 'सौन्दर्य' शब्द निष्पन्न हो जाता है।

(२) सुन्द् पूर्वक रा धातु (आदाने→लाना) मे औणादिक अच् प्रत्यय से 'सुन्दर' शब्द बनता है तथा 'गुण वचन ब्राह्मणादिभ्य ष्यञ्'' सूत्र से 'ष्यञ्' (य) लगने से 'सौन्दर्य' शब्द बनता है। 'सुन्द राति इति सुन्दर तस्य भाव सौन्दर्य। अथवा सुष्ठु नन्दयनि इति सुन्दर तस्य भाव सौन्दर्य मानकर अच्छी प्रकार से प्रसन्न करने के अर्थ मे भी इस शब्द का प्रयोग होता है।

(ख) **कोशगत अर्थ**—(१) वाचस्पत्य कोश के अनुसार 'सु' उपसर्ग पूर्वक 'उन्द्' धातु से 'अरन्' प्रत्यय जोडकर यह शब्द बनता है। 'सु' अर्थात् (अच्छी प्रकार) 'उन्द्' (आर्द्र करना) से अरन् पत्यय जोडकर यह शब्द निष्पन्न हुआ है। इस रचना से इसका व्युत्पत्ति मूलक अर्थ 'अच्छी प्रकार आर्द्र या सरस करना' होगा। सुन्दरता मे चित्त को सरस बना देने की क्षमता रहती है।

(२) हलायुध कोश मे 'सुन्दर' शब्द के कई अर्थ है। 'सुष्ठु उनत्ति-आर्द्री करोति चित्तमिति।' अर्थात् जो चित्त को अच्छी प्रकार आर्द्र कर दे, उसे सुन्दर कहेगे। यहाँ पर इस शब्द की व्युत्पत्ति 'सु' पूर्वक उन्दी (क्लेदने) और 'अर्' प्रत्यय लगाकर की गयी है। इस शब्द को स्पष्ट करने के लिये

पर्याय रूप मे जिन अन्य शब्दो[1] का प्रयोग हुआ है, कोशकार की दृष्टि मे वे सभी शब्द समानार्थक है ।

(ग) अन्य अर्थ—'सुष्ठु नन्दयति इति सुन्दर तस्य भाव सौन्दर्य.' मानकर अच्छी प्रकार प्रसन्न करने के अर्थ मे इसका प्रयोग किया जा सकता है । इस प्रकार सौन्दर्य मे आनन्द देने का गुण वर्तमान रहता है ।

संस्कृत कवियों का मत—

सस्कृत साहित्य के अन्य विद्वानो एवं कवियो के विचारो को ग्रहण करना समीचीन नही होगा । अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि वाल्मीकि, कालिदास माघ, भारवि, भास, वाण आदि की सौन्दर्य चेतना अधिक जागरूक रही है । कालिदास तो प्रेम और सौन्दर्य के कवि ही है । वाण की कल्पना उनकी सौन्दर्य वृत्ति की परिचायिका है । क्रमश सौन्दर्य विषयक इन कवियो की मान्यता पर भी ध्यान दिया जायगा ।

संस्कृत साहित्य के आदि लौकिक ग्रन्थकार वाल्मीकि का अन्त विश्लेषण करने से यह वात भली-भाँति स्पष्ट हो जाती है कि तपलीन वाल्मीकि के समक्ष काम-रत क्रौच मिथुन मे से एक का निषाद द्वारा बध किये जाने पर उनके मुख से जिस श्लोक-वद्ध वाणी का निस्सरण हुआ, उसका विचार स्वय उन्हे भी विस्मय-विमूढ वनाने मे समर्थ सिद्ध हुआ । वे बार-बार उस श्लोक का उच्चारण करते हुए भाव-विभोर हो गये । उस रस-विह्वल दशा मे उन्होने कहा था कि "अहो गीतस्य माधुर्यम्' और इसे सुनकर मुनिगण भी 'वाष्प पर्याकुल नेत्र वाले हो गये थे ।'[2] यदि इस स्थिति का विश्लेषण करे तो स्पष्ट है कि विह्वलता-जन्य अश्रु-विन्दुओ का आविर्भाव, गति के माधुर्य के सम्वन्ध मे मन के सहज उद्गार अपने मूल रूप मे सौन्दर्य मूलक वृत्ति के ही परिचायक है । अत लौकिक काव्य मे सौन्दर्य-शास्त्र के मूलभूत तत्व 'माधुर्य' का प्रारम्भ वाल्मीकि रामायण से ही समझना चाहिए ।

कालिदास की सौन्दर्य चेतना अत्यधिक विकसित थी । उन्होने सौन्दर्य को सभी अवस्थाओ मे रूप का पोषक माना है । मनोहर आकृति वालो को कोई भी वस्तु शोभा विधायक हो जाती है ।[3] प्रसिद्ध प्रसाधन के अभाव मे

---

1 हलायुद्ध कोश पृ० ७१४

2 तच्छ्रुत्वा मुनय सर्वे वाष्पपर्याकुलेक्षणा —वाल्मीकि रामायण ।

3 सर्वावस्थासु रमणीयत्वमाकृति विशेषाणाम् । शाकुन्तलम् अक ६

(ii) 'सर्वावस्थासु चारुता शोभान्तर पुष्णाति ।' ,, अक २

(iii) 'सर्वावस्थासु अनवद्यता रूपस्य ।' मालविकाग्नि मित्र

भी ऐसी आकृति वालो की शोभा बढती ही है। इसी से बल्कल द्वारा शकुन्तला का सौन्दर्य और बढ जाता है।[1] भास ने भी बताया है कि सुरूप लोगो के लिये सभी वस्तु अलकार हो जाते है।[2] इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि सुरूप व्यक्ति या वस्तु की सुन्दरता स्वत सिद्ध है, उसके लिये बाह्य साधनो की अनिवार्यता नही है। प्रसिद्ध मण्डनो के अभाव मे भी सौन्दर्य वृद्धिगत ही होता है। यहाँ सौन्दर्य की प्राकृतिक सत्ता का समर्थन मिलता है। ऐसा सौदर्य मन को पापवृत्ति की ओर कभी भी नही ले जा सकता है।[3] इससे स्पष्ट है सौन्दर्य मे सात्विकता उत्पन्न करने की क्षमता रहती है। इसमे मधुर एव मनोहर आकृति की सुडौलता बनी रहती है। यह सौन्दर्य इसी कारण ईश्वर द्वारा प्रतिष्ठित, आध्यात्मिक और अभौतिक भी है। कालिदास ने हारमोनी और सीमेट्री को भी 'सर्व द्रव्य समुच्चय और यथा प्रदेश-विनिवेश' शब्द द्वारा व्यक्त किया है। जिसे पाश्चात्य सौदर्य शास्त्री सौदर्य के अवयव के रूप मे स्वीकार करते है।

कालिदास के सौन्दर्य की पूर्णता उपेक्षणीय नही है। पार्वती के सृजन मे 'जग की रचना करने वाले ब्रह्मा ने सभी उपमान द्रव्यो के समुच्चय से उन्हे यथा स्थान विनिवेशित करके एक ही स्थान पर सौन्दर्य की पूर्णता को देखने की इच्छा से यत्नपूर्वक उसका निर्माण किया है।'[4] यही कारण है कि रूप और सौदर्य इनकी दृष्टि मे सभी अवस्थाओ मे प्रिय और आकर्षक बना रहता है। एक अन्य स्थल पर पार्वती के स्वरूप वर्णन मे सूर्य और अरविन्द को प्रस्तुत करके सौदर्य सिद्धि के लिये व्यक्ति और वस्तु के सामञ्जस्य का रहस्योन्मीलन किया गया है।[5] यहाँ पर सौन्दर्य के अधिष्ठान की चर्चा की गई है और विषय तथा विषयी दोनो के समन्वय मे सौन्दर्य को स्वीकार किया गया है।

---

1 इयमधिक मनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी,
किमिव हि मधुराणामण्डन आकृतिनाम्। शाकुन्तलम्

2 सर्वमलकारो भवति सुरूपाणाम्। भास नाटक चक्रम्। पृ० १२९

3 यदुच्यते पार्वति पापवृत्तये न रूपमित्यव्यभिचारि तद्वच। कु स ५/३६

4 सर्वोपमा द्रव्य समुच्चयेन यथा प्रदेश विनिवेशितेन।
सा निर्मिता विश्वसृजा प्रयत्नादेकस्थ सौदर्य दिदृक्षयेव। कु० स० १/४९

5 उन्मीलित तूलिकयेव चित्रम्, सूर्याशुभिरभिन्नमिवारविन्दम्।
बभूव तस्या चतुरस्रशोभी, वपुर्विभक्त नवयौवनेन॥

सौन्दर्य की **नित-नूतनता** के सम्बन्ध मे भी इनका अपना विचार है। यह प्रतिक्षण बढता ही रहता है। मालविकाग्निमित्र मे इस विचार का एक अच्छा उदाहरण मिल जाता है। इस नाटक का एक पात्र नाट्याचार्य गणदास कहता है कि यह राजा मेरा परिचित नही है, ऐसा नही है। वहाँ मेरा जाना अगम्य भी नही है। इसके समीप मै चकित हो जाता हूँ, क्योकि यह मेरे नेत्रो को प्रतिक्षण नवीन प्रतीत होता रहता है।[1]

माघ की सौन्दर्य कल्पना भी इसी प्रकार की है। इनके विचार से क्षण-क्षण मे जो नवीनता को धारण करता है, उसे ही रमणीय रूप कहते है।[2] यह सौन्दर्य वस्तु का आन्तरिक गुण होने से वस्तु-निष्ठ हो जाता है। माघ के रमणीय रूप की इस व्याख्या से तीन बातो का ज्ञान होता है (१) सौन्दर्य के रूप को ग्रहण नही किया जा सकता है, क्योकि यह प्रतिक्षण बदलता रहता है और उसमे **नवीनता** आती रहती है इससे वह अग्राह्यता के कारण निश्चित रूप वाला नही हो पाता है।

(२) सौन्दर्यपूर्ण वस्तुओ के दर्शन मे **अतृप्ति का भाव** बना रहता है। सौन्दर्य का मूल भाव वास्तव मे यही है और इस रूप मे पाश्चात्य सौन्दर्य शास्त्र मे इसकी चर्चा नही मिलती है। प्रतिक्षण की नवीनता का यह वर्णन केवल भारतीय परम्परा मे ही प्राप्त है। इसकी विशेपता यही है कि नित्य नूतन तथा अपनी परिवर्तनशीलता मे भी आकर्पक है। यही लावण्य का मूल है।

माघ के इस विचार की तीसरी विशेपता यह है कि सौन्दर्य धर्म, वर्ण और आकार की सीमाओ का उल्लघन करके अपनी सूक्ष्मता और अग्राह्यता से प्रेक्षक को चमत्कृत कर देता है। **भारवि** के मत से रम्य वस्तुएँ गुण की अपेक्षा नही करती। इस दृष्टि है रम्यता भी निरपेक्ष सिद्ध होती है।[3] सौन्दर्य की पराकाष्ठा का वर्णन भवभूति ने 'मालती-माधवम्' मे किया है। मालती सौन्दर्य की निधि या देवता है सौन्दर्य के सार का निकेतन है, इसके निर्माण मे निश्चय ही इन्दु सुधा, मृणाल, ज्योत्स्ना आदि का उपकरण लिया गया है

---

1 न च न परिचितो न चाप्यगम्य चकितमुपैति तथापि पार्श्वमस्य।
सलिलनिधिरिव प्रतिक्षण मे भवति स एव नवनवोऽयमक्ष्णो। मालवि०

2 क्षणे-क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूप रमणीयताया। शिशुपाल वध ४/१७

3 न रम्यमाहार्यमपेक्षते गुणम्। किरातार्जुनीयम् ४/२३

और इसका निर्माण करता स्वय कामदेव है।[1] इस प्रकार कवि परम्परा मे प्रसिद्ध सौन्दर्य के सर्वोत्तम साधन एव तत्वो के सग्रह से उसे उत्तम रूप मे प्रस्तुत किये जाने की चेष्टा की गई है। इसे सौन्दर्य की पूर्ण कल्पना कह सकते है।

इन उद्धरणो से स्पष्ट है कि सस्कृत कवियो ने सौन्दर्य के यथातथ्य चित्रण मे अपनी असमर्थता व्यक्त की है। उनके मन मे इसकी पूर्णता का वोध तो वार-वार होता रहा है, फिर भी वे उसे शब्दो मे नही वाँध पाते थे। इन कवियो ने सौन्दर्य के पराश्रय-निरपेक्षता, नित-नूतनता, पूर्णता, आनन्दात्मकता आदि गुणो का वर्णन किया है। इनकी सौन्दर्य-कल्पना अद्वितीय और स्वत सिद्ध है। इसके लिए किसी वाह्य साधन की आवश्यकता नही है। सौन्दर्य के पर्याय के रूप मे यहाँ कई शब्द मिलते है। यथा सुन्दर के लिए शोभन, विचित्र चित्रमय के लिए पेशल और आनन्दमय के लिये रमणीय तथा रूपवान् के लिये चारु जैसे पर्यायो का प्रयोग किया गया है। सौन्दर्य की वस्तु निष्ठता मे इन कवियो का विश्वास वना हुआ था। ऐसा प्रतीत होता है कि सौन्दर्य-शास्त्र नाम से स्वतत्र रूप मे सौन्दर्य की व्याख्या तो नही हो पाई है, परन्तु प्रसगत सौन्दर्य सम्बन्धी सभी आवश्यक तत्वो का विवेचन सस्कृत साहित्य मे प्राप्त होता है। यदि इन सभी विचारो को सगृहीत कर दिया जाय, तो यह एक शास्त्र का रूप-ग्रहण कर सकता है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि सौन्दर्य की व्याख्या करते हुए दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक और शृ गार मूलक विवेचन प्रस्तुत किया गया है। दार्शनिक व्याख्या द्वारा सौन्दर्यानुभव मे जन्मान्तर के सस्कारो की महत्ता स्वीकार की गई है। वस्तु-सौन्दर्य के साथ चित्त पर पडे सस्कारो से ही उसके सौन्दर्य का अनुभव होता है। इस सस्कार से रहित होकर केवल वस्तुगत सौन्दर्य अनुभविता के अभाव मे व्यर्थ हो जाता है। मनोवैज्ञानिक व्याख्या मे सौन्दर्य वोध के लिये आकर्षण, रुचि-प्रियता, आकाक्षा-तृप्ति, और वासना का महत्व स्वीकार किया गया है। शृ गार मूलक विवेचन मे वस्तु का सौन्दर्य, प्रकृति का साहचर्य, सौन्दर्य की वीर्य-विक्षोभन-शक्ति, लावण्य, प्रतिक्षण की भासमान नवलता, अवस्था-निरपेक्ष रमणीयत्व, पूर्णत्व, आत्म-निर्भरत्व आदि तत्वो

---

[1] सा रामणीयनिधेरधि देवता वा। सौन्दर्यसारनिकाय निकेतन वा।
तस्या सखे नियतमिन्दुसुधा मृणाल ज्योत्स्नादि कारणमभून्मदनश्च वेधा।
मालती-माधवम्-भवभूति

की चर्चा की गई है। सौन्दर्य की स्थिरता के लिये प्राकृतिक, मानवकृत एवं स्वर्गिक उपकरणो का प्रयोग भी बताया गया है। इन्ही प्रवृत्तियो का आधार लेकर रूप मे सौन्दर्य को देखने की चेष्टा की गई है।

अत यह कहा जा सकता है कि संस्कृत साहित्य मे सौन्दर्य की जो कल्पना की गई है, वह रूप पर आधारित है। रूप मे आकार एव विभिन्न अगो के उचित सगठन आदि का सौन्दर्य रहता है। यह रूप वाह्य प्रसाधनो के अभाव मे भी स्वत सभवी रमणीयता से उद्भासित होता रहता है। इसमे रूप के नैसर्गिक गुणो का समर्थन मिलता है, अर्जित सौन्दर्य की रुचि कम दीख पडती है। यही पर हिन्दी के विद्वानो की सौन्दर्य-विषयक मान्यता भी देख लेनी चाहिए।

हिन्दी कवियों का मत

सौन्दर्य-विषयक हिन्दी कवियो की अपनी अलग मान्यताएँ हैं। विहारी की धारणा इस सम्बन्ध मे प्रमुखत दो रूपो मे दीख पडती है। प्रथमत ने वस्तु मे रूप अथवा कुरूप को नही मानते है। उनके विचार से वस्तु मे रूप अथवा कुरूप नही होता, अपितु समय-समय पर मन की रुचि के अनुसार ही वस्तु प्रिय अथवा अप्रिय प्रतीत होती है।[1] इस विचार का विश्लेषण करने से स्पष्ट है कि विहारी ने सौन्दर्य के आत्म-परक दृष्टिकोण का समर्थन किया है। सौन्दर्य को विषय-प्रधान न मानकर विषयी प्रधान माना है और सौन्दर्यानुभूति मे व्यक्ति की भावना का महत्व स्वीकार किया गया है। इस प्रकार यह सौन्दर्य आत्म-परक हो जाता है। वास्तव मे आँखो मे ही सौन्दर्य का मान दण्ड है। वह परख की जाने वाली वस्तु या व्यक्ति मे नही होता। एक दूसरे स्थल पर उन्होने रूप को रिझाने वाला और नेत्रो को रिझने वाला बताया है।[2] यहाँ यदि रूप, जो सौन्दर्य का समानार्थक प्रतीत होता है, ही रिझाने वाला हुआ तो यह वस्तुनिष्ठ भावना हो जाती है। इसमे रूप या सौन्दर्य की ही प्रधानता मानी गई है। इस प्रकार दोनो एक दूसरे की प्रतिकूल धारणाएँ है। भावना के आवेश मे ही इस प्रकार की विरोधी प्रवृत्ति दीख पडती है, फिर भी इससे सौन्दर्य-विषयक उनकी उच्च-धारणा मे कोई अन्तर नही आता।

---

1 समय-समय सुन्दर सबै, रूप-कुरूप न कोय।
मन की जित जेती रुचि, तित तेती रुचि होय ॥ बिहारी-रत्नाकर ४३२

2 रूप-रिझावन हार वो, ये नैना रिझवार।

संस्कृत कवियो की भाँति इनकी सौन्दर्य कल्पना भी बहुत उच्च-कोटि की है। वास्तविक सौन्दर्य का अकन तो ससार का बडे से बडा कलाकार भी नही कर सकता है। बिहारी की नायिका के सौन्दर्य को चित्रित करने मे 'जगत् के केते चतुर चितेरे क्रूर' हो जाते है।[1] इसका कारण सौन्दर्य की प्रतिक्षण की **नूतनता** और **रमणीयता** है। **दास** की नायिका भी 'भोर मे और, पहर मे और दोपहर मे और ही हो जाती है।[2] मतिराम की कल्पना मे पास से देखने पर 'गुराई' खरी दीख पडने लगती है।[3] पद्माकर ने अगो के पल-पल मे बदलते रहने की बात कही है। इसी से ऐसी बाला का वर्णन करते नही बनता है —

पल-पल मे पलटन लगे, जाके अग अनूप।
ऐसी इक ब्रजबाल को, कहि नहि सकत सरूप॥

यहाँ उनका वस्तु-परक दृष्टिकोण स्पष्ट हो जाता है जिसमे सामीप्य भी एक आवश्यक तत्व हो जाता है। इनकी सौन्दर्य दृष्टि का माधुर्य परिचिति की सान्द्रता मे स्पष्ट हो जाता है। **कुलपति मिश्र** ने राधा की 'लुनाई' की सरसता को कल्पना की मधुरिम जगत् मे परिणित कर दिया है। सूर की गोपियाँ कृष्ण से पहचान मानती ही नही है, क्योकि उनका रूप-निमिप-निमिष मे और हो जाता है। अत रूप की एक निश्चित धारणा के अभाव मे छवि की रति नही हो पाती।[4]

तुलसी की सौन्दर्य चर्चा भी द्रष्टव्य है। उन्होने **मनोहर** शब्द का प्रयोग बार-बार किया हे। उनके मति के अनुमार राम की कथा 'मनोहर' है। 'करइ मनोहर मति अनुसारी।' काव्य मे बाल्मीकि ने **माधुर्य**, आचार्य जगन्नाथ ने **रमणीय** का प्रयोग अधिक किया है। इसी प्रकार तुलसी ने उसी अर्थ मे '**मनोहर**' शब्द का प्रयोग किया है। इस मनोहरता के साथ

---

1 लिखन बैठि जाकी सविहि, गहि-गहि गरब गरूर।
भये न केते जगत के चतुर, चितेरे क्रूर। बिहारी

2 आज भोर औरई, पहर होत औरई ह्वै, दोपहर औरई,
रजनि होत औरई। दास

3 ज्यो-ज्यो निहारिये नेरे ह्वै नैननि,
त्यो-त्यो खरी निकरै सी निकाई। मतिराम

4 स्याम सो काहे की पहचानि।
निमिष-निमिप वह रूप न वह छवि, रति कीजै जेहि आनि। सूर

मगलकारिता के गुण को भी उन्होने माना है। 'मधुर मनोहर मगलकारी।' रामचरितमानस मे वर्णित विभिन्न घाटो को 'मनोहर' कहा है, उपमाओ का विचि-विलास मनोहर है, चौपाइयाँ 'चारु' है, कवि-युक्तियो मे 'मञ्जुता' है। छन्द, सोरठा, दोहा ये सभी 'सुन्दर' है, अर्थ 'अनूप' हे।[1] तुलसी के छन्दो की विवेचना मात्राओ आदि की न होकर उनके प्रति विशेप अभिव्यंजनाओ मे है। छद विभिन्न रग के कमलो के तुल्य माने गये है। यह अर्थ फूलो के पराग, मकरद, सुवास आदि के समान चित को आह्लादित करता है। अत मधुर, मनोहर, मञ्जु, चारु आदि शब्दो का प्रयोग उनकी सौन्दर्य-वृत्ति को ही प्रकट करता है।

आधुनिक युग मे **जयशकर प्रसाद** ने सौन्दर्य को चेतना का उज्ज्वल वरदान कहा है।[2] यदि सौन्दर्य का सम्बन्ध चेतना से है, तो यह मानसिक जगत की वस्तु है। अत प्रसाद को आत्मवादी दृष्टिकोण वाला कहा जायगा। **पत** ने सुन्दरता को सम्पूर्ण ऐश्वर्यो का सन्धान बताया है।[3] **मैथिलीशरण गुप्त** ने शिवरूप सत्य को विरूपाक्ष और कल्पना के मन को सुन्दरार्थ कहा है।[4]

उपर्युक्त विचारो से यह स्पष्ट है कि भारतीय काव्यशास्त्र मे सौन्दर्य का विवेचन स्वतत्र शीर्पक से न होकर काव्य-रस या रमणीयार्थ के प्रसग पर हुआ है। काव्य-ग्रन्थो मे भी इसे स्वतत्र अस्तित्व प्राप्त नही हो सका है। आज के अर्थ मे सौन्दर्य शब्द का विवेचन भी नही होता था। आज तो इसे काव्य का प्राण मानते है। इसका मूल अलफात् और अरस्तू का काव्य-सिद्धान्त माना जाता है। क्रोचे की आधुनिक विचारधारा का प्रभाव भी उपेक्षणीय नही है। इस सम्बन्ध मे डा० विजयेन्द्र स्नातक का मत दृष्टव्य है, "अलफात्" का 'दी ट्रू, गुड एण्ड दि व्युटिफुल के रूप मे जिस व्युटिफुल का सकेत किया है, वह सुन्दर की भूमिका मे सामने आया और उसका बाह्य एव आभ्यन्तर स्वरूप का आख्यान आरम्भ हुआ। ईसा की उन्नीसवी शती के

---

1 छद-सोरठा सुन्दर दोहा। सोई बहुरग कमल कुल सोहा।
अरथ अनूप सुभाव सुभासा। सोई पराग मकरद सुवासा। तुलसी

2 उज्जल वरदान चेतना का सौन्दर्य जिसे सब कहते है—
जिसमे अनन्त अभिलापा के सपने सब जगते रहते है। कामायनी-लज्जा सर्ग

3 अकेली सुन्दरता कल्याणि, सकल ऐश्वर्यो की सन्धान—पल्लव—पृ ५४ पन्त

4 सत्य सदा शिव होने पर भी विरूपाक्ष भी होता है।
और कल्पना का मन केवल, सुन्दरार्थ ही होता है। मैथिलीशरण गुप्त

अन्तिम चरण मे सत्य शिव, सुन्दरम् के रूप मे जो सिद्धान्त वाक्य बगला भाषा से हिन्दी मे आया, वह भी कदाचित् पाश्चात्य मीमासको की विचार धारा से ही नही, वरन् शव्दावली से भी प्रभावित था ।[1]

स्पष्ट है कि भारतीय काव्य शास्त्रज्ञ सौन्दर्यानुभूति मे मन के चेतन अश की महत्ता को स्वीकार करता है । इससे यह अन्तर्मुखी है, साहित्य मे सौन्दर्य का आरम्भ शव्द की जिज्ञासा के साथ स्वीकार की जा सकती है, क्योकि आत्मा की जिज्ञासा सहज एव स्वाभाविक है । यह सौन्दर्यानुभूति शव्दार्थ के माध्यम से भाव-जगत् की निधि बनकर सौन्दर्य का परिष्कृत रूप हमारे समक्ष लाती है जिसे लक्ष्य करके सौन्दर्य का वोध हो, वही वस्तु सुन्दर है । वह शव्द, भाव, कवि या कलाकार की स्टष्टि कुछ भी हो सकती हे । वस्तु तभी सुन्दर कही जाती है, जव उपचेतन के सस्कार उद्‌वुद्ध होने पर मन की एक विशेष स्थिति बन जाती है । यही स्थिति सत्वोद्रेक की भाव-भूमि है । सच तो यह है कि कलात्मक अभिरुचि जिनमे है, वे सभी सौन्दर्य के पारखी है और सहृदय भावो को प्रेपणीय वनाने के साथ ही अन्यक्त कलागत सौन्दर्य को देखता और परखता भी है ।[2] ऐसे सौन्दर्य की तीन कोटिया हो सकती है (१) देखते ही लुव्ध कर लेने वाला सौन्दर्य । ऐसा वर्णन सूर ने एक स्थल पर अच्छा किया है ।[3] (२) दैनिक व्यवहारो मे दीख पडने वाला सौन्दर्य, जिसका महत्व परिचय की अधिकता से चेतन दशा तक नही पहुँच पाता या वह वस्तु विशेष चर्चा की विपय नही वनती । वहुधा सम्वन्ध भावना की मधुरता के अभाव मे ही वस्तुगत सौन्दर्य का अभाव सा रहता है । यदि वही वस्तु हमसे सम्वन्धित हो जाय तो उसके सौन्दर्य का अलोकिकत्व प्रकट होने लग जाता है । (३) मध्यवर्ती सौन्दर्य-यही काव्य का प्रेरक हो सकता है, क्योकि वस्तु मे सम्वन्ध रहने से या तो

---

1 हिन्दी काव्य और उसका सौन्दर्य-भूमिका भाग डा० विजयेन्द्र स्नातक ।

2 Every man is an artist not only in that he conveys his impressions to others by language but becaue he perceives the beauty of world and of art each of which he must create or recreate for himself since neither speaks to the animal Carritt

3 औचक ही देखी तहाँ राधा, नैन विशाल भाल दिये रोरी ।
नील-वसन फरिया कटि वाँधे, वेनी रुचिर भाल झकझोरी ।
सूर स्याम देखत ही रीझे, नैन-नैन मिलि परी ठगोरी । सूर सागर ।

वह अलौकिक हो जायगा या भाव सवलित होकर हमारे समक्ष प्रस्तुत होगा। मध्यवर्ती स्थिति मे वस्तु का वास्तविक मूल्याकन सम्भव होता है। ऐसी वस्तु सौन्दर्य युक्त होकर हमारे समक्ष आती है। इस सौन्दर्य के अनेक तत्व स्वीकार किये गये है। इसकी व्याख्या करने के पूर्व सुन्दर शब्द के साथ उदात्त और कुरूप के सम्बन्धो का स्पष्टीकरण होगा।

सुन्दर और उदात्त—

सौन्दर्य आत्मा का धर्म है। वस्तु के साथ मन का रागात्मक सम्बन्ध स्थापित हो जाने पर तथाकथित असुन्दर वस्तु भी सुन्दर प्रतीत होने लगती है। ऐसी वस्तुओ मे मन या आत्मा के विभिन्न गुण अनन्तता, विशालता आदि के दर्शन होने लगते है। यहाँ तक कि प्रकृति का विशाल रूप भी हमारे आकर्षण का केन्द्र वन जाता है। इस आकर्पण के साथ सौन्दर्य के अन्य भी कई तत्व—**नवीनता, माधुर्य, रमणीयता, आह्लादकता**—आदि की चर्चा की गई है। प्रकृति की इस विशालता को देखकर उसकी महानता को हम स्वीकार कर लेते है। हमारी मौन-स्वीकृति उस विशालता के समक्ष अपनी लघुता को व्यक्त करने लग जाती है। विशालता और आत्म-लघुता के इसी भाव मे उदात्त-तत्व छिपा रहता है।

आत्मा की विशालता मे उदात्त-तत्व निहित रहता है। **उदात्त-बोध** के अवसर पर दृश्य वस्तु मे भय का मिश्रण और तज्जन्य आतक की विभीषिका के साथ अपनी लघुता का वोध भी तुलनात्मक दृष्टि से वना रहता है। काव्यो मे वर्णित विराट घटनाएँ, जीवन का विराट् राग-द्वेप, त्याग और वीरता आदि सभी विराट् के किसी रूप की अभिव्यञ्जना करते हैं। उत्तुग पर्वत श्रेणियाँ, महासागर की गहनता एव विस्तार, कान्तार की भयावह गुफाये तथा इसी प्रकार के अन्य विराट् वस्तुओ मे उदात्त के भाव उत्पन्न होते है। यह उदात्त-तत्व सुन्दर से भिन्न होता हुआ भी उसके भेदो मे एक है।

सुन्दर का विश्लेषण करते हुए उसके पाँच भेद किये गये है। **उदात्त** (Sublime), **भव्य** (Grand), **सुन्दर** (Beautiful), **मनोरम** (सुष्ठु—GraceFul) और **ललित** (Pretty)। इनमे उदात्त को पराकोटि और ललित को अपराकोटि बताया गया है। सुन्दर की मध्यवर्ती स्थिति स्वीकार की गई है। इसकी स्थिति बहुत कुछ प्रसाद गुण की सी मानी गई है। सुन्दर तत्व एक ओर उदात्त और भव्य मे और दूसरी ओर मनोरम और ललित मे मूलत वर्तमान रहता है। भाव पक्ष मे उदात्त की अनुभूति चित्त के उत्कर्ष और विस्तार के रूप मे होती है। आलम्वन और प्रमाता के वीच एक सुखद

सामञ्जस्य स्थापित हो जाता है। सुन्दर की अनुभूति प्रीति के रूप मे होती है।[1]

उदात्त शब्द का प्रयोग नायक-विश्लेषण प्रसग पर भी नाट्यशास्त्र के विभिन्न ग्रन्थो मे किया गया है। नायक या नेता के चार भेद धीर ललित, प्रशान्त, उदात्त और उद्धत बताये गये है। इन चारो भेदो मे धीरता का गुण अनिवार्य रूप से वर्तमान है। धीरोदात्त कोटि का नायक महासत्व, अत्यन्त गम्भीर, क्षमाशील, अविकत्थन, स्थिर, निगूढ अहकार वाला और दृढव्रत होता है।[2] इन विशेषताओ मे गम्भीरता की अत्यधिक महत्ता स्वीकार की गई है। एक अन्य स्थल पर लोकातिशय सम्पत्ति वर्णन या प्रस्तुत के अग रूप मे महापुरुष का चरित्र सुनना ही उदात्त बताया गया है। 'लोकातिशय सम्पत्ति वर्णनोदात्तमुच्यते। यद्वापि प्रस्तुतस्याङ्ग महता चरित भवेत्।" यहाँ पर महापुरुष के कथन द्वारा भी लोकोत्तर विशाल चरित्र की व्यञ्जना की गई है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि उदात्त मे महानता का होना आवश्यक है, परन्तु वैभव सम्पन्न ऐश्वर्य युक्त राज दरबार का वर्णन उदात्त की श्रेणी मे नही आयेगा।

सुन्दर को ललित और उदात्त की मध्यवर्ती स्थिति मे माना गया है। 'ललित' शब्द की चर्चा कई स्थलो पर हुई है। धीर ललित नायक को निश्चिन्त, कलाओ मे आसक्त, सुखी और कोमल चित्त का बताया गया है। शृगार की प्रधानता के कारण उसके आचार-व्यवहार और चित्त की वृत्तियो मे सुकुमारता होती है। वह मृदु होता है। नायक के आठ सात्विक गुणो मे भी 'ललित' की गणना की गई है। स्वाभाविक शृगार और आकार की चेष्टा करने को ललित कहते हैं।[3] नायिका के स्वभावज अलकार मे भी ललित की गणना होती है। यहाँ पर सुकुमार अगो के सरस विन्यास मे 'ललित' माना गया है। अगो की सुकुमारता सुन्दरता के साथ रहती है। सौन्दर्य के अभाव मे सुष्ठता का यह गुण नही पाया जाता। अत ललित और सुन्दर का विशेष सम्बन्ध माना जायगा।

भारतीय परम्परा मे जो सम्बन्ध ललित और उदात्त मे है, पाश्चात्य सौन्दर्य शास्त्र मे वही सम्बन्ध उदात्त और सुन्दर मे है। इस दृष्टि से ललित

---

1 काव्य मे उदात्त-तत्व—डा० नगेन्द्र

2 महासत्वोऽतिगम्भीर क्षमावानविकत्थन।
स्थिरो निगूढाहङ्कारो धीरोदात्तो दृढव्रत॥ दशरूपक २/४–५ धनञ्जय

3 शृङ्गाराकार चेष्टात्व सहज ललित मृदु। २/१४ दशरूपक

और सुन्दर दोनो समानार्थक है। सौन्दर्य के मोहक शक्ति का लावण्य ललित होने से ही प्रिय और ग्राह्य होता है। इसमे आत्मीयता का भाव उत्पन्न हो जाता है। इसी से उसके सानिध्य की कामना मन मे बनी रहती है।

सुन्दर मे प्रियता का जो भाव है, उदात्त मे उस कोटि का भाव उपलब्ध नही होता। उदात्त के विशेष गुणो के कारण वह श्रद्धास्पद होता है। इसमे शील और महानता का सौन्दर्य रहता है। उदात्त की महानता के कारण उसके प्रति श्रद्धा मिश्रित और एक भय-युक्त भाव की उत्पत्ति होती है। उदात्त सौन्दर्य का आलम्बन हमारे श्रद्धा भाव को उभारता है और रूप-सौन्दर्य युक्त आलम्बन हमारा प्रेम-पात्र बनता है। इस प्रकार उदात्त और सौन्दर्य की अनुभूतियो के फल मे अन्तर पडता है। पहले मे श्रद्धा और दूसरे मे प्रेम है। सुन्दर की आत्मीयता उदात्त के भय मे परिवर्तित हो जाती है। इस प्रेम का एकान्त भाव श्रद्धा मे विस्तार पा लेता है। प्रेम मे आश्रय और आलम्बन की एकता मानी जाती है, श्रद्धा मे आश्रय अनेक हो सकते है।

उदात्त तत्व के मूल पर विचार करने से ज्ञात होता है कि वैदिक युग का ऋषि प्रकृति के महान् तत्वो को एक विशेष शक्ति के रूप मे स्वीकार करता रहा है। वह उनसे आतंकित रहता था। उसके प्रति उदात्त भावना थी। इस प्रकार आरम्भ मे उदात्त के साथ भय की भावना वर्तमान रहती रही है।

वर्क ने बताया है कि उदात्त और सुन्दर मे भिन्नता है। सौन्दर्य का सम्बन्ध प्रियता से है और उदात्त का दुःख और भय से है। कुरूप को सुन्दर का विरोधी माना है। इससे यह प्रियता का विरोधी भी हो गया।[1] इसके अतिरिक्त रूपहीनता, शक्ति, महदाकार आदि उदात्त के अन्य महत्वपूर्ण गुण है। **लिस्टोवेल** ने वर्क के उदात्त के एक और गुण का सकेत किया है। उदात्त की स्थिति मे भय तभी उत्पन्न होता है, जब जीवन और शरीर के लिए वास्तविक खतरा नही होता।[2]

कान्ट की उदात्त कल्पना वर्क के सिद्धान्त से प्रभावित है। वर्क का विचार है कि जो कुछ भयजनक है अथवा भय के उत्पादन का मूल है, उसे उदात्त उद्गम का एक साधन मान सकते है।[3] इनके अनुसार उदात्त का

---

1 History of Aestheics P 203

2 A critical History of Modern Aesthetics P 250.

3 Whatever is fitted in any sort to excite the idea of pain, and dangei, that is to say whatever is in any sort terri-

सम्वन्ध आत्म-रक्षा से अवश्य है, किन्तु उदात्त की कलात्मक अनुभूति तभी होती है जब मृत्यु अथवा शारीरिक शक्ति का कोई वास्तविक खतरा नही रहता।[1] कान्ट ने सुन्दर और उदात्त मे भेद माना है। इनकी सौन्दर्य कल्पना रूपात्मक है। उदात्त को इन्होने भी वर्क के अनुसार रूपहीन या कुरूप माना है।[2]

सौन्दर्य एक शक्तिशाली संवेदना उत्पन्न करता है, जो कल्पना और आकर्षण से युक्त होता है। उदात्त की प्रसन्नता सीधी न होकर अवान्तर रूप मे मिलने वाली रहती है क्योकि यह एक विशेष शक्ति के क्षणिक अवरोध से आता है।[3] इन्होने उदात्त के दो भेदो को बताया है। प्रथम **गणितात्मक** है, जिसका मुख्य गुण आकार की महत्ता है। इन्द्रियाँ इस महत् आकार को ग्रहण करने मे असमर्थ रहती है। उदात्त का दूसरा रूप **सक्रिय** है, इस रूप मे शक्ति की महत्ता के विपरीत हमारी अशक्तता का उद्घाटन होता है।[4] इस प्रकार आकार और शक्ति की महत्ता द्वारा हमारे मे भय का भाव उत्पन्न होता है।

हीगेल ने उदात्त को अनन्त की अभिव्यक्ति का प्रयास कहा है। रूप-प्रधान कला का विषय उदात्त नही हो सकता, यद्यपि भारतीय देवो की असामान्य कल्पना से उदात्त को रूप देने की चेष्टा विद्वानो ने की है। ब्रह्मा के चार और कार्तिकेय के छ मुखो की कल्पना का यही रहस्य है। फिर भी अनन्त को आकार देने के विभिन्न साधनो-रूप, रेखा, सख्या आदि-मे बाँधना

---

ble, or is conversant about terrible object, or operates in a manner analogous to terror, is a source of the sublime Edmond Burke Quoted from Philosophies of Beauty by.
E F Carritt

1 Critical History of Modern Eesthetics P. 250.

2 History of Aesthetics P. 276

3 Beauty brings with it directly a feeling of vital stimulus, and so can be united with charm and play of imagination But our feeling for the Sublime is only an indirect pleasure, since it is produced by the experience of a momentary check to our vital powers The critique of Judgement P 117 Immamuel kant

4 History of Aesthetics P 277

सम्भव नही है । उदात्त की इन्द्रिय गम्य कल्पना सुन्दर रूप मे ही अभिव्यक्त है । ब्रह्म के साकार रूप की अभिव्यक्ति की सुन्दरता का यही कारण है । उदात्त के इस सौन्दर्य तत्व और अनन्तता के समक्ष मानव को अपनी लघुता की भावना का आभास बना रहता है । लघुता का यह भाव दास्य-भक्ति के प्रसग पर देखा जा सकता है । सूर के सख्य भक्ति के आलम्बन कृष्ण के सौन्दर्य के कारण ही यह भक्ति लोक विकास मे अधिक सहायक सिद्ध हो सकी है । इस दृष्टि से महान् की अनुभूति जब हम सरल रूप मे करते है, तो इसे उदात्त को समझने के साधन रूप मे ग्रहण कर सकते है ।

रस्किन की कल्पना कुछ भिन्न है । उसने उदात्त मे भयावह तत्व न मानकर वर्क के विपरीत विचार प्रकट किया है । आकर्पण तत्व को प्रमुख माना है । मानव अपनी रुचि के अनुकूल इसका आरोप उस तत्व मे कर लेता है । अत भारतीय एव रस्किन के विचार से भी उदात्त सुन्दर के निकट है ।

उदात्त को समझने के लिये यथार्थ जीवन को ग्रहण करेगे । वास्तविक जगत मे अनन्त पीडा, दु ख, प्रतिकूल वेदनाओ आदि का प्रावल्य रहता है । व्यक्ति कटुता की यथार्थता से वचना चाहता है और व्यावहारिक जीवन मे अपने पार्थिव अस्तित्व को भी वनाये रखना चाहता है । वह जीवन की प्रतिकूल वेदनीयता मे अनुकूलता उत्पन्न करके कठिनाइयो के रुक्ष रूप को हटाकर उसमे आध्यात्मिकता-जन्य एक आनन्द की सृष्टि करना चाहता है । यही सृष्टि कलाओ के रूप मे समक्ष आती है ।

कला की इस भाव-भूमि पर व्यक्ति रज और तम को भूलकर सत्व गुण के मधुर आलोक मे जाना चाहता है । व्यक्ति की पीडाये विभिन्न कलाओ मे आस्वादन की हेतु बन जाती है, जिसका यह रूप यथार्थ जगत मे सम्भव नही है । इस प्रकार पीडा मे आनन्द का, असुन्दर मे सुन्दर की जो सृष्टि हो जाती है, वह 'सुन्दर' न कही जाकर 'उदात्त' कही जाती है । इस प्रकार उदात्त की भाव-भूमि पर प्रतिकूलता अनुकूलता मे परिवर्तित हो जाती है । इससे अपनी भावनाओ की प्रवृत्ति का एक आधार और आलम्बन मिल जाता है ।

सिगमन फ्रायड ने काव्य एव कला को स्नायु विकृति की प्रतिक्रिया स्वीकार किया है । इसके मत से यथार्थ जगत की अतृप्त वासना कला-जगत मे प्रवृत्ति का मार्ग पा लेती है और व्यक्ति की भोग-वृत्ति कलाओ मे ही तृप्त होती रहती है । कवि या कलाकार यथार्थ की वास्तविकता से ऊपर उठकर उदात्तीकरण के द्वारा अवरोधित चेतना के प्रसार का मार्ग खोज लेता है । इस दृष्टि से विचार करने पर सूर का काव्य-शृंगार-काव्य-यथार्थ के दमन से ही उत्पन्न माना जायगा ।

इस सम्बन्ध मे **रामरतन भटनागर** का विचार है कि सूर की शृ गार भावना का गोपीकृष्ण अथवा राधाकृष्ण सम्बन्धी सन्दर्भो मे उदात्तीकरण हुआ है । प्रतीकात्मक रूप मे ग्रहण किये गये राधाकृष्ण मे उनका व्यक्तित्व छिप गया है । उनके दमन ने लौकिक शृ गार भाव को अलौकिक का शृ गार बनाकर प्रस्तुत किया है । इससे समाज की स्वीकृति प्राप्त होने मे कोई वाधा नही आई । जहाँ कही समाज द्वारा दूषित विचारो को ग्रहण किये जाने की आशका थी, वहाँ सूर ने प्रतीको का अवलम्ब लिया, कूट-काव्य के द्वारा समाज और अपने व्यक्तित्व के बीच मे एक पर्दा डाल दिया, तथा साहित्यिक रूढि एव परम्पराओ के रूप मे अपने अवचेतन मन की वासनाओ को तृप्त होने के लिये मुक्त रूप मे छोड दिया । अत उनमे कवि एक जागरूक कलाकार और रस-भोक्ता के रूप मे समक्ष आता है ।[1]

डा० हरद्वारी लाल शर्मा के अनुसार जव हम अनन्त पीडा को चित्र, काव्य, मूर्ति, भवन आदि मे मूर्त वनाकर अथवा प्राकृतिक पदार्थो मे इसी का मूर्त रूप पाकर इसका आस्वादन करते है, तव हम इन्हे सुन्दर न कहकर उदात्त कहते है । वस्तुत सुन्दर का ही उत्कृष्ट रूप उदात्त हे, जिससे प्रवृत्तियो से ऊपर उठकर मन आध्यात्मिक जगत की अनुभूतियो का मूर्त रूप मे आस्वादन करता है ।[2] इस जगत मे पहुँच कर वह धर्म की सीमा मे आ जाता है, उसकी आध्यात्मिकता यथार्थ की प्रतिकूलता समाप्त कर देती है । ध्यान मे रखना चाहिये कि सौन्दर्यानुभूति की सरसता उदात्त मे नहीं रहती । उदात्त के अनन्त भाव के जाग्रत होने मे व्यक्ति मे लघुता का भाव आता है । वेदनानुभूति मन मे सकोच उत्पन्न करती है । तदनन्तर मन तीव्र गति से आत्म-वोध प्राप्त करता हुआ नवीन चेतना की जागरूकता अनुभव करने लगता है । यह चेतना धर्मगत भी होती है । इससे धर्म की अनुभूति को 'उदात्त की अनुभूति कह सकते है । धर्म का उदय जीवन मे अनन्त और असीम तत्व की स्पष्ट अथवा अस्पष्ट दर्शन एव चिन्तन से ही होता है । वौद्ध दर्शन मे "सर्वं दुखम् एव क्षणिकम्' की अनन्त कल्पना मे जीवन का विषाद देखा गया था । इसका अवसान उनके जीवन का ध्येय था । इस कल्पना मे लोकोत्तर वेदना और सन्तोष के अनुभव मे उदात्त की ही अनुभूति की गई । युद्धोपरान्त महाभारत की शान्ति कल्पना उदात्त की भूमि पर है । सभी धार्मिक ग्रन्थो मे कल्पना का यही सुन्दर रूप

---

1 मूल्य और मूल्याकन—पृ० ११६–११७ रामरतन भटनागर

2 सौन्दर्य-शास्त्र – पृ० १०५ (१९५३ सस्करण) साहित्य-भवन ।

दीख पडेगा । भगवान् कृष्ण के जीवन मे सुन्दर और उदात्त की कल्पना का अच्छा समन्वय मिलता है । उनमे रूप, माधुर्य, शोभा प्रेमादि गुण आनन्दात्मक है, रुदन उत्पन्न करने वाले नही है । विपत्तियो मे उनका अविचल भाव यहाँ तक कि उनका अवसान भी आनन्द का ही विषय है । इसे ही उदात्त की उच्च अनुभूति कहेगे । उनके इस स्वरूप की तथ्यता जानने के लिये ही धर्मगत साधना का प्रादुर्भाव होता है । अत स्पष्ट है कि धर्म के क्षेत्र मे ग्रन्थो मे जिस परम शक्ति या तत्व का वर्णन किया जाता है, वह लोक भावनाओ के अनुकूल होकर भी लोकोत्तर है । यही उदात्त की शक्ति है । इससे आराध्य की विशालता, अलौकिकता और अपनी लघुता का भाव बराबर बना रहा है ।

लौकिक जगत की यथार्थता से अलौकिक की सृष्टि मे उदात्त की भूमि पर मानव के पहुँचने की प्रवृत्ति का विश्लेषण एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट हो जायगा । 'रति' नामक भाव का प्रधान साधन नायिका का वर्णन साहित्य मे बहुत हुआ है । यह वर्णन लौकिक व्यवहार मे सरस एव आकर्षक माना जाता है । यह 'उदात्त' भावनापूर्ण नही कहा जायगा, परन्तु इसका उदात्तीकरण दो प्रकार से सम्भव हो सकता है । (१) लौकिक रति विषयक अन्य भावनाओ को एक मान्य अलौकिक आलम्बन के आधार से प्रकट कर दिया जाय । सूर आदि भक्त कवियो ने ऐसा ही किया है । इसी से वे उच्चकोटि के भक्त कवियो मे स्थान पा सके है । (२) रति भाव की अनुभूति की अति से मानव मे विरक्ति जन्य जिस भावना का विकास होने लगता है, वही रत्यनुभूति की निस्सारता से 'उदात्त' तत्व की ओर अग्रसर हो जाता है । इस प्रकार रमणी का आकर्षक सौन्दर्य उसमे अनासक्ति उत्पन्न कर देता है ।

व्यक्ति के इस मानसिक स्थिति का विश्लेषण करने से ज्ञात होता है कि उसमे वैराग्य की भावना मूर्त और स्पष्ट होने लगती है तथा एक अलौकिक प्रकाश की प्रतीति होने लगती है । यह मन का ऐसा सन्धि स्थल होता है, जहाँ एक ओर रूप का आकर्षण एव वासना और दूसरी ओर उदात्त की आलोकमय कान्ति रहती है । व्यक्ति पीछे लौटकर विषय स्वाद पाने की विकलता के अनुभव के साथ विराग-जन्य वेदना का अनुभव करता है । विकलता एव वेदना मे दोलायमान उसकी चित्तवृत्ति क्रमश स्थिरता ग्रहण करती हुई शान्ति की ओर उन्मुख हो भोगो से विरक्त होती चली जाती है । वह विरक्ति उसमे एक नये सृजन को बल देती है । वह यथार्थ जीवन से परे एक आध्यात्मिक जगत की कल्पना करने लग जाता है । यही कल्पना कलाओ मे व्यक्त होने लगती है ।

कला कल्पना के इस साहाय्य से आध्यात्मिक जगत मे प्रविष्ट हो आनन्दानुभव का कारण बनती है। कलाकार कल्पना लोक से आनन्द के लोक मे जाकर विराटता, अनन्तता और विस्मयजनकता के स्थायित्व मे 'उदात्त' का दर्शन करने लग जाता है। ससार की उसकी वेदना अनन्त मे लीन हो जाती है, उसका आत्म-चेतन प्रबुद्ध हो जाता है, वह स्वय मे ब्रह्म की अनुभूति पा लेता है। लौकिक वेदना आध्यात्मिक आनन्द मे परिणित हो जाती है। वह अब सौन्दर्य के स्थान पर उदात्त की अनुभूति करने लग जाता है। उसकी मानसिक भाव-भूमि लोक के वस्तुगत आकर्षण को त्याग कर उस महान् तत्व के साथ एकाकार करती हुई उसके आलोक के विस्मय से मुग्ध हो उदात्त की अनुभूति क्षेत्र मे प्रविष्ट हो जाती है।

डा० **रामेश्वर खण्डेलवाल** का मत है कि उदात्त सौन्दर्य मे मानव और प्रकृति मे व्याप्त आत्मा की अनन्तता, शक्ति, विशालता उदात्तता और विराटता का दर्शन होता है। इसमे दृश्यमान वस्तु या परिस्थिति को देखने पर अनुभूत होने वाला एक धार्मिक भाव-मिश्रित भय या आतक ही मुख्य तत्व है। उदात्त के दर्शन के समय हममे एक आत्म-लघुता की भावना भी होती है। प्रचण्ड झझावात, महिमावान् विराट हिमवान् का विस्तार, विशाल व विस्तृत नद, तारो भरा अनन्त आकाश, आक्षितिज विस्तृत नील वेगनी तरगायित रत्नाकर, दृढ व विशाल भवन, शिव-ताण्डव, शिव की जटा से आकाश से कूदती हुई गङ्गा आदि का सौन्दर्य उदात्त सौन्दर्य कहलाता है, क्योकि इनका विस्तार, दृढता व शक्ति मन पर एक ऐसा विचित्र और मधुर आतक स्थापित कर लेती है कि मन चुपचाप अपनी लघुता स्वीकार कर लेता है।[1] इस विचार मे प्रकृति के विशाल रूपो के समक्ष अपनी लघुता की भावना पर बल दिया गया है।

उदात्त मे इसका आलम्बन हमारे चित्त को केवल आकर्षित ही नही करता, अपितु उसका विकास और उन्नयन भी करता है। इस प्रकार जो आलम्बन चित्त को उत्कर्ष की ओर ले जाय, वह उदात्त कहा जाता है अर्थात् जिस तत्व से आश्रय की चित्त भूमिका उत्कर्ष को प्राप्त हो, वही उदात्त है। इस उत्कर्ष अथवा उन्नयन के साथ लोकातिशयता अथवा महानता प्राप्त होती है। व्यक्ति की स्वार्थमयी भावना से ऊपर उठकर लोक मगल की भाव-भूमि पर आते ही अतिशयता का आरम्भ हो जाता है। आलम्बन की अतिशयता से हम उसके तात्विक स्रोत की ओर अभिमुख होते है। उसके प्रेरक रहस्य भावना

आधुनिक हिन्दी कविता मे प्रेम और शृ गार—पृ० १७२

मे रमरण करने लग जाते है। अत उदात्त का दर्शन वही होगा, जहाँ किसी वस्तु, घटना, शील आदि मे अतिशयता के साथ उत्कर्ष हो।

उदात्त की यह अतिशयता दो प्रकार की होती है। प्रथम **प्रवाह की** ओर ले जाने वाली (२) **धारा-स्रोत** के प्रवाह मे रमा देने वाली अतिशयता। इस दूसरी अतिशयता मे जिज्ञासा का भाव होता है। इसमे हम अपने को रमा देना चाहते है। अत वह अतिशयता जो रहस्य भावना को जन्म दे, उसकी स्रोत कल्पना मे निमग्न कर दे, वह उदात्त कोटि की मानी जायगी। इन दोनो मे विस्मय और तन्मयता का भाव पहले प्रकार मे होगा।

उदात्त के सम्बन्ध मे किये गये विचार के दो दृष्टिकोण हो सकते है। प्रथम **दार्शनिक दृष्टिकोण** और दूसरा **मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण**। बताया जा चुका है कि उदात्त अपने वृहत् रूप मे मानव मे एक लघुता का आभास कराता है। व्यक्ति अपने लघुत्व को वृहत् अथवा विशाल मे मिला देने की चेष्टा करता है। इसी चेष्टा द्वारा रहस्य की भावना का उदय होता है। प्रकृति के विशाल काय विभिन्न अग समुद्र, पर्वतादि इसी विराट के रूप है। इसे देखकर मनुष्य मे जिस भय की उत्पत्ति होती है उस भाव के दो आलम्बन हो सकते है। प्रथम वह स्थूल वस्तु समुद्र, पर्वतादि जिसे देखकर इस भाव का सचार होता है। दूसरा सूक्ष्म तत्वो से उत्पन्न होने वाला भाव। इसमे अमूर्त भावो से भय का सचार होता है। काल की अनन्तता, अनादि अवस्था, विश्व की निस्सीमता आदि इसी क्षेत्र मे आते है। यहाँ साधक साध्य के प्रति आत्म-बलिदान का अनुभव करता है। वह अपने अस्तित्व को उस अनन्त मे विलीन कर देना चाहता है। उसका यही भाव कला या काव्य मे उदात्त का अनुभव कराता है। इससे साधक अपने क्षुद्रत्व एव सीमाओ के बन्धन को छोडकर महान् और निस्सीम हो जाता है। कबीर आदि कवियो की रहस्यात्मकता इसी कोटि की है।

उदात्त का दूसरा मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण है। उदात्त की मानसिक अनुभूति करते समय प्रवृत्तियो मे एक गतिरोध आ जाता है। इससे एक पीडा का अनुभव होता है, जिससे भावनाएँ ऊर्ध्वमुखी हो जाती है इससे आत्म चेतना और स्फूर्ति का अनुभव होता है। उदाहरण के लिये त्याग, बलिदान आदि मे मन की किन्ही प्रवृत्तियो का दमन करना पडता है। इससे आत्मा भौतिकता के स्वार्थ से ऊपर उठकर एक आनन्द का अनुभव करने लग जाता है, यही उदात्त का अनुभव है। इसी अनुभव की अभिव्यक्ति कृष्णभक्तो ने अपनी कला के माध्यम से दास्य भक्ति के विभिन्न अवसरो पर की है। इनके

दीनता के पदो मे आत्म-प्रक्षालन की कामना तथा आराध्य की महत्ता के साथ अपनी लघुता का ज्ञान वना रहता है। इसी से उनकी अभिव्यक्ति आनन्द-दायिनी वन जाती है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो गया कि सुन्दर और उदात्त की रूप भव्यता मे अन्तर है। 'सुन्दर' मे अरसिकता अथवा भयानकता नही होती। उदात्त मे भय को उत्पन्न करने की क्षमता रहती है। कही-कही पर 'अरूप' से भी भयोत्पत्ति हो जाती है। ग्रन्थो मे वर्णित प्रलयकाल मे रूप के अभाव से ही उदात्त की कल्पनात्मक अनुभूति होती है। यहाँ उस परमनियन्ता की चेतना भाव तत्व से जागृत न होकर अभाव-तत्व से ही हो जाती है। प्रकृति के इस विनाश मे भी महानता के वीज वर्तमान रहते है। भव्य-निर्माण मे यदि सौन्दर्य की अनुभूति होती है, तो इस निर्माण के अवशेष चिन्हो से उदात्त की ही अनुभूति होती है, सौन्दर्य की नही। सौन्दर्यानुभूति मे 'रूप' उसका प्रमुख साधन है, जिसकी एक निश्चित आकर और सीमा है, परन्तु उदात्त की अनुभूति मे इसका आलम्वन रूप और रूप का अभाव भी हो सकता है। इस अभाव दशा मे वह अनन्त हो जाता है। इस दृष्टि से सौन्दर्य और उदात्त मे गति, प्रस्थान और ध्येय का अन्तर भी माना जायगा।

उदात्त मे धर्म की भावना है और सुन्दर मे प्रियता की। कोमलता मे भी सौन्दर्य का आभास हो सकता है। सुन्दर कलाओ की सृष्टि मे माधुर्यगुण की महत्ता मान्य रही है। सुन्दर वस्तु वह है, जिसमे माधुर्य और रमणीयता दोनो ही गुण वर्तमान हो। क्षण-क्षण मे उत्पन्न होने वाली नवीनता ही रमणीयता है। माधुर्य का अर्थ चित्त को द्रवित करने वाला आह्लाद है "चित्त द्रवीभावमयोऽह्लादो माधुर्यमुच्यते।" रमणीय वस्तुओ मे उदात्त को भी सम्मिलित किया जा सकता है, परन्तु नवता और माधुर्य से 'सुन्दरम्' की ही सृष्टि होती है, उदात्त की नही। फिर भी सुन्दर और उदात्त पूर्णत भिन्न नही कहे जा सकते। उनकी सगति कही न कही अवश्य रहती है। सुन्दर और उदात्त मे मूल भेद यह है कि सुन्दर मे सुख की मात्रा अधिक होती है। सामान्य दु ख के द्वारा आनन्द की अनुभूति नही होती, परन्तु यदि दु ख से भी आनन्द की अनुभूति होने लगे तो उसे सुन्दर न कहकर 'उदात्त' ही कहेगे। इस प्रकार सुन्दर और उदात्त एक ही भाव के दो भिन्न पक्ष कहे जा सकते है।

सुन्दर और कुरूप

जगत की सम्पूर्ण वस्तुओ के प्रति मानव मे तीन प्रकार की

प्रवृत्तियाँ लक्षित होती है । कोई वस्तु आकर्षित करती है किसी वस्तु मे आकर्षण के स्थान पर उन विपयो से विकर्पण उत्पन्न होता है और तीसरे प्रकार की वस्तु से वह उदासीन रहता है । ऐसी वस्तुएँ न तो उसे आकर्षित करती है और न ही उसे देखकर मानव के मन मे विकर्पण का भाव उत्पन्न होता है वह ऐसी वस्तुओ की उपस्थिति से पूर्ण निरपेक्ष रहकर उदासीन रहता है । यह आकर्षण और विकर्पण की मध्यावस्था है, जिससे मानव चेतना मे किसी प्रकार का कोई आन्दोलन उपस्थित नही होता । मन की इन्ही तीन प्रवृत्तियो के आधार पर वस्तु की तीन कोटियाँ की गई है (१) सुन्दर (२) असुन्दर या कुरूप (३) उदासीन-यहाँ उदासीनता वस्तु का गुण न होकर मन की एक अवस्था विशेष है, जो इस स्थल पर चर्चा का विपय नही है । शेप दो–सुन्दर और कुरूप-को स्पष्ट किया जायगा ।

ऊपर की पक्तियो मे बताया गया है कि वस्तु मे आकर्पण होने से उसकी ओर खिंचाव होता है । इससे वस्तु को 'सुन्दर' कहा जाता है । सौन्दर्य उसका गुण बन जाता है । यह गुण सहृदयता पर निर्भर है । यदि वस्तु मे आकर्पण नही है, तो उसमे रुचि नही होगी । इस आकर्पण से व्यक्ति के मन मे प्रियता का भाव उत्पन्न होता है । प्रियता-जन्य इसी रुचि से वस्तु सुन्दर प्रतीत होने लगती है । यदि प्रियता न हो तो वही वस्तु विकर्पण उत्पन्न करती है और वह सुन्दर होने के स्थान पर कुरूप प्रतीत होने लगती है । इससे स्पष्ट है कि वस्तु की एकरूपता के स्थिर रहने पर भी उसे देखकर आकर्षण और विकर्पण मूलक मनोगत भाव ही उसकी सुन्दरता या कुरूपता के निर्धारण मे सहायक होते है । वस्तु को दी जाने वाली यह विशेषता वस्तु के स्वय का गुण न होकर अनुभविता आत्मा का गुण है, जो अपनी मानसिक प्रवृत्तियो के आधार पर ऐसे आकर्पक या विकर्षक भावो को व्यक्त करती है ।

वस्तु मे आकर्पण रहने से सुख मिलता है। व्यक्ति का आचरण, उसकी मानसिक प्रवृत्तियाँ वस्तु को सुन्दर मान लेती है । इसके विपरीत किसी वस्तु से हृदय का सामञ्जस्य स्थापित न होने पर एक ही वस्तु विभिन्न मानसिक स्थितियो मे अनुकूल या प्रतिकूल प्रभाव उत्पन्न करता है । भक्त कवि सूरदास की गोपियाँ ऐसे ही भावो को व्यक्त करती है । श्री कृष्ण के वियोग मे एक ही पक्षी पपीहा कभी समदुःख भोगी होने के कारण उन्हे प्रिय प्रतीत होता है और मानसिक स्थिति मे परिवर्तन आ जाने से वही उन्हे अप्रिय और दुःख देने वाला

सिद्ध हो जाता है।[1] इससे सिद्ध है कि प्रियता या अप्रियता के कारण उत्पन्न होने वाले वस्तु का सौन्दर्य या कुरूपता उसका व्यक्तिगत गुण न होकर अनुभविता की आत्मा की मानसिक स्थितियो के आधार पर ही निर्भर रहता है। इस दृष्टि से सौन्दर्य वस्तु का गुण न होकर आत्मा के अनुभव का फल है। 'रूप' आकर्षक प्रतीत होने पर सुन्दर और विकर्षक या घृणोत्पादक होने के कारण असुन्दर या कुरूप हो जाता है। यहाँ सुन्दर का तात्पर्य सुन्दर का विरोध या विलोम नही है, अपितु असुन्दर विशेषण ऐसे वस्तुओ के लिये प्रयुक्त हुआ है, जिसका रूप आकर्षक न होने से दुःख का कारण बन जाता है। गोपियो को सुखदायिनी यमुना इसी से कुरूप प्रतीत होने लग गई थी। 'देखियत कालिंदी अतिकारी[2]' पद का यही रहस्य है। इस प्रकार स्पष्ट है कि मानव मन मे वस्तु के प्रति आकर्षण और विकर्षण की उत्पन्न होने वाली अनुभूतियाँ ही सुन्दरता या कुरूपता की नियामिका है। आकर्षण के कारण प्रियतामूलक भावभूमि की परिधि मे आने वाली सम्पूर्ण वस्तुएँ सुन्दर हो जाती है। इसके विपरीत विकर्षण से उत्पन्न अप्रियता वस्तु के प्रति अरुचि का भाव जागृत करती है। व्यक्ति की यही अप्रियता या अरुचि वस्तु को कुरूपता की कोटि मे प्रविष्ट करा देता है। इससे वस्तु के प्रति उपेक्षा के साथ ही निन्दामूलक भाव उत्पन्न होता है। यदि प्रशसा और निन्दा इन दोनो से मन तटस्थ रहे तो यही वस्तु के प्रति मन की उदासीन स्थिति है। इस स्थिति मे वस्तु का गुण व्यक्ति को प्रभावित नही करता और उसकी मानसिक चेतना उस वस्तु से किसी प्रकार की प्रेरणा ग्रहण नही करती। इससे उसकी प्रतिक्रिया भी तटस्थ ही रह जाती है। इससे सिद्ध होता है कि सौन्दर्य और कुरूपता वस्तु का गुणमात्र ही नही है, अपितु मनुष्य की चेतना के भाव पर भी निर्भर है।

वस्तु का सौन्दर्य उसके 'रूप' के आश्रित रहता है। सामान्य अर्थ मे 'रूप' आकार मे रहने वाली कान्ति है। 'रूप' मे चक्षुप्रियता रहने से ही उज्ज्वल वर्ण वाले व्यक्ति सुन्दर कहे जाते है। नैतिक मान्यताओ के आधार पर कुत्सित भाव कुरूप और मगलमय भाव सुन्दर होते है। 'कुरूप' को लोग ग्रहण नही

---

1 (i) बहुत दिन जीवौ पपीहा प्यारे।
वासर रैन नाँव लै बोलत, भयौ विरह जुर कारे। सूरसागर

(ii) हौ तो मोहन की विरह जरीरे, तूँ कत जारत।
रे पापी तूँ पखी पपीहा, पिउ, पिउ कत अविरात पुकारत। सूरसागर

2 सूरसागर।

करना चाहते । वह बौद्धिक रूप मे अग्राह्य है । यह कुरूपता वस्तु के 'रूप' मे ही रहती है, 'तत्व' मे नही रहती । श्लेगेल का मत है कि श्रेय की सुखद अभिव्यक्ति सौन्दर्य और अश्रेय की अप्रिय अभिव्यक्ति ही कुरूप है ।[1] इस स्थल पर अभिव्यक्ति के आधार पर सुन्दर और कुरूप का निर्वारण किया गया है । इससे स्पष्ट है कि जगत मे अमगल जनक, क्रूर एव अप्रिय सभी अभिव्यक्तियाँ कुरूपता की श्रेणी मे आयेगी और इनसे मुक्त प्रिय और आकर्षक अभिव्यक्तिया सौन्दर्य की परिधि मे परिगणित होगी । अत सौन्दर्य लोकहित से सम्पन्न मगत अभिव्यक्ति और कुरूपता क्रूर विचारो से युक्त अमगल जनक अमगत अभिव्यक्ति है । इस निर्णय के आधार पर कहा जा सकता है कि कलात्मक सौन्दर्य भी सगत अभिव्यक्ति का ही फल है । कला के सृजनात्मक निपुणता मे सौन्दर्य और कलाहीनता मे कुरूपता का बीज देखा जा सकता है । इसी से कुरूप वस्तुएँ भी कलात्मक ढग से अभिव्यक्त होने पर आकर्षक हो जाती है । चित्रकला मे यह प्रवृत्ति देखी जा सकती है । चित्रो मे अकित कुरूप वस्तुएँ भी कला के मत्रबल से दर्शक को आकृष्ट कर लेने मे पूर्ण समर्थ होती है । इससे वस्तु सौन्दर्य मे कला का विशेष हाथ है । भारतीय साहित्य के विभिन्न काव्य सम्प्रदायो मे कलात्मक अभिव्यञ्जना का बहुत महत्व है । रीति, वक्रोक्ति, ध्वनि और अलंकार सम्प्रदायो का सौन्दर्य अभिव्यक्ति का ही सौन्दर्य है । इन सम्प्रदायो से स्पष्ट है कि समस्त सौन्दर्य विधायक साधनो मे प्रकट होने वाला सौन्दर्य अभिव्यक्ति का ही सौन्दर्य है । दूसरी विचारणीय बात यह है कि काव्य मे प्रत्येक उपकरण का मूल्याकन सौन्दर्य दृष्टि से किया जाता है । काव्योत्कर्ष मे सहायक तत्वो को सुन्दर और बाधक तत्वो को असुन्दर कहेगे । इसी से अभिव्यक्तिगत बाधक तत्व मात्र प्रदर्शन रह जाते है । उनसे रस की पूर्ण निष्पति नही हो पाती है । ऐसे प्रदर्शनकारी उपकरणो से युक्त काव्य को 'अधम-काव्य' की श्रेणी मे रखा जाता है ।

कुरूपता 'रूप' के तत्वो का व्यवस्थागत दोष है ऐसे वस्तुओ के साक्षात्कार से व्यक्ति का मानसिक श्रम बढ जाता है और आनन्दानुभव का अभाव हो जाता है । सौन्दर्य सुखद ऐन्द्रिय सवेदना से युक्त 'रूप' का गुण है । यह सुख की अनुभूति कराने वाला होता है । 'रूप' ही सुखद होकर 'सुन्दर' और दुखद बनकर 'कुरूप' बन जाता है । सौन्दर्य मे 'रूप' के 'भोग्य-पदार्थों' के उचित

---

1 Beauty is defined as the pleasant manifestation of the good, ugliness as the unpleasant manifestation of the bad, fr V Schlagels Essay on Study of Greak Poetry

सयोजन से आस्वाद योग्य मधुरता का आविर्भाव हो जाता है। यह माधुर्य अवयवो के उचित सगठन गत व्यवस्था से उत्पन्न होता है। यह मन मे सुख की अनुभूति कराता है। इससे वह वस्तु हमे प्रिय लगती है। उसकी ऐन्द्रिय सवेदना मन के अनुकूल रहती है। इसके विपरीत कुरूप वस्तुओ के साथ सवेदना और भावनाओ का आत्मीय सम्बन्ध नही रहता। कुरूपता से घृणा और विकर्पण का भाव उत्पन्न होता है और सुरूपता से प्रियता और आकर्षण का भाव उद्भूत होता है। इससे सौन्दर्य और प्रियता का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध होता है। इस सौन्दर्य के अभाव मे वस्तु कुरूप प्रतीत होती है। कभी-कभी एक ही वस्तु व्यक्ति भेद से सुन्दर और असुन्दर दोनो ही प्रतीत होती है। अन्य स्थलो पर एक ही वस्तु भिन्न-भिन्न मानसिक स्थितियो मे प्रिय या अप्रिय भाव उत्पन्न करती है। इससे स्पष्ट है कि सौन्दर्य का निर्धारण व्यक्ति भेद और मानसिक चेतना के परिवर्तित होने से होता है। सम्वन्ध भावना से कुरूप वस्तु प्रिय हो जाती है। ऐन्द्रिय सवेदना रहते हुए भी उसकी स्वीकृति न रहने से वस्तु अप्रिय बन जाती है। सौन्दर्य की वस्तुगत सत्ता भी रहती है, वही कलात्मक अभिव्यक्ति से आकर्षक बन जाती है। कला-जगत मे कुरूप भी सुन्दर बन जाता है। इससे यथार्थ जगत की विभीपिका क्षीण हो जाती है। कुरूप को बौद्धिक रूप से ग्रहण के अयोग्य कहा जा सकता है क्योकि इस कुरूप के सग आत्मसात् की प्रवृत्ति लोगो मे नही देखी जाती है। 'कुरूपता' सौन्दर्य की व्यवस्था मे एक हीन तत्व है। सुन्दर वस्तुओ की तुलना मे कुरूप वस्तु के रूप मे उसके तत्वो की व्यवस्था ठीक ढग से नही रहती।

सुन्दरता और कुरूपता ये दोनो ही सापेक्षिक शब्द है। कुरूपता के अभाव मे सौन्दर्य का महत्व गिर जायगा। सौन्दर्य कुरूपता के माध्यम से ही अपनी साकारता ग्रहण करता है। कुरूप तत्व की समुचित आकर्षक व्यवस्था सौन्दर्य का आविर्भाव करती है। कुरूप कला के माध्यम से सौन्दर्य का साधक बनता है। इन दोनो शब्दो मे सौन्दर्य की महत्ता कुरूप के अस्तित्व से ही है। यदि कुरूपता न हो तो सौन्दर्य चर्चा का विषय न बन सकेगा। ऐसी स्थिति मे कुरूपता सौन्दर्य का साधक तत्व हो जाता है। अत सुन्दरता के निर्धारण मे कुरूपता का अस्तित्व महत्वपूर्ण है। कुरूपता के अभाव मे सौन्दर्य महत्वहीन हो जायगा। इससे ये दोनो ही शब्द एक दूसरे के अस्तित्व को बनाये रखने के लिये सापेक्ष और पूरक है।

इन विचारो के आधार पर इस निर्णय पर पहुँचा जा सकता है कि सौन्दर्य और कुरूपता के निर्धारण मे निम्नलिखित परिस्थितियाँ एव भाव कार्य करते है।

(१) वस्तु से उत्पन्न होने वाली मन की सुखद अनुभूतियाँ अथवा ऐन्द्रिय सवेदना की अनुकूलता या प्रतिकूलता ।

(२) सामाजिक एव नैतिक मान्यताओ के नियमानुसार वस्तु का मगल या अमगल रूप होना ।

(३) व्यक्ति का वस्तु से सम्बन्ध भाव ।

(४) कलात्मक योजना और 'रूप' मे भोग्य पदार्थो की व्यवस्था ।

(५) व्यक्ति भेद और एक ही व्यक्ति की मानसिक स्थितियो मे अन्तर का आ जाना ।

सुन्दर और कुरूप के इस विचार के उपरान्त सौन्दर्य के तत्व पर विचार किया जायगा ।

सौन्दर्य के तत्व

सौन्दर्य की वास्तविकता का ज्ञान प्राप्त करने के लिये इसके तत्वो का ज्ञान हो जाना आवश्यक है । 'रूप' के स्पष्टीकरण के लिये डा० हरद्वारीलाल शर्मा ने सुन्दर वस्तुओ मे तीन तत्वो का होना आवश्यक माना है। इन्हे क्रमश भोग, रूप और अभिव्यक्ति तत्व कहते है ।

भोग तत्व—दृश्यवस्तु का साधारण अनुभव-गम्य और भौतिक अश 'भोग-तत्व' कहा जाता है । वस्तु के निर्माण मे उसके कलेवर को निर्मित करने के साधन रूप मे लिये गये पदार्थ को 'भोग' कहा जाता है । व्यक्ति अपनी सौन्दर्य चेतना द्वारा ही इस तत्व का अनुभव कर सकता है । सौन्दर्य के अनुभव का वास्तविक आधार यही है । मानव की किसी भी स्थिति मे इसके मूल मे कोई अन्तर नही आता । शिशु के किसी वस्तु के प्रति आकर्षण मे भोग की यही प्रवृति दीख पडती है । सुन्दर वस्तु मे भोग-तत्व के विभिन्न साधनो पर विचार किया गया हे । इनमे सर्वप्रथम साधन रग है ।

रंग द्वारा शिशु की वास्तविक सौन्दर्यवृति प्रेरित होती है । किसी वस्तु के प्रति सौन्दर्य या आकर्षण मे वालको के मन मे जो एक ललक होती है उसके मूल मे रग का मोहक स्वरूप ही है । रग की इस प्रियता मे अवस्था भेद से अन्तर भी आ जाता है । विज्ञान के अनुसार वस्तु से सतत रूप मे निकलने वाली प्रकाश-किरणो द्वारा उसके वर्ण की मोहकता का ज्ञान होता है ।

रग के इस आकर्पण मे भोग-तत्वो के अन्य अवयवो या साधनो की चर्चा भी मिलती है । ज्ञानेन्द्रियो के विभिन्न विषय-ज्ञान मे भी भोग-तत्व की यही प्रधानता है । ध्वनि, स्पर्श, गध, और रस का सम्वन्ध इन ज्ञान-ग्राहको के माध्यम से 'भोग-तत्व' कहा जाता है । चक्षु आदि ज्ञानेन्द्रियो द्वारा विषय के

ज्ञान के साथ उनके उपभोग से ग्रानन्द की प्राप्ति भी होती है। विषय की ग्रनुभूति के सुख से सौन्दर्य की चेतना जागृत होती है। इसे ही साहित्यकार ग्रपनी रचना के माध्यम से व्यञ्जित करता है।

दृश्य रूप 'भोग' तत्व का ग्राधार मानव या मानवेतर सृष्टि कोई भी हो सकती है। यही सौन्दर्य का ग्रनुभव कराता है। प्रकृति मे इसी कारण रग, रूप, स्पर्श, गधादि का ग्राकर्षण होता है। इसी से मनुष्य की सौन्दर्य चेतना तुष्ट होती है। प्रकृति के विभिन्न उपकरण सौन्दर्य के ग्रपरिमित साधन ग्रौर ग्रानन्द के निधान हैं। ग्राकाशादि की नीलिमा में विस्तार ग्रौर ग्रपूर्वता के साथ ही वर्ण, रग ग्रादि की विविधता भी वर्तमान है। वहाँ पर विन्यास का ग्रभाव है, इसी से उसकी सीमा नही है। किसी रूप-रेखा मे बध जाने पर एक सीमा हो जाती है। ग्रत नैसर्गिक शोभा के लिये ग्रावश्यक है कि प्राकृतिक वस्तुग्रो मे विन्यास का ग्रभाव हो। इस ग्रभाव से ही वस्तु का भोग-तत्व रहता है। यदि ग्रभाव समाप्त होकर विन्यास की भूमिका मे प्रविष्ट हो जायगा, तो वह 'भोग-तत्व' कहा जाने का ग्रधिकारी न रह जायगा। क्रमश उसका एक ग्राकार उभरता हुग्रा दीख पडेगा। इसी ग्राकार मे सौन्दर्य का दूसरा तत्व 'रूप' प्रत्यक्ष होने लगता है।

रूप-तत्व––वस्तुग्रो का ग्रविन्यस्त रूप भोग-तत्व कहा गया है। ग्रौद्योगिक जगत के शब्द मे इसे रूप-तत्व का कच्चा माल (Raw-Material) कहेगे। उदाहरण के लिये केवल ई ट किसी भवन के लिये भोग-तत्व मात्र है ग्रौर ई ट, चूना, गारा, मिट्टी, सिमेण्ट ग्रादि के विन्यास से उनका जो ग्राकार निर्मित हो जाता है, उसे 'रूप' तत्व कहेगे ग्रर्थात् भोग-तत्व के समुचित विन्यास मे 'रूप' का ग्राविर्भाव होता है। 'रूप' कोई ग्रलग सत्ता वाला पदार्थ नही है, ग्रपितु भोग्य पदार्थो मे ही वह निहित रहता है ग्रौर उनकी समुचित व्यवस्था से प्रकट हो जाता है।

रूप ग्रौर भोग तत्व–रूप का यह ग्राविर्भाव विभिन्न कलाग्रो मे विभिन्न साधनो से सम्भव है। यह रग, रेखा, गति, ध्वनि ग्रादि मे ग्रपनी साकारता पा लेता है। चित्र मे यह रंग ग्रौर रेखा का ग्राधार ग्रहण करता है, सगीत मे ध्वनि के ग्रारोहावरोह से इसका रूप ग्राविर्भूत होता है। गति के समुचित सचालन से यह नृत्य बनता है तथा शब्द ग्रौर ग्रर्थ के सार्थक विन्यास द्वारा काव्य रूप मे प्रकट हो जाता है। इस प्रकार 'रूप' रेखा, ध्वनि, गति, शब्दार्थ ग्रादि के सगठन से उत्पन्न होता है।

रूप भोग्य पदार्थो मे रहता हुग्रा भी उससे भिन्न है। भोग्य-पदार्थ

मे अनेकता और रूप मे एकता रहती है। इस दृष्टि से रूप अवयवी या अगी और भोग्य-पदार्थ अवयव या अग है। भोग्य-पदार्थ की अनेकता मे रूप की एकता वर्तमान रहती है। भोग्य पदार्थ यदि खण्ड सत्तात्मक है, तो रूप पूर्ण सत्ता वाला। भोग्य-पदार्थों के सम्मिलन से ही 'रूप' आकार ग्रहण करता है। यदि यह मिलन निरर्थक हो, तो उसे 'रूप' नही कहेगे। रूप न तो अवयव विशेष है और न उनका निरर्थक समूह ही है। जैसे शब्दो का सार्थक समूह या विन्यास वाक्य कहा जाता है, उसी प्रकार अवयवो के सार्थक विन्यास मे 'रूप' का आविर्भाव होना है। इस प्रकार अवयवो का व्यवस्थित सघात 'रूप' सज्ञा प्राप्त करता है और अलग-अलग विभिन्न अवयव 'भोग्य-पदार्थ' कहे जाते है। अत 'रूप' व्यापक, अखण्ड सत्ता वाला, अनेक की सार्थक एकता से उत्पन्न सौन्दर्य का एक तत्व-विशेष है। भोग्य पदार्थ की अपेक्षाकृत एक सीमा है, जिसमे विन्यास का अभाव होता है।

इससे स्पष्ट हो गया कि भोग-तत्व का अभिप्राय उस पदाथ से है, जिससे किसी वस्तु के कलेवर का निर्माण होता है। उदाहरणार्थ भवन-निर्माण मे प्रस्तरादि भोग्य-पदार्थ और भवन का आकार 'रूप' है। इसी प्रकार सुन्दर वस्तु के भोग-तत्व मे रगो आदि का महत्व है और इनसे जो आकार बनता है, वह 'रूप' है। इस 'रूप' के सौन्दर्य का ग्राहक सहृदय ही कहा जा सकता है।

मानव की रचनात्मक-प्रकृति नैसर्गिक है। वह रूप का निर्माण करना चाहता है। उसकी यह स्वाभाविक प्रकृति बालको द्वारा खेल मे बनाये गये मिट्टी या ईट के एक विन्यास मे दिखाई पडती है, जिसे वह कुछ समय के लिये घर या किले के 'रूप' मे स्वीकार कर लेता है। बालको का यही स्वभाव बडे होने पर सुधर कर ललित कलाओ मे विकास पाता है। 'रूप' के आविर्भाव का यही कारण है।

मानव की इस रचनात्मक प्रकृति से रूप का आविर्भाव होने मे दो उद्देश्य दीख पडते है —

(१) रूप को अधिकाधिक सुन्दर और स्पष्ट बनाकर उसे जीवन के लिये उपयोगी बनाने की चेष्टा की जाती है।

(२) इस सृजन मे उसे आनन्द मिलता है। रचनात्मक प्रवृत्ति से रूप प्रकट होता है। यही रूप सौन्दर्य का कारण बनता है और सौन्दर्य से आनन्द की अनुभूति होती है।

रूप के इस आविर्भाव मे कलाकार की कल्पना, उसकी मानसिक एव बौद्धिक चेतना उसमे एक गति ला देती है। उसकी स्पन्दनशीलता उसके आह्लाद

का कारण बनती है। इस रूप के निर्माण की मोहकता बहुत कुछ कलाकार की कारयित्री प्रतिभा के ऊपर निर्भर रहती है। सौन्दर्य के अनुसन्धान की प्रतिभा का अभाव होने पर वह एक समर्थ 'रूप' प्रकट नही कर पाता। उसका भोग्य-पदार्थ मात्र साधन होकर रह जाता है।

इन दोनो तत्वो मे भोग्य पदार्थ को साधन बताया गया है, जिससे सौन्दर्य उद्भूत होता है। मानवीय-सौन्दर्य के आधार पर कवियो का नख-शिख भोग-तत्व के अन्तर्गत आ सकता है, क्योकि भोग्य-पदार्थों की सत्ता स्वतन्त्र रूप मे स्वीकार की गई है। नख-शिख वर्णन की एक स्वतत्र सत्ता और स्वीकृति है। नख-शिख वर्णन की इस अनेकता मे एक समष्टिगत एकता 'रूप' की व्यञ्जना होती है। इसकी अभिव्यक्ति के आकर्षण मे ही सौन्दर्य-बोध की महत्ता छिपी रहती है। इसी से कवियो मे सौन्दर्य-चेतना को उद्बुद्ध करने के लिये अग-प्रत्यग अथवा भोग्य पदार्थ के वर्णन की परम्परा रही है। इसे केवल कवि-प्रथा कहकर महत्वहीन नही बनाया जा सकता है, क्योकि इसका एक महत् उद्देश्य है, जिसके द्वारा हमारी आत्म-चेतना परिष्कृत और सत्व-प्रधान होकर सौन्दर्य का उपभोग करने मे सक्षम हो जाती है।

रूप-भेद—बताया जा चुका है कि भोग्य-पदार्थो के समुचित-विन्यास से रूप का आविर्भाव होता है। यह रूप इन पदार्थो मे ही रहता है। यह कोई अलग वस्तु नही है। इस रूप के कई भेद हो जाते है —

(१) **निर्जीव या जड रूप**—पदार्थो का ऐसा सयोजन जिसमे चेतना का अभाव हो, निर्जीव रूप कहा जाता है। इन रूपो मे गति का अभाव होता है। स्थिरता इस रूप का प्रथम लक्षण है। ललित कलाओ मे स्थापत्य, मूर्ति और चित्रकला को स्थिर रूप मे ग्रहण किया जा सकता है। किसी प्रकार की रेखा स्थिरता को बताती है। जहाँ भी किसी आकार का निर्माण होता है, जिसमे चेतनता न हो, उसे निर्जीव रूप कहेगे। इसके अन्तर्गत अचल वस्तुओ की गणना की जायगी। ऐसी वस्तु मानव कृत या प्रकृति-कृत हो सकती है।

(२) रूप का दूसरा भेद **'सजीव रूप'** है। इसमे गत्यात्मकता, चचलता, स्पन्दनशीलता या परिवर्तनशीलता अनिवार्य्य तत्व है। वैज्ञानिको की दृष्टि मे ऐसे सभी पदार्थ जो एक निश्चित नियम मे बँधकर बढते है, शक्ति प्राप्त करते हैं, उन्हे 'सजीव-रूप' मे माना गया है। निरन्तर की परिवर्तन शीलता और विकास या वृद्धि की अवस्था को इसके अन्तर्गत मानते है। इसमे स्पन्दन और गतिशीलता को आवश्यक अग माना गया है। सगीत और नृत्य को इसी सीमा के भीतर मानते है। सगीत मे ध्वनि की गतिमयता और नृत्य

मे अग-सचालन और गति का प्रवाह माना गया है। सभी प्राणी, पशु-पक्षी, वनस्पतियाँ आदि बढती हुई शक्ति सचित करती है।

(३) रूप का तीसरा भेद **'प्रतीक'** कहा गया है। काव्य मे मनोगत भावो की सूक्ष्मता और सौन्दर्य सत्ता का आभास इन्ही प्रतीक-विधानो मे होता है। प्रतीकात्मक रूप मे ग्रहण की गई वस्तु से सूक्ष्म तत्वो का विधान होता है। प्रतीक-विधानो की यह परम्परा काव्य मे सदा से रही है। प्रतीक विधान द्वारा अव्यक्त अनुभूति, विचार या भावो को व्यक्त रूप दे दिया जाता है। यथा कमल को सौन्दर्य का, सिंह को शक्ति का, हाथी को मद का प्रतीक मानते है। इसी प्रकार अन्य भी उदाहरण दिये जा सकते है।

रूप का महत्व अभिव्यक्ति के माध्यम पर निर्भर रहता है। यदि अभिव्यक्ति का ढग आकर्षक न हो तो रूप आनन्द-दायक नही हो पाता। कुछ लोगो ने तो रूप को नगण्य मान लिया है। "काव्य मे फार्म या रूप का महत्व नगण्य है। मेरा तो केवल यह मन्तव्य है कि रूप का कविता मे वह सार्वभौम महत्व नही हो सकता है, जो कि अन्य कलाओ मे प्राप्त होता है।"[1] परन्तु यह विचार समुचित नही जान पडता क्योकि रूप की आधार-शिला पर ही सौन्दर्य के महल का निर्माण होता है। इससे रूप को नगण्य तो माना ही नही जा सकता है। वस्तुत काव्यतत्व ओर अर्थ का अन्योन्य सम्बन्ध 'रूप' की भाव-भगिमा मे प्राण-सचरित करता है। काव्य मे तत्व ही रूप को चेतना प्रदान करता है। रूप के कलेवर मे ही काव्य-तत्व की परिव्याप्ति रहती है। अतः कहा जा सकता है प्रतीक-विधान द्वारा दो कार्यो की सिद्धि होती है। प्रथम यह एक रूपात्मक तथ्य है और द्वितीय प्रतीक उसके रूप मे प्राण-प्रतिष्ठा करने वाला तत्व हो जाता है। इसी से उस प्रतीक से अर्थ का ज्ञापन सम्भव हो पाता है। रूप के ये तीनो ही भेद—जड, सजीव और प्रतीकात्मक—प्राकृतिक और कलात्मक दोनो प्रकार के सौन्दर्य मे पाये जाते है।

रूपानुभूति—बताया जा चुका है कि भोग्य पदार्थो के समुचित विन्यास मे 'रूप' का आविर्भाव होता है जिसे सौन्दर्य के एक माध्यम के रूप मे स्वीकार किया जा सकता है। 'इस दृष्टि से 'रूप' नेत्रो के माध्यम से सौन्दर्य का विकास करने वाला एक तत्व विशेष माना जा सकता है।' इसमे अनुभूति की महत्ता अपरिहार्य है। सर्वप्रथम चक्षुरिन्द्रिय के सम्पर्क से रूप का ज्ञान और तत्पश्चात् भावो के योग से पुन उसकी अनुभूति होने लगती है। इस अनुभूति मे भाव-

---

1 हिन्दी काव्य मे प्रतीकवाद का विकास—पृ० ५८

तत्व की प्रबलता होती है। इसके विकास की तीन अवस्थाएँ स्वीकार की गई है।

(१) **वस्तुगत रूप की अनुभूति**—इसमे अनुभूति कर्ता एक तटस्थ व्यक्ति की भाँति वस्तु के 'भोग्य-पदार्थो' का एक सामूहिक रूप देखता है। वह वस्तु के विभिन्न अगो के सामञ्जस्य को ग्रहण करता है। इसमे उसकी निजी रुचि-अरुचि का किसी प्रकार का मेल नही हो पाता। वह तटस्थ-द्रष्टा की भाँति एक **'बोध'** से अवगत हो जाता है। उसे यह चेतना हो जाती है कि उसने वस्तु को जान लिया है। ज्ञान की यह प्रथम अवस्था है, जिसे तर्क शास्त्र मे 'प्रामाण्यवाद' के नाम से जाना जाता है।

(२) रूप की अनुभूति की इस दूसरी अवस्था मे रूप जन्य मानसिक आनन्द की अनुभूति होती है। इसमे वस्तु के 'भोग्य-पदार्थो' के **सुविन्यस्त रूप के साथ मानवीय भावों का भी सामञ्जस्य** रहता है। इस सीमा मे आकर द्रष्टा तटस्थ नही रह पाता। वह अपनी वृत्तियो के योग से अपनी भावनाओ के अनुकूल 'रूप' मे प्रियता या अप्रियता का सायुज्य उत्पन्न कर देता है। उसकी सौन्दर्यानुभूति सचेष्ट हो जाती है और वह रूप के आस्वादन की ओर उन्मुख होने लगता है।

(३) रूप के प्रति **वासना की अनुभूति** तृतीय सोपान है। मन मे वासना का उद्रेक होते ही शरीर के उपभोग की कामना बलवती हो जाती है। यहाँ रूप की तीव्रता अथवा हलकेपन का ज्ञान उसकी उपयोगिता के आधार पर निश्चित की जाती है। प्रसाद ने इसी आधार पर 'कैसी कडी रूप की ज्वाला' लिखा है। इसमे आनन्द की भावना मे वैषयिक चेतना का प्राधान्य रहता है।

इस सम्बन्ध मे अभिनव गुप्त पादाचार्य का विचार भी दर्शनीय है उन्होने माना है कि नारी सौन्दर्य का वर्द्धक काम-भावना का आधिक्य ही हे। उन्होने वीर्य-विक्षोभन शक्ति को रूप की वास्तविक कसौटी मानी है। आचार्य के मत से, "आँखो मे रमणीय लगने वाला रूप वीर्य-विक्षोभन-जन्य सुख का प्रतीक है। मधुर गीतादि के श्रवणगत होने मे भी यही बात हे। यदि सर्वत्र इसका चमत्कार न हो, तो वह व्यक्ति मनुष्य रूप मे भी जड ही माना जायगा। अधिक चमत्कार का आवेश अर्थात् आनन्दानुभूति मे मग्न होने वाली वीर्य-विक्षोभात्मा ही सहृदयता है।[1] इस विचार से दो बातो का ज्ञान होता है।

---

[1] नयनयोरपि हि रूप तद् वीर्य विक्षोभात्मक महाविसर्ग विश्लेपण युक्त्या एव सुखदायि भवति। श्रवणयोश्च मधुर गीतादि।.... ...सर्वतो हि

प्रथम यह कि **वीर्य-विक्षोभ** के माध्यम से ही विषय-सौन्दर्य का माप हो सकता है और द्वितीय स्थान पर **प्रेक्षक की सहृदयता** का भी अपना एक अलग महत्व होता है।

सौन्दर्य की इस रूपानुभूति मे रस-शास्त्र के आधार पर विचार करने से स्पष्ट हो जाता है कि इस अनुभूति मे **विस्मय, आनन्द और रति** की पृथक अथवा सम्मिलित अनुभूति होती रहती है। इसी अनुभूति के आधार पर वस्तु या व्यक्ति के रूप-जन्य सौन्दर्य मे अन्तर आता रहता है। सुन्दरता रूप के तत्वो पर निर्भर रहती है। यह उसके विन्यास से आविर्भूत हो जाती है। अत रूप के तत्व ही मानवीय चेतना के सम्पर्क से सुविन्यस्त होकर सुन्दर बन जाते है। इसके अनेक गुणो की चर्चा हुई है।

रूप तत्व के गुण—आधुनिक सौन्दर्य-शास्त्र ने रूप-तत्व के चार गुणो की चर्चा की है। इन्हे क्रमश सापेक्षता, समता, सगति और सन्तुलन कहते है।

सापेक्षता (Proportion)—इसमे भौतिक पदार्थो को अनुकूल ढग से सजाया जाता है। प्रत्येक अग का सम्पूर्ण के समक्ष एक विशिष्ट स्थान होता है। कला के प्रत्येक खण्ड की महत्ता अगी के निर्माण मे होती है। इसमे किसी वस्तु का प्रत्येक खण्ड एक दूसरे से निरपेक्ष और असम्बद्ध न रहकर सापेक्ष और सम्बद्ध रहता है। यदि विभिन्न अवयवो को केवल एकत्र कर दे, तो इससे रूप की योजना नही हो पाती, उसे तो केवल भोग्य-पदार्थ ही कहा जायगा। इससे स्पष्ट है कि अवयवो के समूह से 'रूप' की उत्पत्ति नही होती, अपितु एक विशेष योजना द्वारा विभिन्न अगो के सयोजन से ही ऐसा सम्भव है। 'विभिन्न अवयवो की खण्डता मे उनका जो एक उचित स्थान सयोजन के समय प्राप्त हो जाता है–अर्थात् उनकी विभिन्नता द्वारा जो एक समग्रता उत्पन्न हो जाती है, उसे ही सापेक्षता कहते है।' यहाँ पर प्रत्येक खण्ड एक दूसरे पर निर्भर रह कर रूप का आविर्भाव करते है।

समग्र मे अवयवो का यह उचित सयोजन सजीवता उत्पन्न कर देता है। इससे उत्पन्न होने वाले चमत्कार से माधुर्य का उद्भव होता है। इसी **माधुर्य और अंगो की सापेक्षता से किसी युवती का सुन्दरी नाम सार्थक होता है।** उसे हम लावण्यमयी कहने लग जाते है। प्रत्येक रूपवान् पदार्थ मे अगो की सापेक्षता उस अगी के निर्माण मे सजीव, व्यापक और सक्रिय होती है।

अचमत्कारे जडतैव। अधिक चमत्कारावेश एव वीर्य विक्षोभात्मा सहृदयता उच्यते। अभिनव गुप्त, परात्रिंशिका, पृ० ४७–४८

समता (Symmetry)—समता के लिये किसी एक विन्दु को आधार बनाकर उसके चतुर्दिक सापेक्ष खण्डो की पुनरावृत्ति की जाती है। उदाहरणार्थ शरीर के प्रत्येक अग मे एक दूसरे की अपेक्षा रहती है। आकार की समता का वडा महत्व होता है। शरीर की लम्बाई-चौडाई के अनुसार ही सिर, बाहु, पैर आदि की सानुपातिक समता होनी चाहिए। यदि कोई अवयव दूसरे की तुलना मे बहुत वडा या छोटा हो, तो सुन्दर नही प्रतीत होगा। उसका वडापन या छोटापन समतानुसार ही होना चाहिये। सुन्दर वस्तु या शरीर मे एक प्रकार की दो वस्तुएँ एक ही समान होनी चाहिए दोनो एक दूसरे की प्रतिरूप हो, तभी वे 'सम' हो सकेगी। उदाहरण के लिये यदि एक आँख छोटी और दूसरी वडी हो, तो शरीर 'समता' के अभाव मे सुन्दर नही कहा जा सकता है। अत स्पष्ट हो जाता है कि 'अवयव अपने अवयवी के साथ किसी विन्दु से सानुपातिक योजनानुसार बनाये जाने पर 'सापेक्षता और 'समता' गुण से युक्त होकर वस्तु को सुन्दर बना देता है।'

सगति (Harmony)—सगति के द्वारा रूप मे **विरोध का शमन** होता है। इसमे अनेक मे एकता उत्पन्न हो जाती है। इसे रूप का अनिवार्य गुण कहा जायगा, क्योकि अन्य सभी गुण इसी के अन्तर्गत आ जाते है। रूप के संग सगति भी रहती है। काव्य मे रूप तत्व का आविर्भाव रस-परिपाक से होता है। किसी एक रस को प्रमुख मानकर अन्य सहायक रसो का योग उस मुख्य रस के परिपाक मे और सौन्दर्य ला देता है। विभिन्न रसो की इस सगति से काव्य मे 'रूप' का आविर्भाव होता है। यदि रूप का अभाव हो, तो काव्य-रस मे सगति न वन सकेगी, रस-परिपाक होना तो दूर की बात है। अत विभिन्न अवयवो के समन्वय से ही 'रूप' का निर्माण होता है तथा रूप से रस-परिपाक और सौन्दर्य की अनुभूति होती है। सगति के अभाव मे रूप कुरूप हो जाता है। काव्य मे शब्द और अर्थ की सगति से भाव का रूप उपस्थित होता है। स्वरो की सगति से सगीत मे वैचित्र्य आता है। रेखाओ की सगति चित्र मे चमत्कार उत्पन्न करती है। इस प्रकार सगति की महत्ता किसी भी कला के सौन्दर्योत्पादन मे सहायक हो जाती है।

सन्तुलन (Balance)—रूप तत्व का चौथा गुण सन्तुलन है 'अनेक तत्व जव एक योजना मे आवद्ध होकर एक दूसरे को क्षति न पहुँचाते हुए सौन्दर्योत्पत्ति के कारण होते है, तो वही पर सन्तुलन होता है।' मानसिक भावनाओ को कलाकार काव्यादि द्वारा रूप' प्रदान करता है। यथार्थ जगत की प्रतिकूल भावनाएँ जव 'रूप' धारण कर अनेक अगो के विन्यास एवं सचारी

भावो का समर्थन प्राप्त कर लेती है, तो अन्य तत्वो की योजना मे जो नियम लगता है, वही सन्तुलन कहा जाता है।

इस पर विचार करते हुए 'व्हाइटहैट नामक दार्शनिक कहता है कि जब अनेक तत्व किसी योजना मे इस प्रकार सघटित हो कि एक दूसरे का विघात न करके वे परस्पर गौरव और प्रभाव की वृद्धि करे, एक स्वर दूसरे स्वर का, एक भावना, अलकार, घटना, रग, रेखा और कथन आदि[1] दूसरे के प्रभाव की वृद्धि करे, तो इससे एक सन्तुलित रूप का उदय होता है। सन्तुलन के 'रूप' का अवयव अपने प्रधान भाव के अन्तर्गत उसकी रक्षा और सवर्द्धन करता है।

काव्य मे भाषा और भाव का सन्तुलन सृजन का सौन्दर्य उत्पन्न करता है। शब्द और अर्थ का समन्वय, अर्थ की परस्पर सम्वद्धता या सगति, सन्तुलन, सापेक्षता से उसका सौन्दर्य और वढ जाता है। यही कारण है कि यदि किसी शब्द का स्वतन्त्र अर्थ ग्रहण किया जाय, तो अन्य शब्दो की सगति के अभाव मे वह सौन्दर्य उत्पन्न नही हो पाता है, जो उन सवके एक समुचित मिश्रण, सन्तुलन, सगति आदि से होता है। विषयगत सौन्दर्य की दृष्टि से सापेक्षता, सगति, सन्तुलन, समता, सानुपातता आदि एक ऐसे पूर्णत्व का बोध कराते है, जिससे सौन्दर्य का आविर्भाव होता है। इसी सौन्दर्य की अभिव्यक्ति काव्यो मे हुई है, जो 'रूप' का आधार लेकर अग्रसर होता है।

काव्य मे रूप काव्य मे रूप का अर्थ उसकी शब्द गत सत्ता और छन्दात्मक आकार से है।[2] कवि द्वारा काव्य मे अभिव्यक्त विचार या अनुभव अपनी शैली मे काव्य-कृति के रूप है।[3] प्रत्येक काव्य-कृति की अपनी विशेषता, निजी आकार या बाह्य रूप उसे अन्य काव्य-कृति से पृथक कर देता है। कृति का यह बाह्य ढाचा जो हमारी मनश्चक्षुओ के सम्मुख नाम-मात्र से स्पष्ट हो

---

1 सौन्दर्य-शास्त्र डा० हरद्वारीलाल पृ० ७४ से उद्धृत

2 The commonest meaning of form in poetry is perhaps that of metrical pattern or form Encychlopedia Brittania–Volume IX Page 95

3 These thoughts and experiences which are put in different ways in different poems of the poet, we call that particular way their form or 'Poetical Form' From the style in Poetry. W. P, Ker Page 97

जाता है, वही उसका रूप है। रूप ही कला का वाह्य-तत्व है, जिससे हमारी चेतन-वृत्ति जागृत होती है। इसी से वह इन्द्रियो का विषय वनता है। रूप के अभाव मे कला का निर्माण असम्भव हो जाता है।

काव्य-रूप का अभिप्राय काव्य विशेष के उस समस्त बाह्याकार से है, जिसका सृजन कवि अपने अनुभवो के साहाय्य से अनेक अथवा एक ही छद के माध्यम द्वारा करता है। यहाँ काव्य-रूप के निर्माण मे छदो का विशेष योग रहा है। कवि द्वारा निर्मित यह समस्त आकार, जो काव्यगत है, काव्य-रूप सज्ञा का अधिकारी है। इन काव्य-रूपो मे अपनी एक निजी विशेषता होती है, जिससे वे विशेष कवियो की कृति के परिचायक हो जाते है। एक उदाहरण द्वारा यह स्पष्ट हो जायगा --

कृष्ण की रस-सिक्त-मधुर लीला के गायको मे विद्यापति, सूरदास और मीराबाई विशेप प्रसिद्ध है। इन तीनो ने पद-शैली को अपनी अनुभूति की अभिव्यक्ति का माध्यम वनाया है। इनके पदो के अध्ययन से इनके रचयिता के व्यक्तित्व का ज्ञान हो जाता है। इसका कारण यह है कि इन तीनो के ही काव्य-कृति के रूप मे अन्तर है, जिससे वे पहचान लिये जाते है। इनका अलग-अलग काव्य रूप या आकार है। इसी से तीनो के वर्ण्य-वस्तु और आलम्बन के एक रहते हुए भी उनमे काव्य रूप गत भिन्नता है, भिन्नता का यह 'रूप' उनका नितान्त अपना और निजी है। समता मे भिन्नता दीख पडने का यही कारण है। सच तो यह है कि प्रत्येक कवि का अपना काव्य-रूप ही काव्य-सृजन मे योगदान देता हुआ कवि के काव्य के विभिन्न तत्वो और उसके अनुभवो की एकाग्रता की रक्षा करता है। इस प्रकार कोई भी कला कवि द्वारा 'रूप' प्राप्त करके ही सफल होती है। अत काव्य-कृति मे रूप का अभिप्राय ऐसी शब्द-अर्थ-मयी रचना से है, जिससे कवि का सौन्दर्य-बोध पाठक या दर्शक के लिये प्रेषणीय बन जाता है।' इसी विचार का समर्थन किया गया है कि काव्य-कृति के रूप से तात्पर्य उसके उस निश्चित आकार अथवा रूप रेखा का है, जिसके अन्तर्गत एक नियमित विधान अथवा पद्धति के अनुसार शब्दो के माध्यम से कवि की अनुभूति पाठक तक प्रेषणा पाती है। रूप-निर्माण की ये पद्धतियाँ विषय और आवश्यकता के अनुकूल भिन्न हो सकती है।'[1]

प्रत्येक कला किसी न किसी रूप की रचना है। इससे रूप मे एक वैचित्र्य आ जाता है। इसमे निहित सौन्दर्य प्रकट हो जाता है। इस प्रकार

---

1 आधुनिक हिन्दी काव्य मे रूप-विधाएँ--डा० निर्मला जैन पृ० ४

कलाओ द्वारा रूप के सौन्दर्य का सृजन होता है। यह सृजन मानव मन की प्रियता और सौन्दर्यानुराग का बोधक है। इसके अतिरिक्त मानवेत्तर सत्ता व रूप भी किसी चेतन तत्व की कला का सृजन है। उस सृजन मे महानता के सौन्दर्य का बोध आकाश, पर्वत, नदी, वन, वृक्षादि के रूप मे होता है। इनकी एक स्वतत्र सत्ता है और उसमे सौन्दर्य का एक अमानवीय तत्व है। इसे प्राकृतिक-सौन्दर्य की सज्ञा दी जायेगी।

सौन्दर्य प्राकृतिक, मानवीय या कलात्मक कोई भी क्यो न हो, उसे वस्तु के गुण के रूप मे स्वीकार किया गया है। यही गुण मानसिक प्रत्यक्षता प्राप्त कर सौन्दर्य हो जाता है। इसकी अनुभूति से ही आनन्द प्राप्त होना है। चक्षुरिन्द्रिय के अतिरिक्त अन्य इन्द्रियो के विपय रस, गन्धादि अनुभवगत है, परन्तु सौन्दर्य बोव के साथ वस्तु का गुण है। सौन्दर्य की अनुभूति मे 'आनन्द' है। इस प्रकार रूप की आधार शिला पर सौन्दर्य की कलात्मक अथवा भावात्मक अभिव्यञ्जना होती है तथा सौन्दर्यानुभूति आनन्द का कारण है। अत इन तीनो–रूप, सौन्दर्यानुभूति और आनन्द– के सम्बन्ध मे उत्तरोत्तर एकता और परस्परता बनी रहती है।

'रूप' समस्त कलाओ का आधार है। शरीर-रचना मे रीढ का जो स्थान है, कलाओ मे वही रूप का है। साहित्य मे अर्थ का अपना एक रूप होता है, जो विभिन्न साहित्यिक मूर्तियो या विधाओ के रूप मे जानी जाती है। ये विधाएँ ही अर्थ के व्यक्त रूप है। साहित्य मे रूप के इसी सौन्दर्य का बडा महत्व है। एक उदाहरण द्वारा यह स्पष्ट हो जायगा।

नैयायिको ने वस्तु मे सकेतित अर्थ के चार भेद (जाति, गुण, क्रिया और यदृक्षा) माने है।[1] महाभाष्यकार ने भी इन भेदो का समर्थन किया है।[2] परन्तु मीमासक मत मे 'जाति' रूप केवल एक प्रकार का ही सकेतित अर्थ होता है। यह जाति मनुष्य मे मनुष्यत्व है। इसी प्रकार तथाकथित सुन्दर वस्तुओ मे सौन्दर्य एक जाति-विशेष ही है। यहाँ पर एक दूसरा प्रश्न यह उठ सकता है कि ऐसी स्थिति मे इस सौन्दर्य का अधिष्ठान किसमे माने ? यह एक विवादास्पद प्रश्न है। उदाहरण के लिए एक पुष्प मे पुष्पत्व क्या है ? वह

---

1 सकेतितश्चतुर्भेदो जात्यादिजातिरेव वा। काव्य प्रकाश २/८ पृ० ४३ ज्ञान-मण्डल लिमिटेड, वाराणसी। व्याख्याकार–आचाय विश्वेश्वर

2 चतुष्टयी च शब्दाना प्रवृत्ति जातिशब्दा, गुणशब्दा, क्रियाशब्दाः यदृक्षाशब्दाश्चतुर्था। महाभाष्यकार। काव्य-प्रकाश से उद्धृत।

पखुडियो का सश्लिष्ट रूप है, उसका रग है या कोमलता है, या सौरभ है ? इस प्रश्न के उत्तर मे मतैक्य नही रहेगा। यदि पखुडियो को विखेर दे, तो वह 'पुष्पत्व' रहेगा या नही ? ऐसा करने से उसके 'रूप' मे भी अन्तर आ जाता है। अत. स्पष्ट है कि पखुडियो के समुचित विधान मे एक ऐसे 'रूप' का निर्माण हो जाता है, जिसे सौन्दर्य की आधार-शिला कह सकते हैं। इसमे सापेक्षता, सतुलन, समता आदि का एक ऐसा सघात है, जिसका विवेचन सौन्दर्य-शास्त्र की परिधि मे आता है। इन सभी तत्वो की गणना विषयगत सौन्दर्य के अन्तर्गत होती है। इन सवका समन्वित रूप अपनी पूर्णता मे पर्य-वसित होकर 'सौन्दर्योत्पत्ति' का कारण वन जाता है। इसी से यह आनन्द का जनक हो जाता है। यहाँ 'रूप' का अर्थ और तत्सम्वन्धी धारणा का स्पष्टीकरण हो जाना चाहिए।

रूप का अर्थ—

उज्ज्वल नील मणिकार ने 'रूप' की व्याख्या करते हुए कहा है कि 'किसी भूषणादिक द्वारा भूषित न होने पर भी जिसके द्वारा भूषणवत् कान्ति हो जाती है, उसे 'रूप' कहते है।[1] इस व्याख्या मे रूप-निर्धारण के लिये उसके आवश्यक गुणो मे कान्ति उत्पन्न करने वाले गुण का समर्थन किया गया है। वस्तु के 'रूप' मे उत्पन्न होने वाली भास्वरता अधिक महत्वपूर्ण होती है। इसी से उसकी 'रूप' सज्ञा सार्थक होती है। इस दृष्टि से आकार मे रहने वाली छवि या प्रकाश को रूप कहेगे। यह 'रूप' वर्ण और कान्ति से आच्छादित वाह्य आवरण का विन्यास है। 'रूप' वस्तु का वह गुण है, जिसका ग्रहण चक्षु द्वारा देखकर ही होता है। इससे रूप मे चाक्षुष वोध का महत्वपूर्ण स्थान है। इसके अभाव मे 'रूप' मे वर्तमान कान्ति या भास्वरता का ज्ञान नही हो पाता। इससे 'रूप' को आकार की चाक्षुष प्रतीति कहेगे। आकार मे अवयवो के उचित सस्थान से उत्पन्न अवरोधी और समन्वित प्रभाव 'रूप' सज्ञा को धारण कर लेता है।

रीति कालीन कवि देव ने 'रूप' की व्याख्या मे 'सुख' को प्रमुख तत्व माना है। उनका विचार है कि 'रूप' दर्शन मात्र से मन को हर लेने वाला, आँखो को सुख देने वाला और ससार को चेरा वना लेने वाला होता है।[2] इस

---

[1] अङ्गान्यभूषितान्येव केनचिद् भूपणादिना।
येन भूपितवद् भाति तद्रूपमिति कथ्यते।

[2] देखत ही जो मन हरै, सुख अखियन को देइ।
रूप वखानै ताहि को जग चेरो कर लेइ। रस-विलास—देव.

व्याख्या मे रूप के तीन गुणो को आवश्यक माना गया है। (१) रूप द्वारा मन को हरण कर लेने मे रूप की शक्ति और उसके प्रभाव की व्यञ्जना की गई है। यह रूप की भावात्मक व्याख्या है। (२) रूप की सुखद शक्ति द्वारा आनन्द का उपस्थापन किया गया है। सुख आँखो के माध्यम से मिलता है। इसमे चक्षु 'रूप के वाहक हुए। यह रूप आकार का आधार लेकर ही स्थित रहता है। इससे रूप द्वारा आकार मे स्थित गुण का ही बोध होता है। (३) रूप के मोहक गुण को बताते हुए इसकी मोहकता का विस्तार और प्रभाव सम्पूर्ण जग मे बताया गया है। इन तीनो गुणो द्वारा रूप की आकारगत सत्ता और उसके आन्तरिक प्रभाव की व्यञ्जना की गई है। इससे स्पष्ट है कि रूप की एक सत्ता और स्थिति होती है, जिसके बाह्य एव आन्तरिक प्रभावो द्वारा चक्षुओ की तृप्ति एव मन मे प्रसन्नता की अनुभूति होती है। इस दृष्टि से 'रूप' केवल बाह्य आकार का बोधक मात्र न रहकर लावण्य-जन्य सौन्दर्य की अनुभूति कराने से आनन्द का कारण बन जाता है। यह बाह्य तुष्टि एव आत्म-तृप्ति दोनो का ही साधन है। इस व्याख्या के आधार पर रूप के स्वरूप-निरूपण मे दो प्रकार की मान्यताएँ दीख पडती है—

(१) **रूप की सामान्य धारणा**—नेत्रेन्द्रिय के सन्निकर्ष से दीख पडने वाला वस्तु का आकार 'रूप' कहा जाता है। रूप का यह सामान्य एव व्यावहारिक अर्थ है। इस अर्थ की परिधि मे कोई भी भौतिक सत्ता युक्त पदार्थ मानसिक भाव या तत्वादि किसी माध्यम के द्वारा प्रकट होकर 'रूप' संज्ञा को धारण करते है। यही रूप बोल-चाल मे 'सौन्दर्य' का पर्याय बनकर प्रयुक्त होता है।

(२) **रूप की विशेष धारणा**—इस धारणा के अनुसार रूप मे विभिन्न अवयवो के सगठन और सुविन्यास से अनेकता मे एकता उपस्थित होने पर दिखाई पडने वाले आकार को 'रूप' कहते है। इसमे विन्यास एव दृश्य रूप की महत्ता स्वीकृत है। अत किसी भी जीवधारी चेतन प्राणी या जड पदार्थ का दृश्य बाह्याकार ही रूप है। सुविन्यस्त तत्वो द्वारा निर्मित बाह्याकार के रूप मे गृहीत इस 'रूप' की परिधि काव्यात्मक कृतियो तक ही सीमित न रहकर वस्तु, चित्र, सगीत आदि सभी विधाओ को अपने मे समाविष्ट कर लेती है। इन्ही विभिन्न विधाओ मे दृश्य या चाक्षुप रूपो मे अभिव्यक्ति के माध्यम द्वारा सौन्दर्य का आविर्भाव होता है। इसी से भ्रम-वश 'रूप' और 'सौन्दर्य' को पर्याय मानने की परम्परा है।

उपर्युक्त दोनो शब्दो को पर्याय मानने की यह परम्परा लोक-व्यवहार

और सस्कृत साहित्य मे है। लोक व्यवहार मे किसी सुन्दरी को रूपवती कहते है। सस्कृत मे 'रूप' शब्द 'सौन्दर्य' के पर्याय रूप मे प्रयुक्त हुआ है। कालिदास ने अनेक स्थलो पर इस शब्द का प्रयोग 'सौन्दर्य' अर्थ मे किया है। शिव को आकृष्ट न कर सकने के कारण पार्वती ने अपने 'रूप' की निन्दा की है।[1] शकुन्तला के सौन्दर्य वर्णन मे कालिदास ने कहा है कि ऐसा लगता है मानो विधाता ने विश्व के समस्त रूप के सचय द्वारा शकुन्तला के सौन्दर्य की रचना की है।[2] इन दोनो ही स्थलो पर 'रूप' द्वारा सौन्दर्य का ही अर्थ व्यक्त किया गया है। इसी रूप शब्द मे सौन्दर्य का तत्व निहित रहता है। इस दृष्टि से रूप और सौन्दर्य समानार्थक शब्द है। इस अर्थ मे रूप के प्रयोग की सीमा है। सभी रूपो को सौन्दर्य नही कहा जाता है, अपितु प्राकृतिक पदार्थो और मानवीय आकार तक ही इस 'रूप' शब्द का प्रयोग 'सौन्दय' के पर्याय मे होता है। इस 'रूप' मे आकर्षण का कारण अवयवो के उचित सश्लेषण से उत्पन्न उनका सौन्दर्य है। रूप वस्तुगत आकार या छवि है तो सौन्दर्य उस रूप की छवि या लावण्य है। इस लावण्य की अनुभूति इन्द्रियो की सवेदना से होती है।

'रूप' तत्वो से निर्मित आकार ग्रहण करने वाला कोई भौतिक पदार्थ या मानसिक भावादि है। पदार्थ के तत्व अभिव्यक्त होकर ही 'रूप' कहे जा सकते हैं। यह अभिव्यक्ति ऐन्द्रिय, इन्द्रियो से ग्रहणीय या मानसिक भी हो सकती है। इससे सभी प्रकार की सूक्ष्म या स्थूल सत्ताएँ अभिव्यक्त होती है। इससे 'रूप' को वस्तु के तत्व की अभिव्यक्ति मानेगे। अभिव्यक्त होने पर ही वस्तु मे एक ऐसा गुण उत्पन्न हो जाता है जिससे 'रूप' की चाक्षुष प्रतीति होने लगती है। सौन्दर्य मे इसी चाक्षुष रूप की महत्ता रहती है। जहाँ इस 'रूप' की अधिकता होगी, वही सौन्दर्य लक्षित होगा। नारी के मासल और वर्तुलाकार अगो मे 'रूप' की चाक्षुष प्रतीति अधिक होने से यह सुन्दर दीख पडती है। आकार के उचित संगठन और अगो के विस्तार मे स्त्री का सौन्दर्य आकर्षक प्रतीत होता है। वक्ष, नितम्ब, जघन आदि के सौन्दर्य का यही रहस्य है।

'रूप' शब्द अगरेजी के 'फार्म' शब्द का समानार्थक है। अभिव्यक्त होने पर समस्त रूपो को 'फार्म' कहा जा सकता है। तत्वो के सश्लेषण से आकार रूप मे अभिव्यक्त होने वाला 'रूप' नेत्रो द्वारा ग्रहण किया जा सकता है आकार से वस्तु की रूप-रेखा प्रकट हो जाती है। डा० रामानन्द तिवारी के अनुसार

---

1 निनिन्द रूप हृदयेन पार्वती, प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता। कु स, ५/१

2 रूपोच्चयेन विधिना मनसा कृतानु। अभिज्ञान शाकुन्तलम्। अक २

'रूप' एक प्रकार का अतिशय है। वस्तु मे तत्वो के अतिशय की बाह्य अभिव्यक्ति 'रूप' है। वर्ण, कान्ति आदि इस आकार के अन्तर्गत रूप (फार्म) के अन्य अतिशय है।[1] विभिन्न कलाओ मे यह 'रूप' भिन्न प्रकार से व्यक्त होता है। भौतिक वस्तु के देह के समान कुछ रूपो मे विशेष रूप द्वारा सौन्दर्य की स्थापना होती है। ऐसे ही स्थलो पर 'रूप' शब्द 'सौन्दर्य' का पर्याय हो जाता है, परन्तु अग्रेजी के 'फार्म' शब्द से अभिव्यक्त होने वाले सभी पदार्थो मे सौन्दर्य नही होता। इस शब्द द्वारा भौतिक सत्ता से युक्त वस्तुओ का ही बोध होता है। यदि फार्म या रूप मात्र को सुन्दर कहे तो कई बाधाएँ उपस्थित हो सकती है —

(१) रूप मात्र को सुन्दर मानने से रूप का आधार लेकर होने वाली सम्पूर्ण अभिव्यक्तियाँ सुन्दर हो जॉयगी, परन्तु व्यवहार मे अभिव्यक्त होने पर भी अनेक रूप सुन्दर नही होते।

(२) दूसरी बाधा यह है कि सौन्दर्य के पर्याय मे 'रूप' द्वारा मानवीय सौन्दर्य का ही बोध होता है। इस बोध मे सौन्दर्य की सीमा मानुषी आकृतियो तक ही रहती है। इससे इस शब्द के प्रयोग मे व्यापकता और विस्तार का अभाव हो जाता है।

(३) चक्षु से प्रतीत होने वाले रूपो की 'आकार' सज्ञा है। यह आकार वस्तु के तत्वो का एक भौतिक चाक्षुप सश्लेषण है। इसकी सीमा उसकी रेखाओ मे रहती है और केवल रेखा द्वारा सौन्दर्य की अनुभूति नही हो सकती है। यदि ऐसा सम्भव भी हो जाय तो सगीत के श्रव्य रूप या ध्वनि के आकार का प्रश्न उपस्थित हो जायगा। अत इन सभी बाधाओ की शान्ति के लिये 'रूप' का अर्थ मानवीय शरीर मे वर्ण और कान्ति से युक्त उसके बाह्य आवरण का समुचित विन्यास कहा जा सकता है।

सौन्दर्य के अर्थ को व्यक्त करने वाला यह 'रूप' शब्द काव्य और व्यवहार दोनो स्थलो पर प्रयुक्त होता है। इस शब्द द्वारा मनुष्यो मे भी विशेषत स्त्री सौन्दर्य का ही ध्यान रखा जाता है। स्त्रियो के 'रूप वर्णन' मे शोभा कान्ति आदि जिन अलकारो की चर्चा की गई है, वे सभी रूप के ही अलक्ष पक्ष है।[2] इन अलकारो की स्थिति स्त्रियो मे होने से रूप एव सौन्दर्य का

---

1 सत्य शिव सुन्दरम् पृ० ८४१–८४२

2 शोभा कान्तिश्च दीप्तिश्च माधुर्यं च प्रगल्भता।
औदार्यधैर्यमित्येते सप्तभावा अयत्नजा। दशरूपक–द्वितीय प्रकाश।

सञ्चित कोष इन्ही मे अधिक होता है। इसी से इनका 'सुन्दरी' नाम सार्थक होता है।

'रूप' का सौन्दर्य अर्थ मे जो प्रयोग हुआ है उससे मानवीय एव कलात्मक दोनो ही प्रकार के सौन्दर्य की अभिव्यक्ति हो जाती है। रूप के आधार पर कलात्मक सौन्दर्य अभिव्यक्त होता है। इससे स्पष्ट है कि अभिव्यक्ति 'रूप' का आवश्यक अग है। अभिव्यक्ति 'रूप' के स्पष्ट होने का माध्यम है। इसके द्वारा सत्ता का आविर्भाव होता है। 'रूप' सत्ता की समुचित व्यवस्था से स्वय आविर्भूत हो जाता है। यही रूप वर्ण, कान्ति, छबि आदि से युक्त होकर सौन्दर्य बन जाता है। कला की परिधि मे अभिव्यक्ति की नवीनता धारण करके यह रूप 'सौन्दर्य' कहा जाता है। सौन्दर्य रूप की अतिशयता से युक्त कान्ति आकार, शोभा, आदि आकर्षक गुणो का पु ज है। रूप की समुचित रचना ही सौन्दर्य की अनुभूति कराती है। इससे समस्त रूप ही सौन्दर्य का कारण है तथा सौन्दर्य उसका कार्य है। किसी वस्तु मे तत्वो की आन्तरिक अभिव्यक्ति 'भाव और बाह्य अभिव्यक्ति 'रूप' है और इसकी नवीन रूपो मे अभिव्यक्ति सौन्दर्य की सृष्टि है। सौन्दर्य की सृष्टि करने वाली रूप की यह रचना ही उसकी कलात्मक सौन्दर्याभिव्यक्ति है। इस विचार से रूप और सौन्दर्य मे पूर्वापर सम्बन्ध है।

इस रूप की कलात्मक अभिव्यक्ति से सौन्दर्य का आविर्भाव होता है। अभिव्यक्ति की न्यूनता सौन्दर्यानुभूति मे अवरोध उपस्थित करती है। इस अभिव्यक्ति के कलात्मक अतिशय द्वारा सौन्दर्य का पूर्ण उपभोग हो सकता है। यह अभिव्यक्ति भावो का आधार ग्रहण करके केवल बाह्य सत्ता मात्र की ही प्रकाशिका नही होती, अपितु इसके द्वारा भावो की आन्तरिक चेतना का भी प्रकाशन होता है। इसी अभिव्यक्ति के माध्यम से 'रूप' सौन्दर्य का विधायक बनता है। अत कलात्मक सौन्दर्य रूप का ही अभिव्यक्तिगत सौन्दर्य है।

'रूप' सौन्दर्य की आधार शिला है। 'रूप' के अभाव मे सौन्दर्य टिक ही नही सकता है। रूप आधार है, सौन्दर्य आधेय। 'रूप' मे तत्वो के सानुपातिक सगठन के परिणामस्वरूप वस्तु मे सुडौलता और आकर्षण की पर्याप्त मात्रा रहती है। आकर्षण से नेत्रो को सुख एव विश्राम मिलता है। इसी कारण मानव इसकी योजना का प्रयास करता है। इसी प्रयास से उसे वस्तु मे सौन्दर्य की अनुभूति होने लग जाती है। 'रूप' के इस प्रयास के प्रति आकर्षण का भावात्मक खिचाव न हो, तो सौन्दर्य की अनुभूति नही हो सकती है। अत. 'रूप' मे तत्वो की आकर्षक योजना और भावात्मक प्रियता से सौन्दर्य की अनुभूति हो सकती है। यह योजना जितनी ही कलात्मक ढग से होगी, सौन्दर्यानुभव भी उतना ही तीव्र और चरम कोटि का होगा।

अत 'रूप' सौन्दर्य का आधार है। 'रूप' वाह्य तत्व और 'सौन्दर्य' उस रूप की आन्तरिक प्रियताजन्य अनुभूति है। हमारी अन्तर्वृत्तियाँ आकार को देखकर जब आनन्द की अनुभूति करने लग जाती है तो अपने मानसिक परिष्कार के अनुकूल ही उस वस्तु मे सौन्दर्य का ज्ञान होने लग जाता है। इस दृष्टि से 'रूप' सौन्दर्य का उपादान कहा जा सकता है। वस्तु के वाह्य तत्व के अभाव मे सौन्दर्य की रूपात्मक कल्पना कठिन हो जाती है। आकार मूलक वस्तु का वाह्य तत्व सौन्दर्यानुभूति का निमित्त तत्व है और उससे उत्पन्न आनन्दानुभूति उसका साध्य है, जो सौन्दर्यमूलक होता है। 'तत्व ही अभिव्यक्त होकर 'रूप' कहा जाता है और रूप मे आकर्षण, कान्ति, शोभा, लावण्यादि के अतिशय से सौन्दर्य की अनुभूति होती है। आनन्द की प्राप्ति मे 'रूप' उसका प्रथम तत्व और सौन्दर्यानुभूति द्वितीय तत्व है। इन दोनो मे पूर्वापर सम्बन्ध है। दोनो एक दूसरे पर अवलम्बित है।' 'रूप' का समुचित प्रकाशन ही सौन्दर्य है। 'रूप' की सार्थकता इसी सौन्दर्य के अकन मे है। कोई भी प्रकाशन की कला से सौन्दर्य वन जाता है। इसी से क्रिया विदग्धा और वचन विदग्धा नायिकाओ की क्रियाओ और वचनो मे प्रकाशन का आकर्षक और मोहक सौन्दर्य रहता है। हिन्दी के रीतिकालीन साहित्य मे इस प्रकार का सौन्दर्य स्थान-स्थान पर वर्णित है। इस प्रकार की अभिव्यक्तियो द्वारा वस्तु या भावो की सत्ता और स्थिति का ज्ञान होता है। इन अभिव्यक्तियो से स्थूल एव सूक्ष्म दोनो प्रकार की सत्ताएँ ग्रहणीय वन जाती है। इससे 'रूप' सौन्दर्य की अभिव्यक्ति का आधार है और 'सौन्दर्य' रूप के आधिक्य का पूँजीभूत प्रिय आनन्द मूलक अनुभूति है। इन दोनो मे इस सूक्ष्म अन्तर के होते हुए भी काव्य और लोक व्यवहार मे इन दोनो को समानार्थक मानने की परम्परा है।

रूप और लावण्य—भोग्य पदार्थ के समुचित विन्यास मे 'रूप' का आविर्भाव होता है। किसी वस्तु के विभिन्न अगो के सुव्यवस्थित ढग से रखने मे उसका जो आकार वन जाता है, वही 'रूप' कहा जाता है। इस 'रूप' मे रहने वाले मोहक तत्व को 'लावण्य' कह सकते है। जैसे मोती मे वर्तमान उसकी आब या कान्ति उसके मूल्य को बढाकर दर्शन—सुखद बना देती है और अपनी स्वतत्र सत्ता भी रख सकने मे समर्थ होती है उसी प्रकार विभिन्न अवयवो से निर्मित शरीर के रूप तत्व मे आश्रित रहने वाला लावण्य स्वतत्र सत्ता वाला होता है। वह न तो शरीर है न कोई विशेष अग। शरीर मे आश्रित रह कर भी उससे भिन्न है। रूप मे लावण्य का अनुभव करने के लिये सजीव रूप मे तरलता और तरग की प्रतीति होती है। इसी से सुन्दरी के अगो मे तरङ्गमान योजना 'लावण्य' कही जाती है।

ध्वनिकार ने इसका स्पष्टीकरण करते हुए कहा है कि यह तत्व रमणियो के प्रसिद्ध तद्–तद् अ गो से भिन्न प्रकाशित होता है।[1] 'यत् तत् प्रसिद्धावयवातिरिक्त, विभाति लावण्य मिवाङ्गनासु। यह लावण्य सुन्दरियो के अग मे रहता हुआ भी उससे भिन्न सत्ता वाला है।

'लावण्य' की व्याख्या अनेक प्रकार से की गई है। **पं० बदरीनाथ** शर्मा ने बताया है कि "अङ्गनासु प्रशस्त स्त्रीषु प्रसिद्धेभ्योऽवयवेभ्य' करचरणादिभ्योऽतिरिक्त' भिन्न, लावण्यम् 'मुक्ताफलेषु च्छायायास्तरलत्वमिवान्तरा। प्रतिभाति यदङ्गेषु तल्लावण्यमितीरितम्' इति शिङ्गभूपेन लक्षित कान्ति पूरमिव........[2] स्त्रियो के प्रसिद्ध कर चरणादि से भिन्न कान्तिपूर्ण तत्व जो अ गो मे प्रकाशित होता रहता हे, उसे ही लावण्य कहते है, जैसे मुक्ताफल मे उसके पानी की तरलता प्रतिभासित होती है, वैसी ही अ गो मे लावण्य प्रतिभासित होता है।

लावण्य का अपना आकर्षण तो है ही, वह जिन अ गो मे रहता है, उसकी शोभा का कारण भी वन जाता है। रूप मे यह गुण नही है। रूप केवल वाह्याकार का वोधक है। इससे किसी वस्तु की सम्पूर्ण रेखाओ का एक रूप मे वोघ हो जाता है। रूप यदि तत्व का वोधक है, तो लावण्य उस तत्व मे वर्तमान छवि का ज्ञापक है। **लावण्य के अन्तर्गत लय, रूप सौन्दर्य, अभिरूपता, मार्दव** आदि कायिक गुणो का उपपादन किया गया है।

लावण्य—अवयव सस्थान से व्यक्त होने वाला अवयव से भिन्न एक दूसरा धर्म है। अवयवो की निर्दोषता अथवा भूषण योग लावण्य नही है। अवयवो से अविकल रमणी भी कई बार लावण्य युक्त नही होती। अलकार भी लावण्य के विधायक नही होते। यह तो एक आन्तरिक धर्म है, जो शरीर मे वर्तमान रहता हुआ भा अपनी स्वतत्र सत्ता मे रहता है। यह वाहरी उपकरण न होकर शरीर की कान्ति की आन्तरिक चमक है। इसी का समर्थन राम सागर त्रिपाठी ने किया है कि, "लावण्य हि नामावयवसस्थानाभिव्यङ्ग्यमवयवव्यतिरिक्त धर्मान्तरमेव। न चावयवानामेव निर्दोषता वा भूषणयोगो वा लावण्यम्। पृथङ् निर्वर्ण्यमाणकाणादि दोपशून्य शरीरावयव

---

1 यथाह्यङ्गनासु लावण्य पृथङ्निर्वर्ण्यमाननिखिलावयवव्यतिरेकि किमप्यन्यदेव सहृदय लोचनामृत, तत्वान्तर... ....ध्वन्यालोक १.४ पृ. १६ (१६५२) टीका आ० विश्वेश्वर।

2 ध्वन्यालोक–दीधिति–टीका (१६५३) वदरीनाथ शर्मा पृ १७ चौखम्भा सस्कृत सीरीज, काशी

योगिन्यामप्यलङ् कृतायामपि लावण्यशून्यमिति, अतथाभूतायामपि कस्याञ्चि-ल्लावण्यामृत चन्द्रिकेयमिति सहृदयाना व्यवहारात् ।[1] कालिदास ने भी लावण्य के लिये आभूषणो का होना अनिवार्य नही माना है । उनके विचार से लावण्य अपने मौलिक अथवा मूल रूप मे ही प्रतिभासित होता है । इसके लिये मण्डन अनावश्यक है ।[2] मधुर आकृतियो के लिये सभी वस्तुए आकर्षक हो जाती है । अलकारो की भी आवश्यकता नही रहती है ।

लावण्य युक्त रमणी सभी अवस्थाओ मे **मनोज्ञ** प्रतीत होती है । विहारी ने आभूषण को दर्पण पर लगे मोर्चे के समान माना है ।[3] इससे स्वत प्रकाशित अवयवो की चमक और नही वढती । अत लावण्य तो वस्तु मे रहता हुआ उसका एक धर्म विशेष है । 'रूप' वस्तु का वाह्यतत्व होने से इतिवृत्तात्मक है और लावण्य वस्तु मे स्थित उसका धर्म विशेप है । अत सभी प्रकार के रूपो मे लावण्य का होना आवश्यक नही है । रूप के सग लावण्य की स्थिति होती भी है और नही भी होती है, परन्तु जहाँ लावण्य है वहाँ रूप' अवश्य होगा ।

रूप मे आकृति की महता है और लावण्य मे उस आकृति मे रहने वाली चमक का आकर्षण होता है । लावण्य अवयवो से स्फुरित होने वाला उसका एक प्रधान तत्व है, वह स्वय अवयव नही है । उससे निर्मित भी नही है, फिर भी सम्पूर्ण अवयव मे वर्तमान एक तेज के समान है । जैसे सूर्य का प्रकाश न तो स्वय सूर्य है और न उसकी किरण ही है, अपितु उन सबका उनमे व्याप्त रहने वाला एक तेजो मय रूप है, उसी प्रकार लावण्य न तो अग विशेष है और न अ गो से निर्मित उसका एक 'रूप' विशेष ही है, अपितु इन अगो मे ही वर्तमान रहने वाला एक तेज है । अत यह अगो मे रहता हुआ भी अगो से भिन्न है ।

रूप मे वस्तु सत्ता का बोध इतिवृतात्मक होने से सामान्य है और 'लावण्य' सत्ता मे व्याप्त रहने वाला गुण विशेष है । सहृदय लावण्य का प्रशसक होने से उसकी अनुभूति करता है, यह अनुभूति भावनात्मक पक्ष का आधार ग्रहण करती है । इससे इसका क्षेत्र आन्तरिक है । रूप का बोध सामान्य है, इससे वह बौद्धिक है । 'मैने अमुक वस्तु के रूप (फार्म) को जान लिया है' इस प्रकार की प्रवृत्ति मे माधुर्य का अभाव है । लावण्य मे जहाँ रसिकता है,

---

1 लोचन टीका—ध्वन्यालोक—पृ० ७८ (१९६३) व्याख्या । रामसागर त्रिपाठी । मोतीलाल बनारसीदास ।

2 इयमधिक मनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी,
किमिव हि मधुराणा मण्डन नाकृतिनाम् । —अभि० शाकुन्तलम् १।१७

3 सतसई ।

वही रूप ज्ञान मे एक शुष्क बौद्धिकता है। रूप मे बुद्धि की ज्ञापन शक्ति है, लावण्य मे भाव–पक्ष की सरलता है। लावण्य का स्फुरण हमारी चेतना मे अविलम्ब हो जाता है, इसकी व्याप्ति पूरे शरीर मे रहती है।

लावण्य के सौन्दर्य मे जीवन का आनन्द रहता है। 'लुनाति जाड्य-मिति। लू × नन्द्यादित्वात् ल्यु। नन्द्यादिगणे णत्वपाठाद् णत्वम्। .... लवणस्य भाव लावण्यम्।[1] इस व्युत्पत्ति मे लावण्य शब्द का रहस्य छिपा है। लूणपणे के भाव मे ही लावण्य है। जैसे भोज्य सामग्री मे नमक के योग से आस्वाद सुख रुचिकर हो जाता है, वैसे ही 'रूप' मे लावण्य के सयोग से आकर्षण और मनोरमता उत्पन्न हो जाती है। लावण्य अवयवो मे मधुरता और सरसता का विधायक तथा उसके जीवन की समृद्धि का स्रोत है। इससे रूप मे सौन्दर्य की वृद्धि होती है। आनन्द का सचार होता है। इस दृष्टि से सौन्दर्य रूप का लावण्य है। रूप वस्तुगत आकार है। रूप का लावण्य इन्द्रियो की विशेष प्रक्रिया से सम्वेदना मे बदल जाता है। ऐन्द्रिय रूपो के लावण्य मे एक प्रियता होती है। इसी प्रियता से सौन्दर्य का आत्मिक आनन्द जागृत होता है। इससे चेतना उद्बुद्ध होती है। यही आत्म चेतना वस्तु मे सौन्दर्य का अनुभव करती है। इसी से वस्तु का आस्वाद मिलता है।

रूप और सौन्दर्य का विकास सभ्यता के विभिन्न उपकरणो मे दीख पड़ता है। जीवन के विभिन्न उपकरणो मे सन्निहित सौन्दर्य रूप का ही लावण्य माना जायगा। इन्द्रियो की प्रक्रियात्मक सहयोग से रूप का यह लावण्य सवेदना मे बदल जाता है। 'उत्तरोत्तर वस्तुगत रूप लावण्य तथा ऐन्द्रिक सवेदना और मनोगत चेतना की यह पारस्परिकता उत्तरोत्तर घटित होती गई है इसी क्रम विकास मे भागवत सौन्दर्य का उदय होता है। ऐन्द्रिक रूप का लावण्य अपनी प्रियता द्वारा सौन्दर्य के आत्मिक आनन्द के जागरण मे सहायक होता है। चेतना के भाव से वस्तु सुन्दर होती है। यह चेतना ऐन्द्रिय रूप के लावण्य से जागृत होती है। इस प्रकार ऐन्द्रिय रूप और चेतना दोनो एक दूसरे से प्रभावित होते है और वस्तु का लावण्य ही हमे सवेदनात्मक बोध कराने मे सहायक होता है। यदि रूप का लावण्य न हो तो किसी प्रकार की प्रियतामूलक सवेदनात्मक चेतना जागृत नही हो सकती। अत रूप, लावण्य, सवेदना, और तज्जन्य चेतना का उत्तरोत्तर विकास क्रम है।'

डा० हरद्वारी लाल ने रूप लावण्य की व्याख्या करते हुए कहा है कि सजीव रूप मे यदि अवयव इस प्रकार गुम्फित है कि उनमे तरलता, जीवन का ओज और तरग की प्रतीति होती है, तो हमे रूप मे लावण्य का अनुभव होता

---

1 हलायुध–कोश–पृ० ५७७

है[1] रूप की उचित और सजीव योजना को उन्होने लावण्य कहा है। विभिन्न अगो के सुविन्यस्त सगठन और तरङ्गमान योजना से ही यह सम्भव होता है। इस प्रकार उनकी दृष्टि से रूप के विन्यास मे ही लावण्य है। इस दृष्टि से यह विन्यास से उत्पन्न होने वाला एक तत्व विशेष हो जाता है, परन्तु लावण्य विन्यास मे न होकर रूप मे वर्तमान ओज मे अथवा कान्ति मे ही माना जायगा।

अत मे कह सकते है कि वस्तु के रूप और लावण्य मे आकार और धर्म का भेद है। 'लावण्य' शब्द के उच्चारण मात्र से वस्तु मे वर्तमान कान्ति का आभास होने लगता है। जड-पदार्थ आकर्षक हो सकता है, परन्तु लावण्य तो चेतन का ही धर्म है। रूप की सत्ता चेतन-अचेतन सभी मे ही रहती है, लावण्य मे सत्त्व की प्रधानता रहती है। इसका आश्रय स्थान सचेतन प्राणी ही है। रूप मे 'सत्त्व' नही भी होता। इसमे 'लावण्य' के आश्रय भूत तत्त्व की एक सीमा है और रूप मे इस प्रकार की कोई सीमा नही होती। लावण्य जीवन मे आकर्षण और रस उत्पन्न करता है। इसी से लावण्य युक्त रूप स्पृहणीय बन जाता है। इस स्पृहणीयता से सौन्दर्य उद्भासित होता है। अत कहा जा सकता है कि 'रूप' ही सौन्दर्य का आधार है। रूप के बिना सौन्दर्य की स्थिति ही नही हो सकती है। इस रूप मे विन्यास की महत्ता रहती है और विन्यास-गत आकर्षण प्रसाधन के उपकरणो से उत्पन्न होता है। रूप मे सौन्दर्य की मोहकता विन्यास के गुण और बाह्य प्रसाधनो से आती है। इससे रूप और सौन्दर्य दोनो का ही युगपत् कथन होता है। भेद केवल यह है कि सौन्दर्य की अधिकता मे रूप की चेतनता दब जाती है और सौन्दर्य की मोहकता ही उभर कर समक्ष आ जाती है, फिर भी दोनो एक दूसरे के सापेक्ष और पूरक है। इसी रूप मे इनकी मान्यता है। अगले अध्यायो मे आत्मगत और विन्यासगत रूप-सौन्दर्य का तात्विक आधार निश्चित करके उसी निकष पर मध्यकालीन कृष्ण काव्य को परखने का प्रयास किया गया है।

(३) **अभिव्यक्ति**—सुन्दर वस्तु का तृतीय तत्व अभिव्यक्ति है। काव्य की परिधि मे अमूर्त अथवा अव्यक्त मानसिक वृत्तियो को व्यक्त रूप दे देना ही अभिव्यक्ति है। संसार के सभी पदार्थ किसी अदृश्य के व्यक्त रूप ही है। कोई अनन्त चेतन सत्ता प्रकृति और प्राणियो के माध्यम से अपने को व्यक्त करती रहती है। इससे अभिव्यक्ति की यह सनातन और स्वाभाविक परम्परा है।

मानव मे अभिव्यक्ति को एक स्वाभाविक प्रेरणा मान सकते है। वह जिन पदार्थो को देखता है अथवा जिनसे उसकी आत्मा तृप्त होती है, ऐसे

---

1 सौन्दर्य-शास्त्र पृ० ७१

पदार्थों से उसे आनन्द की अनुभूति होती है। वह इस आनन्द को सौन्दर्य के भोग और रूप तत्वो के आधार पर व्यक्त करता है। स्वाभाविक प्रेरणा से इसकी अभिव्यक्ति होने पर यह स्वय मे सुन्दर हो जाती है। यदि भावनाओ को व्यक्त न करे, तो मन मे एक अव्यवस्था हो जाती है। अत इसी व्यवस्था को लाने के लिये अदृश्य प्रवृत्तियो, भावनाओ तथा प्राकृतिक और मानवीय या अन्य दृश्यो को हम रूप देते है। यह रूप देना ही 'कला' है। इससे जिस सौन्दर्य की सृष्टि होती है, उसे कलात्मक सौन्दर्य कहेगे।

इस सौन्दर्य के लिये माध्यम को सुरुचिपूर्ण होना चाहिए। कभी-कभी अप्रिय माध्यम भी अभिव्यक्ति की सुन्दरता से प्रिय हो जाता है। भय, क्रोध करुण, रौद्र आदि भाव सुन्दर ढग से अभिव्यक्त होने से ही 'रस' कहे जाते है। अभिव्यक्ति के ढंग से ही रसानुभूति होती है। इस अभिव्यक्ति के नियम की यदि कठोरता से पालन करे तो कलाओ मे एक निर्जीवता आ जाने की सम्भावना भी वनी रहती है तथा इसकी अवहेलना से विद्रूपता आ जाती है।

अभिव्यक्ति मे नियम और भावो का स्वच्छन्द प्रवाह कला मे निखार लाता है। कलाकार की उत्पादक प्रतिभा रूप को सुन्दर वना देती है तथा अरूप को रूप दे देती है। इसके गुणो मे ओज, प्रासाद और माधुर्य मन की विभिन्न मानसिक अवस्थाओ को सूचित करते है। संस्कृत साहित्य मे कई आचार्यो ने अभिव्यक्ति पक्ष पर ही अधिक वल दिया है। आचार्य वामन, रुय्यक, उद्भट, जयदेव, कुन्तक आदि के काव्य निरूपण मे इसी पक्ष पर अधिक वल दिया गया है।

सस्कृत काव्य शास्त्रियो के मत से अभिव्यक्ति का माध्यम सुरूप होने पर स्वय अभिव्यक्ति भी सुन्दर हो जाती है। पाश्चात्य देशो मे तो कला के लिये ही कला की सृष्टि मानते है। इटैलियन विद्वान क्रोचे ने अभिव्यक्ति को ही सुन्दर माना है। इस अभिव्यक्ति के द्वारा अदृश्य, अव्यक्त और आध्यात्मिक अनुभूतियाँ भी व्यक्त हो जाती है।

साहित्य मे वर्णित नौ स्थायी भावो मे से रौद्र भयानक आदि से जो एक आनन्ददायक अनुभूति होती है, उसका मूल कारण अभिव्यक्ति का सौन्दर्य ही है। यदि ऐसा न हो तो यथार्थ जगत मे विकर्षण उत्पन्न करने वाले ये भाव काव्य जगत् मे कभी भी आकर्षण के कारण नही वन पाते। अभिव्यक्ति मे उसके विशेष नियम और कवि की स्वच्छन्ता इन दोनो के समुचित समन्वय मे ही सौन्दर्य मुखर हो जाता है। केवल नियम का पालन काव्य मे नीरसता उत्पन्न कर देता है। कवि की स्वछन्द भावना विशेप मानसिक स्थिति मे उच्चकोटिक अनुभूतियो मे अभिव्यक्त करती है। यद्यपि कला की सृजनात्मक

प्रतिभा रुढियो को स्वीकार करने को बाध्य नही होती, फिर भी उसकी नूतन आविष्कृत रूपादि नियम के शासन को किसी न किसी रूप मे अवश्य ही ग्रहण करते है। इस प्रकार दोनो के समन्वय से कला की अभिव्यक्ति सुन्दर होती है। इसका लक्ष्य आनन्द की प्राप्ति है। इसी बात का समर्थन करते हुए कहा गया है कि, 'सौन्दर्य केवल आत्मिक और आन्तरिक अनुभूति मात्र नही है, वरन् वह आत्म भाव की भूमिका मे बाह्य माध्यमो द्वारा साकार होने वाली सामाजिक अभिव्यक्ति है।[1]

(४) **प्रियता** को सौन्दर्य का एक चौथा तत्व मान सकते है। इसी प्रियता से वस्तु मे आकर्षण का भाव आता है। एक ही वस्तु एक के लिए सुन्दर और दूसरे के लिये असुन्दर हो जाती है। यहाँ प्रियता रुचि पर निर्भर है। अत जिन गुणो के कारण वस्तु प्रिय बनती है, उन गुणो को सौन्दर्य कहेगे।

अन्त मे कहा जा सकता है कि सुन्दर वस्तु के प्रथम तीन तत्वो मे विकास का एक क्रम है। इनमे से किसी एक की प्रधानता होती है। भोग के सग 'रूप' और अभिव्यक्ति की अस्पष्टता बनी रहती है। प्रकृति के कुछ पदार्थो मे भोग और रूप दो पक्षो की प्रबलता होती है। मानव मे भोग और रूप के साथ चेतनता का अस्तित्व भी बराबर बना रहता है। इसी से एक शिशु तथा युवती मे भोग्य पदार्थो के समुचित विन्यास से रूप की पराकाष्ठा और सौन्दर्य के आकर्षण के साथ चेतन अश के समावेश तथा मानसिक वृत्तियो उत्साह, आकाक्षा की प्रियता भी वर्तमान रहती है। यदि ये तीनो ही तत्व एक ही स्थल पर समन्वित हो जायं, तो उनसे उत्पन्न होने वाला सौन्दर्य लोकोत्तर हो जाता है। वह अपनी दिव्यता के कारण आकर्षक रूप मे प्रियता का बोध कराता है। अत कहा जा सकता है कि भोग और रूप के साथ अभिव्यक्ति का सौन्दर्य महत्वपूर्ण हो जाता है। मानवीय स्तर पर अभिव्यक्ति आत्मगत एव बाह्य सौन्दर्य साधक उपकरणो से पूर्णता को प्राप्त होती है। इससे रूप और अधिक आकर्षक और सुन्दर होकर आकृष्ट करने वाला बन जाता है। इसी रूप और सौन्दर्य की अभिव्यञ्जना का व्यावहारिक पक्ष इस ग्रन्थ का प्रतिपाद्य है। अत इसे ही इसकी सीमा मानेगे।

---

[1] सत्य शिव सुन्दरम्-भूमिका पृ० १७ डा० रामानन्द तिवारी

रूप-सौन्दर्य—अभिव्यक्ति-निर्वचन

(१) कलात्मक-सौन्दर्य

(२) कलात्मक-सौन्दर्य के भेद

(३) मानवीय-सौन्दर्य

(४) सौन्दर्य-साधक उपकरण

(क) आत्मगत उपकरण

(१) गुणगत

(२) चेष्टागत

(ख) बाह्य उपकरण

(१) प्रसाधनगत

(२) तटस्थ

मानव की बोध वृत्ति क्रमश तीन दिशाओ मे संचरण करती हुई विकसित होती है। इसे जिज्ञासा, चिकीर्षा और सौन्दर्यानुराग कहते है। इन तीनो वृत्तियो की तृप्ति के लिये मानव क्रमश ज्ञान, कर्म और उपासना का आधार लेता है। सौन्दर्यानुभव की अभिलाषा मानव मात्र मे रहती है। यह आनन्द का अनुभव कराने वाली वृत्ति है। सौन्दर्यानुभूति मे मानव अपनी ही तन्मयता एव अनुराग का बाह्य वस्तु के माध्यम से भोग करता है। अत इसमे वस्तु की सत्ता और व्यक्ति की अनुभूतियो का महत्व रहता है।

ज्ञान से जिज्ञासा वृत्ति की तृप्ति और आत्म-तत्व का बोध होता है। यह बोध चिन्तन अथवा प्रातिभ ज्ञान से होता हे। इस ज्ञान की सीमा मे सत्य दर्शन का विषय हो जाता है, परन्तु अनुभूति की परिधि मे यही सत्य 'सुन्दर' बनकर प्रस्तुत होता है और 'सुन्दर' कर्म के आश्रय से कल्याणकारी ओर मङ्गलमय बन जाता है। इस प्रकार मानसिक रूप मे सत्य सुन्दर की अनुभूति कराता है। अत सौन्दर्य मे मानसिक अनुभूति और लोक-हित मे आचरण सम्बन्धी कार्यो की महत्ता रहती है। काव्य मे मानसिक अनुभूति एव तज्जन्य सौन्दर्यानुराग की महत्ता रहती है। इसी से सौन्दर्य वर्णन मे काव्य सदैव सचेष्ट रहता है। इस वर्णन मे वह मानव को आधार बनाकर उसकी मुख्यता का प्रतिपादन करता है। इसमे अपनी योग्यता के प्रदर्शन मे वह जिस ढग और कलात्मक प्रतिभा का सहारा लेता है, उससे अभिव्यञ्जनागत सुन्दरता की अभिव्यक्ति होती है। निम्नलिखित पंक्तियो मे सौन्दर्य के इन्ही दो रूपो का विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है। वे दोनो कलात्मक और मानवीय सौन्दर्य के नाम से अभिहित किये जा सकते है।

कलात्मक-सौन्दर्य —

बाह्य रूप की आन्तरिक अनुभूतियाँ ही अपनी विशेष प्रक्रिया से कलात्मक सौन्दर्य का अधिष्ठान बनती हैं। मनोजगत को बाह्य जगत की दृश्य ऐन्द्रिय वस्तुओ का साक्षात्कार होने पर अन्त करण की सक्रियता उस बाह्य रूप मे एक नवीन भावना का समावेश कर देती है। इस प्रकार वस्तु की अभिव्यक्ति कलात्मक हो जाती है। यहाँ वस्तु का स्थूलतत्व मानस की सूक्ष्म सत्ता का साहाय्य पाकर विभिन्न कलाओ के रूप मे स्फुरित हो जाता है। मूल सामग्री ही भावना सवलित होकर आकर्षक रूप मे अभिव्यक्त हो जाती है। अभिव्यक्ति के कारण उत्पन्न होने वाले सौन्दर्य को कलात्मक सौन्दर्य कहते है।

कला का यह सौन्दर्य कलाकार की सर्जनात्मक शक्ति के ऊपर निर्भर रहता है। उसकी अभिव्यञ्जना मे व्यक्तिगत विशेषताओ का समावेश होता है। कवि अपनी अनुभूतियो को युग वैशिष्ट्य के आधार पर कभी सहजभाव से और कभी सचेष्ट होकर अभिव्यक्त करने मे भावना अथवा ज्ञान, बुद्धि आदि का सहारा लेता है। इसमे कवि द्वारा अपनाया गया शिल्प जिस सौन्दर्य का विधान करता है, वही 'कलात्मक सौन्दर्य' कहा जाता है। इसे ही अभिव्यञ्जनागत सौन्दर्य भी कह सकते है।

इस सौन्दर्य का प्रत्यक्षीकरण अन्य चाक्षुप विपयो के प्रत्यक्षीकरण की भाँति सम्भव नही है, केवल अनुभूति का विपय है। काव्य सहृदय के अनुकूल होता हुआ उसे भावमग्न कर देने की क्षमता रखता है। काव्य मे वर्णित वस्तु यथार्थ जगत मे हमे आकर्षित कर लेने मे कई बार अक्षम हो जाती है, परन्तु वही वाह्य रूप रेखा, शब्द, ध्वनि आदि मे बँधकर रसानुभूति कराने लग जाती है। यही कलाकार की क्षमता है। वह अपनी क्षमता से रसानुभूति कराता हुआ स्थूल और कुरूप को भी सूक्ष्म और सुन्दर बना देता है। इससे आविर्भूत होने वाले सौन्दर्य द्वारा कलाकार अनुभूतियो के सम्वल, प्रतिभा और कल्पना के साहाय्य और चित्र विधायिनी शक्ति से सहृदय के मानस पटल पर सौन्दर्य और रमणीयता की एक अपूर्व छाप छोड देता है। सहृदय भी उस कलात्मक सृजन मे अपनी ही भावनाओ का प्रतिबिम्व पाकर रस-मग्न हो जाता है। इस प्रकार कवि की प्रतिभा से शुष्क वाह्य तत्व या व्यापारादि काव्यात्मक रूप पाकर कलागत सौन्दर्य कहे जाते है। इससे उत्पन्न होने वाली नवीनता मूलक रमणी-यता की अनुभूति ही रसानुभूति है। अत काव्यगत सौन्दर्य की कलात्मक मानस अनुभूति ही रस है।

भारतीय काव्य शास्त्र मे इस अनुभूति को भिन्न काव्य सम्प्रदायवादियो ने अलग-अलग रूप मे ग्रहण किया है। विश्वनाथ का रस सम्प्रदाय, आनन्द-वर्धन का ध्वनि सम्प्रदाय, दण्डी का अलकार सम्प्रदाय, कुन्तक का वक्रोक्ति-सम्प्रदाय, वामन का रीति-सम्प्रदाय इसी को व्यक्त करने के विभिन्न मार्ग है। क्षेमेन्द्र ने इसका स्पष्टीकरण औचित्य द्वारा किया है आचार्य जगन्नाथ शब्द मे रमणीयता को पाने का प्रयास करते है। मम्मटाचार्य शब्द और अर्थ के समन्वय मे इसे देखते है। अभिनव गुप्त के अनुसार गुण, अलकार और औचित्य के ध्वनियुक्त शब्दार्थ द्वारा समन्वित रूप मे सौन्दर्य की अनुभूति होती है। कोई वाच्यार्थ को महत्व देता है कोई प्रतीयमान अर्थ मे ही रमणी के अंगो मे व्याप्त लावण्य के समान उस सौन्दर्य का अस्तित्व पा लेता है। इससे स्पष्ट है कि

काव्यगत सौन्दर्य के अस्तित्व को सभी भारतीय किसी न किसी रूप मे अवश्य स्वीकार कर लेते हैं।

इस काव्यगत सौन्दर्य का मूल स्रोत प्रकृति और मानव जगत का वह सम्पूर्ण रूपाकार है जो कल्पना और अनुभूति की रमणीयता प्राप्त करके सुन्दर बन जाता है। मानव एव प्रकृति का जड तत्व कल्पना से ही चेतन बन जाता है। इससे एक विशेष आनन्द मिलता है। इस आनन्द का आधार मानव है। अत. इस आनन्द के मूल मे स्थित सौन्दर्य भी मानवीय सौन्दर्य की अनुभूति हैं। इससे स्पष्ट हो जाता है कि सृजनात्मक कल्पना की दृष्टि से अनुभावन करने पर सभी वस्तुएँ सुन्दर हो जाती हैं। यहाँ तक कि प्रकृतिगत सौन्दर्य मे भी वस्तु का गुण, कल्पना की सृजनात्मक चेतना आदि कलात्मक सौन्दर्य के कारण बन जाते हैं। सृजन के इस सौन्दर्य मे प्रदर्शन की भावना वर्तमान रहती है।

यह सृजन एकान्त क्षणो मे सम्भव हो सकता है, परन्तु उसका एकान्त भाव सदा बना नही रहता। उसमे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप मे सामाजिक चेतना बनी रहती है। इसी से प्रदर्शन की कलाओ मे श्रोताओ की रुचि का ध्यान बना रहता है। ऐसी कलाओ मे चाक्षुष रूप सौन्दर्य की महत्ता बनी रहती है। इस रूप पर अवलम्बित होते हुए भी रूपगत सौन्दर्य और कलात्मक सौन्दर्य में अन्तर है।

(१) कलात्मक सौन्दर्य मनोजगत का सौन्दर्य है, यद्यपि इसकी चयन सामग्री का आधार यही रूपाकार गत प्रकृति एव मानव जगत का क्षेत्र है।

(२) काव्यगत सौन्दर्य की मानसिक अनुभूति की मान्यता सभी सम्प्रदायो मे है।

(३) वाह्य रूप मे ही सौन्दर्य की अनुभूति होती है। यही रूप रमणीय होकर आकर्षण का कारण बनता है।

(४) कलात्मक सौन्दर्य एकान्त, व्यक्तिगत और आन्तरिक अनुभूति एव प्रतिभा का फल है। इसमे सृजन का एक अपूर्व भाव रहता है। इससे इसमे अभिव्यञ्जनागत शिल्प का महत्व रहता है। यह अभिव्यञ्जना अनेक रूपो मे प्रस्तुत की जाती है।

कलात्मक सौन्दर्य के भेद

काव्य-सृजन मे अभिव्यञ्जनागत-सौन्दर्य का महत्व है। व्यक्ति भेद से अभिव्यञ्जना के रूप मे अन्तर आ जाता है। काव्य के सृजन मे कवि की व्यक्तिगत अनुभूतियाँ ही विषय वस्तु के समन्वय से एक विशिष्ट शैली मे

प्रकट हो जाती है। काल का प्रभाव तो पडता ही है। कवि वस्तु के रूप का आधार लेकर कल्पना एव अपनी बौद्धिक चेतना से ध्वनि और शब्द के प्रयोग द्वारा अभीष्ट अर्थ की सिद्धि करता है। इस प्रकार रूप, शब्द, ध्वनि और कल्पना के आधार पर काव्य मे कलात्मक-सौन्दर्य का स्फुरण होता है। इन चारो का स्थूल आधार व्यावहारिक दृष्टि से 'रूप' या उसका आकर्षण ही है। सर्वप्रथम व्यक्ति रूप-आकार की स्थूलता का बोध करता है। यही बोध कुछ क्षण बाद ही आकार और रूप से निर्मित उस वस्तु या व्यक्ति के गुण का आन्तरिक विश्लेषण करने मे लग जाता है। इस कार्य मे पहली क्रिया रूपाकर्षण की स्थूलता की बोधिका और दूसरी क्रिया गुण के आकर्षण और आन्तरिक क्रिया का ज्ञान कराने वाली होती है। व्यावहारिक जीवन मे रूपाकर्षण की क्षणिकता के स्थान पर गुणो की चिरन्तनता अधिक महत्वपूर्ण होती है। यही पक्ष काव्य मे भाव-सौन्दर्य बनकर प्रस्तुत होता है। इन दोनो रूप और भाव-की सौन्दर्याभिव्यक्ति ही काव्य का लक्ष्य है। अभिव्यक्ति के माध्यम से रूप ही भाव-सौन्दर्य बनकर आनन्द का कारण होता है। इस भाव-सौन्दर्य के सम्यक् नियोजन मे काव्यकार भावो (स्थायी आदि) वस्तु-सौन्दर्य (परिस्थिति, वातावरण, देशकाल, परम्परा) और दृश्य-सौन्दर्य (प्रकृति, मानव और विश्व के चित्र) को उपस्थित करता है। अपने इस सृजन को आकर्षक बनाने के लिये वह अर्थ-परिवर्तन शब्द ध्वनि, चित्र-योजना आदि अनेक तत्वो का सहारा लेता है —

(क) **अर्थ परिवर्तन**—युग की भावनाओ के अनुसार तथा सतत प्रयोग के कारण अनेक शब्दो के अर्थ मे परिवर्तन हो जाता है। प्रयोग बाहुल्य तथा लौकिक प्रसगो के समावेश से 'श्रीकृष्ण' शब्द के अर्थ मे उत्तर-मध्यकाल के साहित्य मे गिरावट आ गई। इनका अर्थ सामान्य नायक से लिया जाने लगा। इसी प्रकार के अन्य शब्दो मे कन्हैया, साँवलिया, लाल, ललन लली आदि की गणना की जा सकती है। इसी से सम्बन्धित अन्य शब्दो मे भी गिरावट आ गई। इससे इन सभी शब्दो का प्रयोग लौकिक अर्थ मे होने लगा।

(ख) **शब्द-ध्वनि**—कलात्मक सौन्दर्य के अन्तर्गत शब्द-ध्वनियो द्वारा अनुकूल वातावरण की सृष्टि की जाती है। इनसे मानव की मूल सवेदना या भाव प्रकट होता है। शब्दो से उत्पन्न ध्वनि के माध्यम द्वारा चित्रात्मक गूँज वातावरण मे फैलता रहता है। इसमे श्रुति-सुखदता और नाद-सौन्दर्य प्रस्तुत को प्रभावशाली बना देने मे समर्थ हो जाता है। ऐसे शब्दो के प्रयोग से अभिव्यञ्जना का कलात्मक सौन्दर्य दीख पड़ता है। इस सौन्दर्य मे श्रुति-

चित्र महत्वपूर्ण होता है। ध्वनि उत्पन्न करने वाले ये शब्द तीन प्रकार के होते हैं।

(१) अनुकरणात्मक (२) रणनात्मक (३) लक्षणात्मक। ऐसे शब्दो का प्रयोग प्राय मिलन प्रसग पर अथवा रति प्रसग पर श्रुति-माधुर्य उत्पन्न करने या भावो को उदीप्त करने मे किया गया है।

अनुकरणात्मक शब्दो द्वारा वस्त्रो की फरफराहट का बोध कराया जाता है। ऐसे प्रयुक्त शब्दो द्वारा स्वय ही एक ध्वनि सी निकलती हुई प्रतीत होती है। यथा —

'फहर-फहर होत पीतम को पीत-पट,
लहर-लहर होत प्यारी की लहरिया। देव

इसमे प्रयुक्त शब्दो के फरफराहट की आवाज से निर्जीव वस्त्रादि मे भी मिलन-सम्भावना से आनन्द एव उत्साह की अभिव्यञ्जना हुई है।

रणनात्मक शब्दो द्वारा आभूषणो से उत्पन्न ध्वनि के माध्यम से विशेष वातावरण एव प्रसगादि का बोध कराया जाता है। यह ध्वनि मिलन के अवसर पर अपने चमत्कारिक प्रभाव के कारण प्रसिद्ध है। यथा —

'झाँझरिया झनकैगी खरी खनकैगी, चुरी तन कौ तन तोरै। दास

आभूषणो के इस रणन का तत्काल और सीधा प्रभाव सवेगो पर पडता है। इससे मिलन प्रसग की सुखदता बढ जाती है।

लक्षणात्मक शब्दो मे नाद और अभिव्यक्ति का युगपत् सौन्दर्य देखने को प्राप्त हो जाता है। यथा "उमड्यौ परतरूप" जैसे प्रयोगो मे लक्षणा द्वारा वाचक शब्द से भिन्न एक ऐसे अन्य अर्थ का बोध होता है, जो इन्द्रिय ग्राह्य होने के साथ ही रूप-सौन्दर्य के आधिक्य की व्यञ्जना करता है। रूप के उमडने मे उसके आकर्षण, पूर्णता और तरलता आदि का बोध होता है। ऐसे चित्रो द्वारा काव्य का आकर्षण बढ जाता है।

(३) **विशेषणो** के प्रयोग मे, अभिव्यञ्जनात्मक-सौन्दर्य-वृत्ति स्पष्ट होती है। काव्य एव प्रसगानुकूल विशेषण के प्रयोग से रूप की अद्भुत सृष्टि होती है, जिससे कवि की जीवन दृष्टि एव भावनाओ का ज्ञान होता है। यदि उस शब्द के स्थान पर किसी अन्य पर्याय ध्वनि का प्रयोग करे, तो न तो रूप की अद्भुत सृष्टि ही हो सकेगी और न काव्य-सौन्दर्य की विलक्षण अभिव्यक्ति ही। अत विशिष्ट विशेषणो के चयन मे चित्रोपम सौन्दर्य एव कवि की भावना इन दोनो का समन्वय रचना के आकर्षण को बढा देता है। ऐसे विशेषणो का प्रयोग अगो की मधुरता, कोमलता, आकर्षण आदि की अभि-

व्यक्ति द्वारा उसका रूपचित्र उपस्थित करने मे हुआ है। लाक्षणिक शब्दो के प्रयोग, वर्ण की महत्ता, अग वर्णन के प्रसगो पर इन शब्दो द्वारा ऐन्द्रिय चक्षु-चित्र के साथ भाव-चित्र रूप और रस का समन्वय भी प्राप्त हो जाता है। जैसे अनियारे नयन, लाज कसी अखियाँ, उतुङ्ग उरोज, सुरग चूनरी, सघन-जघन, गदरे देह, जगमगे जोवन आदि शब्दो द्वारा यही भाव व्यक्त होता है। इनमे **क्रिया मूलक** विशेषणो से (ललचौही चखन) मानसिक भावो की अभिव्यक्ति भी होती है। अनेक विशेषणो के प्रयोग से रूपचित्र मे एक अन्य शक्ति उत्पन्न हो जाती है। आकार और कठोरता को व्यक्त करने वाले विशेषण कुचो की उपमा मे प्रयुक्त हुए है। क्रियात्मक पक्ष के द्योतक विशेषणो से चित्रोल्लेखन एव भावो की क्षमता व्यक्त होती है। ठाढे, उचके कुच मे यही पक्ष है। 'खरे' विशेषण मे मासलता की अभिव्यक्ति है। सुरग चूनरी आदि द्वारा चक्षुग्राह्य उत्तेजना मूलक विशेषण का प्रयोग हुआ है। घनानन्द के विशेषणो मे विषयिनिष्ठता का रग अधिक है, रसखान का रूपचित्र एव देव की ऐन्द्रिय भावना प्रधान है। बाद की रचनाओ मे प्रयुक्त विशेषणो द्वारा प्रस्तुत विषय मे चमत्कार लाने की चेष्टा की गई है।

(४) **मुहावरो** के प्रयोग मे **प्रयोजनवती और रूढ़ि लक्षणा के** दर्शन होते है। आरम्भ मे इनका प्रयोग प्रयोजन विशेष मे होता रहा, परन्तु सतत प्रयोग से वे रूढ अर्थो मे प्रयुक्त होने लगे है। इन्ही मुहावरो के प्रयोग मे स्वभावोक्ति, उपमा, उत्प्रेक्षा, विरोधाभास आदि कई अलकारो का सौन्दर्य भी देखा जा सकता है। भावो की अभिवृद्धि और अलकारो के चमत्कार से अभिव्यञ्जना मे निखार आ जाता है। मुहावरो का प्रयोग मुख्यत मन, चित, आँख आदि के प्रसग पर हुआ है। मतिराम ने 'रसराज' मे आँखो के लिये अखियाँ भर आई (छद १९) दृग जोरै (छद १२७) नैनन को फल पायो (छद २३८), देव ने 'सुन्दर विलास' मे मिले दृग चारो (१२) वक विलोकनि पै ही विकान्यो (पृ ९ प्रेम चन्द्रिका) और पद्माकर ने 'जगद्विनोद' का प्रयोग किया है। मन के लिये मन भायो न कियो (छद १३८ रसराज) गुन औगुन गनै नही (छद ५३) (जगद्विनोद) आदि का प्रयोग है। कुल कानि गवाए (छद १३२ रसराज) तिनतोरत फिरत (सुन्दर विलास पृ ९) आदि अन्य मुहावरो का सौन्दर्य भी देखा जा सकता है।

मुहावरो के प्रयोग का मूल उद्देश्य शरीरी सौन्दर्य की अभिव्यक्ति को हृदय आवर्जक बनाना है। आँख, मन और चित्त सम्बन्धी मुहावरो मे क्रमश इनके लड़ने, बधने और चोरी चले जाने मे प्रेम-भाव का एक क्रमिक

विकास दीख पडता है। रूप-लावण्य पर आधारित आँखो के चार होने मे मासल सौन्दर्य का आग्रह ही अधिक दीख पडता है।

वैभव से भिन्न सामान्य गृहस्थ जीवन के दैनिक व्यवहार मे प्रयुक्त होने वाले मुहावरो मे 'रवा राखत न राई सी' 'ठेग गनौगी' आदि मुहावरो द्वारा अर्थवत्ता लाई गई है। अलकारो के चमत्कार प्रदर्शन मे मुहावरो को देख सकते है। घनानन्द ने विरोधाभास के लिये मुहावरो का प्रयोग किया है। असगति का चमत्कार बिहारी मे दर्शनीय है।

उपर्युक्त उदाहरणो से स्पष्ट है कि मुहावरो के प्रयोग द्वारा भावो मे तीव्रता लाई जाती है। मुहावरे जब कवि के साध्य बन जाते है, तो भाव-तीव्रता के स्थान पर चमत्कार का प्रदर्शन अधिक होने लगता है। उचित प्रभाव की व्यञ्जना के लिये मुहावरो का सुविचारित प्रयोग अभीष्ट अर्थ की सिद्धि करता है।

(५) **चित्र–योजना**— अभिव्यञ्जना के कलागत सौन्दर्य के लिये काव्य चित्रो को उपस्थित करने की परम्परा मध्यकालीन साहित्य मे अत्यधिक रही है। चित्र के माध्यम से ही अनुभूतियाँ आकार ग्रहण करती है। इन काव्य चित्रो के दो भेद–**लक्षित चित्र योजना और उपलक्षित चित्र योजना** किये जा सकते हैं। पहले मे वाह्य रेखाओ और वर्णो आदि के द्वारा चित्रोपस्थिति का तत्काल ज्ञान हो जाता है और दूसरे मे अप्रस्तुतो एव सादृश्य-विधान द्वारा ज्ञान होता है। लक्षित चित्र योजना के दो भेद-**रेखा-चित्र और वर्ण चित्र** माने जा सकते है। इन दोनो मे क्रमश रेखाओ या वर्णों के द्वारा आलम्बन के रूप को अभिव्यक्त किया जाता है। इस साधन मे कलाकार का चेतन मन सहजतया रेखा या वर्णो द्वारा स्पष्ट हो जाता है। उपलक्षित चित्रो मे सादृश्य–विधान एवं अप्रस्तुतो की महत्ता रहती है। चित्र योजना के इन दोनो प्रकारो मे अभिव्यञ्जना का कलात्मक और मानसिक वृत्तियो का सुन्दर स्वरूप उपस्थित होता है।

(क) **लक्षित चित्र योजना** के अन्तर्गत **रेखा-चित्र** द्वारा रूपांकन के साथ ही ज्ञानेन्द्रियो के अन्य विषयो रस, शब्द, स्पर्श, गध का भाव भी कही-कही लक्षित होता है। उदाहरणार्थ, रूप मे स्पर्श की भावना से ही आनन्द का उद्बोध होता है। दो या दो से अधिक विषयो के समुचित रूप के कारण आकार की महत्ता बढ जाती है। रूप मात्र या अन्य कोई भी एक विषय अपनी नीरस अवस्था मे आनन्द का जनक नही हो पाता। इसीसे नख-शिख की रूढ़िग्रस्त परम्परा, नायक-नायिका भेद का घिसा-पिटा रूप, अभिसारिका,

खण्डितादि के वर्णनो की एकरूपता आदि से बौद्धिक सतुष्टि भले हो जाय, उनसे रसानुभूति नही हो पाती। इससे अभिव्यञ्जनात्मक विविधता स्पष्ट होती है परन्तु इस कथन का यह तात्पर्य नही है कि मध्यकालीन चित्रो मे नयनाभिराम रूपो, भाव-चित्रो, अनुभावो आदि का सौन्दर्य है ही नही। इनको अपने उत्कृष्टतम रूप मे मध्यकाल मे देखा जा सकता है।

रेखा-चित्रो द्वारा नायिका के **रूप और उसकी चेष्टा** की सुन्दरतम अभिव्यक्ति हुई है। रूप आकर्षण का प्रमुख साधन है। अनुभावो और चेष्टाओ से प्रेम प्रकट होता है। ये उद्दीपन के उपकरण हो जाते है। अत रेखा-चित्रो मे इन तीनो को आत्मसात् कर लिया जाता है। मतिराम के प्रसिद्ध छद 'कु दन कौ रगु फीकौ लगै, झलकै अति अगन चार गुराई" मे रूढिग्रस्त उपमानो के न होने पर भी कु द से गौर वर्ण, आँखो के आलस्य और चितवन के विलास द्वारा सौन्दर्य का संश्लिष्ट रूप उपस्थित होता है। यह भावमय, व्यञ्जक और मनोरम है। चेष्टा और हावो का सौन्दर्य विहारी मे अधिक है।[1] हावो का सम्बन्ध मन से होने पर मन की विविध दशाओ का ज्ञान इसके द्वारा हो जाता है। इस प्रकार के चित्र–निर्माण की क्षमता मध्यकालीन कवियो मे बहुत पाई जाती है।

वर्ण योजना–चित्र-निर्माण मे रेखाओ द्वारा रूप उपस्थित करने मे वर्ण योजना का भी अत्यधिक महत्व है। इससे अभीप्सित भावो की अभिव्यक्ति हो जाती है। वर्णो द्वारा रूप उपस्थित करने मे नायिका की **आंगिक वर्ण-शोभा** एव **प्रसाधन गत** शोभा का वर्णन होता है। प्रसाधन वस्तुओ मे आकर्षण उत्पन्न करने के लिये **वर्ण की अनुरूप योजना वर्ण-मिश्रण, प्रतिरूप वर्ण योजना और वर्ण परिवर्तन** का विशेष महत्व स्वीकार किया गया है। इन वर्णो के सादृश्य का आधार **प्रकृति, प्रसाधनगत सामग्री (वस्त्राभूषण), पावक** एव अग्निशिखादि है। प्राकृतिक साधनो द्वारा वर्ण योजना ने नक्षत्र आकाशादि तथा पुष्पादि का आधार ग्रहण किया गया है। वस्त्राभूषणो मे वैभव के उपकरण, विभिन्न रत्नो के साथ कामदार साडी, अगिया, चोली, चूनरी आदि की चर्चा है। दीपशिखा के कथन द्वारा अग-ज्योति एव प्रकाश की अभिव्यक्ति सरलतया हो सकी है।

गतिशील वर्ण योजना द्वारा सुकुमारता की अभिव्यक्ति हुई है। 'सुन्दरी तिलक' मे वताया गया है कि नायिका के पॉव धरने से रग की धारा

---

1 नासा-मोरि नचाइ दृग करी कका की सौह।
काँटे सी कसकति अजौ गड़ी कटीली भौह। विहारी।

प्रवाहित होने लगती है, और भीतर से वाहर तक जुन्हाई की धार सी दौड जाती है।[1] लाल और श्वेत रगो द्वारा पावो की स्वाभाविक लालिमा और तन–द्युति का आभास कराया गया है। शारीरिक कोमलता और सुकुमारता की ऐन्द्रिय अनुभूति नायिका के समग्र सौन्दर्य को व्यक्त कर देती है। अग की फूटती ज्योति से मूर्त प्रत्यक्षीकरण सफलता से हो जाता है।

(ख) उपलक्षित चित्र योजना या अप्रस्तुत योजना का सौन्दर्य–उपमेय का रूप उपस्थित करने के लिये कवि उपमान का प्रयोग करता है। यह सादृश्य विधान द्वारा ही अधिक होता है उपमा और रूपक के द्वारा उपमेय के स्वरूप का वोध केवल चक्षु का विषय ही नही रहता है, अपितु भावो के उद्वोध के साथ इसमे एक वातावरण की सृष्टि भी होती है इन अलकारो का आन्तरिक महत्व होता है। यथा 'विपत्ति का समुद्र' कहने से इसकी अनन्तता और भयकरता का वर्णन किया जाता है। इससे जो वातावरण वनता है वह मानसिक भावो को उद्वुद्ध करता है इन उपमानो के प्रयोग मे रुचि, वातावरण और देशकाल का सकेत होता है इससे चित्रयोजना मे कवि की वोधवृत्ति और भाव-वृत्ति दोनो का समन्वय होना चाहिए इसमे एक विषय होते हुए भी व्यक्तिगत रुचि से विभेद हो जाता है। रीतिकाल मे रूढ उपमानो का प्रयोग नारी के स्थूल अगो के चित्रण के लिये किया गया है और चित्र योजना के लिये ग्रहण किये गये अप्रस्तुतो का क्षेत्र तत्कालीन वातावरण प्रकृति, पशु-पक्षीजगत शास्त्र-ज्ञान और व्यावहारिक जीवन रहा है। जैसे सुरतिरण, प्रेम-सरिता, मन-मृग, तिय-तिथि हृदय-हिडोल आदि क्रमश इन्ही क्षेत्रो के उदाहरण है।

विहारी के अप्रस्तुत दरवारी **वातावरण से, देव के पशु पक्षीजगत और घरेलू जीवन से** आये है। इन अप्रस्तुतो का **प्रतीकात्मक अर्थ** कवि की वृति को स्पष्ट करता है। देव ने नायिका को 'पिंजरा की चिरी' कह कर पीडा, वेदना, तडफन आदि मानसिक स्थितियो का वर्णन किया है। घरेलू अप्रस्तुतो मे देव ने मन के लिये मोम, माखन, घी आदि के प्रयोग से **द्रवणशीलता** का सकेत किया है। मध्यकाल मे अप्रस्तुतो के चुनाव मे दो वातो का ध्यान रखा गया है।

---

[1] पॉव धरे अलि ठौर जहाँ तेहि ओरते रग की धार सी धावति
भीतर भौनते वाहिर लौ द्विजदेव जुन्हाई की धार सी धावति।
सुन्दरी–तिलक।

(१) रूप और प्रेम को उद्दीप्त करने वाले अप्रस्तुत।

(२) इन प्रस्तुतो का तीन क्षेत्र है (i) सामान्तीय जीवन मे वैभव-विलास और रूप की आसक्ति दिख पडती है। (ii) घरेलू जीवन के अप्रस्तुतो मे द्रव्णशीलता है (iii) प्रकृति पशु-पक्षी के जीवन से गृहीत अप्रस्तुतो द्वारा नायिका की सयोग-वियोग सम्बन्धी मानसिक भावना व दशा का वर्णन किया गया है। इस अप्रस्तुत योजना का आधार सादृश्य है जो तीन रूपो–**रूप सादृश्य, धर्म-सादृश्य और प्रभाव सादृश्य** मे प्रकट होना है।

रूप सादृश्य— सादृश्यमूलक अप्रस्तुत योजना मे आकार के साथ वस्तु का भावात्मक बोध भी कराया जाता है। यहा रूपानुभूति की तीव्रता का महत्व अधिक हो जाता है।

रूप साम्य मे अप्रस्तुत विधान का लक्ष्य वस्तु चित्रण को रमणीय वना कर उसे उत्कर्प देना होता है। इससे सहृदय की कल्पना उद्दीप्त होती है। रूप–साम्य से वस्तु चित्रण रमणीय होता है। इस सादृश्य विधान का मुख्य उद्देश्य सौन्दर्य का बोध करना होता है। उपमानो द्वारा वर्ण्य वस्तु का चित्र उपस्थित हो जाता है परन्तु रीतिकाल का रूप–वर्णन नख-शिख की सीमा मे रूढिबद्ध हो गया है। सस्कृत साहित्य मे प्रयुक्त उपमानो का पिप्ट-पेषण ही अधिक हुआ है। ऐसे परम्परागत उपमानो से रूपानुभूति मे तीव्रता नही आती।

धर्म साम्य—का एक अच्छा उदाहरण दास कवि ने दिया है। "हरख मरु धरनि को नीर भौ री। जियरो मदन तीर गन को तुनीर भौ।" इसमे मरु-भूमि की विशेषता पानी को सोख लेने मे है। इस धर्म के साम्य से हर्ष के क्रमश विलीन हो जाने की क्रिया को प्रत्यक्ष किया गया है। धर्म साम्य का यह उदाहरण अछूता होने से सौन्दर्य को बढाने वाला हो सका है। इससे उत्पन्न रमणीयता द्वारा वर्णन प्रभाव पूर्ण हो जाता है। यह रूप साम्य की अपेक्षा सादृश्य का सूक्ष्मतर विधान करता है।

प्रभाव साम्य—अप्रस्तुत योजना की इस सीमा मे सूक्ष्म तत्व के प्रभाव की व्यज्जना होती है। इससे आलम्वन का प्रभाव अधिक पूर्ण होता है। पुरुष-सौन्दर्य की अभिव्यक्ति मे प्रभाव साम्य की व्यज्जना अधिक है, क्योकि उसी के रूपादि से प्रभावित होकर नायिकाओ की विभिन्न स्थितियो का चित्रण होता रहा है। देव का एक उदाहरण देखिए ~

ये अँखिया सखि आनि तिहारियै. जाय मिली जल बूँद ज्यो कूप मे।
कोटि उपाय न पाइए फेरि समाइ गई रग राहू के रूप मे।

श्री कृष्ण के रूप मे ये आँखे उसी प्रकार जाकर समा गई जैसे जल विन्दु कूप मे समा कर लय हो जाता है। इसमे प्रभाव का साम्य है, जो लय होने के व्यापार द्वारा स्पष्ट हो जाता है।

सँभावना मूलक साहश्य-योजना मे उत्प्रेक्षा अलकार **लोकानुभूति और कल्पना पर** आधारित होकर अत्यधिक काव्य सौन्दर्य का सर्जक वन जाता है, परन्तु रूढियो के निर्वाह मे पडकर वहुज्ञता का प्रदर्शन नीरस हो उठता है। नख-शिख मे दूर की सूझ वाले ऐसे अप्रस्तुतो का प्रयोग होता है। वास्तव मे उत्प्रेक्षा द्वारा चमत्कार पूर्ण लालित्य के आ जाते से काव्य सौन्दर्य की श्रीवृद्धि हो जाती है। "हार मानि प्यारी विपरीत के विहार लागि, सिथिल सरीर रही साँवरे के तन पर, मानहु सकेलि केलि केतिको कला की करि, थाकी है चलाकी चचला की छोर घन पर।" यहाँ केलि का क्रीडात्मक पक्ष मूर्तिमान हो गया है। इससे रूप की चेतना जागृत होती है। भावानुभूति को तीव्र करने वाले अप्रस्तुतो की योजना भी मिलती है। अप्रस्तुनो मे चमत्कार मूलक, और अतिशयमूलक अलकारो के द्वारा भी रूप की या दशा की तीव्रता वताई गई है। निष्कर्ष यह है कि जहा परम्परायुक्त साहश्य विधान है, वहाँ वह काव्योत्कर्ष मे सहायक नही हुआ है, परन्तु अन्य स्थलो पर ये अप्रस्तुत रूप-चेतना और भाव की अनुभूति कराने मे समर्थ हुए है। रूप-चेतना की प्रवलता मे तो सदेह का स्थान ही नही है, देव, घनानन्दादि ने भावानुभूति का अधिक ध्यान रखा है। कलागत इन सभी विशिष्टताओ का उद्देश्य मानवीय सौन्दर्य का उत्कर्ष दिखाना है।

मानवीय-सौन्दर्य—

इस जगत की प्रत्येक वस्तु मानव के आकर्षण का केन्द्र हो सकती है। मानव वस्तु को देखकर उसे अधिकाधिक सुन्दर ढग से व्यक्त करना चाहता है। वस्तु की प्रथम अनुभूति उसके मन मे जिज्ञासा उत्पन्न करती है। उसकी कलात्मक वुद्धि उसमे सुन्दरता का आधान कर देती है। इससे उस वस्तु के स्वरूप का रसास्वादन करने मे तृप्ति होती है। कलाकार के हृद्देश मे आकर्षक वस्तु के ऐन्द्रिय सन्निकर्ष से आध्यात्मिक सत्व प्रधान भावनाओ की जागृति होती है, यह जागृति उसकी मानसिक अनुभूति है। इसी को वह कलात्मक ढग से अभिव्यक्त करके उसमे सौन्दर्य की सृष्टि कर देता है। यहाँ कलाकार अपनी सौन्दर्यानुभूति को मूर्त रूप देता है और सहृदय उन मूर्तिमान भावो का आस्वादन करके तृप्त होता है। यो तो कलाकार के अनुभव की यह प्रेरणा उसे जगत की सभी वस्तुओ से मिलती है, परन्तु मानव उसे सवसे अधिक प्रेरित करता है। इसी से उसने अपनी अनुभूति का आधार मानव

जगत को बनाया और उसके सुन्दरतम रूप की अनुभूति करके चराचर विश्व सौन्दर्य का अनुभव करने लगा। मानव के इसी सौन्दर्य के माध्यम से कलाकार प्रकृति या वस्तु सौन्दर्य की ओर उन्मुख होता है। अत. प्रकृति की उपयोगिता अथवा उसके सौन्दर्य का मूल्याकन मानव भावो की सापेक्षता मे है। यह उपयोगिता सौन्दर्य के निर्धारण मे सहायक होती है। उपयोगिता के आधार पर वस्तु या व्यक्ति के सौन्दर्य का मूल्य घटता-बढता रहता है। यह उपयोगिता स्थूल दृष्टि से भौतिक तत्वो के उपभोग से तथा सूक्ष्म दृष्टि से मानसिक तृप्ति से आती है। भौतिक तत्वो के उपभोग का प्रमुख साधक माध्यम सौन्दर्य है और मानसिक तृप्ति मे आन्तरिक भावनाओ की प्रमुखता होती है। इस शारीरिक सौन्दर्य के उपभोग और तज्जन्य मानसिक आनन्द का प्रमुख आधार मानव है। अत मानव सौन्दर्य तथा उस सौन्दर्य को बढाने वाले साधनो एव अन्य उपकरणो को सौन्दर्य के अन्तर्गत माना जायगा।

मानव सौन्दर्य की चर्चा करते ही उसकी परिधि या सीमा का ध्यान आ जाता है। यो तो इस सौन्दर्य की अनन्तता और असीमता का गुणगान अधिकाश भावुक शृङ्गार कवियो ने किया है, परन्तु इस सौन्दर्य वर्णन के आलम्बन की एक सीमा है। वह सीमा नारी और पुरुष के सौन्दर्य वर्णन की है। इनमे से केवल एक का सौन्दर्य वर्णन मानव की सम्पूर्णता की दृष्टि से अपर्याप्त है। मानव के पूर्ण सौन्दर्य की अभिव्यक्ति स्त्री और पुरुष दोनो को ही आधार बनाकर हो सकती है। स्त्री की शारीरिक कोमलता पुरुष की परुषता से मिलकर मोहक बन जाती है। इन दोनो गुणो का अस्तित्व एक दूसरे का पूरक है। पुरुष-सौन्दर्य वर्णन मे उसका पौरुष सदैव आकर्षक होता है और स्त्रियो की रमणीयता हृदय को आवर्जित कर लेती है। पुरुष-वर्णन मे उसकी शारीरिक कोमलता आदि का वर्णन भी मिलता है, परन्तु नारी-सौन्दर्य वर्णन की तुलना मे इसकी मात्रा कम है। हिन्दी का भक्ति साहित्य बालक के मधुर एव अबोध सौन्दर्य के अकन मे प्रमुख है और रीतिकालीन साहित्य नारी के रमणीय रूप की मधुरता और सौन्दर्य का अकन करता है। इस प्रकार भक्ति काल मे पुरुष-सौन्दर्य और रीतिकाल मे नारी-सौन्दर्य का वर्णन करके मानव-सौन्दर्य की दृष्टि से सामञ्जस्य स्थापित किया गया है। इन दोनो के सम्मिलित सौन्दर्य मे उत्पन्न पूर्णता को मानव-सौन्दर्य की सज्ञा प्राप्त है। इस सौन्दर्य मे अन्त-र्निहित लावण्य, छवि या कान्ति की रहस्यात्मक जिज्ञासा के प्रति कृष्ण काव्य का मध्यकालीन कवि प्राय मौन है। इससे उसका सौन्दर्य वर्णन रहस्यात्मक न होकर स्पष्ट हो गया है। यह स्पष्टता स्त्री और पुरुष दोनो के ही वर्णनो मे मिल जाती है।

कवि प्राय इन दोनो का वर्णन करता है। वह अपनी विभिन्न अनुभतियो को समाज की सौन्दर्य चेतना से मिलाकर जिस सौन्दर्य की अभिव्यक्ति करता है, उसका प्रधान आधार स्त्री और पुरुष को ही बनाता है। यहाँ इन दोनो के सौन्दर्य का स्पष्टीकरण हो जाना आवश्यक है।

कवियो ने प्राय पुरुषो के सौन्दर्य का वर्णन कम किया है। पुरुष की शारीरिक कठोरता के वर्णन मे उनकी वृत्ति रम नही सकी। अगो की सुकुमारता अथवा रमणीयता जैसे गुणो को पुरुष वर्णन का आधार नही माना गया। इन कवियो की दृष्टि मे पुरुप का सौन्दर्य अवयव के समुचित तथा समानुपातिक निर्माण मे उतना नही है, जितना उसके कर्म मे है। इसी से पुरुष के अग-प्रत्यग वर्णन मे कवि अपनी रुचि की स्थिरता नही रख पाता। पुरुप का नख-शिख उसके वर्णन का गौण पक्ष है। जहाँ कही ऐसा हुआ है, वह बाल-रूप वर्णन के प्रसग पर है। कृष्ण काव्य मे गोपियो की रति भावना को उद्‌बुद्ध करने के लिये भी इस नख-शिख का सक्षिप्त वर्णन मिल जाता है। रीति काल के 'ग्वाल' जैसे दो एक कवियो ने श्रीकृष्ण के नख-शिख वर्णन मे स्वतन्त्र ग्रन्थो का सृजन किया है परन्तु पुरुप-वर्णन की परम्परा प्रचलित न हो सकी। अत पुरुप-सौन्दर्य का निर्धारण अग-प्रत्यग वर्णन के द्वारा न होकर उसके शील और कर्त्तव्य पालन द्वारा होने लगा।

पुरुपो मे कर्त्तव्य पालन की यह धारणा उसे लोक-हित की प्रेरणा देती है। जो व्यक्ति अपने कर्तव्य पूर्ण करने मे सचेष्ट रहेगा, उसी का व्यक्तित्व आकर्षक माना जाता है। ऐसे व्यक्तियो का कार्य क्षेत्र युद्ध और दुष्ट-दमन द्वारा लोक-कल्याण करना है। उसकी सुन्दरता देश रक्षा द्वारा निर्धारित की जाती है। उसका कर्म सौन्दर्य दया, क्षमा, आत्म-निग्रह, कष्ट-सहिष्णुता द्वारा निखरता है। पुरुष सौन्दर्य के इस अश की चर्चा वय प्राप्त व्यक्तियो की दृष्टि से की गई है। कृष्ण साहित्य पुरुष सौन्दर्य के इस रूप की ओर केवल सकेत मात्र कर सका है।

हिन्दी के कृष्ण कवियो ने पुरुष सौन्दर्य के बाल एवं वय प्राप्त रूपो को ग्रहण किया है। कृष्ण का लोक रक्षक रूप उनकी लोकरजकता मे ही निहित है। कर्त्तव्य पालन व असुर सहार के कर्मों का सौन्दर्य दीख पडता है, परन्तु कवियो ने इस रूप को महत्व नही दिया। उन्होने श्रीकृष्ण के मोहक रूप की ही अवतारणा की है। शिशु सौन्दर्य की मोहकता एव उल्लास का वर्णन सूर आदि भक्त कवियो ने किया है। उन्होने बालक के स्वभाव की निष्कपटता, सरलता और अबोधपन का अच्छा चित्र अकित किया है। इस रूप

को वय-क्रम से चार अवस्थाओ मे विभाजित कर सकते है —(१) कौमार, (२) पौगण्ड, (३) किशोर, (४) यौवन।

हरि भक्ति रसामृत सिन्धु मे इन अवस्थाओ का वर्णन है। कौमारावस्था जन्म से पाँच वर्ष की अवधि तक मानी गई है, छ वर्ष से दश वर्ष तक पौगण्डावस्था, दश वर्ष के पश्चात् सोलह वर्ष तक का समय किशोर और उसके बाद की अवस्था को युवावस्था माना गया है।[1] इनमे उज्ज्वल रस के लिये किशोरावस्था सर्व श्रेष्ठ है। इस अवस्था मे वर्ण की उज्ज्वलता, नेत्रान्त मे चारु छवि आदि प्रकट हो जाती है। रोमावली सघन हो जाती है। प्रसाधनो मे वैजयन्ती माला, मोर पख, नटवरवेष, वस्त्र आदि से शोभा बढती है, वशी की मधुरिमा से व्यक्तित्व का आकर्षण बढ जाता है।[2] यही कारण है कि रीतिकालीन कवियो ने पुरुष रूप मे श्रीकृष्ण की इसी अवस्था के वर्णन को प्रश्रय दिया है और भक्ति काल मे इसके पूर्व की अवस्था को काव्य का विषय बनाया है। इस किशोर रूप की आद्य, मध्य और शेष तीन अवस्थाओ की स्पष्ट विभिन्नता इस काव्य मे नही मिलती, परन्तु वर्णनो को पढने से ऐसा लगता है कि रीतिकाल के किशोर रूप की रसिकता यौवनोन्मुख है। अत यह किशोर वय के 'शेष काल' का वर्णन है। भक्ति काल का यह वर्णन 'किशोर वय' की शेष दो अवस्थाओ का सूचक माना जा सकता है, क्योकि रीतिकाल जैसी मासलता एव कामुक तरलता इस युग मे नही है, फिर भी निश्चयात्मक रूप से एक विभाजक रेखा खीच देना सरल नही है। भक्ति काल मे बालक रूप के कौमार, पौगण्ड और कैशोर रूप की चर्चा एव उसके सौन्दर्य की अभिव्यञ्जना अधिक हुई है। किशोर रूप की वर्णित चेष्टाओ से श्रीकृष्ण के 'आद्य, मध्य

---

1 "वय कौमार पौगण्ड कैशोरमिति तत् त्रिधा।
कौमार पञ्चमाब्दान्त, पौगण्ड दशमावधि।
आषोडषाच्च कैशोरं यौवनं स्यात्तत परम्।"
हरिभक्ति रसामृत सिन्धु। कारिका ११९-१२० दक्षिण विभाग।
प्रथम लहरी। अच्युत ग्रन्थ माला काशी स० १९८८ वि०।

2 वर्णस्योज्ज्वलता काऽपि नेत्रान्ते चारुणच्छवि।
रोमावली प्रकटता कैशोरे प्रथमे सति।
वैजयन्ती शिखण्डादि नटप्रवरवेषता।
वशी मधुरिमा वस्त्र शोभा चात्र परिच्छद।
वही। पृ० १८८ छद १२३-१२४-१२५।

और शेष' इन तीनो अवस्थाओ की सूचना मिल जाती है, परन्तु इसके और रीतिकाल के वर्णनो मे 'कैशोरावस्था का कौनसा रूप कब प्रकट हो जायगा, यह नही जा सकता। अवसर और प्रसग के अनुकूल विभिन्न चेष्टाओ द्वारा इस वय का अनुमान लगाया जा सकता है, फिर भी यह कहना अत्युक्तिपूर्ण नही होगा कि भक्तिकालीन साहित्य ने किशोर रूप के 'आद्य' और 'मध्य' अवस्था के सौन्दर्य को और रीतिकाल ने इसके 'शेष' अवस्था के सौन्दर्य को महत्व दिया है। इस सौन्दर्य के अकन मे तथा उसका एक बिम्बात्मक स्वरूप उपस्थित करने मे कवियो ने प्रकृति से अप्रस्तुत योजना मे उपमानो को ग्रहण किया है। कवि की अपनी अनुभूतियाँ सौन्दर्य के साक्षात्कार से नये रूप मे प्रकट होती है। कवि के मस्तिष्क मे वर्तमान बिम्बो मे से अप्रस्तुतो को ग्रहण कर सौन्दर्य का स्फुरण होता रहता है। इन बिम्बो के लिये इन कवियो ने 'तटस्थ' शोभा विधायक तत्वो मे परम्परागत उपमानो को ग्रहण किया है। ये उपमान प्रकृति अथवा व्यावहारिक जीवन की अनुभूतियो का आधार लेकर प्रयुक्त हुए है। मानव जीवन की सापेक्षता मे प्रकृति की इन वस्तुओ को अनुकूल अनुभव करते हुए कवियो ने उनके गुण, क्रिया अथवा रूप का साम्य उपस्थित किया है। इससे प्रस्तुत की रमणीयता बढती है और उसमे इन्द्रियो की अनुकूल वेदनीयता उत्पन्न होने से वह वस्तु भी सुन्दरता या सुखदता का साधक बन जाती है। इस प्रकार मानवीय सौन्दर्य के सदर्भ मे साधक उपकरणो को भी सौन्दर्य की सज्ञा प्राप्त हो जाती है। इन उपकरणो का क्षेत्र असीम विश्व हे। विश्व की सभी कोमल, सुखद, रमणीय, प्रसाधक वस्तुएँ प्रयुक्त होती है। इनका प्रयोग किसी न किसी रूप मे करके मानव अपने सौन्दर्य का वर्द्धन करता है। इस सौन्दर्य का प्रयोग या उपभोग पुरुष और नारी दोनो ही करते है। इनमे पुरुष सौन्दर्य के शिशु बाल आदि अनेक अवस्थाओ का अकन किया गया है। यह सौन्दर्य नारी सौन्दर्य के बिना अधूरा है। अत भक्तिकालीन कवियो ने पुरुष के बाल, कौमार आदि विभिन्न रूपो का सुन्दर और हृदयग्राही चित्र प्रस्तुत किया है। इस रूप चित्र का पूर्ण विकास रीतिकालीन नायिका चित्रण के सयोग से हो सका है। इस काल मे वय सन्धिकाल की बदलती हुई शारीरिक एवं मानसिक परिस्थितियो तथा भावनाओ से आरम्भ करके प्रौढात्व को प्राप्त नायिकाओ की विभिन्न शारीरिक, मानसिक परिवर्तनो का सुखद एव शोभा जनक वर्णन मिल जाता है। अत पुरुष और नारी सौन्दर्य मिल कर पूर्ण मानव सौन्दर्य को व्यक्त करते हैं। अगली पक्तियो मे मानव सौन्दर्य के नारी सौन्दर्य विषयक विचारो का अनुशीलन होगा।

मानवीय सौन्दर्य की पूर्णता नारी-सौन्दर्य वर्णन से आती है। नारी की कोमलता, सुकुमारता और रमणीयता कवियो के रसिक हृदय को आकर्पित कर लेती है। वह नारी के रूप, वय, अग, चेष्टा आदि को देखकर मुग्ध होता है। उसके प्रति अनुभूतियो की प्रशसात्मक प्रवृत्ति को काव्य के माध्यम से व्यक्त करता है। नारी के रूप की रीझ उसे विभिन्न दृष्टियो से देखने की प्रेरणा देती है। यहाँ कवियो के मन मे नारी के प्रति सहज आकर्षण के कारणो के प्रति जिज्ञासा का उठना स्वाभाविक है। नारी को ही वर्णन का आधार क्यो माना गया ? पुरुष की महत्ता नारी की तुलना मे कम क्यो है ? इन प्रश्नो का समाधान अपेक्षित है।

विचार करने से प्रतीत होता है कि आलोच्य काल के कवियो की दो दृष्टियाँ थी —(१) भक्ति परक दृष्टि—इसमे अपने आराध्य अथवा आराध्या को सम्पूर्ण जगत की सुन्दरता से अधिक सुन्दर रूप दिया गया है। इस सौन्दर्य निरूपण मे 'सौभग सीवा', 'अनन्त-शोभा', शोभा-सिन्धु' आदि शब्दो का प्रयोग हुआ है।[1] पुरुष-पक्ष मे इस प्रकार के सौन्दर्य-वर्णन का मूल उद्देश्य नारी के मन मे सौन्दर्य के इस आलम्बन के प्रति रति-भाव उत्पन्न करना है। रति शृङ्गार रस का स्थायी भाव है। शृङ्गार मे अनुकूल प्रकृति के नायक-नायिका के मानसिक भावो एव शारीरिक क्रियाओ आदि की प्रियता के सदर्भ मे एक दूसरे के प्रति आकर्षण उत्पन्न होता है। इस आकर्षण का मूल अवयव का सुन्दर, सुगठित और सुढर होना है। इसलिए स्त्री-पुरुष दोनो का सौन्दर्य निरूपिण होता है। पुरुष-सौन्दर्य निरूपण मे आराध्य के सौन्दर्य की असीमता वर्णित है। इसका उद्देश्य रूप की लीनता है। इसी लीनता से 'रति' भाव का सचार होता है, परन्तु स्त्री-सौन्दर्य के अभाव मे यह लीनता एकागी होगी। रति की पूर्णता के लिए पुरुष के मन मे स्त्री-सौन्दर्य का आकर्पण आवश्यक है। भक्ति काल मे स्त्री-सौन्दर्य के वर्णन का उद्देश्य पुरुष को रिझाना था। पुरुष स्त्री

---

1 (i) देखो माई सुन्दरता को सागर। सूर सागर (सभा)

(ii) सोभा सिन्धु न अन्त रही री। ,, ,,

(iii) कृष्णदास प्रभु गोवर्धनधर, सुभग सीव अभिराम
अष्ट० परि० पृ० २३५

(iv) "अरी यह सुन्दरता को हद।" गोविन्द स्वामी
अष्ट० परि० पृ० २५६

(v) कुम्मनदास प्रभु सौभग सीवां, गिरधर धर सिर मौर। अष्ट० परि०

की अंग-सुन्दरता और प्रसाधन से उत्पन्न होने वाले आकर्षण से रीझ सकता है। इस दृष्टि से नारी-सौन्दर्य का वर्णन किया गया है—

"औचक ही देखी तँह राधा, नैन विशाल भाल दिये रोरी।
नील वसन फरिया कटि बाँधे बेनी रुचिर भाल झकझोरी।
सूर स्याम देखत ही रिझै नैन-नैन मिलि परी ठगोरी। सूर सागर

इस उद्धरण से श्रृङ्गार की उपयोगिता मूलक भावना व्यक्त हुई है। भक्ति काल मे स्त्री-सौन्दर्य एव सौन्दर्य प्रसाधनो के वर्णन मे यही दृष्टिकोण कार्य करता है। इस प्रकार का सौन्दर्य-वर्णन तीन प्रसगो पर प्राप्त होता है—

१. कृष्ण द्वारा गोपी या राधा के रूप-प्रसाधन आदि से उत्पन्न सौन्दर्य का वर्णन।

२ गोपी द्वारा राधा के सौन्दर्य, अवयव या प्रसाधनादि का वर्णन।

३. कवि की ओर से सौन्दर्यादि का वर्णन।

इन सभी प्रसगो पर वर्णनो का उद्देश्य मन मे आराध्य के प्रति भक्ति-भाव को उत्पन्न करना था। इन कवियो का रूप-सौन्दर्य वर्णन स्वय मे साध्य नही था, अपितु प्रिय की महत्ता प्रतिपादित करने मे साधन मात्र था। इससे इनका यह वर्णन अपनी सहज और स्वाभाविक सौन्दर्य चेतना से प्रादुर्भूत हुआ है। भविष्यत् रीतिकालीन कवियो के समान वह प्रयत्न साध्य नही है। इसी से इन वर्णनो मे सच्चाई और वास्तविकता हे। रीतिकालीन सौन्दर्य चेतना प्रयत्न साध्य होते हुए भी अनुभूति की सघनता के कारण पूर्ण सजीव एव सचेतन है। यह रीति परक दृष्टि सौन्दर्य को समझने मे सहायक हो सकती है।

(२) **रीतिपरक दृष्टि**—इस काल के सौन्दर्य वर्णन के उद्देश्य और रूप मे अन्तर आ गया। सामाजिक विलासिता की बढनी हुई भोग-परक भावना ने बहु-पत्नीत्व और परकीयात्व की स्थापना कर दी। बाल्य-काल की समाप्ति से ही कन्याओ के मन मे अनग-भावना स्फुरित होने लगी। वय क्रम के साथ रूप-लावण्य का निखार एक सीमा तक होता है। यहाँ तक स्त्रियाँ आकर्षण की केन्द्र विन्दु वनी रही, परन्तु रूप के ह्रास काल मे आकर्षण को वनाये रखने के लिए रूप-प्रसाधक उपकरणो का प्रयोग होने लगा। यौवन-काल मे नायिकाओ के विभिन्न गुण, चेष्टा आदि नायक को आकर्षित करने के प्रधान उपकरण थे, परन्तु नायक की अत्यधिक रसिकता नायिका के मन मे अन्य रमणियो के प्रति स्पर्द्धा का भाव उत्पन्न कर अपने को अधिक से अधिक आकर्षक वनाने की प्रेरणा देने लगी। स्वय स्त्रियो ने भी अनेक पुरुषो से भोग

का समर्थन किया है।[1] यह तभी सम्भव हो सकता था, जब स्त्री सुन्दरी और यौवनवती हो। इसके साथ रति भाव को जागृत करने वाली चेष्टा, प्रसाधन और शृङ्गार से उसकी महत्ता और आकर्षण बढ गया हो। इस दृष्टि से नारी रति की मूल प्रेरिका के रूप मे प्रतिष्ठित हो गई और उसका यह रूप मोहक और आकर्षक हो गया। रीतिकाल की सौन्दर्य-चेतना मे नारी की प्रधानता का यही कारण है, यह प्रधानता सम्पूर्ण काव्य मे छाई हुई लक्षित होती है। इसी से स्थान-स्थान पर नारी का अग-प्रत्यग, आभूषण एव अन्य बाह्य साज-सज्जा, सोलह शृङ्गार, अनुलेपन आदि का विस्तृत वर्णन मिलता है। सौन्दर्य के उत्कर्षक इन साधनो के अतिरिक्त नायिका की चेष्टाएँ उसकी अवस्था, अवस्थाजन्य शारीरिक एव मानसिक विकास, गुण आदि की महत्ता अस्वीकार नही की जा सकती। देखा जाता है कि यौवनवती होती हुई भी रूखे अगो वाली, अग-कान्ति से शून्य, मार्दव, सौकुमार्य और माधुर्य-रहित, उद्दीपक चेष्टाओ के प्रभाव से अनभिज्ञ नायिका रति भाव का सचार करने मे समर्थ नही हो पाती है। अत यौवन मे उत्पन्न होने वाले गुणो, चेष्टाओ, अलकारो तथा बाह्य साधनो मे प्रसाधक उपकरणो और रति भाव को उद्दीप्त करने मे प्रस्तुत वातावरण आदि का बहुत महत्व है। इस दृष्टि से नायिका या नायक-रूप आलम्बन के सौन्दर्य के साधक सम्पूर्ण उपकरणो की दो कोटियाँ की जा सकती है—

१ आत्मगत उपकरण

२ बाह्य उपकरण

आत्मगत उपकरण—

आलम्बन से साक्षात् सम्बन्ध रखने वाले सौन्दर्य के उत्कर्षक तत्वो को आत्मगत उपकरण कहते है। इन उपकरणो का सीधा सम्बन्ध नायक अथवा

---

1 कैसे वे जियत नारी एक ही पुरुष पागी,
कैसे हियकमल सदाई खिलिबो करै।
एक ही सवाद तै भरत मन कैसे दैया,
रसना सो षट रस ही को मिलिबो करै।
ग्वाल कवि भौरनि पीयत रस फूल-फूल,
बीजुरी हू घन-घन मिलि हिलिबो करै।
वेल को बिलोकि एक तरु सो प्रथम लगि,
पुन पास-पास के तरुन मिलिबो करै।
रसरग—ग्वाल। तृतीय तरग छन्द ६६

नायिका से रहता है । ये तत्व आलम्बन के शरीर से स्वत प्रकट हो जाते है । स्वय-सभूत इन तत्वो मे नैसर्गिकता होती है । ये दो रूपो मे प्रकट होते है —

१ गुण
२. चेष्टा

गुण—अवस्था विशेष मे नायक या नायिका की शारीरिक एव मानसिक विशेषताओ का नाम गुण है । मुख्यत नायिका मे इन गुणो का विकास होता है । नायिका ही पुरुष के आकर्षण की केन्द्र रहती है, उसी की रूप-मदिरा अपना मादक-प्रभाव उत्पन्न करके पुरुष को अपने पर आसक्त करती है । आसक्ति की यह प्रवृत्ति उत्पन्न करने मे नायिका के गुण सहायक होते है । इन गुणो का विभाजन **कायिक, मानसिक और वाचिक** रूप मे किया गया है ।

कायिक गुण—शरीर से सम्बन्धित नायिका के व्यक्तित्व की शोभा को बढाने वाले तथा उसमे आकर्षण उत्पन्न करने वाले तत्वो को कायिक गुण कहते है । इन विशेषताओ के आविर्भूत हो जाने पर अगो मे एक नवीनता आ जाती है, व्यक्तित्व का आकर्षण बढ जाता है और नायिका का सुन्दरी नाम सार्थक प्रतीत होता है । इन गुणो मे **वय, रूप-लावण्य, अभिरूपता, मार्दव, सौकुमार्य** की गणना होती है ।

वय—इस शब्द से आयु का ज्ञान होता है । रूप-सौन्दर्य के वर्णन मे आयु का विशेष महत्व है । इसका प्रचलित अर्थ युवाकाल है । इस काल मे विभिन्न अगो का विकास और उसमे परिवर्तन होने लगता है । यह परिवर्तन रूप को निखार कर नायिका के आकर्षण को बढा देने मे समर्थ सिद्ध होता है । अगो के परिवर्तन और विकास की दृष्टि से इस यौवन काल को चार वर्गो मे विभाजित करेगे :—

१. वय सन्धि काल ।
२. नव्य-यौवन ।
३ व्यक्त-यौवन ।
४ पूर्ण-यौवन ।

वय सन्धि काल—इस काल से यौवन का आरम्भ माना गया है । इसमे अबोध अवस्था वाली, लज्जाशील किशोरी नायिका का चित्रण होता है । यह यौवन और बालपन का सन्धि काल है । एक ओर नायिका की बालपन की प्रवृत्तियाँ और दूसरी ओर आगिक परिवर्तनो के प्रति जिज्ञासा का भाव रहता है । काम की कथाओ के श्रवण मे अभिरुचि हो जाती है । सेनापति ने कहा है कि, "काम की कथान को कनाटरी दे सुनन लागी", और, "सेनापति काम भूप

सोवत सो जागत है।" इनमे प्रथम उदाहरण मे वय सन्धिकाल की बदलती हुई मानसिक भावनाओ का और द्वितीय मे उस काल की मानस-शरीर का वर्णन है। मानसिक भावनाओ की अस्थिरता इस काल की प्रधान विशेषता है। इसका वर्णन अनेक कवियो ने किया है। गग ने मानसिक स्थिति की तरलता और झलक को शीशी मे रखे जल के समान वताया है।[1] सोमनाथ की दृष्टि मे नायिका की स्थिति असतुलित तुला जैसी है।[2] मतिराम की नायिका का मन अब गुडियो के खेल मे न लगकर साँवरे के रंग देखने की ओर प्रवृत होने लगा है।[3] इन उदाहरणो से ऐसा प्रतीत होता है कि वय सन्धिकाल के वर्णन मे कवियो की तीन भावनाएँ थी (१) नायिका की भावनाओ मे परिवर्तन एव मानसिक स्थितियो की अस्थिरता (२) शारीरिक-परिवर्तन मे वालपन और युवापन का मिश्रण। इन दोनो के स्पष्टीकरण के लिये कवियो ने साहृश्य-विधान द्वारा अप्रस्तुतो का उपयोग किया है। (३) इस काल की तीसरी भावना नायिका का अपने अगो के प्रति जिज्ञासा प्रकट करना है, जिसका स्पष्ट रूप नव्य-यौवन मे दीख पडता है।

नव्य-यौवन—इसमे नायिका वालपन से छूटकर यौवन काल मे पदार्पण करती है। यौवन आगमन के चिह्न अगो मे दीख पडने लगते हैं। स्तनो की मुकुलित अवस्था, नयनो की चचलता, मन्द मुस्कान और भावो का किञ्चित् स्फुरण होने लगता है।[4] यौवन के नवीन आगमन से शारीरिक परिवर्द्धन के साथ ही अनुभावो से सौन्दर्य की वृद्धि होने लगती है। वय सन्धिकाल दो अवस्थाओ का मिलन स्थल है। इस काल मे बालपन और युवापन दोनो ही

---

1 सीसी मे सलिल जैसे, सुमन पराग तैसे,
सिसुता मे झलकति जोबन की झाई सी।
व्र० सा० का नायिका भेद पृ० २३२

2 बीती लरिकाई न, झलक तरुनाई आई,
निरखै सुहाई अग औरै औप अति है।
तुला चल चक्र मन की मी दिन राति कौ,
उघटि बढी है न सधि ठीक ठहरति है। वही पृ २३२

3 कारन कौन भयो सजनी, यह खेल लगै गुडियान को फीको।
काहे ते साँवरे अंग छबीलो, लगै दिन द्वैक मे नैननि नीको। पृ० २३४

4 दरोद्भिन्नस्तन, किंचिच्चलाक्ष, मन्थरस्मितम्।
मनागपि स्फुरदभाव नव्य यौवनमुच्यते। उज्ज्वल नीलमणि।

भावनाओ की प्रवलता रहती है। मन कभी वाल-क्रीडाओ की ओर जाता है और कभी 'काम' केलि के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न होती है। इसमे दोनो कालो की झलक रहती है। विहारी ने इसी से इसकी तुलना 'तापता रग' से की है।[1] नव्य-यौवन मे शिशुता समाप्त प्राय होती है। इस काल मे शिशुत्व की भावना यौवन की तुलना मे क्षीण हो जाती है। वय सन्धिकाल मे दोनो की समान स्थिति और नव्य-यौवन मे वालपन की क्षीण स्थिति होती है। इसमे कुच कुछ उठने लगते है, अधरो मे मधुरिमा आ जाती है, अगो मे ज्योति का आविर्भाव होने लगता है।[2]

व्यक्त यौवन—का स्वरूप शारीरिक विकास के आधार पर वताया जा सकता है। नाम से ही स्पष्ट है कि इस काल मे यौवन व्यक्त हो जाता है। इसमे स्तनो की मुकुलित अवस्था मे विकास हो जाता है। त्रिवली दीखने लगती है और अंग उज्ज्वल हो जाते है।[3] इन गुणो का समर्थन रूप गोस्वामी ने भी किया है। नव्य-यौवन और व्यक्त यौवन की मूल भिन्नता यौवन के आरम्भ और विकास की अवस्थाओ मे है। नव्य-यौवन मे शिशुताई की झलक वनी रहती है, व्यक्त-यौवन मे इसका कोई स्थान नही है। इस काल मे अ गो का उभार व्यक्त हो जाता है, नव्य-यौवन मे उसका आरम्भ मात्र होता है। यथा —

दौरि चली कुसुम-चरन सुकुमारताई, चरन चले है गरुवाई के पथन को।
गरुवाई छतियाँ को, छतियाँ ऊँचाई को, ऊचाई चोजरसमय वास अरथन को।
कहे 'हरिकेस' सिसुताई के चलाचले मे, कहा कहौ चलौ चित लाजके सथन को।

---

1 छुटी न शिशुता की झलक, जौवन झलक्यौ अग।
दीपति देह दुहुन मिलि, दिपति ताफना रग। सतसई

2 (i) ए अलि ! जा वलि के अधरान मे, आनि चढी कछु माधुरई सी।
ज्यो 'पद्माकर' माधुरी त्यो कुच, दोऊन की बढती उनई सी।
ज्यो कुच त्योही नितम्ब वढै कछु ज्योही नितम्ब त्यो चातुरईसी।
जानी न ऐसी चढा चढि मे, केहि धौ कटि बीच ही लूट लई सी।
व्रज-साहित्य का नायिका भेद पृ० २२८

(ii) कौन रोग दुहु छतियन उकस्यौ आय।
दुखि-दुखि उठत करेजवा लगि जनु जाय ।। रस-रत्नाकर पृ० ११२

3 वक्ष प्रव्यक्त वक्षोज मध्य च सुवलित्रयम्।
उज्ज्वलानि तथाङ्गानि व्यक्ते स्फुरति यौवने। उज्ज्वल नीलमणि।

लाज चली आँखिनको, आँखि चली काननको, कान चले चौकत से चालेके कथनको
ब्र० सा० ना० भेद २२६

इस छद मे नव्य यौवन और व्यक्त यौवन के सन्धिकाल की अवस्था का अकन है। एक ओर 'सिसुनाई' का प्रस्थान और दूसरी ओर योवन मे शारीरिक अ गो के विकास का चित्र प्रस्तुत हुआ है। यौवन-विकास के साथ अनुभावों या शारीरिक चेष्टाओ मे भी स्पष्ट अन्तर आ जाता है। इन चेष्टाओ मे विलास-मयता दीख पडने लग जाती है। अ गो मे चारुता और द्यु ति व्याप्त हो जाती है --

'फरकन लागी आँख ढरकन कानन लौ,
हरकन लागी लाज पलकै सुचैनी की।
भर लाग्यौ परन उरोजन मे 'रघुनाथ'
राजी रोमराजी भाँति कल अली सैनी की।
कटि लागी घटन, पटन लागी मुख-सोभा,
अटन सुवास लागी आस स्वाँस पैनी की।
अंगन मे द्यु ति चारु सोने सी जगन लागी,
एडिन लगन लागी बैनी मृगनैनी की॥

मानसिक विकास की दृष्टि से अपने अ गो के परिवर्तन एव विशेष यौवन चेष्टाओ के रहस्य की अज्ञानता एव सज्ञानता की दो स्थितिया होती है। यौवन के व्यक्त हो जाने पर भी यह अज्ञानता बनी रहती है। अज्ञानता का एक चित्र देखें --

चलै सग हमारे न खेलिवे को, कर को छिए भौहे मरोरत-है-।
ए कहाँ रहै भाभी। बताइ दै तू, जो हमे लखि यो मुख मोरत है।
ब्र० सा० का ना० भेद।

ऐसे चित्रो मे नायिका की अनभिज्ञता और भोलापन उसके सौन्दर्य को बढा देता है। इन्ही भावनाओ एव अ गो का विकास पूर्ण यौवन काल मे दीख पडता है।

पूर्ण यौवन मे नितम्ब एव स्तनो की पीनता, मध्य भाग की कृशता, रम्भा की आभा के समान उरुयुगल और शरीर की कान्ति मे उज्ज्वलता आ जाती है।[1] इस काल मे यौवन का पूर्ण विकास हो जाता है। सभी विशेषताएँ

---

1 नितम्बो विपुलो मध्य कृशमङ्ग परद्यु ति।
पीनौ कुचावुरुयुग रम्भाभपूर्ण यौवने। उ० नील मणि।

प्रकट हो जाती है ।[1]

१ होन लागी कटि अब छटिकै छला सी,
द्वैज चन्द की कला सी दिन दीपति बढ़ै लगी । वही पृ० २३०

२. गातन कैसे दुरायौ है जात, **प्रभात सौं जौबन रूप उजेरो ।**

३. तग होत आँगी, **ज्यो-ज्यो उरज उतंग** होत,
प्रकटी अनंग काया-कज पखियान मे । ··· ···
कटि कृशताई औ नितम्ब पीनताई छाई,
पाँय थिरताई चचलाई, अँखियान मैं ।

शारीरिक क्रियाओ मे नवीनता और विलास का वैचित्र्य आ जाता है । इसकी ओर भी कवियो का ध्यान आकृष्ट हुआ था ।

उपर्युक्त विचारो के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वय क्रम से नायिका के विकास की ये चारो अवस्थाए उसके शारीरिक एव मानसिक परिवर्तनो की सूचिका है । इनमे क्रमिक विकास का रूप दीख पडता है । अ गो की वदलती हुई परिस्थिति का सूक्ष्म अध्ययन इनके द्वारा उपस्थित होता है । विकास की इस क्रम-बद्धता मे कवियो की दो दृष्टिया थी —

(१) शरीरगत–परिवर्तन ।

(२) भावगत–परिवर्तन ।

शरीरगत परिवर्तन मे **स्थूल एवं सूक्ष्म परिवतनो** पर ध्यान दिया गया है । स्थुल-परिवर्तन का तात्पर्य अवयवो के विकास से लगाया जायगा । इसमे **आकार एवं गठन** की चर्चा होती है । अगो की सुडौलता, समता, समानुपातिकता, सापेक्षता, सगति, सन्तुलन आदि के वर्णन द्वारा उसका आकर्षण वढा दिया जाता है । इन सभी वर्णनो को नख-शिख के अन्तर्गत समेटा जा सकता है । नख-शिख मे भी अगो की आकारगत विशेषताओ **आकर्षण एवं सौन्दर्य** का वर्णन होता है । आकार के अतिरिक्त शरीर मे अन्य गुणो के विकास से सौन्दर्य की वृद्धि होती है । इन गुणो मे अभिरूपता, मार्दव, सौकुमार्य, उन्माद, शैथिल्य, सुरभि, गरूर आदि आते है । इन गुणो का सम्बन्ध शरीर से रहता है । ये स्वत सम्भवी गुण है, जो यौवन काल मे अपने आप रूपवती नायिकाओ मे प्रकट हो जाते है । अत इसे **आगिक सौन्दर्य** के अन्तर्गत मानेंगे ।

शरीर के सूक्ष्म गुणो मे युवाकाल मे आविर्भूत होने वाले गुणो की गणना होती है । ये आकार या अगो मे व्याप्त रहने वाले गुण हैं । इन गुणो

---

[1] ब्रजभाषा साहित्य का नायिका भेद पृ० २२९

की स्वतन्त्र मूर्त सत्ता न होकर अमूर्त सत्ता ही है परन्तु इन गुणो से सौन्दर्य वढ जाता है। इन्हे ही अपने मूलरूप मे सौन्दर्य का वास्तविक अग मानेंगे। रूप, छवि, ज्योति, उज्ज्वलता, मुख-कान्ति, मृदुता, आभिरूप्य सौकुमार्य आदि गुण इसके अन्तर्गत आयेगे। साहित्य-शास्त्र मे अयत्नज अलकारो को शोभा का कारण माना है। ये अलकार आगिक सौन्दर्य को वढाने वाले स्वाभाविक उपादान है। इन उपादानो से नायिका के आकर्षण की वृद्धि हो जाती है। इनका आविर्भाव स्वत. होता है। ये प्रयत्न साध्य नही है। इससे इन्हे 'अयत्नज-अलकार' कहते है। अलकार शोभा-विधायक धर्म है। इन्ही शोभा-विधायक धर्मो से नायिका का रूप नायक के मन मे रति भाव का सचार करने मे समर्थ होता है। इन अलकारो मे शोभा, कान्ति, दीप्ति, माधुर्य, प्रगल्भता, औदार्य और धैर्य की गणना होती है।

'शोभा' रूप, यौवन, लालित्य, सुख-भोग आदि से सम्पन्न शरीर की सुन्दरता को कहते है। यौवन मे इन गुणो का स्वाभाविक विकास होता है। इस शोभा को देखकर इसके उपभोग की कामना उत्पन्न हो जाती है। शोभा का तत्काल प्रभाव पडता है। शोभा युक्त रमणी का प्रत्यक्ष-दर्शन अनुराग उत्पन्न करने का प्रमुख साधन है। श्रीकृष्ण राधा की रूप शोभा देखकर ठगे से रह जाते है, "सूर श्याम देखत ही रीझै, नैन नैन मिलि परी ठगोरी।"

शोभा, काम-भावना से दीप्त होकर 'कान्ति' कही जाती है। इसमे स्मर-विलास से शारीरिक शोभा वढ जाती है। शोभा और कान्ति मे अन्तर है। शोभा शारीरिक सौन्दर्य है, इसमे काम का विकार नही होता, परन्तु 'कान्ति' मे स्मर-विलास अनिवार्य तत्व है। यथा—

१ लालन की लाली अँखियन मे दिखाई देत,
अतर अनन्तर ही प्रेम सो पची रही।
कुँवरि किसोरी मुख मोरी करै सखिन सो,
चोरी-चोरी चित्त गति रोरी सी रची रहे।[1]

२ विकसै अबला अग मे, काम कला की जोति।
चामी कर से गात की चमक चौगुनी होति।[2]

अत्यधिक मात्रा मे बढी हुई कान्ति ही 'दीप्ति' है। अर्थात् स्मर-विलास की शोभा जब स्पष्ट रूप के प्रकट होने लगे, तो वहाँ 'दीप्ति' होती है।

---

1 व्रजभाषा साहित्य का नायिका भेद। पृ २२४। 'देव' कृत छद।
2 रस-रत्नाकर पृ. २१६

दीपावली तन द्युति निरखि दबकी सी दिखराति।
विविध जोति उजरी फिरति जरी बीजुरी जाति।[1]

सभी अवस्थाओ मे रमणीय लगना 'माधुर्य' कहा जाता है। इसमे साधक या बाधक प्रत्येक परिस्थिति मे सुन्दरता बनी रहती है।

'तिरछे चलि लहि बकता, करि चचलता मान।
अधिक मधुमयी बनति है, ललना की अखियानी।

यहाँ मान मे या नेत्रो की बकता प्रत्येक दशा मे आँखो का मधुमयी होना बताया है। 'औदार्य' प्रत्येक समय की विनीत अवस्था का द्योतक है। इसमे पति के अपराधो को देखकर भी नायिका के मन मे रोष नही आता, अपितु प्रिय के सुख की कामना ही रहती है—

हमको तुम एक अनेक तुम्हे, उन ही के विवेक बनाइ बहौ।
इत चाह तिहारी विहारी, उतै सरसाइ कै नेह सदा निबहौ।
अब कीवौ 'मुवारक' सोई करौ, अनुराग लता जिन बोइ दहौ।
घनश्याम! सुखी रहौ आनन्द सो तुम नीके रहौ, उनही के रहौ।[2]

आत्मश्लाघा से युक्त अचञ्चल स्वाभाविक मनोवृत्ति का नाम 'धैर्य' है। नायिका के धैर्य की भावना बनी रहती है। "नव प्रसून नावक बने, पावक मलय समीर। परम धीर अनुरागिनी ह्वै है नाहि अधीर," प्राण पुष्प घातक बन जाय या मलय समीर अग्नि बन जाय, परन्तु अनुरागिनी अधीर नही होगी। निर्भरता का नाम 'प्रगल्भता' है। इसमे रति-क्रीडा के समय स्वय भी उन्ही व्यापारो मे सहयोग देकर नायिका प्रियतम को वश मे कर लेती है। यह काम भावना का उद्दीपक तत्व है। इससे शरीर की शोभा नही बढती अपितु रति मे तीव्रता आती है।

'केलि कला की तरगन सो हठि मोहन लाल को ज्यौ ललचावति।
अक मे बीति गई रतियाँ है तऊ छतियाँ हिय छोडि न पावति।
रस रत्नाकर पृ. २२२

नायिका के उपर्युक्त सातो अलकारो के सम्बन्ध मे दो बाते प्रतीत होती है (१) शोभा, कान्ति आदि अलकार स्वत उत्पन्न होकर सुन्दरता के विकास मे सहायक होते है। इनसे नायिका के अगो मे झलकने वाला विलास उसके रूप को आकर्षक बना देता है। वह अधिक रमणीय एवं सुन्दर प्रतीत होने

---

1 रस-रत्नाकर पृ २२०

2 ब्रजभाषा साहित्य का नायिका भेद पृ. ३८४ से

लगती हैं। इन चारो (शोभा, कान्ति, दीप्ति, माधुर्य) का सम्बन्ध शरीर की चाक्षुप अनुभूति से है। अत इन्हे शोभा-विधायक गुणो के अन्तर्गत मानेगे।

(२) धैर्य और औदार्य मानसिक दशा का सकेत करते है। ये शरीर के शोभा-विधायक धर्म न होकर मानसिक प्रवृत्ति के सूचक धर्म है। इनका शरीर से सीधा सम्बन्ध नही है। प्रगल्भता क्रियात्मक गुण है। इस दृष्टि से शरीर के शोभा-साधक उपकरणो मे आरम्भिक चार अलंकारो की गणना ही होगी। अन्य उपकरणो (औदार्य, धैर्य और प्रगल्भता) का सम्बन्ध आचरण से है। नायिका के ये आचरण नायक के मन मे उसके प्रति लगाव उत्पन्न करते हैं। इससे नायक की भावनाएँ उद्दीप्त होती है। भावनाओ को उद्दीप्त करने के कारण इन्हे 'उद्दीपक गुण' कहा जा सकता है। इन सभी गुणो का सम्बन्ध शरीर से बना रहता है। शरीर के ये परिवर्तन भावो के परिवर्तित होने मे पृष्ठभूमि का कार्य करते है। विकसित शारीरिक अवस्था मानसिक एव भावनाओ के विलास मे सहायक होती है। इससे इस परिवर्तन की आधार भूमि शारीरिक या आगिक परिवर्तन है। आगिक परिवर्तनो से उत्पन्न शोभा का वर्णन नख-शिख के अन्तर्गत हुआ है। नख-शिख वर्णन से ही शोभा की अनुभूति जागृत होती है, इससे इसका स्पष्टीकरण आवश्यक है।

नख-शिख सौन्दर्य—इसका सकेत आगिक सौन्दर्य के नाम से किया जा चुका है। सौन्दर्याभिव्यक्ति की यह प्रवृत्ति बहुत प्राचीन है। मानव का सौन्दर्य-लोलुप मन अगो की ओर आकृष्ट होता है। वह अगो की चाक्षुप प्रत्यक्ष से प्राप्त अनुभूतियो द्वारा तृप्त होता है, उनका रसास्वादन करता है और अपनी कलात्मक प्रतिभा से उसे प्रेषणीय बनाता है। इस प्रेषणीयता के लिये रूपात्मक जगत की सुखद वस्तुओ का चयन करता है। उसके चयन का क्षेत्र सम्पूर्ण मानवेतर जगत् है। इस जगत् से मानव सौन्दर्य की सापेक्षता मे गृहीत वस्तुओ के आकार, गुणो और ऐन्द्रिय अनुभूतियो का तादात्म्य स्थापित होता है। यह तादात्म्य अभिव्यञ्जना की कुशलता से कलात्मक सौन्दर्य का विधान करता है। इसका मूल आलम्बन मानव ही होता है। मानवेतर जगत् का ग्रहण मानव की विशिष्टता होने मे है, अर्थात् मानव के सौन्दर्य की अभिव्यक्ति मे मानवेतर जगत् उपमान का कार्य करता है। मुख्यता मानव जगत् की है। इससे मानव को प्रत्येक दृष्टि विन्दु से देखने एव परखने की चेष्टा की गई है। इस चेष्टा मे सौन्दर्य दृष्टि की प्रधानता है यह दृष्टि अपनी सूक्ष्मता के कारण अंग-प्रत्यंग की शोभा निरखने मे सजग थी। अग शोभा देखने की सजगता ने आत्मानुभव को प्रेषणीय बनाना चाहा। इसी के फलस्वरूप नख-शिख वर्णन की परम्परा का सूत्रपात हुआ।

नख-शिख वर्णन आगिक सौन्दर्य का खण्ड-खण्ड रूप-चित्र है। इसमे विभिन्न अवयवो के अलग-अलग रूप-चित्रो से उन अवयवो मे वर्तमान आकर्षण द्वारा सामूहिक सौन्दर्य की अभिव्यक्ति होती है। प्रत्येक अग की अपनी निजी शोभा है। यही शोभा सभी अवयवो की समष्टिगत एकता एव प्रभाव से सामूहिक सौन्दर्य की अनुभूति करार्ती है। नख-शिख सज्ञा प्राप्त करने के लिये नख से आरम्भ कर शिख तक के सभी अगो का वर्णन होना आवश्यक है। एक दो अगो का वर्णन भी नख-शिख की सीमा मे आ तो सकता है, परन्तु रूप का सर्वाङ्ग चित्र उसके द्वारा उपस्थित नही होता, वह उसका खण्ड-चित्र मात्र होगा और खण्ड चित्र पूर्ण को बताने मे असमर्थ होते है। अनेक खण्ड रूप चित्रो द्वारा अखण्ड सौन्दर्य की कल्पना सहज मे ही हो जाती है। अत नख-शिख मे अवयव के अनेक खण्ड-खण्ड रूप-चित्रो की अभिव्यक्ति के माध्यम से सर्वाङ्ग का सामूहिक या समष्टिगत रूप-सौन्दर्य अभिव्यञ्जित होता है। इस दृष्टि से किसी अग का वर्णन व्यष्टिगत सौन्दर्याभिव्यक्ति है और नख-शिख रूप सर्वाङ्ग का वर्णन समष्टिगन सौन्दर्य की अभिव्यक्ति है। एक अग वर्णन मे उस अग की विशेषताओ के निजत्व की एकागिता होती है और नख-शिख वर्णन मे सर्वाङ्ग की समष्टिगत सौन्दर्य चेतना होती है। 'नख-शिख' शब्द द्वारा सम्पूर्ण शरीर के सौन्दर्य का बोध होता है। इसके लिये दो प्रकार की शैलो अपनाई गई है—

१ शिख-नख शैली।

२ नख-शिख शैली।

शिख-नख शैली में शिख से पद के नखो तक का वर्णन किया जाता है। इस वर्णन मे मानव को आधार बनाकर उसके अग-प्रत्यग का वर्णन होता है। इस वर्णन के सामूहिक प्रभाव से उत्पन्न सौन्दर्य को मानव-सौन्दर्य की सज्ञा दी जाती है।

नख–शिख शैली मे पैर के नख से आरम्भ कर सिर की चोटी तक का वर्णन किया जाता है। इस शैली मे ईश्वरीय सौन्दर्य की अभिव्यक्ति करने की बात कही गयी है, परन्तु प्राप्त ग्रन्थो के आधार पर इस निर्णय पर पहुँचा जा सकता है कि 'नख-शिख मे मानव के अग-प्रत्यग का वर्णन मिलता है। कुछ ही ग्रन्थो को 'शिख–नख' नाम दिया गया है।[1] सामान्य रूप मे 'नख-शिख' द्वारा

---

1 'शिखनख'–केशवदास, नागरीदास, रस आनन्द, रसिक मनोहर, सुजान। सुखदेव मिश्र। शिख-नख-दर्पण–गोपालकृत। 'हनुमान-शिखनख'–खुमानकृत

ईश्वरीय अ ग-प्रत्यग का वर्णन होना चाहिये। इस ढग के ग्रन्थ भी रीतिकाल मे मिल जाते हैं।[1] अ ग वर्णन मे नख-शिख या शिख नख के अतिरिक्त अन्य नामो से भी अवयवो का वर्णन मिलता है।[2] कही-कही केवल एक ही अ ंग के ऊपर स्वतत्र ग्रन्थो का निर्माण हुआ है।[3] इस प्रकार रीतिकाल मे अवयवो का वर्णन एव नाम के सम्बन्ध मे निम्नलिखित धारणाए ं कार्य करती है—

१. 'नख-शिख या 'शिख-नख' नाम से मानवीय या राधाकृष्ण जैसे ईश्वरीय आलम्वन के अग–प्रत्यग का वर्णन।

२. 'नख-शिखादि' के अतिरिक्त अन्य नामो से सर्वाङ्ग या अवयवो का वर्णन।

३. किसी अग-विशेष के वर्णन मे ग्रन्थो का स्वतत्र सृजन।

इन तीनो पद्धतियो मे 'शिख-नख' मे मानवीय, 'नख-शिख मे ईश्वरीय और अन्य नामो मे मानवीय सौन्दर्य वर्णन की परम्परा थी परन्तु यह कोई निश्चित नियम नही था। इसीसे मानवीय अवयवो के वर्णन मे भी 'नख-शिख' नाम दिया गया है। मानव के सदर्भ मे इस नाम का समर्थन निम्नलिखित आधार पर किया जा सकता है।

---

[1] 'सीताराम नख-शिख' प्रेमसखी। जुगल नख-शिख–पचमसिंह १६८२। नख-शिखराधाजू को–सूरतिमिश्र १७६४। राधिका मुख वर्णन शकरदत्त १८३०। श्रीवृन्दावन, चन्द, शिख, ध्यान, मजूप दामोदरदेव (१८६०–१८६४)। नख-शिख राधा जू को चन्दन राई (१८६४)। श्रीकृष्ण चन्द्र का नख-शिख–ग्वाल १८८४। राधा नख-शिख-गिरधर भट्ट १८८६। श्री रामचन्द्र का नख-शिख–रूपसहाय। जुगल नख-शिख–प्रतापसाहि। शारदा का नख-शिख–योगेन्द्र नारायण सिंह।

[2] 'राधिका–सुपमा' लोकनाथ चौवे (१७६०)। छवि रत्नम्–कालीदास त्रिवेदी (१७४६)। रस-विलास–देव १७६६। अ ंग-दर्पण-नवी 'सुन्दरी-तिलक'-पुरुपोत्तम शुक्ल। नायिका-रूप-दर्शन-शिवसहाय, (लगभग १८८६) श्री राधाकृष्ण अ गो का सौन्दर्य वर्णन श्रीकृष्ण चैतन्यदेव १६२२। अ ग चन्द्रिका-खूवदेव कुवेर (१६२०) श्यामाङ्गवयव भूपण–नवनीत १६४०। अ गादर्श-रग नारायणपाल,

[3] 'अलक व तिल शतक' मुवारक १६ ०। नैनपचासा-मडन १६१६। चरण चन्द्रिका-रामचन्द्र १८४०। श्री राधा मुख-पोडपी–गोविन्द १८५०। नख-शतक-हरिदास कायस्थ १८८६। श्री राधा मुख पोडपी, नयन-मजरी, पयोधर पच्चीसी–गोविन्द गिरला गार्ड चन्द्रिका १६५३ वि.

१ इन ग्रन्थो के निर्माता कवियो द्वारा भी मानव अवयवो के वर्णन मे 'नख-शिख' नाम ही दिया गया है, 'शिख-नख' नाम की महत्ता नही स्वीकार की जा सकी ।

२ भक्तिकाल के राधा-कृष्ण या राम ईश्वरीय आलम्बन है । उनके अवयवो के वर्णन मे 'नख-शिख' नाम देना उचित ही था । हो सकता है कि बाद मे इसी नाम को देने की परिपाटी चल पडी हो और कवि ने मानव और ईश्वरीय आलम्बन के भेदो से मुक्त होकर इस नाम को अपना लिया हो । नाम चाहे कोई भी क्यो न हो, इसका मूल उद्देश्य अवयवो का आकर्षक वर्णन करना था । इस वर्णन की सम्पूर्णता मे उसके सौन्दर्य का प्रस्फुटन हो जाता है । सौन्दर्य का यह प्रस्फुटित रूप आस्वादन और तृप्ति का साधन बनता है, आनन्दानुभव को मूल स्रोत है और ऐन्द्रिय एव लौकिक जीवन की चरम साधना है । इस साधना की सिद्धि का माध्यम अवयवो का प्रियतामूलक और सुरुचि पूर्ण वर्णन है । इस वर्णन मे निम्नलिखित धारणाए एव दृष्टिकोण कार्य-शील थे—

१ आकार वर्णन—चाक्षुष दृष्टिकोण ।
२ रूप—लावण्यादि का वर्णन और उसका प्रभाव ।
३ ऐन्द्रिय अनुभूतियो का वर्णन ।

आकार वर्णन—'नख-शिख' वर्णन मे नारी का सौन्दर्य प्रस्तुत करते हुए उन अगो की बनावट का ध्यान रखा जाता है । अगो का उचित सयोजन प्रिय लगता हे बनावट की दृष्टि से शरीर के चार गुण सापेक्षता, समता, सगति और सन्तुलन होते है । सापेक्षता अवयवो की सम्पूर्णता की भूमिका मे उचित विन्यास कहा जायगा । यह अगो का ऐसा सयोजन है, जिससे 'रूप' का आवि-र्भाव होता है । शरीर का प्रत्येक अग निरपेक्ष और असम्वद्ध न होकर सापेक्ष और सम्बद्ध होता है । अर्थात् अगो के खण्ड रूप चित्र सर्वाङ्ग मे अपना निश्चित और सुव्यवस्थित स्थान रखते है । यह सुव्यवस्था ही अन्य अगो के साथ विन्यास की दृष्टि से 'सापेक्षता' है । 'समता' अगो का पारस्परिक अनुपात व्यक्त करती है । किसी अवयव की तुलना मे दूसरा अंग बनावट आकारादि की दृष्टि से देखा जाता है । प्रत्येक अग का बडापन या छोटापन एक दूसरे अग के सदर्भ मे ही देखा जाता है । उदाहरणार्थं शरीर की लम्बाई चौडाई के अनुसार ही आँख, नाक, कान आदि अग होने चाहिए । यदि लम्बे-चौडे शरीर मे आँखे बहुत छोटी हो, तो समता का अभाव माना जायगा । 'सगति' द्वारा रूप' मे विरोध का शमन होता है । इससे अनेकता मे एकता उत्पन्न होती हे । 'सतुलन'

में अनेक तत्व एक योजना मे आबद्ध होकर एक दूसरे को क्षति न पहुँचाते हुए सौन्दर्योत्कर्ष के कारण होते है। इसमे प्रत्येक अवयव अपने प्रधान या सर्वाङ्ग के अन्तर्गत उसकी रक्षा और सवर्द्धन करता है। इन चारो गुणो की महत्ता सम्पूर्ण की दृष्टि से है। यह अगो के **पारस्परिक संदर्भ** को व्यक्त करता है। बनावट की दृष्टि से अगो का यह समष्टिगत गुण है, व्यष्टिगत गुणो मे अगो का अलग-अलग वर्णन होता है। वर्णन की यह दृष्टि मध्यकालीन साहित्य मे व्यापक थी। कवियो ने इस दृष्टि से नख-शिख के शताधिक ग्रन्थो का निर्माण किया है।

अंग वर्णन की व्यष्टिगत दृष्टि—मध्यकालीन ग्रन्थो मे अग-प्रत्यग के वर्णन की परम्परा प्रचलित थी। प्रत्येक कवि प्रसगत या स्वतन्त्र रूप से अवयव का वर्णन करता था। रीतिबद्ध कवियो ने अग वर्णन को प्रधानता दी थी। इस वर्णन मे अगो के आकार, प्रकार, सुडौलता, सुढरता आदि की चर्चा होती थी। बनावट की दृष्टि से इसका विचार प्रधान कविकर्म था। सभी कवियो ने इस पर अपने भाव व्यक्त किये है। यह अभिव्यक्ति दो दृष्टियो से की गई प्रतीत होती है। (१) काम सहायक अगो की बनावट आदि का वर्णन और (२) अन्य अगो का वर्णन। इस वर्णन मे अग के गुणो आकार आदि पर ध्यान केन्द्रित रहता है। अगो मे स्त्रियो के अग को ही चर्चा का माध्यम बनाया गया है। ऐसा वर्णन शृगार के अवसर पर हुआ है। इससे स्त्रियो के वाह्य रूपाकार की ही सौन्दर्याभिव्यक्ति हुई हे, आन्तरिक शील आदि गुणो का वर्णन नही हो सका है। उनका यह बाह्य रूप वर्णन निम्नलिखित रूपो मे किया गया है—

१. दीर्घ अंग–केश, अगुली, नयन, ग्रीवा, शरीर, गाल, हाथ।
२. लघु अग–दशन, कुच, ललाट, नाभि, कान, पैर।
३. भरे हुए अग–कपोल, नितम्ब, जंघा, कलाई, पयोधर।
४ पतले अग–नाक, कटि, पेट, अधर।

उपर्युक्त अंगो को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि काम सहायक अग एव अन्य अगो का वर्णन आकार की दृष्टि से हुआ है। इनमे काम सहायक अग रति-भाव को उद्‌बुद्ध करने मे प्रमुख है। ऐसे अगो मे मुख, अधर, कपोल, स्तनादि के वर्णन का विस्तार अधिक हुआ है। इन अगो के भरेपन और उभार आदि के प्रति कवियो की दृष्टि सदैव सजग थी। ऐसे अगो के वर्णन मे उनके मन की रति-भावना जागरूक रहती थी। इसी से इसका वर्णन मादक, मोहक और आकर्पक वन गया है। इसकी प्रधान विशेपता मासलता है। इस मासलता मे रूप की एक कडी ज्वाला का आभास मिल जाता हे इसमे कवि की

अनुभूतियाँ मिलकर इसे सचेतन बना देती है। यह अनुभव दो रूपो मे प्रकट हुआ है —

(१) स्पार्शिक सुखानुभूति।
(२) चाक्षुष सुखानुभूति।

स्पार्शिक सुखानुभूति—इसमे स्पर्श से उत्पन्न होने वाले गुणो का वर्णन है। इन गुणो मे कोमलता, मृदुलता, चिकनापन, मार्दव, सौकुमार्यादि की गणना होगी। विश्लेषण करने से ऐसा लगता है कि अगो के स्पर्श से दो प्रकार की अनुभूति होती है —

१ त्वचा का आत्मिक गुण।
२ ताप से सम्बन्वित गुण।

इन दोनो मे से मार्दव, सौकुमार्य आदि त्वचा के गुण है और शीतलता उष्णतादि द्वारा शारीरिक स्पर्श-जन्य ताप का अनुभव होता है। सम्पूर्ण शरीर की शीतलता आनन्द दायक होती है। जाँघ आदि के वर्णन मे शीतलता का यही गुण देखा गया है। इसी से जघो की उपमा केले के स्वाभाविक शीतल खम्भो से दी गई है। इस प्रकार के उपमानो का उद्देश्य स्पर्श से उत्पन्न सुख की अनुभूति कराना है। ऐसे उपमान अपने उद्देश्य को वहन करने मे समर्थ है। ऋतु के अनुकूल शरीर की स्पर्श सुखदता एव अनुभूति मे अन्तर बताया गया है। ग्रीष्म ऋतु के शीतल अग शीत ऋतु मे उष्णता का अनुभव कराते हैं। स्तनो एव वक्ष का स्पर्श, आलिंगनादि से उष्णता की अनुभूति का वर्णन है। रीतिकालीन कवियो ने बाला के सम्पर्क से ही शीतलता के नष्ट हो जाने की बात कही है।[1] बाला के उष्ण अगो के साथ अन्य भी बहुत से पदार्थों का-

---

1 (i) 'लाल बलवीर जू के पाला को कसाला कहा,
आय-आय लागत नवीन उर बाला है।
पृ० २३५ ब्रज भाषा साहित्य का ऋतु सौन्दर्य

(ii) मदन मसाला हैं, विसाला जे दुसाला आला,
पाला सम लागैं, बाला बिन सीत काला है। वही पृ १३५

(iii) 'लाल बलवीर' व्यापै हिम की न पीर बीर,
प्रेम रनधीर पिएँ, रूप-रस प्याला है।
देखि छवि आला, बाला होत है निहाला,
सग राजै प्रतिपाला, राधे छैल नन्द लाला है। २३४ वही

(iv) निपट रगीले लाला सिसिर के सीत भीत,
अग लावै लाडिलीको, अतिहि झमकि कै। २३३ वही

सेवन करके शीतलता को भगाने की चेष्टा की जाती है। नारी के अंग ही शीतलता या उष्णता प्रदान करने वाले वन जाते है, उन अगो की स्पर्श सुख-दता बढ जाती है और वे हमारी भावनाओ की तृप्ति के साधन वन जाते है। नारी-अग के ये गुण पुरुष के मन मे ललक और भोग की भावना उत्पन्न करते है। आकर्षण बढाते है और रूप के आमत्रित करने वाले भाव या गुण को उत्पन्न करते है। ताप का अनुभव कराने वाले इन गुणो के अतिरिक्त स्पर्श जन्य अन्य अनेक गुणो की चर्चा हुई है। इनमे मार्दव या सौकुमार्य का सकेत ऊपर किया जा चुका है। यहाँ उसका स्पष्टीकरण अपेक्षित है।

सौकुमार्य—मार्दव अथवा सुकुमारता कोमल वस्तु के भी स्पर्श की असहनीयता को कहते है।[1] नारी के मृदुल अग ससार मे प्रसिद्ध कोमल वस्तु के स्पर्श को सहने मे भी असमर्थ होते है। अगो की यह कोमलता जन्म-जात होती है, जिसे अनुलेपनादि के सतत प्रयोग से स्थिर रखने का प्रयास होता है। यह कोमलता सौन्दर्य की अभिवृद्धि करने वाली होती है। इसके तीन भेद उत्तम मध्यम और कनिष्ट होते है। उत्तम सुकुमारता कोमलतम वस्तुओ के **संस्पर्श की असहनीयता** से आती है। इसमे गुलाब आदि पुष्पो के स्पर्श को असहनीय बताया जाता है। विहारी ने इसी प्रकार की मृदुता का वर्णन किया है।[2] मध्यम सुकुमारता अपेक्षाकृत अधिक भारी पदार्थों के **धारण की असहनीयता** है। ऐसे पदार्थों मे वस्त्रादि के धारण करने के भार से शरीर के रक्तिम हो जाने की चर्चा है अथवा कुसुमहारादि के भार से लक के लचक जाने का वर्णन होता है।[3] धूप लगने से अथवा उसमे चलने पर स्वेद-कणो का आ जाना 'अधम सुकुमारता' को व्यक्त करता है। इसमे भी असहनीयता का भाव है, परन्तु भार से उत्पन्न असहनीयता न होकर **ताप के स्पर्श** से उत्पन्न असहनीयता है। इन

---

1 मार्दव कोमलस्यापि सस्पर्शासहतोच्यते।
उत्तम मध्यम प्रोक्त कनिष्ठं चेतितत्रिधा।
उज्ज्वल नील मणि उद्दीपन प्रकरण छद ३५ पृ० २७५

2 मै बरजी कै बार तूँ, इत कत लेत करौट।
पखुरी लगै गुलाव की, परिहै गात खरौट। सतसई
(11) भिझकति हिय गुलाब की भवा भवैयत पाँय।
छाले परिवै के डरनि सकै न गात छुवाय।

3 पानि के भार न सभारत न गात-लंक लचि-लचि जाति
कच-भारन के हलके। द्विजदेव पृ० ३५० रीति काव्य संग्रह।

तीनो प्रकार की गात्र सम्बन्धी असहनीयता से सुकुमारता का ज्ञान होता है। इस गुण से सम्बन्धित नायिका रति का उत्तम आधार बनती है।

नायिका की यह सुकुमारता दो आधारो को लेकर चलती है। १ मन की सुकुमारता २ शारीरिक। सुकुमारता मन की सुकुमारता मुग्धावस्था मे अधिक दीख पडती है। इस अवस्था मे विपरीत भाव की आशका मात्र भी कष्टकारक हो जाती है।[1] वय के विकास के साथ पिय के सम्पर्क का भय क्रमश कम होता चला जाता है। मन की कोमलता भावनाओ के प्रौढत्व मे बदल जाती है, परन्तु शारीरिक कोमलता इतनी शीघ्रता से परिवर्तित नही होती। यह कोमलता आकर्षण को बढाने मे समर्थ होती है। कवियो का ध्यान शरीर की इस कोमलता की ओर अधिक गया है।

शारीरिक-कोमलता–स्पर्श और असहनीयता उत्तम सुकुमारता को बताने वाली है। असहनीयता का अनुभव कराने वाले पदार्थ दो प्रकार के हो सकते है—

(१) अमूर्त पदार्थ

(२) मूर्त-पदार्थ

अमूत पदार्थों मे रूप, छबि, शोभा, पानिप आदि के स्पर्श को न सहन कर सकने का वर्णन है। इसमे किसी प्रकार का भार शरीर पर नही पडता। केवल तत्वो की भावात्मक स्थिति होती है। ऐसे अमूर्त या भाव (Abstract) पदार्थों से उत्पन्न असहनीयता कोमलता की चरम उत्तम कोटि को व्यक्त करती है। इस प्रकार का वर्णन रीतिकालीन साहित्य मे अधिक मिलता है। इन तत्वो की भौत्तिक सत्ता न होते हुए भी इनके प्रभाव जन्य प्रतिक्रिया का वर्णन किया गया है। दृष्टिभार की वास्तविक सत्ता नही है परन्तु पिय की दृष्टि का स्पर्श करने की अक्षमता नायिका की कोमलता बताने वाली है।[2]

मूर्त पदार्थो के सम्पर्क से कोमलता की अभिव्यक्ति करने मे अनेक कवियो ने अपनी अभिव्यञ्जनात्मक निपुणता का परिचय दिया है। इससे

---

1 आवन को नाम सुनि सावन कियो है नैना, आवन कहै,
सु कैसे आइ जाई छीजिए। वरवस वस करिवे को मेरो वस नही,
ऐसी वेस कहौ कान्ह! कैसे बस कीजिये।

2 (i) नवला मुरि वेंठनि चितै, यह मन होति विचार।
कोमल मुख सहि ना सकत, पिय **चितवनि को भार**। रस-प्र.-रसलीन।

(ii) क्यो वा तन सुकुमारि तनि, देखत पैयत नीठि।
दीठि परति यो तरफरति, मानो लागी दीठि। अ ग-दर्पण॥

कोमलता की जो व्यञ्जना होती है, वह अभिधेय न होकर लक्षणा या व्यञ्जना द्वारा व्यञ्जित है। ऐसे वर्णनो का कलात्मक सौन्दर्य उच्चकोटिक होता है। ऐसे ही सौन्दर्य अथवा अभिव्यञ्जनात्मक निपुणता के कारण कवियो का शिल्प प्रशसनीय बनता है। कोमलता की यह अभिव्यञ्जना **स्पर्श की असह-नीयता** से व्यञ्जित हुई है। ऐसे पदार्थो मे गुलाब की पखुडिया, चूडियो का स्पर्श,[1] दृष्टि का स्पर्श और उष्णता के स्पर्श का वर्णन है।[2]

भार की असहनीयता से भी कोमलता का ज्ञान होता है। रीतिकालीन नायिका कोमलतम वस्तुओ तक के भार को सहन करने मे अपने को असमर्थ पाती है। जावक-भार से उसके पैर बोझिल हो जाते है "जावक के भार पग धरत धरा पै मद, गधभार कुचन परी है छुटि अलकै।" वरुनि के भार से दृग अधखुले हो जाते है। दृष्टिभार की असहनीयता से नायिका मुख फेर लेती है। इस असहनीयता की सभावना से कोमलता को व्यक्त किया गया है। बिछुओ के भार से रग सा चूने लगता है। अ ग राग के भार के डर से उसका लगाना ही छोड दिया गया है।[3] पग की लालिमा मे तद्रूप हो गया महावर का रग ज्ञात नही हो पाता, परन्तु इसके भार से नायिका को इसका बोध हो जाता है।[4] कच और कुच के भार से लक लच जाती है।

भार की यह असहनीयता मूर्त एव अमूर्त दोनो ही प्रकार के पदार्थो से व्यञ्जित है। शारीरिक सुकुमारता के साथ भावो की सुकुमारता का सकेत किया गया है। इस प्रकार का वर्णन शरीर की मृदुता बढाकर नायिका के सौन्दर्य को बढा देते है। कोमल और मृदुल वस्तुओ के स्पर्श से भावनाओ के विकास का पूर्ण अवसर मिलता है। नायिका के अग के इस गुण से उसके व्यक्तित्व का आकर्षण बढता है। व्यक्तित्व को सुन्दर और आकर्षक बनाने

---

1 वै अ गूरी के छुवै सिसकै, कर बार सी पातरी जो मै चढाऊँ।
छोडिहो गाँव बबा की सौ, मै पर चूरी न ह्या पहिरावन आऊँ।
रीति का. स पृ. २९१

2 यह सोनो सो अ ग सुहाग भरो, कहौ कैसे के आग के आँच सहै।
रीति का स. पृ. ३९६ मडन

3 चरन धरै न भूमि विहरै तहाँई जहाँ,
फूले फूलि फूलनि बिछायो परजंक है।
भार के डरनि सुकुमारि चारु अगनि मै,
करति न अगराग कुंकुम को पक है। सतसई-मतिराम,

4 आपु कह्यौ अरी दाहिने दै मोहि, जानि परै पग वाम है भारी। दास

वाले इन स्पार्शिक गुणो के अतिरिक्त चाक्षुप सुखानुभूति का वर्णन भी हुआ है ।

चाक्षुष सुखानुभूति—अगो को देखकर नेत्रो के सुख की अनुभूति कराने वाले शारीरिक गुणो से चाक्षुष सुखानुभूति होती है । शरीर का यह गुण 'रूप' है । रूप देखने से मन खिच जाता है और आँखो को सुख मिलता है । सुडौल, सुढर रूप आकर्षक होता है । शरीर की मधुरता का सम्बन्ध भी रूप से ही होता है । अनिर्वचनीय रूप ही माधुर्य नाम से जाना जाता है ।[1] यह रूप दो प्रकार का हो सकता है :—

१. अनिर्वचनीय रूप
२ वाच्य-रूप

वर्णन कर सकने योग्य गुणशाली रूप अनिर्वचनीय होता है । इसकी अनुभूति तो होती है, परन्तु वह अकथ्य बना रहता है । अगो को देखकर अनुभव होता है कि उसमे छवि रूप मे अनिर्वचनीय 'कुछ' है जो आँखो को सुख देता है । यह रूप-लावण्य, छवि, ज्योति, चमक आदि अनेक रूपो मे प्रकट होता है । इन सभी प्रकारो का अस्तित्व है, जो अगो मे ही रहता है । उससे अलग होकर उसकी सत्ता नही रह पाती है और उसका अस्तित्व समाप्त हो जाता है । शरीर मे व्याप्त उसके सौन्दर्य की अभिवृद्धि करने वाला यह ऐसा स्वाभाविक तत्व है, जो युवाकाल मे अपने-आप ही आविर्भूत हो जाता है । यह सम्पूर्ण शरीर मे व्याप्त रहने वाला गुण है । इस गुण का कथन अग-ज्योति, दीप्ति, शोभा आदि द्वारा किया गया है । इस गुण की इयत्ता नही होती । इसे सभी कवियो ने स्वीकार किया है ।[2]

चाक्षुप अनुभूति मे रूप का दूसरा गुण उसकी **नित-नवीनता** है । छवि की इस नवीनता के कारण बिहारी की नायिका का चित्र ससार के चतुर चितेरे भी नही खीच पाते है ।[3] भक्तिकाल मे इसी नवीनता से छवि स्थिर नही रह पाती है, इससे गोपियो का मन उनसे पहचान नही मानता —

---

1 रूप किमप्यनिर्वाच्य तनोमाधुर्यमुच्यते । उज्ज्वल नीलमणि पृ. २७५

2 सोभा सिन्धु न अन्त रही री—सूरसागर
(ii) कुम्मनदास प्रभु सौभग, सीवा, गिरधर धर सिरमौर ।
(iii) कृष्णदास प्रभु गोवर्धन धर, सुभग सीव अभिराम ।
(iv) जो कोऊ कोटि कलप लगि जीवै, रसना कोटिक पावै ।
तऊ रुचिर वदनारविन्द की शोभा कहत न आवे । हित-हरि वश ।

3 लिखन बैठि जाकी सबिहि गहि-गहि गरब गरूर ।
भये न केते जगत के चतुर चितेरे कूर ।—बिहारी

स्याम सो काहे की पहिचानि ।

निमिष-निमिष वह रूप न वह छवि, रति कीजै जेहि आनि ।

छवि की ऐसी कल्पना कम मिलती है । इससे रूप का उत्कर्ष होता है । इस छवि के वर्णन मे दो दृष्टिकोण दीख पडता है ।

(१) गत्यात्मक छवि वर्णन ।

(२) स्थिर छवि-वर्णन ।

गत्यात्मक छवि वर्णन मे ज्योति, अग दीप्ति आदि की गतिशीलता का बोध होता है । यह बोध लक्षणा या व्यञ्जना व्यापार द्वारा हो पाता है । इसके लिये प्रयुक्त वाक्याशो मे छवि का चू पडना, लावण्य का उफान, जगर-मगर ज्योति, जुन्हाई की धार सी दौड पडना, तरग का उठना आदि शब्दावलियो का प्रयोग कवियो ने किया है ।[1] इन वाक्याशो के प्रयोग द्वारा रूप की अनिर्वचनीयता को मूर्तरूप देने की चेष्टा की गई है । इससे उत्पन्न होने वाले बिम्ब-विधान द्वारा प्रस्तुत का सौन्दर्य वढ जाता है और रूप की अतिशयता की अनुभूति होने लगती है । रूप का यह अनिर्वचनीय पक्ष है । इसका एक ऐसा पक्ष भी होता है, जिसका प्रत्यक्ष बोध होता रहता है, यह उसका कथ्य पक्ष है ।

रूप की वाच्यता—अगो मे व्याप्त रूप-लावण्य के कथन के लिये कवियो ने रग का सहारा लिया है । इन रगो मे श्वेत, श्याम और लाल रगो का कथन है । शरीर के अनेक अगो मे ये गुण वर्तमान रहते है और इन्ही से इनकी महत्ता एव सौन्दर्य वढ पाती है । रसलीन ने एक दोहे मे नेत्रो के रग एव उसके प्रभाव को व्यक्त किया है ।[2] शरीर के अन्य अगो मे भी रग का यह आकर्षक वैचित्र्य दीख पडेगा । इस दृष्टि से रगो की विशेषता से युक्त निम्नलिखित अगो का वर्णन विशेष रूप से होता है ।

१ श्वेतरग युक्त अग—चर्म, दाँत और हाथ । यहाँ सफेदी का अर्थ चर्म और हाथ के सदर्भ मे गोराई से है । गोरी बाँहे आकर्षक होती हैं ।

---

1 अग-अग तरग उठे द्यु ति की, परिहै मनौ रूप अबै धर च्वै ।

(ii) बगर-बगर अरु डगर-डगर वरु, जगर-मगर चार्यो ओर द्यु ति ह्वै रही ।

(iii) अग-अग उछलित रूप छटा, कोटि मदन उपजत तन गोभा—गो. दा.

(iv) भीतर भौन ते बाहिर लौ, द्विजदेव जुन्हाई की धार सी धावति ।

2 अमिय हलाहल मद भरे, श्वेत, श्याम रतनार ।

जियत मरत झुकि-झुकि परति, जेहि चितवति इकवार ।—रसलीन

२. श्याम रग युक्त अग–आँख, वरौनियाँ, भौह, केश ।

३. लाल रग वाले अग–ओठ, कपोल, नाखूनो की लालिमा ।

वर्ण के गुण मे युक्त इन अगो मे सहज सौन्दर्य दीख पडता है । रक्तिम अधरो एव कपोलो की शोभा बरबस ही ध्यान को आकृष्ट कर लेती है । इससे सौन्दर्य का मादक एव मोहक रूप उपस्थित होता है इस रूप के प्रभाव की अभिव्यक्ति कवियो ने की है ।

रूप का प्रभाव व्यापक होता है । इनसे चल-अचल सभी मुग्ध हो जाते है । गोपियाँ श्रीकृष्ण के सौन्दर्य को निरखकर देह एव गृह की सुधि भूल जाती हैं । इस आत्म निस्मृति द्वारा तन्मयता का भाव व्यक्त होता है । प्रेम की तीव्र अनुभूति मे इस प्रकार की आत्मलीनता दीख पडती है । ऐसा वर्णन मध्यकालीन कवियो ने बहुत अधिक किया है । जड-तत्वो मे इस रूप से चेतनता आ जाती है । मोहन की त्रिभंगी मूर्ति देखकर यमुना भी 'थिर' हो जाती है, वायु का चलना रुक जाता है, खग मृग सभी आर्कपित हो जाते हैं । इस प्रकार अखिल विश्व को प्रभावित करने वाले रूप की कल्पना इन कवियो ने की है । रूपाकार के अन्य गुणो मे 'आभिरूप्य' का कथन हुआ है ।

आभिरूप्य– सौन्दर्य के उपकारक उद्दीपक गुणो मे आभिरूप्य शरीर का गुण है । जब कोई वस्तु आत्मीय गुणो के उत्कर्प से निकट स्थित अन्य वस्तु को अपनी उत्कर्पता मे आत्मसात् कर ले, तो उसे आभिरूप्य कहते है ।

यदात्मीय गुणोत्कर्षैर्वस्तत्वन्यन्निकट स्थितम् ।
सारूप्य नयति प्राज्ञैराभिरूप्य तदुच्यते ।

उज्ज्वल नील मणि । उद्दीपन प्रकरण ।

इस गुण मे रग या भावनाओ का ताद्रूप्य वर्णित होता है । यह गुण 'तद्गुण' अलकार जैसा है । इस अलकार मे न्यून गुण वाली वस्तु दूसरी उत्कर्ष गुण वाली वस्तु के सम्पर्क से उस गुण को ग्रहण कर लेती है ।[1] इसमे अधिक गुण वाली वस्तु की विशेपता वर्णित होती है । दोनो वस्तुएँ अलग-अलग गुण वाली होती है, परन्तु एक वस्तु अपनी विशेपता के कारण दूसरी वस्तु के गुण को अपने मे मिला लेती है । आभिरूप्य मे दोनो वस्तुओ का भिन्न गुण होना आवश्यक नही है । दोनो वस्तुएँ एक ही रग या गुण की हो

---

[1] स्वगुण त्यक्त्वा प्रगुणास्व समीपगम् ।
तस्यैव गुणमादत्ते यद्वस्तु स्यात् स तद्गुण ।
अलकार कौस्तुभ-कर्णपूर–अप्टम किरण का० ३१३

सकती है, परन्तु एक वस्तु दूसरी वस्तु मे मिलकर एक रूप हो जाती है। इस गुण के द्वारा अग वर्णन मे नायिका के शरीर के रगो आदि की चर्चा होती है। ऐसा वर्णन विशेषतया रीतिकालीन साहित्य मे अधिक मिलता है। भक्ति साहित्य मे भी इस प्रकार का वर्णन है परन्तु उसमे शारीरिक पक्ष की प्रबलता न होकर मानसिक पक्ष की प्रवलता है। इस दृष्टि से 'आभिरूप्य' की दो आधार भूमियाँ हो जाती है—

(१) मानसिक भावनात्मक ताद्रूप्य।
(२) शारीरिक गुणगत ताद्रूप्य।

भावनात्मक ताद्रूप्य मे आलम्बन या आश्रय दूसरे के ध्यान मे लीन होकर अपने अस्तित्व को अपने प्रिय मे मिला देता है। वह प्रिय रूप हो जाता है, उसके स्वतन्त्र अस्तित्व का प्रिय के व्यक्तित्व मे विलीनीकरण हो जाता है। विद्यापति और सूर की राधा रात-दिन श्रीकृष्ण का स्मरण करती हुई कृष्ण रूप हो जाती है। कृष्ण रूप होकर राधा की स्मृतियाँ उसे आन्दोलित कर देती है और वह पुन राधा रूप मे आ जाती है। इस प्रकार व्यक्तित्व की दोलायमान तद्रूपता मे वह काठ के मध्य मे पडे ऐसे कीट के समान हो जाती है जिसके दोनो सिरो पर अग्नि जल रही हो।[1] सूर की राधा मोहन के रग मे रम जाती है।[2] देव ने राधाकृष्ण दोनो को एक दूसरे के प्रेम मे कृष्ण और राधा मय वना दिया है—

दोउन को रूप गुन दोउ वरनत फिरै,
घर ना थिरात रीति नेह को नई नई।
मोहि-मोहि मोहन को मन भयौ राधामय,
राधा मन मोहि-मोहि मोहन मई-मई। देव

---

1 अनुखन माधव माधव रटतई, सुन्दरि भेलि मधाई।
ओ निज भाव सुभावहि विसरल अपने गुन लुवधाई।
माधव से जव पुनि ताई राधा, राधा सँय जव माधव।
दारुन पेम तवहिं नहिं छूटत वाढत विरह क वाधा।
दुहुँ दिसि दारु दहन जइसे दगदह, आकुल कीट परान।
ऐसन वल्लभ हेरि सुधामुखी कवि विद्यापति भान। विद्यापति पदावली।

2 राधा-माधव भेट भई।
माधव राधा के रंग राँचे, राधा मावव रग रई। सूर सागर।

शारीरिक गुणगत तादू्रूप्य मे एक के गुण से दूसरा अभिभूत हो जाता है। विहारी की नायिका के पाँव और महावरी के रग की समता से नाइन एडी को ही वार-वार मलने लगती है।[1] गोपी कृष्ण के साँवरे रग के स्पर्श से साँवरी हो जाती है। उसकी 'गुराई' श्यामता मे मिल जाती है। उसे भय है कि उसकी गुराई रह नही पायेगी "छैल छवीले छुओगे जो मोहि, तो गातन मेरे गोराई न रैहे।'

इससे हम इस निर्णय पर पहुँचते है कि आभिरूप्य का तात्पर्य शारीरिक गुण अथवा शरीर के रग से है। इसमे दूसरी वस्तु को अपने गुण मे मिलाकर एक रूप कर देने की भावना रहती है। यह एकरूपता मानसिक भावो से अथवा शारीरिक गुणो से होती है, इसका वर्णन मध्यकालीन हिन्दी साहित्य मे अधिक है। इन सभी गुणो को कायिक गुण के अन्तर्गत मानेगे। ये गुण शरीर से सम्वन्धित है तथा आलम्वन के व्यक्तित्व की शोभा वढाने मे समर्थ होते है। इनमे आकार की महत्ता इस रूप मे है कि सौन्दर्य का मूल आधार यही है। आकार मे अगो के वनावट का स्थूल रूप और छवि, उज्ज्वलता, कान्ति आदि का सूक्ष्म रूप रहता है। इन दोनो के सम्मिलित वर्णन मे रूप की वास्तविकता की अनुभूति होती है। केवल आकार और अग-दीप्ति ही सौन्दर्य के आदर्श रूप को व्यक्त नही करते। इसी से शारीरिक अन्य गुणो की विशिष्टता भी आवश्यक प्रतीत हुई। इन गुणो मे स्पर्श या दृश्य अनुभूतियो के शारीरिक आधार का वर्णन हुआ है। इनमे शरीर की मृदुलता, कोमलता, आभिरूप्य, सुकुमारता आदि के महत्व को स्पर्शानुभूति के रूप मे स्वीकार किया गया है। चाक्षुप अनुभूतियो की सुखदता के लिये रग की उज्ज्वलता और शरीर की गोराई आदि से नेत्र-सुख की कल्पना की गई। शरीर के विशिष्ट अग मे एक विशेष रग की चमक आकर्षक मानी गई। जैसे अवर कपोल आदि की लालिमा, केश, भौह, वरौनियो आदि की श्यामता सौन्दर्य साधक हो गयी। वालो वरौनियो आदि की सघनता मे रूप लोभी मन उलझने लगा। भरावदार, पुष्ट अंगो मे सौन्दर्य का स्रोत दिखाई पडा। वय की उठान के साथ भावनाओ का विकास रसिक मन को उद्दीप्त करने लगा। सहज हास युक्त मुख-मण्डल, शैथिल्य सूचक अगडाई, तारुण्य, नेत्रो की उन्मादक प्रवृत्ति अगो की ताजगी एव टटकापन, रूप, शील, प्रेम, कुल, तेज, चातुर्य आदि निमत्रण देने लगे।

---

[1] पांय महावर देन को, नाइन बैठी आय।
फिरि-फिरि जानि महावरी, एडी, मीड़ति जाय।

स्वभाव का अलबेलापन, उन्मत्त यौवन, तारुण्य दीप्ति मे कवियो का मन खोने लगा। अगो के स्थूल एव सूक्ष्म रूप मे मन इतना उलझा कि इसी को कवियो ने 'मुक्ति' मान लिया। रति-रग मे डूबे लोगो का जीवन सार्थक होने लगा। इसकी प्रेरणा नायिका के ऐसे रूप सौन्दर्य वर्णन से मिलती थी जो अननुभूत, अश्रुतपूर्व, अनिर्वचनीय और आनन्दमय था। उसके शरीर के अनास्वादित रस मे कविगण इतने डूबने लगे कि वही तक उनका ससार सीमित हो गया। इन सबका सम्बन्ध शारीरिक गुण से है। ये गुण ही उद्दीपक बनकर रसिक हृदय को रिझाने लगे। शरीर के उद्दीपक गुणो मे ऐन्द्रिय आकर्षण उत्पन्न करने वाले गुण, अग-प्रत्यग वर्णन की मोहकता, रूप लावण्यादि की चर्चा हो सकती। है इन सभी से युक्त गुण कायिक गुणो के अन्तर्गत आते है। इसके अतिरिक्त मानसिक एव वाचिक गुणो से भी सौन्दर्य की वृद्धि मानी जा सकती है।

मानसिक गुणो से तात्पर्य मन मे उत्पन्न होने वाली भावनाओ से है। जिसका प्रत्यक्ष रूप आगिक चेष्टाओ या अनुभावो द्वारा दीख पडता है। वाचिक गुणो मे मधुर वचनो की श्रुति-सुखदता है। वचन की मधुरता, उसका लालित्य सुखद होता है। इससे उत्पन्न वचनो की ध्वनि से नायक का मन तृप्ति का अनुभव करता है और नायिका के सौन्दर्य की ओर आकर्षित हो जाता है। अत कायिक, मानसिक और वाचिक गुणो से युक्त नायिका रति भाव की वास्तविक आलम्बन बनती है। ये गुण नायिका के शरीर से सम्बन्धित होने के कारण सौन्दर्य को बढाने वाले उपकरण है। इन आत्मगत उपकरणो मे अभी तक गुण का विवेचन किया गया, परन्तु केवल गुण ही रस को उद्दीप्त नही करते, अपितु नायिका की चेष्टाएँ भी महत्वपूर्ण होती है।

चेष्टागत सौन्दर्य –

आलम्बन के आत्म-परक सौन्दर्य साधक उपकरण के अन्तर्गत चेष्टा मानसिक भावो की वाह्य अभिव्यक्ति है। आलम्बन की प्रत्येक क्रिया का मूल प्रेरक मन होता है। मन ही वस्तु के प्रत्यक्ष या स्मृति दर्शन से भावो के आन्दोलित होने का कारण है। विभिन्न दृश्यो या रूपो को देखकर मानसिक आलोडन-विलोडन या प्रियता-क्षोभ आदि भावनाएँ उत्पन्न होती है। ये भावनाएँ उत्पन्न होकर नही रह जाती, अपितु इनकी बाह्य-अभिव्यक्ति भी होती है। इस अभिव्यक्ति के अभाव मे मानसिक कुण्ठाओ का जन्म होता है। इससे बचने के लिये मन विराम चाहता है। भावो की चेष्टापरक इस अभिव्यक्ति का कारण मन का तनाव दूर कर देने वाली विराम की यही अभिलाषा है। यह अभिलाषा दो रूपो मे प्रकट होती है।

१. विकर्षक चेष्टाओ द्वारा ।

२. आकर्षक चेष्टाओ द्वारा ।

इन दोनो चेष्टाओ मे प्रस्तुत प्रसग की सीमा के अन्तर्गत केवल आकर्षक चेष्टाएँ ही आती है । ये चेष्टाएँ भावो के स्पन्दन से शारीरिक विकार या विकास की क्रियाएँ है । इनका मूल सम्बन्ध शृङ्गार भाव से है । यह शृङ्गार-भाव शीलगत गुणो के अन्तर्गत आभिजात्य का सूचक होता है । इससे कामुकता का बोध न होकर मानसिक भावो की स्वस्थ अभिव्यक्ति होती है । इस अभिव्यक्ति का तात्पर्य युग की प्रचलित सम्मान्य मर्यादाओ एव परम्पराओ के अनुकूल भावो का प्रकाशन है । प्रकाशन का यह ढग सयमित होने पर कुल-ललनाओ के सौन्दर्य का उपकरण और उनके रूप का उत्कर्षक होता है । यह उत्कर्ष चेष्टाओ पर निर्भर है ।

चेष्टाएँ दो प्रकार की हो सकती है (१) सयोग की अवस्था मे रति भाव को उद्बुद्ध करने वाली आह्लाद मूलक चेष्टाएँ (२) वियोग मे दु ख मूलक चेष्टाएँ । यहाँ पर केवल आह्लाद मूलक चेष्टाओ से ही अपना अभिप्राय सिद्ध होता है । शालीनता से उत्पन्न होने वाली ये चेष्टाएँ विशेष आकर्षक हो जाती हैं । इनको दो वर्गों मे विभाजित करेंगे—

(१) विशेष चेष्टाएँ

(२) सामान्य चेष्टाएँ

विशेष चेष्टाओ मे अनुभावो की गणना होगी । अनुभाव भाव-ससूचनात्मक शारीरिक विकार है ।[1] इन विकारो की उत्पत्ति के पश्चात् सत्व सूचक आगिक सचालनो को अनुभाव कहते है अर्थात् चित्त मे आविर्भूत भावो का अनुमान कराने वाली बाह्य शारीरिक क्रियाएँ अनुभाव कही जाती है । इन क्रियाओ को देखकर मन मे उत्पन्न होने वाली रत्यादि भावनाओ का बोध दर्शक को होता है । साहित्य दर्पणकार ने इसका समर्थन किया है कि आलम्बन या उद्दीपनादि कारणो से हृदय मे जाग्रत रति भावना को प्रकाशित करने वाली चेष्टाएँ अनुभाव है ।[2] अनुभावो के सात्विक, कायिक, मानसिक और आहार्य ये चार भेद होते है । इन भेदो मे कायिक और मानसिक अनुभाव आलम्बन के

---

1 अनुभावो विकारस्तु भाव ससूचनात्मक ।

2 . "उद्बुद्ध करणै स्वै स्वैर्बहिर्भाव प्रकाशयन् ।
लोके य कार्य रूप सोऽनुभाव "—साहित्य दर्पण

सौन्दर्य को बढाने वाले होते है। इन्ही अनुभावो से आश्रय की भावना उद्दीप्त होती है। अत ये अनुभाव सौन्दर्य के उत्कर्षक होने से साधक चेष्टाओ के अन्तर्गत आयेगे। इन्ही दोनो का विचार होगा।

कायिक अनुभाव—चेष्टामूलक इन अनुभावो का सम्बन्ध कायिक क्रियाओ से है। इनमे मुसकान, चितवन, कटाक्षपात, अ ग-सचालन, पद-निक्षेप, अल्हडता गति आदि द्वारा उत्पन्न चेष्टाओ के सौन्दर्य से रतिभाव का प्रकाशन होता है। मध्यकाल मे मुसकान वर्णन मे अनेक विशेषणो का प्रयोग हुआ है। मृदु लजीली, मीठी, हुलास भरी, फीकी, कुटिल, शुभ आदि अनेक प्रकार के मुसकान का वर्णन है। इसमे अधरो का विकास और कपोलो मे दीप्ति आ जाती है। सहज और स्वाभाविक मुस्कान मोहक शक्ति है। इस मोहकता से नायिका का आकर्षण बढता है। यथा—

बतरस लालच लाल की, मुरली धरी लुकाय।
सौह करै, भौहनि हँसै, दैन कहै, नटि जाय।

सयोग के अवसर पर मुसकान उद्दीपक बन जाता है। इसके प्रभाव उत्पन्न करने वाली शक्ति का कथन हुआ है। इसके प्रयुक्त विशेषण दो प्रकार के हो सकते है (१) क्रियामूलक विशेषणो मे लजीली हुलास भरी आदि हैं (२) गुणमूलक विशेषण मे मृदुता, मिठास, शुभ्रतादि का वर्णन है। इस मुसकान का सम्बन्ध चितवन और कटाक्षपात से बना रहता है।

कवियो ने मुसकान के सग भ्रू-निक्षेपादि का वर्णन भी किया है। चितवन की यह चेष्टा नायिका के सौन्दर्य को बढाने वाली होती है। तीखी, कटीली, लजीली चचल आदि विशेषणो से आँखो के मार करने वाले प्रभाव की अभिव्यक्ति होती है इस दृष्टि से चितवन के दो भेद हो सकते है—

(१) मादक प्रभाव उत्पन्न करने वाली चितवन मे नेत्रो की रसालता, अर्द्धोन्मीलित दशा, मतवालापन, आदि होता है।

(२) तीक्ष्णता युक्त चितवन बक, घातक, दाँव न चूकने वाली और पैनी होती है। इन दोनो प्रकार के चितवनो से व्यक्तित्व मे आकर्षण उत्पन्न हो जाता है।

चितवन के अतिरिक्त नेत्रो की तन्द्रिल अवस्था विशेष मुद्रा की सूचिका है। यह मादक, मोहक और आकर्षक होती है। उनीदी आँखे बरबस अपनी ओर खीच लेती है। तन्द्रा का वर्णन प्राय दो अवसरो पर हो सकता है (१) मन मे मादक भावो के उत्पन्न होने पर अथवा रति-भुक्ता हो जाने के उपरान्त

सुरत-सुख से आप्लावित होने की अवस्था मे (२) आलस्य, निद्रादि के अवसर पर। इन दोनो ही अवस्थाओ का वर्णन काव्य मे मिलता है।[1]

अगो के सचालन गति, पद, निपेक्षादि से हृदयगत भावो का ज्ञान होता है। इन भावो को कायिक चेष्टाओ द्वारा व्यक्त करके नायिका का रूप मोहक बन जाता है।[2] ये सभी चेष्टाएँ कायिक अनुभाव के अन्तर्गत आती है। गिनाये गये इन चेष्टाओ के अतिरिक्त अन्य भी कायिक चेष्टाए हो सकती है। इन सभी चेष्टाओ का मूल उद्देश्य मोहकता बढाना है। इस मोहकता से ही आलम्बन का सौन्दर्य बढ जाता है। इसके अतिरिक्त कुछ चेष्टाये मानसिक भावो को प्रकाशित करती है। इन चेष्टाओ को मानसिक अनुभाव कहते है।

मानसिक अनुभाव—अन्त करण की भावना के अनुसार मन मे उठने वाली तरगे हास, परिहास, आमोद-प्रमोदादि के रूप मे प्रकट होती रहती है। यह भो एक प्रकार की चेष्टा ही है, जो मानसिक भावो का प्रकाशन करती है। इसमे स्वर-माधुर्य, शालीनताजन्य लज्जा, निषेध, चचलता, हास-परिहास छेड-छाड, वचन'वैदग्ध्य आदि की गणना हो सकती है। इनमे स्वर-माधुर्य वाचिक चेष्टा है। इससे प्रेम भाव की सघनता और सान्द्रता का ज्ञान होता है। मीठे वचनो मे अलौकिक आनन्द रहता हे।

निषेध स्वीकृति मूलक बाह्य अस्वीकृति है। इसमे वचन एव सिर संचालन के द्वारा अपनी भावनाओ की अभिव्यक्ति नायिकाएँ करती है। स्वीकृति पूर्ण इस निषेध मे माधुर्य होता है। इस अस्वीकृति के बाद अभिलाप को व्यक्त करने का उचित अवसर माना जाता है। यह मानसिक भाव का सूचक होता है। इस निषेव मे स्वीकार की भावना के कारण नायिका के प्रति मन का आकर्षण बढ जाता है। हाँ मूलक निषेध से मोहकता उत्पन्न होती है, नायिका की अभिलाषा व्यक्त होती है, और नायक के मन मे नायिका के सौन्दर्य पान करने की ललक उत्पन्न हो जाती है। यह एक शालीनता की

---

1 रतनारी हो थारी आँखडियाँ।
प्रेम छकी रसवस अलसानी, जानि कमल की पाँखुडिया।
बनी ठनी जी पृ० १६६ मध्व का० हि० कवियि० से।

2 (1) नैन नचाइ कही मुसकाइ, लला फिर आइयो खेलन होली। पद्माकर।
(11) भौहनि त्रासति, मुख नटति, आखिन सो लपटाति।
ऐचि छुडावति कर ईची, आगे आवति जाति। बिहारी

भावना है। इस भावना द्वारा नायिका के मन मे स्थिर लज्जा का ज्ञान होता है।

लज्जा शालीनता की स्पष्ट स्थिति है। शालीनता मानसिक भावो का सम्पृक्त रूप है। इससे नारी का आकर्षण बढता है और नायक के मन मे रति भाव के उद्दीप्त होने का अवसर मिल जाता है। नारी की आयु के अनुसार इस शालीनता मे अन्तर आता रहता है। बय सन्धिकाल मे इसका विकास आरम्भ हो जाता है और युवाकाल मे इसका पूर्ण रूप दीख पडता है। इसका सम्बन्ध यौन–भावना से होने के कारण यह रति मूलक चेष्टा है। वय सन्धिकाल की ऋतुमती नायिकाओ मे लज्जा विशेष रूप से देखने की मिल जाती है। इसके द्वारा काम की भावना नियन्त्रित रहती है। यह नारी के स्वभाव का अनिवार्य तत्व है। इसका वास्तविक विकास स्वकीया नायिका मे ही देखा जा सकता है। इससे उसका सौन्दर्य बढ़ जाता है।[1] इसका आभास मुख की अरुणिमा से होता है। समाज के विधि-निषेधो के कारण यह संस्कार बन गया है, जो पुरुष के समक्ष होते ही आरक्तिम मुख द्वारा व्यक्त हो जाता है। इसके चार लक्षण है—

(१) नेत्रो का नत हो जाना (२) मुख की अरुणिमा (३) घूँघट आदि द्वारा मुख को ढक लेना (४) वचन कार्पण्य। इन चारो लक्षणो से नायिका की शालीनता और लज्जामूलक चेष्टाओ का ज्ञान होता है। यह चेष्टा स्त्रियो की सुन्दरता के लिये आभूषणो का काम करती है। इससे उनकी आकर्षण शक्ति बढती है।

अन्य चेष्टाओ मे **हास-परिहास और छेड़-छाड़** रतिभाव को उद्दीप्त करते है। प्रगल्भ नायिकाओ मे छेडछाड की यह प्रवृत्ति दीख पडती है।[2]

---

1 कनक बदन सुढार सुन्दरि सकुचि मुख मुसक्याइ।
स्यामा प्यारी नैन राँचै अति विशाल चलाइ। सूरसागर।

2 लागि प्रेम डोरि खोरि, साँकरी ह्वै कढी आई.
नेह सो निहोरि जोरि आली मनमानती।
उतते उताल 'देव' आये नन्दलाल, इत
सोहै भई बाल, नवलाल सुख सानती।
कान्ह कह्यौ टेरिकै कहा ते आई को हो तुम,
लागति हमारे जान कोई पहिचानती।
प्यारी कह्यौ फेरि मुख हरिजू चलेइ जाहु,
हमै तुम जानत, तुम्है हू हम जानती। देव

इसका समुचित वर्णन मध्यकालीन साहित्य मे है । इससे प्रेम की सान्द्रता प्रकट होती है । रह केलि मे माधुर्य बढ जाता है, वचन भगिमा से वक्ता का गूढ अभिप्राय प्रकट होता है । प्रेम के अतिशय का विश्वास उत्पन्न होता है । इसीसे व्यग्य वचनो का प्रयोग भी उद्दीपक ही होता है--

ऐसी करौ करतूति बलाय त्यौ नीकी, बडाई लहौ जग जाते ।
आई नई तरुनाई तिहारी ही, ऐसे छके चितवौ दिन रातै ।
लीजिए दान हो दीजिए जान तिहारी सबै हम जानति घातै ।
जानौ हमे जनि वै बनिता, जिनसो तुम ऐसी करौ बलि बातै ।

मतिराम

मानसिक भावो को व्यक्त करने वाली ये विशेष चेष्टाएं है । इनकी गणना अनुभवो मे होती है । इनमे कायिक और मानसिक अनुभावो का सकेत किया गया । इनके अतिरिक्त भावो को उद्दीप्त करने वाली कुछ अन्य सामान्य चेष्टाएं है, जिन्हे नायिका के अलकार रूप मे मानते है ।

सत्व से उत्पन्न नायिका के अनेक अलकारो का वर्णन हुआ है । इन अलकारो की सख्या बीस या अठाइस मानी गई है । साहित्य दर्पणकार अठ्ठाइस के पक्ष मे है[1] धनञ्जय ने बीस अलकारो को स्वीकार किया है ।[2] रसतरगिणीकार सभी गात्रज अलकारो को 'हाव' के अन्तर्गत मान लेता है ।[3] मतिराम और देव ने भी भानुदत्त का ही अनुसरण किया है । देव ने दश हावो का समर्थन किया है ।[4] विश्वनाथ द्वारा बताये गये अन्य अतिरिक्त अलकारो का नाम मद तपन मौग्ध्य, विक्षेप, कुतूहल, हसित, चकित और केलि है । इन सभी अलंकारो को तीन वर्गों मे बाँटा गया है ।

१. अगज
२. अयत्नज
३. स्वभावज

इन तीनो मे अयत्नज अलकार शरीर के ऐसे विशेष गुण है जो स्वत ही उत्पन्न हो जाते है । इनमे चेष्टागत व्यापार की प्रवृत्ति कम दीख पडती है । इससे ये शोभा विधायक अलकार ही है, चेष्टा नही है । इनका वर्णन गुणो के

---

1 यौवने सत्वजास्तासाष्टाविंशतिसख्या—साहित्य दर्पण ३।८९

2 यौवने सत्वजा स्त्रीणामलकारास्तु विंशति ।—दशरूपक ३/८९

3 निर्णय सागर काव्यमाला-पचमो गुच्छक —पृ० १५८

4 'यहि विधि दश विधि हाव कवि बरनत मत प्राचीन । देव

अन्तर्गत किया जा चुका है। अ गज और स्वभावज मे चेष्टा वर्तमान रहती है। इनका सकेत कर देना समीचीन है।

अंगज अलंकार--नायिका की शोभा बढाने वाले आगिक विकारो को अ गज अलकार कहते है। यह तीन रूपो मे प्रकट होता है। इन्हे भाव, हाव, हेला कहते है।

निर्विकार चित मे उत्पन्न होने वाली विकृति को 'भाव' कहते है यह विकृति वाणी, मुख, अग, अभिनय आदि के द्वारा प्रकट होती है। यह मानसिक विकार है। भृकुटि या नेत्रादि के विलक्षण व्यापारो से सभोग की इच्छा को प्रकाशित करने वाले भाव ईषत् लक्षित होकर 'हाव' कहे जाते है। रति-काल मे यह नायिका की स्वाभाविक भाव-भगि है। भाव मानसिक व्यापार है और हाव क्रियाओ द्वारा स्पष्ट हो जाने वाला व्यापार है। यह भ्रू-निक्षेपादि द्वारा प्रकट होता है। हाव ही सुव्यक्त होकर 'हेला' हो जाता है।

सौन्दर्यपरक दृष्टि से देखने पर ज्ञात हो जाता है कि भाव, हाव, और हेला मे क्रियाओ के उत्तरोत्तर विकास का एक क्रम है। ये तीनो ही क्रियाएँ मन के काम विषयक भावना की अभिव्यक्ति करती है। 'भाव' मानसिक अभिव्यक्ति और 'हाव' तथा 'हेला' कायिक अभिव्यक्ति है। इन चेष्टाओ से एक ओर जहाँ नायिका की आकर्षण एव मोहकता बढती है, वही दूसरी ओर नायक के मन मे रति-भाव का आविर्भाव और उसका विकास होता है। उद्बुद्ध रति भावना के कारण नायिका अपनी इन चेष्टाओ के साथ और अधिक सुन्दर बन जाती है। अत ये चेष्टाएँ सुन्दरता को बढाने वाली क्रियाओ मे है।

इन आगिक चेष्टाओ के अतिरिक्त **स्वभावज अलंकारों** की शोभा नायिका के व्यक्तित्व के आकर्षण को बढाने वाली होती है। अगज और अयत्नज अलकारो से स्वभावज का प्रमुख अन्तर यह है कि आरम्भ के दो अलकार पुरुषो मे भी पाये जाते हैं। इनसे पुरुष, किशोर या तरुण, के सौन्दर्य एव आकर्षण की वृद्धि होती है, परन्तु स्वभावज अलकारो की क्रियाओ का सौन्दर्य केवल स्त्री मे ही मिल सकता है। इससे इन अलकारो द्वारा स्त्री-शोभा का ही विकास होता है।

इन अलकारो मे लीला, विलास, विच्छित्ति, विब्वोक, किलकिंचित्, विभ्रम, ललित, मोट्टायित कुट्टमित, विहृत, मद, तपन, मौग्ध्य, विक्षेप, कुतूहल, हसित, चकित, केलि की गणना होती है। इन अलकारो की विभिन्न चेष्टाओ को देख कर ऐसा ज्ञात होता है कि इनसे मानसिक विचारो का विकास

होता है। यह विकास विभिन्न चेष्टाओ से व्यक्त हो जाता है। ये चेष्टाएँ निम्नलिखित ढग से समझाई जा सकती है —

(१) त्वरामूलक चेष्टा मे 'विभ्रम' का नाम लेगे।
(२) अनुकरण मूलक मे लीला।
(३) प्रसाधन मूलक चेष्टा मे विच्छित्ति, ललित और विक्षेप।
(४) अभिव्यक्तिमूलक चेष्टा मे कुट्टमित, विब्वोक, विहृत, हसित, चकित।
(५) मानसिक विकास से सम्बन्धिन अलकारो मे विलास, किलकिञ्चित, मोट्टायित, कुतूहल, मौग्ध्य।
(६) काममूलक चेप्टा—तपन, केलि।

इस वर्गीकरण मे विभिन्न चेष्टाओ की मानसिक स्थिति का ध्यान रखा गया है। प्रत्येक चेष्टा मे किमी न किसी भाव की प्रधानता है। उदाहरणार्थ 'विभ्रम' मे प्रियमिलन की जल्दवाजी है। इससे इसे त्वरामूलक चेष्टा माना गया। विलासादि मे मानसिक प्रसन्नता से मन का विकास हो जाता है यही विकास चेष्टाओ द्वारा प्रकट होता है। इससे इन अलकारो को मानसिक विकास से सम्वन्धित अलकार माना गया। यह वर्गीकरण विषय को सरल करने के लिये किया गया, परन्तु इनका मूल उद्देश्य नायिका की चेष्टाओ से उत्पन्न मोहकता का बोध कराना ही है इसी दृष्टि से इनका अध्ययन होगा।

उपर्युक्त विचारो के आधार पर इस निर्णय पर पहुँच जाते है कि अनुभावमूलक और अलकार मूलक दोनो ही प्रकार की चेष्टाओ से हृद्गत भावनाओ का प्रकाशन होता है। यह प्रकाशन इतना आकर्षक और मोहक होता है कि इन्ही चेष्टाओ से आलम्बन के सौन्दर्य की वृद्धि हो जाती है। अत सौन्दर्य के साधक उपकरणो मे इन चेष्टाओ का बडा महत्व है। इसमे कुछ चेष्टाएँ पुरुषो से सम्बन्धित, कुछ केवल स्त्रियो से सम्बन्धित और कुछ स्त्री-पुरुष दोनो से सम्बन्धित होती है। इन दोनो के सम्मिलित रूप से ही मानव सौन्दर्य की पूर्णता की कल्पना की जा सकती है। यह सम्पूर्ण चेष्टा एव गुण गत सौन्दर्य आत्मपरक उपकरण है, जो वाह्य सौन्दर्य साधक उपकरणो से, मिलकर आलम्बन के रूप सौन्दर्य को बढाने मे समर्थ होता है।

सौन्दर्य-साधक बाह्य—उपकरण

सौन्दर्य की वृद्धि करने वालो प्रसाधनो मे आत्मगत उपकरणो का

सकेत हो चुका है। इसके अन्तर्गत नायक अथवा नायिका के गुण और उनकी चेष्टाओ का वर्णन हुआ है। गुण शारीरिक अथवा मानसिक धर्म है और चेष्टाओ से मनोगत भावनाओ का स्फुरण होता है। इन दोनो तत्वो का सीधा सम्बन्ध आलम्बन से होता है। इस कारण इन्हे आत्मगत सौन्दर्य-साधक उपकरण कहते है। इनके अतिरिक्त अन्य प्रकार के उपकरणो का वर्णन मिलता है। ये उपकरण आलम्बन के गुण अथवा चेष्टाओ से सौन्दर्य वृद्धि के साधक नही होते, अपितु बाहरी साधनो द्वारा रूप का आकर्षण बढाते है। ऐसे साधनो को वाह्य उपकरण की सज्ञा दी जाती है।

सौन्दर्य को बढाने वाले आलम्बन के शरीर से भिन्न अन्य प्रसाधनो को बाह्य सौन्दर्य साधक उपकरण मानते है। इन उपकरणो की दो कोटियाँ हो जाती है—

(१) प्रसाधनगत उपकरण।
(२) तटस्थ–उपकरण–

प्रसाधनगत उपकरण

आलम्बन से भिन्न रूप की उत्कर्षक वस्तुए प्रसाधन के अन्तर्गत आती है। इन प्रसाधनो का शरीर से अलग स्वतंत्र अस्तित्व होता है। अपनी इस स्वतत्र सत्ता मे इनका निजी महत्व है। आत्मगत और प्रसाधनगत उपकरणो मे मूल अन्तर यही है कि आत्मगत उपकरण आलम्बन से अलग होकर स्वतत्र अस्तित्व वाला नही हो सकता है, जबकि प्रसाधनगत उपकरणो का स्वतत्र अस्तित्व ही होता है। इनकी महत्ता उपयोग मूलक है। ऐसे प्रसाधनो को दो श्रेणियो मे बाट सकते है।

(१) लगाये जाने वाले उपकरण।
(२) धारण किये जाने वाले उपकरण।

इन दोनो को ही षोडश शृगार के अन्तर्गत मानते है।

षोडश-शृंगार—शरीर पर लगाये जाने वाले सौन्दर्य-साधक उपकरणो मे उबटन मंजन, मिस्सी, स्नान, केश-विन्यास, मांग-भरना अजन, महावर, बिन्दी, तिल, मेहदी, सुगन्धित द्रव्य, और पान रचाने की गणना होती है। धारण किये जाने वाले उपकरण वस्त्र, आभूषण, माल्य है। इन दोनो की सोलह सख्या होने से इन्हे षोडश शृगार के अन्तर्गत माना जाता है। विभिन्न शास्त्रकारो के मत से इनके नामो मे कुछ अन्तर मिलता है। वल्लभ देव ने मजन, चीर, हार, तिलक, अञ्जन, कुण्डल, नासामोती, केश रचना, कञ्चुक

नूपुर, सुगंधि, मेखला, ताम्बूलादि का वर्णन किया है।[1] इस वर्णन मे आभूषणो का नाम ही अधिक गिनाया गया है, शृ गार के सभी अगो पर दृष्टि नही गई है। रूप गोस्वामी ने नासामोती पट वेणी, फूल, पद्‌महस्त, ताम्बूलादि का वर्णन किया है।[2] प्रामाणिक हिन्दी कोश मे उपटन, मंजन, मिस्सी, स्नान, सुवसन, केश-विन्यास, माग, अजन, महावर, विन्दी, ठोढीपर तिल, मेहदी, गन्ध द्रव्य, आभूषण फूल-माला और पान रचाने को षोडश-शृ गार कहा गया है।[3] केशवदास ने स्नान, अमलबास, जावक, केश-पास का सुधारना, अगराग दर्पण, आभूषण, मुखबास, काजल, आदि का वर्णन किया है।[4] सरदार कवि ने इस ग्रन्थ की टीका मे परम्परा का अनुसरण किया है। वलभद्र के मत से दत धावन, उबटन, मञ्जन, तिलक आदि सोलह शृङ्गार है।[5] इन शृङ्गारो का विश्लेषण करने से ज्ञात हो जाता है कि इनका मुख्य उद्देश्य सौन्दर्य को

---

1 आदौ मञ्जनचीर हारतिलक नेत्राञ्जन कुण्डले।
नासा मौक्तिक केशपाश रचनासत्कञ्चुक नूपुरौ।
सौगन्ध्य कर कङ्कण चरणयो रागो रणन्मेखला।
ताम्बूल कर दर्पण चतुरता शृङ्गारका. षोडशा। वल्लभदेव।

2 स्नाता नासाग्रजाग्रन्मणी रसित पटासूत्रिणि वद्धवेणि।
सोत्त सा चर्चिताङ्गी कुसुमितचिकुरा स्रग्विणी पद्‌महस्ता।
ताम्बूलास्योरु बिन्दुस्तवकित चिबुका कज्जलाक्षी सुचित्रा।
राधालक्तोज्ज्वलाङ्‌घ्रि स्फुरति तिलकिनी षोडशा कल्पनीयम्।
उज्ज्वलनीलमणि पृ ७७ निर्णय सागर।

3 प्रामाणिक हिन्दी कोश-सभा-पृ० ४७ स० १९८० वि०—रामचन्द्र वर्मा।

4 प्रथम सकल सुचि मजन अमल बास, जावक सुदेश केशपासको सुधारिबो।
अगराग भूषणविविध मुखबास राग, कज्जल कलित लोल लोचन निहारिबो।
बोलनि हँसनि, मृदुचातुरी चितौनी चारु, पलपल प्रति पतिव्रत प्रतिपारिबो।
केसोदास सबिलास करहु कुँवरि राधे, इहिविधि सोरहशृङ्गारनि सिगारिबो
रसिकप्रियाछद ४३, विश्वनाथप्रसाद द्वारा सम्पादित केशवग्रन्थावलीभाग १

5 कर दत-धोवननुवटन अग मंजन के अग अगुछान अगुछाई है। करके तिलक मैन पाटीपार 'बलभद्र' भाल भली वन्दन की विन्दुका वनाई है अजन दै नैन देख दरप्पन चिवुक चिह्न अधर तम्बोरकी अधिक छबि छाई है। मेंहदी करन मडि झाई दै महावर की सोलह सिगार की मूलचतुराई है।
—पृ २५९छद१४ पूनाविश्वविद्यालय की हस्तलिखित प्रति।

बढाना ही था। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिये अगो को अधिक से अधिक आकर्षक बनाने की चेष्टा की गई। यह चेष्टा सयोग के लिये अगो के सजाने मे दीख पडती है सयोग के प्रसग पर विकर्षण उत्पन्न करने वाली दो बाते होती है (१) शरीर या मुख की मलीनता, गन्दगी, दुर्गन्धि आदि। (२) मुखादि अगो का अनाकर्षक होना। सोलह शृगार इन दोनो ही कमियो को दूर करने का साधन है। इनसे त्रुटिया दूर हो जाती है और मुख का आकर्षण बढ जाता है।

सयोग के अवसर पर आकर्षण का प्रथम और मुख्य अग मुख है। मुख को ही देख कर भावनाएँ केन्द्रित होती है। मुख ही आमन्त्रित करता है। इससे मुख एव अन्य ऊर्ध्वाङ्गो का आकर्षक होना आवश्यक माना गया। इसी उद्देश्य की सिद्धि के लिये इन शृङ्गारो की कल्पना की गई। ऊर्ध्वाङ्गो का रुचि के अनुकूल बनाने एव आकर्षण लाने के लिये इन शृङ्गारो का तीन रूपो मे उपयोग किया गया है —

(१) मुख को सुवासित करके **मलीनता दूर करने** वाले शृङ्गार साधनो मे उबटन, स्नान, गन्ध-द्रव्य एव पान रचना गिना जायगा, क्योकि उबटनादि से शरीर मे निखार आ जाता है।

(२) मुख एव अन्य अनावृत्त अगो को **प्रसाधित** करने के लिये मिस्सी केश-विन्यास, माँग, अजन, महावर, विन्दी, तिल मेंहदी गन्ध द्रव्य, आदि का प्रयोग होता है।

(३) सम्पूर्ण अगो की शोभा बढाने वाले शृङ्गार मे स्नान, मजन, उबटन, बसन, आभूषण गन्ध द्रव्य फूलमाला की गणना हो सकती है। मेहदी से हस्त एव पग का आकर्षण बढता है। इससे सर्वाङ्ग मे सुखदता आ जाती है।

इन शृङ्गारो का व्यावहारिक दृष्टिकोण सूक्ष्म एव मनोवैज्ञानिक है। प्राय आलम्बन के सभी अग वस्त्रादि से ढंके रहते है। इससे उन अगो की अनावृत अवस्था की ओर दृष्टि नही जाने पाती। ढके हुए अगो के प्रसाधित हुए बिना भी उनका आकर्षण बना रह सकता है। कभी-कभी तो ढके अथवा अधखुले अग कौतूहल एव जिज्ञासा की वृद्धि ही करते है। ऐसे अगो का आकर्षण बडा तीव्र होता है इसी कारण जयशकर प्रसाद का मन 'कामायनी' के अधखुले अगो की आकर्षण शक्ति मे उलझ जाता है। उन्हे वे अग 'विजली' के फूल जैसे प्रतीत होते है।[3] खुले हुए अगो मे मुख, अन्य ऊर्ध्वाङ्ग तथा

---

3 प्रसाद-कामायनी।

हाथ और पग है। इससे इन अगो को सजाने और आकर्षक बनाने की भावना का विकास हो गया होगा। इसका क्रियात्मक पक्ष प्रसाधन सामग्री और आभूषणो के धारण करने मे दीख पडता है। लोक व्यवहार मे इन्ही अगो के आभूषणो की सख्या अधिक है। यह प्रवृत्ति निरर्थक नही मानी जा सकती है इसका मनोवैज्ञानिक कारण अपने प्रसाधित रूप के आकर्षण का प्रदर्शन करना ही है। इन खुले अगो मे हाथ-पग मे मेहदी रचाना आज भी मान्य है। मुख तो सम्पूर्ण शृङ्गार का केन्द्र स्थल ही है। इसी से मुख के प्रसाधनो की सख्या सबसे अधिक है। उबटन स्नानादि से सम्पूर्ण शरीर की कोमलता और स्वच्छता बढती है। इस आधार पर यह निर्णय हो जाता है कि ये प्रसाधन अपने आप मे स्वय साध्य नही है, अपितु शरीर के आकर्षण को बढाने मे साधन के रूप मे ही प्रयुक्त होते है। व्यक्ति के नैसगिग-सौन्दर्य के रहने पर ही ये प्रसाधन आकर्षण के उत्कर्ष मे सहायक हो सकते हैं। इसके अभाव मे उनकी महत्व हीनता उसी प्रकार स्पष्ट हो जाती है जैसे शव पर लेप किया गया चन्दनादि। अत इन प्रसाधनो की शोभा स्वय मे नही है, अपितु उचित आलम्बन को प्राप्त कर लेने पर ये शोभा के विधायक हो जाते है। प्रसाधन सहज सौन्दर्य को बढाने वाले होते हैं। इन प्रसाधनो के अभाव मे भी सहज सौन्दर्य का अपना आकर्षण तो रहता ही है। सस्कृत साहित्य मे इस प्रकार के सौन्दर्य एव प्रसाधनो का वर्णन अधिक मिलता है। यहाँ प्रसाधनो का निम्नलिखित प्रकार से वर्णन मिलता है :—

(१) नैसर्गिक शोभा से युक्त रमणी मे कोई भी प्रसाधन रम्य हो जाता है।

(२) नायिका की इस शोभा से प्रसाधनो मे भी एक कान्ति आ जाती है।

(३) ये प्रसाधन सहज सौन्दर्य को विकृत कर देने वाले होते हैं।

(४) ये सौन्दर्य के उपकारक भी हो जाते है।

आभूषणो से सहज सौन्दर्य की वृद्धि ही अधिक होती है। पार्वती-परिणय मे कहा गया है कि 'लोक मे यह प्रसिद्ध है कि भूषण अगो को शोभित करते हैं परन्तु यहाँ अग ही भूषणो की सुषमा को उत्पन्न करते है।[1] कालिदास ने सहज-सौन्दर्य को प्रत्येक दशा मे प्रकाशमान बताया है।[2] भवभूति ने मालती

---

1 अङ्गभूषणनिकरो भूषयतीत्येव लौकिको वाद। अङ्गानि भूषणाना कामपि सुषमामजीजनमैस्तस्याः—पार्वती परिणय पृ ३६

2 अभिज्ञान–शाकुन्तम्

के सौन्दर्य को भी इसी प्रकार का बताया है ।[1] नागानन्द की नायिका अपनी कोमलता और मसृणता के कारण स्तन के भार को भी खेद उत्पन्न करने वाली जानती है, पाद-युगल का भार-वहन करने मे समर्थ नही हो पाती । अत नूपुर और हार जैसे प्रसाधनो को धारण करने पर भी यह सन्देह उत्पन्न हो जाता है कि वह उस भार को सहन कर सकती है या नही । इस नाटक का नायक नायिका से कहता है कि तुम व्यर्थ मे अगो मे भूषणो को केवल क्लेश का अनुभव करने के लिये धारण करती हो अन्यथा तुम्हारे अग स्वत ही भूषण है[2] भाष के विचार से स्वभाव से रमणीय सौन्दर्य को ये प्रसाधन और भी अधिक रमणीय बना देते है ।[3] यहाँ सहज सौन्दर्य की महत्ता स्वीकार की गई है । मण्डन रमणीयता मे योग देते है, परन्तु आलम्बन के सौन्दर्ययुक्त होने पर ही उनकी उपादेयता सम्भव है । अभिज्ञान-शाकुन्तलम् मे प्रियम्बदा शकुन्तला से कहती है कि आश्रम मे सुगमता से प्राप्त होने वाले प्रसाधनो से उसका सौन्दर्य विकृत ही होता है ।[4] इस स्थल पर **नागरिक-सौन्दर्य प्रसाधनो** की महत्ता आश्रम सुलभ प्रसाधनो की अपेक्षा अधिक स्वीकार की गई है । इससे सहज सौन्दर्य का उत्कर्ष होना है, परन्तु आश्रम मे प्राप्त सौन्दर्य प्रसाधन सहज सौन्दर्य को विकसित नही करते है । 'विप्रकार्यते' का अर्थ सौन्दर्य को मुखरित न होने देने से है, उसे बिगाडने से नहीं है । यह बात दूसरी है कि नागरिक अलंकारो के अभाव मे शोभा बढ नही पाती है । इस प्रकार सस्कृत साहित्य मे प्रसाधनो द्वारा सौन्दर्य-वृद्धि को स्वीकार किया गया है, यद्यपि कही-कही सहज-सौन्दर्य की महत्ता भी स्वीकार की गई है । कालिदास ने सौन्दर्य की उपयोगिता पर भी ध्यान दिया है । उन्होने सौन्दर्य को प्रिय के सौभाग्य देने वाला माना है[5] शृङ्गार की सफलता भी इसी मे है कि प्रिय उसे

---

1 मालती माधवम् ६।१।६१ भवभूति ।

2 खेदायस्तनभार एव किमु ते मध्यस्य हारोऽपर ।
श्रीमत्यूरुयुग नितम्बभरत काञ्चानया किं पुन ।
शक्तिपादयुगस्य नोरुयुगल वोढु कुतो नूपुरौ ।
स्वाङ्गै रेव विभूषितासि वहसि क्लेशाय किं मण्डनम् ।
नागानन्द । ३।३७ हर्ष ।

3 स्वभावरमणियानि मण्डितानि अति रमणीय: भवन्ति । भास ना च. ४७

4 आभरणोचित रूपमाश्रमलब्धैं प्रसाधनैर्विप्रकार्यते ।
कालिदास-ग्रन्थावली-पृ-४८ द्वितीय खण्ड

5 प्रियेषु सौभाग्यफलाहि चारुता । ५।१ कुमार-सम्भवम् ।

स्निग्ध दृष्टि से देखे[1] इसीसे प्रिय के आगमन पर किया गया मण्डन अधिक महत्वपूर्ण होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि वेष-रचना के मूल मे आकर्षण की यही प्रवृत्ति कार्यशील रहती है। सहज सौन्दर्य के साथ ही प्रसाधन प्रिय को रिझाने की क्षमता धारण करते है।

शृङ्गार-प्रसाधनो की व्यावहारिक उपयोगिता को हिन्दी साहित्य के रीतिकालीन कवियो ने भी स्वीकार किया है। गग कवि ने राधा का शृङ्गार कृष्ण के लिये ही बताया है।[2] पद्माकर की नायिका का शृङ्गार करते हुए सखी श्याम के पसन्द का ध्यान रखती है।[3] शृङ्गार की यह उपयोगिता प्रिय को ध्यान मे रख कर वर्णित की गई है। अन्य स्थलो पर दो भिन्न दृष्टियाँ दीख पडती है। प्रथम दृष्टि मे प्रसाधनो द्वारा रूप के सवाई बढ जाने की चर्चा है, परन्तु इसका भी अन्ततोगत्वा उद्देश्य प्रिय को रिझाना ही है। दास कवि का मत है कि विमलगात मे आभरण रूप को बढा देते है।[4] बिहारी ने सहज सौन्दर्य को ही अधिक महत्व दिया है। उनके विचार से आभूषण तो सहज सौन्दर्य मे वैसे ही दीख पडते है, जैसे दर्पण मे लगा हुआ मोरचा। अत. आभूषणो के द्वारा ही सौन्दर्य-वृद्धि का विचार इनको पसन्द नही है।

इन आभूषणो और वस्त्रो के धारण से दो बातो का ज्ञान होता है। प्रथम **आत्म प्रदर्शन की भोग-मूलक भावना और दूसरे अंगो के आकर्षक प्रदर्शन** से रति भाव का सचार करना। अपने वैभव एव ऐश्वर्य की विज्ञप्ति की ओर भी ध्यान रहा है। यह भाव मुख्यत रीतिकाल मे दीख पडता है, परन्तु भक्ति-काल मे भी सूर की गोपी बडे अभिमान के साथ कहती है कि मैं आज जितने आभूषण पहन कर आई हू, घर पर इससे दूने आभरण है।[5] ये मूल्यवान प्रसाधन नायक को आकर्षित करते है, तथा नायिकाएँ इसी के माध्यम से मानसिक उल्लास एव राग की अभिव्यक्ति करती है। इनके द्वारा आभूषणो के प्रति मोह और समृद्धि की स्थिति का ज्ञान होता है। अत सौन्दर्य के ये

---

1 आत्मानमालोक्य च शोभामानमादर्श बिम्बे स्तिमितायताक्षी।
हरोपयाने त्वरिता बभूव स्त्रीणा प्रियालोक फलो हि वेष। कु सु ७।२२

2 श्री नन्दलाल गोपाल के कारण, कीन्हे शृगार जो राधे बनाई।
सुन्दरी तिलक ६।६८७ गग।

3 त्यो पद्माकर या विधि और हूं साजि शृगार जो श्याम को भावै।

4 लागत विमल गात रूपन के आभरण।
बढि जात रूप जातरूप मे सवाई है। दास--शृ गार-निर्णय पृ ६

5 जितनी पहिरि आज हम आई घर है याते दूनो। सूरसागर पद १५४१

प्रसाधन सामाजिक स्थिति की वैभव सम्पन्नता और जन-सामान्य मे इनकी अप्राप्तता का बोध कराते है। इन प्रसाधनो का उद्देश्य रूप विन्यास द्वारा सौन्दर्य को बढाना और प्रिय को रिझाना है।

तटस्थ-सौन्दर्य—

मानव की प्रमुख प्रवृत्ति सौन्दर्य मूलक है। वह जड चेतन सभी वस्तुओ मे इसी सौन्दर्य को पा लेने का अभिलाषी है। उसकी सौन्दर्य मूलक यह भावना सम्पूर्ण जगत को अपना अधिष्ठान बनाती है। अपनी इसी वृत्ति द्वारा वह स्वय इसका अनुभव करके दूसरो के लिये भी प्रेषणीय बनाता है। चेतन जगत् के अतिरिक्त जड पदार्थो मे सुन्दरता देखने का कारण मनुष्य की रागात्मकता है। प्रत्येक वस्तु यदि किसी को सुन्दर दीखती है, तो उसका कारण उसका मानव-सापेक्ष होना है। मानव अपनी भावनाओ का आरोप करके वस्तु मे सुन्दरता का सायुज्य उत्पन्न कर देता है। यदि वह वस्तु मानव भावनाओ की कोमल परिधि मे नही आती, तो ऐसी स्थिति मे उसमे सुन्दरता का आभास नही हो पाता है अपितु वह वस्तु उसे 'उदासीन' प्रतीत होता है। उदासीनता का अर्थ उस वस्तु की अपने आप मे एक रूपता है। वह वस्तु जैसी है, वैसी ही रहेगी। मानव के आकर्षण अथवा विकर्षण का साधन नही बन सकती है। ऐसी स्थिति मे वस्तु का तटस्थ रूप मानव की अनुभूति के क्षेत्र मे नही आ सकेगा। मानव-सापेक्ष होकर ही उसमे चेतनता और सुन्दरता आ जाती है। अत सिद्ध होता है कि प्रकृतिगत या प्राकृतिक पदार्थो की सुन्दरता तभी होगी, जब उसमे मानव भावनो का योग हो जाय।

प्रकृति-गत पदार्थो के **मानव-सापेक्ष** होने के साथ उसका **निसर्ग सिद्ध** सौन्दर्य भी होता है। बसन्तकालीन पुष्प गन्धो से युक्त मलयानिल का प्रवाह, ग्रीष्म की प्रचण्डता, चन्द्र की शीतलता तारक-खचित आकाश, कल-निनादिनी सरिताएँ उत्तु ग पर्वत-शिखर, पक्षियो, के मधुर कलरव, प्रकृति का रूप, वृक्ष वाटिकादि सभी मे सौन्दर्य लक्षित होता रहता है। इन पदार्थों के सौन्दर्य का आन्तरिक महत्व होता है। सुबासित मन्द-मन्थर गति से प्रवाहित होने वाला वायु किस को आकर्षित नही कर लेगा। कोयल की कूक को सुन कौन रसिक आनन्दित नही होगा, पपीहे की पुकार मे अपने 'पी' की स्मृति किस प्रोषित पतिका को न हो सकेगी। इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रकृति के उपकरणो मे हृदय को आवर्जित कर लेने की एक महान् शक्ति है। इस शक्ति का ज्ञान सवेदनशील हृदय को होता है। वह अपनी सवेदनशीलता की अनुकूलता अथवा प्रतिकूलता के अनुसार ही प्रकृति मे सौन्दर्य अथवा विकर्षक प्रवृत्ति को पाता है। यदि प्रकृति के पदार्थ उसके लिये अनुकूल है, तो वे सौन्दर्य वृत्ति के विधायक

होने के साथ भावनाओ को प्रियता की ओर मोड देने मे सहायक होगे और प्रतिकूल होने पर प्रकृति या तो भावनाओं को दु.ख मूलक बना देगी या पुनः उसके प्रति विकर्षण उत्पन्न कर देगी। इस दृष्टि से प्रकृति उद्दीपक हो जाती है।

उज्ज्वल नीलमणिकार ने इन उद्दीपक गुणो का संकेत किया है। उन्होने बताया है कि गुण, चेष्टा, अलकृति और तटस्थ ये चार उद्दीपक गुण है। इनसे आलम्बन की शोभा बढती है, इससे इनकी गणना सौन्दर्य के उपकरणो मे से है। इन चारो मे तीन का सम्बन्ध नायक अथवा नायिका से साक्षात् रूप मे बना रहता है। रूप लावण्य और चेष्टा नायक या नायिका के शरीरादि से सबन्धित सौन्दर्य के उपकरण है। प्रसाधन शरीर का भाग न होने पर भी सुन्दरता बढाने मे मुख्य है। इससे छिपी शोभा विकसित होती है। प्रकृति, दूती आदि द्वारा भावनाओ मे सौन्दर्य की अभिवृद्धि शरीर से सम्बन्धित कारण न होकर बाह्य कारण है। इससे इसे तटस्थ सौन्दर्य की संज्ञा प्राप्त है। इसमे कोई सदेह नही कि वन-उपवनादि की शोभा से मन प्रभावित होता है, वह सौन्दर्य की ओर ललकता है और उसके उपभोग की कामना प्रकट करता है। सस्कृत का एक प्रसिद्ध श्लोक देखें —

य कौमारहर. स एवहि वरस्ता एव चैत्रक्षपाः।
ते चोन्मीलित मालती सुरभय प्रौढा. कदम्बानिलाः।
सा चैवास्मि तथापि तत्र सुरतव्यापार लीलाविधौ।
रेवा रोधसि वेतसी तरुतले चेत समुत्कण्ठ्यते। का० प्र०

इस तटस्थ सौन्दर्य का वर्णन कवियो ने मुख्यत निम्नलिखित दृष्टिकोणो से किया है —

१. मानव भावनाओ की सापेक्षता मे।
२ मानव सौन्दर्य को स्पष्ट करने के लिये अप्रस्तुत विधान मे।
३. यथातथ्य रूप मे।

मानव भावनाओं की सापेक्षता मे—प्रकृति का सौन्दर्य प्रतिक्षण बदलता रहता है। यह मानव निरपेक्ष होकर अपने दिव्य एव यथातथ्य रूप मे प्रकट हो जाता है, परन्तु मानव भावो की सापेक्षता से उसमे विद्रूपता अथवा आकर्षण का अनुभव होने लगता है। प्रकृति स्वय तो दु ख सुखादि भावो का अनुभव नहीं करती, परन्तु हमारी भावनाओ के आरोप से वह ऐसा करती हुई सी प्रतीत होती है। इस प्रकार का वर्णन मानव-भावनाओ की सापेक्षता से ही माना

जायगा। हम प्राकृतिक सौन्दर्य को देखकर अपनी एक धारणा बना लेते है और काव्य सृजन के अवसर पर उन्ही मानस-प्रतिबिम्बो का सहारा लेते है।

दूसरी बात यह है कि मानव सौन्दर्य का मुख्य आधार प्रकृति ही है। मानव प्रकृति से रस का सग्रह करता है और उसी से उसके सौन्दर्य को रूप मिलता है। इसका यह कारण है कि मानव सौन्दर्य की एक सीमा होती है, जहाँ पहुँच कर उसके सौन्दर्य का उतार आरम्भ हो जाता है, परन्तु प्रकृति सौन्दर्य मे शाश्वतता रहती है। यह सौन्दर्य सदैव आनन्द दायक ही होता है। मानव की मानसिक स्थिति की विपरीतता मे इस प्राकृतिक सौन्दर्य की विद्रूपता प्रकट होने लग जाती है। सूर की गोपियो ने इसी से कालिंदी को काली देखा है, पपीहा उन्हे दुख दाई प्रतीत होता है और हरे-भरे मधुवन को देख कर उन्हे आश्चर्य होता है।[1] यहाँ न तो कालिंदी काली हो गई है और न पपीहा दुख देने वाला ही हो गया है, परन्तु मानव भावो की सापेक्षता मे ऐसा प्रतीत होने लगा है। यह बात दूसरी है कि गोपियाँ अपने दुख का प्रतिबिम्ब उसमे पाकर उसके काली होने के हेतु की कल्पना कर लेती है। इससे स्पष्ट है कि मानव सौन्दर्य की अभिव्यक्ति मे प्रकृति का महत् योग है। अनुभूतिकर्ता मानव के कारण ही यह चराचर जगत् सुन्दर प्रतीत होता है और इस सुन्दरता से मानव इतना अभिभूत हो उठता है कि अपने शारीरिक सौन्दर्य की अभिव्यक्ति के लिये प्रकृति को अप्रस्तुत रूप मे ग्रहण करता है।

प्रकृति-सौन्दर्य मानव भावनाओ की सापेक्षता मे न आवे तो ऐसी स्थिति मे उसका आलम्बन गत रूप ही प्रस्तुत होगा। परन्तु मानव-साक्षेप होकर वही उद्दीपक हो जाता है। प्रकृति स्वय सुख या दुख का अनुभव नही करती। उसका अस्तित्व तो एक रस है उसे मानव की अपेक्षा भी नही रहती, परन्तु मानव अपनी शोभा और सौन्दर्य को बढाने मे प्रकृति की सहायता लेता है। इसी दृष्टि से मानवीय सौन्दर्य मे प्राकृतिक सौन्दर्य का महत्वपूर्ण स्थान है। यह मानव सौन्दर्य का पोषक है। प्रकृति का रूप पक्ष उसका

---

1 (i) देखियत कालिंदी अति कारी। सूरसागर

(ii) हो तो मोहन की विरह जरीरे तू कत जारत।
रे पक्षी तू पापी पपीहा पिउ-पिउ कत अधिरात पुकारत।
सूरसागर

(iii) मधुवन तुम कत रहत हरे।
विरह वियोग श्याम सुन्दर के ठाढे क्यो न जरे। सूरसागर

वास्तविक आधार है, जिसे ग्रहण कर मानव अपनी भावनाओ के अनुकूल उसे ढाल लेता है । इस दृष्टि से प्रकृति सौन्दर्य दो बातो पर निर्भर है—

(१) प्रकृति का आत्मपरक गुण—यह उसका रूपपक्ष है, जिसमे स्पर्श और दृश्य आदि की मानव इन्द्रिय सुखदता रहती है । यह मूल आधार है ।

(२) प्रकृति के विभिन्न गुणो को ग्रहण करने की रागात्मक अनुभूति । प्रकृति का यह भोग-पक्ष है अर्थात् यह पक्ष प्रकृति की मानव जीवन गत उपयोगिता का आधार स्तम्भ है । इसमे कलाकार का सवेग सकुल-हृदय विभिन्न परिस्थितियो आदि से सम्पन्न होकर प्रकृति के पूर्वानुभूत प्रस्तुत सदर्भ को कल्पना द्वारा अप्रस्तुत रूप मे लाकर अनेक मार्मिक छवियो का अकन करता है । इस प्रकार अप्रस्तुत रूप मे लाये गये प्राकृतिक उपकरणो को मानव-भावनाओ के योग से सुन्दर बनाकर वस्तु की प्रस्तुति (Presentation) आकर्षक बिम्ब विधान द्वारा की जाती है । इसमे पूर्व अनुभव, उसका सौन्दर्य परक कल्पनात्मक रूप और प्रत्यक्ष अनुभूति इन तीनो का योग रहता है । इनमे प्रकृति का मूक सहयोग मानव भाव एव चेतना के अनुकूल ही परिवर्तित होता रहता है । यदि प्रकृति मे निज का सौन्दर्य न हो, तो वह आकर्षण का साधन ही नही बन सकती है उसका यह अपनत्व अपनी आकर्षण की प्रबलता के कारण मानव-मन को बरबस अपनी ओर खीच लेता है । ऐसी स्थिति मे जब मानव के विचार एव भावनाए उस प्रकृति से सम्बद्ध हो जाती हैं तो प्रकृति की सौन्दर्य परक आत्मलीनता सुन्दर दीख पडती है । सच तो यह है कि हमारा 'स्वत्व' इतना प्रबल होता है कि प्रकृति के आत्मपरक रूप की यथार्थता बहुत कम दीखती है । वह हमारी अन्तर्दशा एव मनोवृत्तियो के अनुकूल कभी सुन्दर और प्रिय तथा कभी असुन्दर कुरूप या विपरीत दुखद भावो की जनक बन जाती है । यदि ऐसा न होता तो रास के समय सुखद रूप मे वर्णित वही यमुना, कुज, चादनी आदि कृष्ण के वियोग मे काली, प्रतिकूल और साँपिन सी प्रतीत नही होती ।[1] इससे स्पष्ट होता है कि प्रकृति के निसर्गगत सौन्दर्य मे तो कोई अन्तर नही आता, परन्तु मानव मन की सवेदनशीलता के अनुकूल या प्रतिकूल होने पर हमारी स्वय की सौन्दर्यानुभूति प्रकृति मे तदनुकूल भावनाओ का बिम्ब पा लेती है । मानव की प्रकृति-सम्बद्ध ये भावनाएँ निम्न-लिखित रूप मे प्रकट होती है—

---

1 'पिया बिनु साँपिन कारी राति ।
कबहुँक जामिनी होति जुन्हैया डसि उलटी ह्वै जाति ।' सूरसागर

(१) प्रकृति की अनन्तता, विशालता और व्यापकता से उसके महत् रूप का अनुभव एव वर्णन।

(२) प्रकृति की सवेदनात्मक अनुभूति से युक्त उसका ऐन्द्रिय रूप। यही रूप मध्यकालीन साहित्य में ग्राह्य है।

प्रकृति का यह संवेदनात्मक रूप अनुकूलवेदनीयता और प्रतिकूल वेदनीयता से दो प्रकार का हो जात। है। प्रकृति की रमणीयता हमारी संवेदनाओ से प्रतिबिम्बित होकर समक्ष आती है। जब प्रकृति मे हमारे भावो का सुखद प्रतिबिम्ब पडता है, तो प्रकृति सुन्दर, सहायक और सहचारिणी के रूप मे दीख पडती है। उसकी रमणीयता हमारे भावो के अनुसार ही परिवर्तित होती रहती है परन्तु मन के क्षुब्ध या दुखी रहने से प्रकृति भी उदास दीख पडती है। प्रकृति सुख और दु ख दोनो ही अवस्थाओ मे भावो को उद्दीप्त करती है। अन्तर यही है कि सुख की या सयोग की अवस्था मे प्रकृति हमे रमणीय लगती है, हमारे भावो मे सौन्दर्य-भोग की उद्भावना करती है, और उससे हमे सुन्दरता की अनुभूति होती है। इस दृष्टि से वह उद्दीपक हो जाती है, परन्तु वियोग की अवस्था मे वही प्रकृति दु खदायिनी हो जाती है। इस प्रकृति को समझने एव अपने सौन्दर्य वृत्ति को स्पष्ट करने के लिये मानव उसकी सुन्दरत। का चयन करता है उसके गुणो का विश्लेषण करता है और उन्ही गुणो को मानव अंगो या क्रियाओ आदि का उत्कर्ष दिखाने के लिये उपमान रूप मे ग्रहण करता है। प्रकृति के इस रूप का ग्रहण अप्रस्तुत योजना के अन्तर्गत आता है।

अप्रस्तुत रूप मे प्रकृति के ग्रहण करने की भावना का एक क्रमबद्ध विकास है। आरम्भिक युग मे प्रकृति के प्रति मानव की भय मिश्रित श्रद्धा की भावना थी। यहाँ प्रकृति के उदात्त रूप की महत्ता थी, क्रमश प्रकृति के सतत साहचर्य से यह श्रद्धामूलक भावना सामाजिक चेतना मे बदलने लगी। मानव अपने चतुर्दिक बिखरे हुए प्रकृति के विभिन्न अ गो को अपने सचेतन सम्बन्धो के समान ही सहचर, साथी, समसुख-दुख भोगी समझने लगा। उससे निकटता बढने लगी, उसमे उसे सौन्दर्य दीख पडा और उसकी यह सौन्दर्य-चेतना इतनी बढी कि अपनी प्रत्येक सौन्दर्याभिव्यक्ति के लिये उसे प्रकृति का सहारा लेना पडा। वह अपने कोमल साथी को देखकर उसकी कोमलता का वर्णन करना चाहता था, परन्तु वह असहाय था। अत प्रकृति ही आगे बढी और पुष्पो की कोमलता उसकी कल्पना मे बिखेर गई। वह उसका स्पार्शिक अनुभव करने लगा। उसने पाया कि प्रकृति तो बडी ही कोमल, सहृदय, आकर्षक और रूप-

वती है। चाक्षुष अनुभव से प्रकृति की रम्यता और उसके वर्णों की रमणीयता का रहस्य खुल गया। उसे अपने सौन्दर्य-चेतना को व्यक्त करने का एक सबल आधार मिल गया। उसकी वाणी जहाँ भी मानवीय सौन्दर्य के वर्णन मे रुकती जान पडी, वही उसने तत्काल प्रकृति को उपमान बनाया और अपनी भावनाओ को सन्तुष्ट किया। हिन्दी के कवियो ने मानव की प्रत्येक स्थिति मे प्रकृति का अवलम्ब लिया है। संयोग-वियोग मे पेड, पौदे, पक्षी, पशु उपस्थित रहने लगे। धीरे-धीरे उपमान रूप मे इनकी गणना होने लगी। नायक नायिका के सौन्दर्य को व्यक्त करने मे इन कवियो ने अपनी सूक्ष्म कल्पना शक्ति का परिचय दिया। नायिका के रग के लिये चम्पा, केतकी, कान्ति के लिये जुन्हाई, किरण-कतार, मुख के लिये कमल, नेत्र के लिये खजन, मीन, मृगज, चकोर कमल आदि, अधर के लिये वन्धूक, मूगा आदि, दातो के लिये कुन्द-कली, नासिका के लिये शुक, वाहो के लिये मृणाल-नाल, वक्ष के लिये चक्रवाक, श्रीफल, घट, पर्वत आदि, उरु के लिये कदली-खम्भ, नाभि के लिये कुण्ड, लालिमा के लिये ईगुर आदि उपमानो का प्रयोग करके कवियो ने इन पदार्थों के सौन्दय-परक भाव की ही अभिव्यञ्जना की है। प्रकृति के अधिकाश उपमानो द्वारा नारी-सौन्दर्य की अभिव्यक्ति ही हुई है, कही-कही इन्ही उपमानो से पुरुष के सौन्दर्य को भी अभिव्यक्त किया गया है। मानव-बुद्धि प्रकृति से सौन्दर्य का चयन करती है, कलाकार का मानस इसका अनुभावन करता है। वह अपनी ग्राहिका शक्ति द्वारा उस प्रकृति-सौन्दर्य को संवेदना मे वाँधकर उसकी प्रत्यक्षानुभूति कराता है।

प्रकृति मे भाव पक्ष की प्रधानता होने से वह मानव-सापेक्ष वनती है, परन्तु उसके 'रूप' पक्ष की अवहेलना नही की जा सकती है। रूप सौन्दर्य का आधार है और इस रूप की महत्ता तभी मानी जायगी, जब उसे मानव-सौन्दर्य चेतना की स्वीकृति प्राप्त हो जाय। प्रकृति का रूप-पक्ष मानव की भाव-प्रक्रिया और अनुभूतियो का सम्बल पाकर सौन्दर्य का साधन बन जाता है। इससे प्रकृति का रूप पक्ष और मानव की अनुभूतियाँ इन दोनो का युगपत् महत्व है। इन अनुभूतियो के अभाव मे प्रकृति के उपमान रूप की अप्रस्तुत योजना सफल नही हो पाती है। [illegible] सफलता मानव के ऊपर निर्भर है, उसका रूप मानव-भावो के अनुकूल बनता विगडता है, उसका सौन्दर्य अचिर है, शाश्वत है, आवश्यकता केवल इस वात की है कि इस सौन्दर्य का अनुभव करने वाला सवेदनशील हृदय हो। ऐसे सहृदय के सम्पर्क से प्रकृति का सौन्दर्य खुल जाता है और उसकी रमणीयता शत-शत रूपो मे विश्व मे फैल जाती है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम इस निर्णय पर पहुँचते है कि मानव के रूप सौन्दर्य की निर्भरता अनेक बातो पर रहती है। यह सौन्दर्य स्वय मे साध्य नही है, अपितु यह अपने हृदय की तृप्ति अथवा प्रिय के रिझाने का एक साधन है। यह तृप्ति तभी सम्भव है जब व्यक्ति स्वय अपने रूप पर रीझ जाय परन्तु स्वय रीझकर रूप-सौन्दर्य की प्रशसा कर देना सामाजिक उपयोगिता नही रखता। इसके लिये दूसरो का रीझना आवश्यक है। इससे सौन्दर्य की उपभोग मूलक भावना को प्रश्रय मिलता है, रूप का आकर्षण बढता है और अपने प्रिय के मन पर रूप-सौन्दर्य का प्रभाव पडता है। इस प्रभाव के लिये रूपाकार का नैसर्गिक-सौन्दर्य प्रसाधक साधनो से कई गुना बढ जाता है। प्रसाधन सौन्दर्य को प्रस्फुटित करते हैं, उसे रमणीय बनाते है। इन प्रसाधनो के साथ व्यक्तिगत गुण, चेष्टा आदि से रूप की मोहकता बढ जाती है। आलम्बन की इस मोहकता, रूपाकर्षण और सौन्दयानुभूति से आश्रय इतना प्रभावित होता है कि उसकी भावनाएँ आलम्बन के रूप-सौन्दर्य-जन्य अपनी अनुभूतियो को दूसरो के लिये प्रेषणीय बनाने की अभिलाषा से प्रकृति के कोमल, सुखद, मधुर आकर्षक और सुन्दरतम पदार्थो का संग्रह उपमान रूप मे कर लेती है। यही सग्रह अभिव्यञ्जनात्मक शिल्प का स्पर्श पाकर अप्रस्तुत विधान के रूप मे तटस्थ सौन्दर्य का कारण बन जाता है। अत' रूप–सौन्दर्य की मोहकता और आकर्षण व्यक्ति आलम्बन के गुण और चेष्टाओ पर निर्भर है। गुण और चेष्टाओ के अभाव मे सौन्दर्य का अनुभव नही हो पाता। नैसर्गिक गुणो के रहने पर प्रसाधन गत उपकरण उस सौन्दर्य को बढा देते है और प्राकृतिक सौन्दर्य से मानव–सौन्दर्य को स्थिति और सत्ता मिल जाती है। इन्ही सौन्दर्योत्कर्षक तत्वो के आधार पर आगे के अध्यायो मे रूप सौन्दर्य का विश्लेषण किया जायगा।

भक्ति-काल में रूप-सौन्दर्य

(१) भक्ति-मूलक प्रवृत्ति के कारण
(२) राम के रस-अधिष्ठाता न होने के कारण ।
(३) मधुर-रस के अधिष्ठाता रूप मे श्रीकृष्ण ।
(४) (अ) सौन्दर्य के गुण-परक उपादान

(क) सूक्ष्म गुण
(ख) स्थूल गुण

(आ) चेष्टापरक सौन्दर्य

(क) विशेष चेष्टा
(ख) सामान्य चेष्टा

(इ) प्रसाधनगत सौन्दर्य

(क) धारण किये जाने वाले प्रसाधन
(ख) लगाये जाने वाले प्रसाधन
(ग) अन्य उपकरण

(ई) तटस्थ सौन्दर्य

(५) निष्कर्ष ।

भक्ति-काल में रूप-सौन्दर्य

प्रत्येक रचना अपने युग की प्रवृत्तियो और रचनाकार की मनोवृत्ति के अनुसार अपना रूप ग्रहण करती है। उसका वर्ण्य-विषय युग की सापेक्षता मे रचनाकार की आत्मानुभूति से सचालित होती है। वह युग के विचार-प्रकाश मे प्राचीन परम्पराओ से अनुप्राणित होता हुआ अपनी विशेष प्रवृत्ति और अनुभूति के कारण समकालीनो से भिन्न अस्तित्व रखता है। उसका यह अस्तित्व रचना को रूप और दिशा देता है। रचना का रूप, उसका वर्ण्य-विषय आदि व्यक्तिगत विशेषताओ के कारण भिन्न होता हुआ भी युग की सर्वाङ्गीण और व्यापक भावनाओ का प्रतिबिम्ब है। युग का यह प्रतिबिम्ब प्रत्येक साहित्य के प्रत्येक काल की रचना मे दीख पडता है। भक्ति काल मे युग भावनाओ की यह प्रवृत्ति देखी जा सकती है। यह प्रवृत्ति प्राचीन एव निकट अतीत की साहित्यिक पृष्ठभूमि का अवलम्ब लेकर प्रचलित विचारो एव भावनाओ मे फलती एव विकसित होती आई है। इस विकास के दो प्रमुख कारण माने जा सकते है—

१. मनोवैज्ञानिक कारण।
२ समसामयिक प्रवृत्ति मूलक कारण।

मनोवैज्ञानिक कारण—आलोच्य काल की भक्ति के विकास मूलक प्रवृत्तियो का परिवर्तन एक दिन की घटना नही है। यह वर्षों से चली आती हुई विचारधारा का एक सशक्त, अनुभूति पूर्ण और सुव्यवस्थित स्वरूप है। भक्तिकाल के पूर्व की साहित्यिक अव्यवस्था और भावनाओ की अस्थिरता से इस कथन की सत्यता प्रकट हो जाती है। इस काल के पहले की घटनाओ एव राजनैतिक आक्रमणो से धार्मिक अस्थिरता आ गई थी। सगुण के प्रति अनास्था के भाव का उदय होना स्वाभाविक था। बौद्ध धर्म की क्षीणावस्था अपनी अन्तिम सीमाओ मे प्रदर्शन के चमत्कार का सम्बल लेकर नाश के कगार पर स्थित किसी सबल धार्मिक आन्दोलन के एक धक्के की बाट देख रही थी। दूसरी ओर नाथपथी, और ज्ञान-मार्गियो का प्रबल वेग अपने प्रवाह मे सबको बहा ले जाना चाहता था। इस प्रकार दो धार्मिक विचार धाराएँ सगुण भक्ति के पूर्व कार्य कर रही थी।

इनमे बौद्ध धर्म की उपासना पद्धति को युग प्रवृत्तियो मे ढाल कर उसे व्यावहारिक, आकर्षक एव मोहक रूप दे दिया गया था। तत्र सम्प्रदाय मे

मोहन, वशीकरण का प्राबल्य बढा। भैरवी चक्र-साधना ने नारी-विलास को प्रश्रय दिया, 'महा सुख' की कल्पना यथार्थ जीवन की साकारता पाने लगी। प्रवृत्ति मूलक यह धर्म-पद्धति जन-सामान्य का ध्यान सासारिक अनुरक्ति की ओर आकृष्ट करने लगी। भोग और धर्म दोनो वृत्तियो की तृप्ति का अपूर्व अवसर मिल गया। धर्म के क्षेत्र मे मन को आकर्षित कर लेने वाली भावनाएँ सजगता पर थी। साधको का ध्यान रूप के आकर्षण और चमत्कार पर केन्द्रित होने लगा। पूर्व वर्णित कृष्ण के विकास से भी यही पता चलता है कि उनमे इन गुणो की प्रतिष्ठा पहले ही हो चुकी थी। अत यह कहा जा सकता है कि सामयिक सन्दर्भ मे इनकी और भी उपयोगिता जान पडने के कारण कृष्ण भक्तो ने उनका रूप प्रस्तुत किया। इन्होने लोगो की प्रवृत्ति एव राग मूलक भावनाओ को पहचान कर उनकी मानसिक भाव भूमि के अनुकूल ही उपासना पद्धति के लिये सुन्दर, ललित शोभा आदि गुणो से सम्पन्न ऐसा आराध्य प्रस्तुत किया, जिसके रूप-सौन्दर्य, चेष्टाओ, क्रियाओ आदि मे दैनिक जीवन की अनुभूति मय प्रवृत्ति मूलकता दीख पडी। उनका आलम्बन सौन्दर्य का अतुलित पुञ्ज था, आकर्षण का केन्द्र था तथा लावण्य एव छवि धारा को प्रवाहित करने वाला था। ऐसे सौन्दर्य पुञ्ज आलम्बन कृष्ण को प्रस्तुत करने मे भक्तिकालीन कवियो ने अवसर एव मानसिक अन्तश्चेतना का पूरा-पूरा लाभ उठाया। यही कारण था कि इन कवियो द्वारा वर्णित कृष्ण के रूप-सौन्दर्य-वर्णन जैसा सौन्दर्य अन्य स्थलो पर प्राप्त नही होता।

कृष्ण परक साहित्य की रचना का दूसरा प्रेरक कारण ज्ञान मार्गियो की साधना पद्धति थी। इस साधना मे अलोक सामान्य चमत्कार का वर्णन होता था। नाड़ियो एव चक्रो का वर्णन लोगो के लिये अग्राह्य था, उलट-वासियो की बौद्धिक गुत्थियाँ सुलझाये नही सुलझती थी। 'गगन-मण्डल के' 'शून्य-महल' मे पिया की 'अरूप झाँकी' पकड मे नही आ पाती थी। अरूप और वायवीय 'तेज' मन को स्थिर नही कर पाता था। यही कारण था कि साधको का मन अरूप मे बहुत काल तक टिक न सका। भौतिक नाम-रूप जगत का प्राणी ऐसे आराध्य को ढूँढने लगा, जिसका रूप और नाम साधको जैसा ही हो, जिसके कार्य उन्ही जैसे हो और जो उन जैसा ही सुख-दु ख का अनुभव करने वाला हो। लोगो की इस प्रवृत्ति को कृष्ण भक्तो ने पहचाना और उसे अपनी भावनाओ के अनुकूल पाकर उनकी उस पिपासा को श्रीकृष्ण की रूप माधुरी की धाराधार वर्षा करके शान्त किया, सगुण के प्रति आस्था और ललक की इस भावना को मोड देने का सफल प्रयास किया और इस-

प्रयास की प्रेरणा वैष्णव आचार्यो एव बगाली भक्तो ने इन कवियो को दी। इस प्रकार श्रीकृष्ण के इस रूप की स्थापना मे समसामयिक प्रवृत्तियाँ भी कार्य कर रही थी।

समसामयिक प्रवृतियाँ—जगद्गुरु शकराचार्य का ब्रह्म-निरूपण और मायावाद सामान्य लोगो के लिये अग्राह्य बना रहा। समाज शक्ति, शील और सौन्दर्य युक्त ऐसे मानव-वपु-धारी भगवान को देखना चाहता था, जिसमे उन्ही की भावनाएँ विकास पा रही हो। ऐसे भगवान की स्थापना के लिये रामानुजाचार्य प्रयत्नशील हो चुके थे, निम्बार्काचार्य ने राधाकृष्ण की सम्मिलित उपासना पर बल दिया था, मध्वाचार्य का द्वैतवाद नवधाभक्ति का समर्थक बना। भक्ति के इन प्रकारो मे सख्य-भाव और आत्मनिवेदन रूप कान्तासक्ति ने शृङ्गारिक भावनाओ और रति-वर्णन को प्रश्रय दिया। सख्य-भाव से भक्त भगवान के गूढतम और एकान्त लीलाओ मे भी सहचर या सहचरी रूप मे उपस्थित रहने लगा, उन लीलाओ का सयोजक बना, राधा के रूप या नख-शिखादि का वर्णन करके कृष्ण के मन मे प्रेम-भाव को जागृत किया, राधा से अभिसार कराया, खण्डिता प्रसगो की चर्चा की। इन सब प्रसगो मे गोपी-भाव की प्रतिष्ठा हुई। भक्त नित्य-विहार मे गोपीभाव से सम्मिलित होने की आकाक्षा करने लगे। इस आकाक्षा का बहुमुखी विकास श्री वल्लाभाचार्य के माधुर्य या वात्सल्य रति विषयक साधना से हुआ। चैतन्य ने अनुराग और रूप का आस्वादन 'राधाभाव' से किया। उन्ही के पद चिन्हो पर चलकर अनेक भक्त व्यावहारिक जीवन मे राधा रूप मे श्रीकृष्ण के प्रेम-सौन्दर्य का आस्वादन करने लगे। इससे मधुर रस की स्थापना हुई। "उज्जवल नील-मणि" और 'भक्तिरसामृत सिन्धु' मे मधुर या उज्ज्वल रस का पूर्ण विवेचन प्रस्तुत किया गया। सम्पूर्ण उत्तरी भारत मे मधुराभक्ति का प्रचार हो गया। सहजिया पथ की प्रेममूलक परकीया-भावना से समाज की रसिक-प्रवृति मेल खाती थी। इस भावना का ग्रहण मधुरा-भक्ति मे कर लिया गया। इसकी सम्पूर्णता के लिये ब्रह्म वैवर्त्य पुराणकार ने श्रीकृष्ण के साथ राधा का आविर्भाव किया। उन्हे कृष्ण की चिर सहचरी माना। इन दोनो के साहचर्य मे जिस युगल-स्वरूप की स्थापना हुई, वह अपने सम्पूर्ण माधुर्य, सौन्दर्य, रूप आदि मे अश्रुत पूर्व और अतुलनीय था। युगल रूप के रूप सौन्दर्य की यह अनुपमता कालान्तर मे साहित्य की मूल भावना के रूप मे विकसित हुई। इस सौन्दर्य पुञ्ज की प्राप्ति के लिये प्रियतम के रूप मे श्रीकृष्ण की मान्यता बढी, प्रिया रूप मे अपने को प्रस्तुत करने की कामना जागृत हुई, प्रेम का निवेदन किया गया और प्रेम की यही अनुभूति मधुर रस के रूप मे समक्ष आई।

मधुर–रस मे रागानुगा–भक्ति का प्रचार अधिक मादक और मोहक था। इसमे आकर्षण की प्रबलता के कारण लोगो को उसमे अपनी ही अनुरक्ति दीख पड़ने लगी। गौडीय सम्प्रदाय के मधुर भाव मे रागात्मकता अधिक थी। इसी मधुरता का गान जयदेव विद्यापति और चडीदास ने किया। जयदेव का गीत गोविन्द 'विहार–वर्णन' से ही प्रारम्भ होता है, "हरिरिह विहरति सरस बसन्ते' विद्यापति राधा-रूप की असीमता मे बह जाते है। राधा के नाना रूप चित्रो का इतना सरस, मधुर और हृदय आवर्जक चित्र अन्यत्र नही मिलेगा। इन्होने श्रीकृष्ण सम्बन्धी श्रृङ्गार रसपूर्ण साहित्य का सृजन किया। वैष्णव रसशास्त्र के व्याख्याता सनातन रूपगोस्वामी, जीवगोस्वामी आदि के ग्रन्थ प्रकाश मे आ चुके थे। इन ग्रन्थो की नवीन चेतना और विठ्ठलनाथ जी की सेवा-पद्धति से अष्टछाप के कवियो ने राधा-कृष्ण का सौन्दर्य परक रूप उपस्थित करके श्रृङ्गार का रस-राजत्व स्थापित कर दिया। इस रस के आलम्बन रूप मे राधा–कृष्ण का आधार लिया गया। श्रीकृष्ण रसेश्वर और राधा रसेश्वरी बन गई। आराध्य के इस रूप की लहर सम्पूर्ण उत्तरी भारत मे प्रवाहित हो गई थी। गुजरात मे नरसी मेहता से लेकर बगाल मे चैतन्य और चडीदास तक इसका प्रवाह फैल गया। राधा कृष्ण की मधुरता एव सौन्दर्य ने अनेक कवियो को आकृष्ट किया। गौडीय सम्प्रदाय के गदाधरभट्ट, सूरदास मदनमोहन, माधुरीदास, ललित किशोरी, ललित माधुरी, निम्बार्क सम्प्रदाय के श्रीभट्ट, हरिव्यास, परशुराम, रूपरसिक जी, वृन्दावन जी, रसिक गोविन्द, टट्टी सम्प्रदाय के विठ्ठल विपुल सहचरिशरण, ललित मोहिनी, रसिक विहारी, भगवत रसिक, राधावल्लभ सम्प्रदाय के हित हरिवश, सेवक, ध्रुवदास, हरिराम व्यास, और वल्लभ सम्प्रदाय के अष्टछाप के कवियो ने राधा कृष्ण के रूप-सौन्दर्य का वर्णन अनेक विधाओ मे किया। सम्प्रदाय मुक्त कवियो मे मीरा, आलम, शेख आदि की रचनाएँ भी कृष्ण-माधुरी का गान करने लगी। इस प्रकार सम्पूर्ण युग चेतना ही श्रीकृष्ण को श्रृङ्गार का अधिष्ठाता मानकर चलने लगी। उन्ही के रूप सौन्दर्य, मान, अभिसार, नख–शिख, रति–क्रीडा आदि अनेक विध मधुर श्रृङ्गार-परक चेष्टाओ का वर्णन हुआ। यहा यह प्रश्न उठता है कि श्रीकृष्ण ही मधुर रस के अधिष्ठाता क्यो हुए, राम क्यो नही हुए। इस प्रश्न का सक्षिप्त समाधान अपेक्षित है।

राम के रस अधिष्ठाता न होने के कारण'—

भगवान के तीन गुण शक्ति, शील और सौन्दर्य होते है। इन्ही तीनो गुणो के अन्तर्गत उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व को समेट लेने की चेष्टा की जाती है। यह व्यक्तित्व दो प्रमुख रूपो मे साहित्य-ग्रन्थो मे वर्णित है।

(१) व्यक्तित्व का लोक रक्षक रूप ।

(२) व्यक्तित्व का लोक-रजक रूप ।

लोक रक्षक रूप मे लोक कल्याण की भावना रहती है । समाज की सत्ता और स्थिति बनाये रखने के लिये मगलमय कार्यो और आदर्शपरक चरित्र की उद्भावना करनी पडती है । यह चरित्र अपने दैनिक व्यवहारो एव क्रियाओ से ऐसे नियम और आदर्श स्थापित कर देता है, जिनका अनुसरण करने से दूसरो के हित पर आघात नही पहुँचता उसके कार्य व्यापारो मे अव-रोध उपस्थित नही होता और समाज के प्रत्येक मानव के स्वतत्र विकास को वल प्राप्त होता है । ऐसे मार्ग-दर्शक चरित्र के प्रति जनसाधारण लोक जीवन श्रद्धा से अवनत हो जाता है, उसको पूजनीय मानता है और अपनी विनत भावो की पुष्पाञ्जलि को उसके महत् चरण पर चढाकर असीम आत्म–तृप्ति का अनुभव करता है । भगवान का श्रद्धास्पद यह प्रेरक रूप साधक की चचल प्रवृतियो को मर्यादित कर देती है । वह उसके समक्ष आत्म-लघुता की भावना से युक्त होकर उसकी महानता से सदा दूरी का अनुभव करता है । उसके गूढ व्यक्तिगत जीवन की चर्चा सीमा का अतिक्रमण मानता है । वह उसका सहचर वनकर उसके सग नही रह सकता । उसकी महत्ता की तुलना मे अपनी लघुता के कारण उसकी दास्य-भक्ति की भावना ही समक्ष आती है अन्य कोई भावना नही । यदि दूसरी भावना को प्रश्रय दिया जाय, तो मर्यादा के कारण बनी हुई सीमा रेखा का उल्लघन हो जायगा । इसीसे ऐसे शीलयुक्त आराध्य के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेना कठिन माना जाता है । इस तादात्म्य के अभाव मे मानव का हृदय पूर्ण रूप से स्पष्ट नही हो पाता, उसकी भावनाएँ अपने आप मे ही रह जाती है । वह केवल दास्य-भक्ति सम्बन्धी विचारो को ही एक विशेष सीमा तक निवेदन के रूप मे प्रस्तुत कर सकता है । निवेदन के ऐसे स्थलो पर बनाई गई लक्ष्मण-रेखा साधक को नियन्त्रित करती है । वह डरते-डरते केवल उद्धार सम्बन्धी प्रार्थनाएँ ही कर पाता है, अन्य किसी प्रकार का विचार ही उसके मन मे नही आता । ऐसे स्थलो पर आराध्य की तारक-शक्ति की प्रशसा की जाती है, उसकी महत्ता का गुणगान होता है, और उसके शील परक गुणो के समक्ष आत्म-विस्मय का भाव व्यक्त किया जाता है । इस भाव की गहनता से साध्य का चारित्रिक मनोवल, शील और शक्ति, उसके कर्म का सौन्दर्य आदि सभी उदात्त रूप मे वर्णित होते हैं । इस उदात्तता के समक्ष साधक की भावनाएँ सेवक–सेव्य के रूप मे आती है । भक्तिकाल मे ऐसा उदात्त रूप 'राम' का था ।

राम के चरित्र मे भगवान के दो गुणो शक्ति और शील का वर्णन है। सौन्दर्य वर्णन का पूर्ण विकास नही है। इसके कई कारण है।

(१) राम-साहित्य मे राम के अवतार का मुख्य कारण दुष्टो का नाश करके धर्म की पुन स्थापना करना है। धर्म सस्थापनार्थ अवतरित भगवान मे शक्ति की ही प्रबलता होनी चाहिए। इसके अभाव मे दुष्टो का दलन नही हो पाता। शक्ति के समक्ष दुष्टो की उद्दण्डता स्वत भी दब जाती है। इस शक्ति के स्पष्टीकरण के लिये प्रस्तुत की गई अन्तर्कथाओ मे भी ऐसी चर्चाएँ होती है, जिनसे उनकी-आराध्य की-शक्ति मूलक प्रवृतियाँ ही लक्षित हो।

(२) लोक कल्याणकारी भगवान दूसरो के हित मे ही लगा रहता है। उसकी व्यक्तिगत समस्याएँ और चिन्ताएँ बहुत महत्वपूर्ण नही होती है। इसी से वह पारिवारिक जीवन तक मे भी लोक मगल का ध्यान रखता है। राम का राज्य त्याग और पत्नी सीता का बनवास उनके इसी लोकमगल की साधना है।

(३) लोक मगलकारी अवतार का चरित्र बहुत ऊँचा होता है। शील अनुकरणीय माना जाता है। उसके जीवन मे सब कुछ लोक सस्थापनार्थ होता है। इसलिए शीलपरक किसी प्रकार की चपलता वर्ण्य-विषय नही बन पाती। यह चपलता शृङ्गार-वर्णन के प्रसग पर ही देखी जा सकती है। शृङ्गार की पूर्ण रसात्मकता के लिये रूप-सौन्दर्य, रति-क्रीडा, चेष्टाओ आदि का वर्णन होता है। यदि इस प्रकार का वर्णन कर दिया जाय तो आराध्य का शील अनुकरणीय नही रह जायगा, उसका चरित्र सामान्य रसिक प्राणियो जैसा हो जायगा। अत राम जैसे आराध्य के जीवन मे न तो शृङ्गार के लिये कोई स्थान है और न शृङ्गार साधक अन्य उपकरणो के लिये। शरीर के रूप लावण्य या नख-शिख मे विभिन्न अवयवो का आकार-प्रकार आदि वर्णन तो कल्पना की वस्तु है। दाम्पत्य रति का कामोत्तेजक वर्णन राम के चरित्र मे स्पृहणीय नही माना जा सकता था। इसी से राम के जीवन मे रूप-सौन्दर्य वर्णन का प्राय अभाव है।

(४) राम मर्यादावादी थे। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे मर्यादा की स्थापना उनके चरित्र का ध्येय था। इस मर्यादा के लिए व्यक्तिगत जीवन तक को उत्सर्ग कर देने मे भी उनके मन मे कभी विचार-विभ्रम उत्पन्न नही हुआ। वाल्मीकि रामायण, उत्तर रामचरित्र और रामचरित मानस के अनेक प्रसगो से यह बात स्पष्ट हो जायगी। राम द्वारा विमाता की आज्ञा का पालन, भरत के लिये राज्य छोड़कर आत्म-स्वार्थ का विसर्जन, एक सामान्य व्यक्ति के कहने

से अपनी धर्म पत्नी सीता का निष्कासन आदि प्रसग इसी मर्यादा की पुष्टता को व्यक्त करते है। ऐसे मर्यादावादी व्यक्ति के लिये 'रूप' का महत्व ही क्या होगा ? जो चरित्र शृङ्गार और सौन्दर्य के प्रमुख आलम्बन नारी तक की चिन्ता नही करता, जो भौतिक सुख-भोग से उपराम ग्रहण कर लेता है, जिनकी इन्द्रियाँ विषयो से विरत है, जो धर्म के अतिरिक्त कुछ जानता ही नही, ऐसे चरित्र के जीवन मे रूप-सौन्दर्य की समुचित कल्पना दुराशा मात्र ही है।

(५) मध्यकाल के पूर्व प्राप्त राम-साहित्य मे शृङ्गारिक परम्परा का अभाव है। राम सम्बन्धी प्रत्येक ग्रन्थ का रचनाकार इतना सजग था कि उसने शृंगार रस को महत्व नही दिया। उत्तर रामचरित्र मे शृङ्गार से पुष्ट करुण रस है, परन्तु वहाँ भी रूप-सौन्दर्य न होकर पूर्व स्मृतियो से उत्पन्न अनुभूतियो का ही वर्णन है। ऐसी स्थिति मे राम के जिस अलौकिक चरित्र की स्थापना हो चुकी थी, उसके विपरीत जाकर मर्यादा का उल्लघन करने का साहस कैसे किया जा सकता था।

(६) राम के प्रति साधको की भक्ति सेवक-सेव्य भाव की थी। सेवक अपने सेव्य का शृङ्गार वर्णन करने का अधिकार नही रखता। फिर राम की सीता जैसी पत्नी का शृङ्गार वर्णन वडे साहस का कार्य था। शालीनता के वातावरण मे पली हुई अपनी सामान्य भावनाओ की अभिव्यक्ति मे भी जिस सीता के मन मे सकोच हो, वह अनुभाव मूलक और सौन्दर्यवर्द्धक शृङ्गार चेष्टाओ का आचरण कैसे कर सकती थी। चेष्टाओ के आकर्षण के अभाव मे रूप की मोहकता के वर्णन का प्रश्न ही नही उठता। अग-वर्णन, उसके बनावट का विश्लेषण, उसका मोहक और उद्दीपक प्रदर्शन, चेष्टाओ द्वारा शृङ्गार मूलक अभिमत का प्रकाशन आदि वाने ऐसे चरित्र के जीवन मे महत्व नही रखती। यदि भूल से या अनजान मे कवि की सहृदयता के कारण ऐसे प्रसगो का अवतरण हो भी जाता है, तो कवि की मर्यादित प्रवृत्ति उसे आगे वढने से रोक लेती है। उसकी अन्तश्चेतना का नियन्त्रण ऐसे वर्णनो मे वाधक हो जाता है। यह शृङ्गार की पूर्ण निष्पत्ति करने के पूर्व ही चेतन होकर आराध्य की विराटत और उदात्तता का सकेत कर देता है। फल यह होता है कि पूर्णरस-निष्पत्ति न होकर रसाभास मात्र होकर रह जाता है। राम-साहित्य मे रूप-सौन्दर्य वर्णन और शृङ्गार-विवेचन के क्रमिक विकास के न होने का यही कारण है, अन्यथा राम के जीवन मे ऐसे अवसरो की कमी नही है, जहाँ पहुँच-कर कवि को शृङ्गार एव रूप-सौन्दर्य वर्णन का प्रसग न प्राप्त हो सकता था।

राम के चरित्र मे रूप सौन्दर्य वर्णन के अनेक प्रसग आ सकते थे। आरम्भ मे वाल रूप 'सूर' के समान मोहक वनाने का प्रयास किया जा सकता

था, यद्यपि उस वाल रूप का सूर के कृष्ण के समान उन्मुक्त और स्वच्छन्द वातावरण नही बन पाता। राम राजपुत्र थे, कृष्ण गोप पुत्र थे। दोनो की स्थिति और मर्यादा मे अन्तर था। कृष्ण अपने घर की चहारदीवारी के परे प्रकृति के खुले प्रागण मे अपनी मधुरता, अपना रूप, अपनी मोहकता को बिखेर सकते थे, सखाओ से क्रीडा कर सकते थे, गोपियो के आकर्षण का केन्द्र बन सकते थे, अपने रूपाकर्पण से सबको मुग्ध कर सकते थे, छेड-छाड, हास परिहास से वातावरण को मृदुल, मोहक और मादक बना सकते थे और ये सारे कार्य उन्होने किये भी, परन्तु राम का राजपुत्रत्व इसमे बाधक बना हुआ था। तुलसी ने कवितावली' मे एक-दो स्थलो पर ऐसा वर्णन किया भी[1] है परन्तु वह बलपूर्वक जोडा हुआ लगता है, क्योकि राजमर्यादा मे पला बालक है अन्य लडको के साथ सरयू के तट, चौराहो, बाजारो मे डोलता फिरे, इसे तार्किक बुद्धि स्वीकार नही कर पाती। राम की पारिवारिक स्थिति के सदर्भ मे यह वर्णन बाल्य-चापल्य मात्र है, परिस्थिति के अनुरोध से नही। कृष्णभक्त कवियो के समक्ष ऐसे नियन्त्रण का कोई प्रश्न ही नही था। श्रीकृष्ण जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे उन्मुक्त थे। एक मुक्त विहग की भाँति उनकी उडान भी निर्द्वन्द्व होकर चलती रहती थी। इसीसे वे इसके आलम्बन बने। वात्सल्य और शृङ्गारादि सभी क्षेत्रो मे उनका मादक रूप एक समान है। राम-काव्य मे अवसर थे, परन्तु वर्णन का अभाव है। यदि कही वर्णन है भी तो वह मर्यादित है। यथा –

'सुन्दरता मरजाद भवानी। जाइ न कोटिहु बदन बखानी।"

यहाँ गौरी या सीता के सौन्दर्य वर्णन मे कवि की लेखनी रुक जाती है। सच भी है जिस रूप को देख कर राम का सहज पुनीत मन भी क्षुभित हो जाता है, वह सौन्दर्य वर्णन की परिधि मे नही आ सकता है। तुलसी इस अलौकिक सौन्दर्य के साथ उसकी सहजता का ध्यान भी रखते है "सहज मनोहरमूरति दोऊ। कोटि काम उपमा लघु सोऊ।" वे सरलता से अपनी बात कह देते है कि सीता के सृजन मे–

"जनु विरचि सबनिज निपुनाई। विरचि विस्व कहँ प्रगट देखाई।
सुन्दरता कह सुन्दर करई। छविगृह दीप-शिखा जनु बरई।।"

इस वर्णन मे दीपशिखा सी सीता की चम्पकद्युति साकार हो जाती है। इसीसे कविको कोई उपमा ही नही मिलती, "सब उपमा कवि रहे जुठारी।........पुन

---

1 लरिका सग खेलतडोलत है, सरयूतट चौहट, हाट, हिये–'कवितावली'

"जो छवि सुधा पयोनिधि होई। परम रूपमय कच्छप सोई।
सोभा रजु मदर सिंगारू। मथै पानि पकज निज भारू।
एहि विधि उपजै लच्छि जब, सुन्दरता सुखमूल।
तदपि सकोच समेत सब, कहहि सीय समतूल"

इन सभी उद्धरणो से स्पष्ट है कि सीता के सौन्दर्य-वर्णन मे चित्र योजना का नितान्त अभाव है। रूप' के समुचित प्रभाव के लिये चित्र-विधान की परम्परा मान्य रही है परन्तु इस स्थल पर तुलसी ने रूप-चित्र उपस्थित न करके केवल कथन द्वारा उसका वर्णन किया है। कोरे कथन मे रसात्मकता का अभाव होता है । यही कारण कि तुलसी के इस रूप-वर्णन मे हृदय रम नही पाता। कवि का प्रयास उसके बौद्धिक उडान मे खो जाता है और मर्यादा का नियन्त्रण रूप का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करने मे बाधा उपस्थित कर देता है।

राम के शृङ्गार और उनके रूप सौन्दर्य की मोहकता का वर्णन जनकपुर तथा वन-मार्ग आदि प्रसगो पर हो सकता था और हुआ भी, परन्तु रसकी शुद्ध भूमि पर नही। राम का देवत्व अपनी 'उदातता' से साथ इन कवियो के मस्तिष्क मे सदा बना रहा। फल यह हुआ कि रूप का आकर्षण 'सौन्दर्य' के आश्रय के प्रति न होकर 'उदात्त' के आश्रय के प्रति हुआ। इससे श्रीकृष्ण के रूप-सौन्दर्य जैसी मादकता राम-काव्य मे नही आ सकी। 'बरवै-रामायण' मे सीता की सखियाँ राम के रूप का परिहास सीता के रूप की तुलना मे करती हुई कहती है "गरव करहु रघुनन्दन, जनि जीय माँहि। देखहु आपनी मूरति सिय की छाँह।" इस बरवै मे रूप-वर्णन का एक आभास मात्र है। इससे बिम्ब-विधान नही होता। इसके अभाव मे यह उत्तम काव्य की कोटि मे नही आता।

वन-मार्ग मे सीता की अनुभाव-परक चेष्टाएँ ग्राम बन्धुओ के माध्यम से प्रकट हुई है, साक्षात् रूप मे राम के समक्ष नही आती है क्योकि सीता राम की प्रियतमा अथवा प्रेमिका की भाव-सघनता के सग वर्णित न की जा कर एक दासी की आत्म-समर्पण की भावना से आप्लावित होती हुई प्रस्तुत की गई है। सीता के लिये 'राम' 'नाथ' है। ऐसे 'नाथ' जिनके समक्ष अपनी कोई अभिलाषा नही, कोई रुचि नही और कोई व्यक्तित्व नही। यहाँ सेव्य राम मे अपने व्यक्तित्व का सम्पूर्ण विलय आत्मार्पण तो है, परन्तु लौकिक दृष्टि से शृङ्गार रस का साधक नही है। अत रस निर्णय पर पहुँच सकते है कि

राम-काव्य मे साधको की दास्य-भक्ति परक भावना के कारण श्रृङ्गार रस का सर्वाङ्गीण स्फुरण नही हो पाता। श्रृङ्गार रस की पूर्ण निष्पत्ति के अभाव मे उस रस के साधक उपकरणो का वर्णन सम्भव नही हो पाता। आलम्बन के उद्दीपक गुण और चेष्टाओ को अवरुद्ध करने मे मर्यादा नियन्त्रण का कार्य करती है। रूप सौन्दर्य, नख-शिख आदि का वर्णन दास्य-भक्ति की दृष्टि से निरर्थक और अनधिकार चेष्टा है। आयु एवं विकसित होती हुई भावनाओ का ताल-मेल बैठाना अनावश्यक माना जाता है। वय सन्धिकाल की विभिन्न चेष्टाए और युवावस्था के अनुभाव काम सकेत की परिधि मे आते है। नायिका भेद और विभिन्न नायिकाओ की क्रियाओ, चेष्टाओ, आदि का वर्णन कामुकता का प्रदर्शन माना जाता है। रमणी का रूप निन्द्य, अनाकर्षक, हाड-माँस का बाह्य-सयोजन कहा गया है। उस रूप की अग्राह्यता की प्रतिष्ठा की गई। उसे 'नरक' मे ले जाने का साधन माना गया। उसे ताडना के योग्य माना गया। विचार करने की बात है कि जिस राम-साहित्य मे नारी और उसके रूप की यह दशा थी, श्रृङ्गार के उद्दीपक जिस आलम्बन के अस्तित्व की स्वीकार की भावना पर ही कुठाराघात किया गया था, ऐसे राम-साहित्य का सृजनकर्ता कवि नारी या पुरुष के रूप–सौन्दर्य का वर्णन क्यो करता ? उसकी उपयोगिता क्या होती ? रूप–सौन्दर्य तो रीझने या रिझाने के लिये होता है। इस रीझ की उपभोग मूलक भावना सर्वविदित ही है। उपभोग का आकर्षण शारीरिक होने से काम-प्रधान हो जाता है। 'काम' राम-काव्य की दृष्टि मे गर्हणीय है और काम की साधक नारी त्याज्य है। अत राम-काव्य मे रूप-सौन्दर्य के सचित-कोष नारी की मधुरिमा, मोहकता, लावण्य, छबि आदि के वर्णन का प्रश्न ही नही उठता। इस वर्णन के अभाव मे श्रृङ्गार की महत्ता राम काव्य मे नही हो सकी। वहाँ कवि राम की शक्ति और शील वर्णन की इयत्ता मे ही बँधा रहा। इससे उसका आराध्य अनुकरणीय और आदर्श रूप वाला होगया उसके दुष्ट-दलन जैसे कार्यो मे कर्म–सौन्दर्य और उत्साह नामक भाव तो मिल जाता है, परन्तु वह रति-भाव का आश्रय नही बन सका। रति-स्थायी भाव के वर्णन की महत्ता और प्रमुखता न रहने से श्रृङ्गार रस का पूर्ण स्फुरण नही हो सका। श्रृङ्गार ही रसराज माना जाता है। राम के जीवन मे इस रस को उचित स्थान नही मिला। इससे वे इस रस के अधिष्ठाता रूप मे ग्राह्य नही हुए। इनकी तुलना मे श्रीकृष्ण के समक्ष इस प्रकार की सीमा रेखाएँ नही थी। इसीसे उनकी मान्यता रस के अधिष्ठाता के रूप मे हुई। राम की तुलना मे श्रीकृष्ण के रस अधिष्ठातृ रूप के कारणो पर विचार कर लेना समीचीन होगा।

मधुर रस-अधिष्ठाता के रूप में श्रीकृष्ण—

राम और श्रीकृष्ण के जीवन के मूल दृष्टिकोण मे प्रमुख अन्तर यह है कि राम ने लोक मर्यादा के लिये नारी का त्याग किया और श्रीकृष्ण ने आत्म-मर्यादा के लिये नारी को ग्रहण किया। नारी के इस त्याग और ग्रहण मे ही दोनो के चरित्र का विकास होता है। राम की मर्यादा मे लोक-सग्रह है और कृष्ण की मर्यादा मे आत्म-सग्रह है। राम की दृष्टि मे समष्टि चेतना है और कृष्ण की दृष्टि मे आत्मचेतना। इसी आत्म-चेतना के कारण श्रीकृष्ण के चरित्र का आरम्भ उस विन्दु से है, जहाँ राम के चरित्र की समाप्ति हो जाती है अर्थात् राम-मर्यादा को स्थापित करके जीवन के उद्देश्य को पूर्ण कर लेते है और कृष्ण उसी मर्यादा को तोडकर जीवन को आरम्भ करते है। राम के जीवन मे नियन्त्रण है, सीमा है, कृष्ण का जीवन स्वच्छन्द और असीम है। राम के जीवन का आरम्भिक कार्य-क्षेत्र अयोध्या के राजमहल हैं और श्रीकृष्ण का सम्पूर्ण व्रज प्रान्त। इससे श्रीकृष्ण का चरित्र उन्मुक्त और रस पूर्ण बन गया। उनकी इसी रसवत्ता के कारण उन्हे शृङ्गार रस के अधिष्ठाता के रूप मे स्वीकार किया गया। इस रूप मे यह स्वाभाविक था कि उनके रूप सौन्दर्य का वर्णन प्रत्येक अवसर एव प्रसग पर किया जाता। श्रीकृष्ण के चरित्र मे सौन्दर्यानुभूति की इस व्यापकता के कारण कवियो ने इसका पूरा-पूरा लाभ उठाया और उन्हे ऐसे रूप मे प्रस्तुत किया कि वे सौन्दर्य के एक मात्र प्रतिष्ठाता बन गये।

श्रीकृष्ण सोलह कला-पूर्ण अवतार हैं। वे लीला पुरुष है उनकी लीला के लिये ही सम्पूर्ण व्रज का विस्तार है। इस लीला मे आकर्षण है, माधुर्य है। इसी माधुर्य का रसास्वादन उनकी व्रजलीला का चरम ध्येय है। अपनी सुन्दरता की अखिल मोहकता के कारण उन्हे इस ध्येय की प्राप्ति हो जाती है। उनके चरित्र-प्रसग मे केवल श्रीकृष्ण ही नही, अपितु गोपियो को भी सौन्दर्य की अनुभूति और उपभोग के पर्याप्त अवसर मिल जाते हैं अर्थात् आलम्वन और आश्रय दोनो ही सौन्दर्य के आगार है उन्हे सौन्दर्यानुभूति होती है और दोनो ही एक दूसरे के रूप गुण की परख करते है। इस प्रकार सम्पूर्ण कृष्ण काव्य ही सरस और मधुर बन जाता है। इस काव्य के मधुर होने के अन्य भी अनेक कारण हैं —

(१) कृष्ण-काव्य मे वात्सल्य-रस की प्रतिष्ठा की गई है। वाल-रूप मे श्रीकृष्ण की अनेक क्रीडाओ का वर्णन है। उनकी रूप-माधुरी सदा से सवको आकर्षित करती थी। उनके अग मे लावण्य है। उनकी आँख, दाँत,

मुख, छबि आदि को देखकर यशोदा फूली नही समाती है। कृष्ण का धूल-धूसरित रूप, उनका रेगना, मीठे वचन, कुञ्चित घुँघराले केशराशि, कठ-माल, बघ-नख, मक्खन लगा मुख आदि इतने रूप-चित्र है कि बाल रूप का अनुपम सौन्दर्य प्रकट हो जाता है उनकी 'सुन्दरताई' का वर्णन हो ही नही पाता है। प्रसाधनो आदि मे कुलही, लटकती हुई लटुरिया, नील, शेत और लालमणियो की लटकन आदि से शोभा बढ जाती है। इस शोभा का वर्णन दो दृष्टिकोणो से किया गया है ;—

(क) यशोदा की दृष्टि से 'लाला रूप' मे श्रीकृष्ण के रूप-सौन्दर्य का वर्णन।

(ख) गोपियो और कवि की दृष्टि मे कौमार, पौगण्ड और किशोर रूप का वर्णन।

इन दोनो ही दृष्टिकोणो मे श्रीकृष्ण के रूप-सौन्दर्य का वर्णन ही अधिक मिलेगा। कही पर किसी भी प्रसग मे श्रीकृष्ण का सौन्दर्य ही वर्णित है।

(२) श्रीकृष्ण का क्रीडा-क्षेत्र विस्तृत था। उनके जीवन मे ऋतु और उत्सवो के अनेक अवसर थे। प्रकृति, यमुना, वन, कुज, वशीवट आदि अनेक स्थल थे। कदम और करील के कुञ्जो मे विहार-क्रीडा का आमन्त्रण था। ऐसे मादक एव उद्दीपक वातावरण को पाकर कौन रूप-रसिक इसकी उपेक्षा कर सकेगा।

(३) श्रीकृष्ण की मुरली का नाद-सौन्दर्य उनकी रसिकता का द्योतक था। मुरली के माध्यम से गोपियो का नाम लेकर उनका आह्वान उनके रूप-प्रेमी हृदय का द्योतक था। ऐसे प्रसगो पर रूप-वर्णन और रूप के आस्वादन का संकेत है।

(४) श्रीकृष्ण के जीवन मे मर्यादा की जटिलता नही थी। वे स्वच्छन्द थे और उनकी क्रियाओ मे भी यही स्वच्छन्दता वर्तमान थी। राम का जीवन मर्यादा के बन्धनो मे जकडा हुआ था। वह न तो कृष्ण के समान घूम सकते थे और न अन्य किसी नारी से छेड-छाड ही कर सकते थे। रूप का वर्णन, उसकी प्रशसा, उसका आकर्षण सब कुछ राम के लिये त्याज्य था। एक वाक्य मे यह कह सकते है कि राम के जीवन मे शृङ्गार के रस-राजत्व को स्थापित करने की न तो क्षमता थी और न साहित्यिक परम्परा ही। कृष्ण का अवतार ही इसीलिये हुआ था कि गोप-ललनाओ की दाम्पत्य-रति विषयक भावनाओ की तृप्ति के लिये अपनी सम्पूर्ण मोहकता और सौन्दर्य व्रज की वीथियो मे बिखेर दे। इसी कारण शृङ्गार के आश्रय श्रीकृष्ण बने, राम नही।

(५) राम और कृष्ण मे प्रकृति का एक अन्तर और है। राम आरम्भ से ही गभीर थे। उनकी यह गभीरता जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे दिखाई पडती है। उनका व्यक्तित्व अनुभवो से पुष्ट लगता है। वनगमन के अवसर पर लक्ष्मण और सीता से की गई उनकी वार्ता उनके अनुभव की गुरुता और महत्व को व्यक्त करती है। उनका प्रत्येक कदम सुविचारित था। उनका दार्शनिक विवेचन प्रौढ मस्तिष्क की उपज थी। ऐसे राम के जीवन मे गभीरता हो सकती थी, चपलता नही। अत रूप-सौन्दर्य के वर्णन का प्रश्न ही नही उठता है। बिना आकर्षण के सात्विक रति भाव का आविर्भाव नही होता। रति के अभाव मे व्यक्ति रस का अधिष्ठाता नही बन सकता और न शृङ्गार का आश्रय हो। इसी से राम शृङ्गार के आश्रय नही बन सके। वह गौरव श्रीकृष्ण को प्राप्त हुआ।

(६) श्रीकृष्ण का जीवन आरम्भ से ही चपल था। उनकी 'लरकाई' सब कही दीख पडती है। वे नटखट, शरारती, उद्दण्ड, चोर, चपल, रसिक और लँगराई करने वाले है। इन सबका उद्देश्य दूसरो को दु ख देना नही था; अपितु उन्हे प्रसन्न करना था। लोग उनकी इन क्रियाओ से रीझते थे। उनका उद्दीपन होता था। इसी से गोपियाँ चाहती थी कि कृष्ण उनसे छेड-छाड करे। उलाहना तो एक दिखावा था। बालको की चपलता स्त्रियो के लिये मोहक होती ही है। श्रीकृष्ण के दुहरे व्यक्तित्व से गोपियाँ और भी अधिक प्रभावित होती थी। वे यशोदा के समक्ष बालक और गोपियो के समक्ष एक रसिक किशोर थे। उनकी यही रसिकता उन्हे रस का अधिष्ठाता बनाती थी। यहाँ एक उदाहरण पर्याप्त होगा .—

> "जबहिं सरोज धर्यौ श्री फल पर, तब जसुमति तहँ आई।
> तत छन रुदन करत मन मोहन, मन मे बुधि उपजाई।
> देखो ढीठ देत नहिं माता, राख्यो गेंद चुराई।" सूरसागर

इस उदाहरण मे श्रीकृष्ण का बाल एव तरुण रूप दोनो एक साथ वर्णित है। उनकी चतुराई प्रशसनीय है। अवसर के अनुकूल बात को बना लेने की क्षमता है। वे यशोदा के समक्ष बाल-चपलता का प्रदर्शन करते है। यशोदा इस भोलेपन पर न्योछावर हो जाती रही होगी, परन्तु गोपी के लिये उनका यह रूप उद्दीपक रहा होगा। राम के जीवन मे कोई कवि ऐसे रूप-चित्रण की कल्पना भी नही कर सकता था। चपलता के प्रति आकर्षण नारी की एक स्वाभाविक कमजोरी है। इस दृष्टि से कृष्ण की लँगराई' उनका आकर्षक गुण बन गया था। यह गुण रति-भाव को उद्बद्ध करने मे पूर्ण समर्थ

था । अतः नारी विचारो एवं प्रकृति के सूक्ष्म तथा मनोवैज्ञानिक अध्ययन के आधार पर शृङ्गार रस के आश्रय और अधिष्ठाता श्रीकृष्ण ही हो सकते थे, राम नही ।

ब्रज मे होली, झूला, रास, गोवर्धन-पूजन आदि प्रसगो पर भावनाओ की अभिव्यक्ति की खुली छूट है । ऐसे अवसरो पर छेडछाड या हास-हरिहास के पर्याप्त कारण उपस्थित हो जाते है । होली मे एक दूसरे पर रग डालना, मुख-मोडकर अनिच्छा प्रकट करना आदि अनुभावो का चित्रण अच्छा हुआ है रस को उद्दीप्त करने वाले ऐसे प्रसगो का राम के जीवन मे सर्वथा अभाव था ।

विद्यापति, जयदेव और चडीदास ने राधाकृष्ण के शृङ्गार-रूप का पर्याप्त वर्णन कर दिया था । पृष्ठभूमि तैयार थी, उसको विकसित करना मात्र शेष था । इसमे भक्त कवियो ने योग दिया और रीतिकालीन कवियो ने उसका विकास किया । साराश रूप मे कहा जा सकता है कि कृष्ण काव्य की परम्परा परिस्थिति आदि सभी उनके रस के अधिष्ठाता होने के पक्ष मे थी परन्तु राम-काव्य की पृष्ठभूमि इस रूप मे नही थी । वाल्मिकीय और आध्यात्म्य रामायण मे उनके आलोक-सामान्य स्वरूप की चर्चा हुई थी । भक्तिकाल के रामकाव्य मे ये दोनो ग्रन्थ उसके प्रमुख उपजीव्य थे । इन दोनो मे से किसी मे भी रामरूप का रस-दृष्टि से ऐसा वर्णन नही था कि उनको शृङ्गार का अधिष्ठाता होने मे सहायता मिलती । फल यह हुआ कि राम काव्य आदर्शोन्मुख हो गया और कृष्ण-काव्य अपनी सम्पूर्ण सुन्दरता और आकर्षण के साथ ग्राह्य होने लगा । इसी से श्रीकृष्ण को शृङ्गार रस का अधिष्ठाता मानकर उनके रूप-सौन्दर्य का अनुपम और अतुलनीय चित्र सम्पूर्ण मध्यकालीन कृष्ण काव्य मे अकित किया गया । इसी रूप-सौन्दर्य का वर्णन इस अध्याय मे किया गया है ।

सौन्दर्य के गुण-परक उपादान—

सौन्दर्य की आध्यात्मिक चेतना क्रमश भौतिक चिन्तन मे परिवर्तित हो गई । ब्रह्म के सौन्दर्य-निरूपन मे 'ज्योति' को सारे विश्व के सौन्दर्य का मूल स्रोत माना गया था, परन्तु परवर्ती साहित्य मे सौन्दर्य के ऐन्द्रिय रूप की प्रधानता होती चली गई और इस वर्णन का आलम्बन मानव अथवा मानव के रूप मे ईश्वर होने लगा । ऐसे आलम्बन का चित्र भौतिक दृष्टि से होने के कारण मानवीय सम्बन्धो के माध्यम से स्पष्ट किया गया है । इन सम्बन्धो मे अपत्य-स्नेह और कान्ता-प्रेम की महत्ता ही सर्वोपरि रही है । दोनो मे रति-भावना है, जिसे वात्सल्य रति और दाम्पत्य-रति की सज्ञा प्रदान की गई है । शृङ्गार का प्रधान आलम्बन स्त्री-रूप का सौन्दर्य है । यो तो पुरुष-सौन्दर्य को

भी वर्णन का आधार बनाया गया है, परन्तु स्त्री-सौन्दर्य की प्रधानता है। दोनो का सौन्दर्य मिलकर मानवीय सौन्दर्य की पूर्णता का आभास कराते है। इस सौन्दर्य के वर्णन मे कवियो की दो दृष्टियाँ काम करती रही है (१) मानवीय सौन्दर्य मे पुरुष की अपेक्षा स्त्री के रूप-सौन्दर्य के चित्रण मे अधिक रुचि का प्रदर्शन (२) इस सौन्दर्य के स्पष्टीकरण के लिए प्रकृतिगत सौन्दर्य का ग्रहण। प्रकृति का सौन्दर्य मानव के लिए आदर्श का कार्य करता रहा है। मानवीय रूप-सौन्दर्य को स्पष्ट करने के लिए रूप मे स्थित कतिपय गुणो की अवस्थिति मानी जा सकती है। ये गुण दो प्रकार के हो सकते है (१) भौतिक स्थूल गुण (२) सूक्ष्म एव प्रभावोत्पादक गुण।

(१) **भौतिक स्थूल गुण**—स्थूल गुण आकारादि की स्थूलता को व्यक्त करता है। आचार्य क्षेमेन्द्र ने 'औचित्य' शब्द के अन्तर्गत इसे समेट लिया है। शरीर के प्रत्येक अग का औचित्य शरीर को सुन्दर बना देता है। पाश्चात्य सौन्दर्य शास्त्र की दृष्टि से यही औचित्य वस्तु की सापेक्षता, सगति, सन्तुलन, समता और सानुपातता मे है। इस आधार पर वस्तु का सौन्दर्य अग-प्रत्यग के सुश्लिष्ट यथोचित सन्निवेश पर निर्भर करता है। नख-शिख का सौन्दर्य इसी धारणा की पुष्टि करता है। इसमे अगो के गठन, आकार, मृदुता, कोमलता आदि गुणो का निरूपण होता है। शरीर की समग्रता का निर्माण अगो से ही होता है। अत अगो का सुन्दर होना आवश्यक है, क्योकि कुरूप अगो की समग्रता से सौन्दर्य व्युत्पन्न नही हो सकता। नख-शिख मे अगो के ग्रहण का दूसरा कारण यह है कि नाम-रूपात्मक जगत का भौतिक प्राणी स्थूल आकार को ग्रहण करके ही सौन्दर्य का स्वरूप निरूपित कर सकता है। इस स्थूलता के प्रति कवियो का मोह था। इसी कारण अप्रस्तुत-योजना मे भी उसकी कल्पना नितान्त वायवीय न होकर स्थूल जगत का आधार लेती थी।

इस स्थूल जगत के चित्रण मे नारी-सौन्दर्य के प्रति विशेष आग्रह दीख पडता है। इस आग्रह मे पुरुष कवियो की आकर्षण-मूलक प्रवृत्ति कार्य करती है। वह नारी के मासल सौन्दर्य की ओर आकृष्ट होकर उसके अग-प्रत्यग के वर्णन मे रुचि व्यक्त करता है। इसी कारण भारतीय नख-शिख वर्णन-परम्परा के प्रति कवियो का आग्रह रहा है। इस वर्णन मे अगो के सुश्लिष्ट सन्धिबन्धयुक्त सन्निवेश की महत्ता है।

(२) **अप्रस्तुतो की स्थूलता**—भारतीय कवियो ने सौन्दर्य की कल्पना मे मानवीय धरातल का आधार लेकर उसे अलौकिकता प्रदान की है। उसका अप्रस्तुत-विधान मानव-कृत न होकर ईश्वर या प्रकृति-कृत है। सौन्दर्य सम्बन्धी उसकी उच्च दृष्टि प्राकृतिक उपकरणो के सयोग मे अतिमानवीय तत्वो की

खोज कर लेती है। वह चन्द्रमा, सूर्य, नक्षत्र, कल्प-वृक्ष, अमृत, सुधा, जुन्हाई, देवता, कमलनाल आदि के माध्यम से स्वर्गीय तत्वो को ढूँढ लेता है। सौन्दर्य की समग्रता के लिए उमा, रमा, उर्बशी, लक्ष्मी आदि को अप्रस्तुत बनाता है। इनके माध्यम से भौतिक सौन्दर्य को व्यञ्जित करता है। प्रकृति को अपना आधार बनाता है और उसकी पूर्णता से अपनी पूर्णता को प्राप्त करना चाहता है। इन वस्तुओ के समुच्चय मे स्त्री-सौन्दर्य विपयक उसकी धारणा स्पष्ट हो जाती है।

(१) **सूक्ष्म-तत्व**—सौन्दर्य निरूपण के सूक्ष्म तत्वो का आकार नही होता परन्तु उसमे निहित शक्ति की प्रभावोत्पादकता अपरिहार्य है। नारी का मासल सौन्दर्य कामोद्दीपक गुणो से सयुक्त है। जो नारी जिस मात्रा मे इन्द्रियो को क्षुभित करती है, उसका सौन्दर्य उतना ही अधिक है। अभिनव गुप्त ने नारी की वीर्य-विक्षोभन शक्ति को ही उसके रूप की कसौटी स्वीकार किया है। इस प्रकार इनके सौन्दर्य-चिन्तन मे काम-रस को प्रधानता दी गई है और इसी आधार पर सौन्दर्य का निर्धारण किया गया है।

(२) सौन्दर्य का दूसरा सूक्ष्म गुण लावण्य' है। लावण्य मोती की आभ्यन्तर छाया की तरलता की भाँति अगो मे चमकने वाला गुण विशेष है। अपने आप मे प्रकाशित होने वाले इस गुण से शोभा की वृद्धि हो जाती है। मध्यकालीन कवियो ने सौन्दर्य-निरूपण मे श्रीकृष्ण को 'लावण्य–निधि' माना है।

(३) 'माधुर्य' की गणना सौन्दर्य के अन्य गुणो मे है। सभी अवस्थाओ मे रमणीयता को धारण करना 'माधुर्य' कहा जाता है। जो वास्तव मे सुन्दर है, वे प्रत्येक अवस्था मे रमणीय लगते है। विपरीत परिस्थिति मे भी यह सौन्दर्य घटता नही। सस्कृत कवियो मे कालिदास की सूक्ष्म सौन्दर्य चेतना इस गुण की ओर बार-बार आकृष्ट होती रही है। उन्होने बताया है कि जटा धारण कर लेने पर भी पार्वती का सौन्दर्य वैसा ही बना रहा, जैसा वेणी धारण करने पर बना रहता है। "यथा प्रसिद्धैर्मधुर शिरोरुहैर्जटाभिरप्यैवमभूत्तदानम्।" यह सौन्दर्य किसी अवस्था मे विकार-ग्रस्त न होने से अलौकिक कहा जायगा।

(४) बाह्य प्रसाधनो के अभाव मे सौन्दर्य का भासित होना उसके 'स्वनिर्भरत्व' गुण को व्यक्त करता है। जो सौन्दर्य प्रसाधक उपकरणो की अपेक्षा नही करता, वह अपने आप मे पूर्ण माना जाता है। ऐसा पूर्ण सौन्दर्य आत्म-निर्भर रहता है। सुरूपवान् के लिए इन वाहरी वस्तुओ की कोई आवश्यकता भी नही रहती।

(५) रमणीय रूप की प्रधान विशेषता प्रतिक्षण की नवीनता है। रूप की महत्ता इसी मे है कि वह प्रतिक्षण, बार-बार दर्शक के हृदय को आकर्षित एव आवर्जित कर ले। भावक उसे सदा नये रूप मे देखे। वह सौन्दर्य पकड मे न आ सके, उसे रूपाकार या रगादि मे बाँधा न जा सके। ऐसा रूप सदा स्पृहणीह माना जायगा। श्रीकृष्ण का रूप इसी प्रकार का था। प्रतिक्षण की इस नवीनता और परिवर्तन-शीलता के कारण उस रूप से 'रति' नही की जा सकती। गोपी कहती है कि "स्याम सो काहे की पहिचानि। निमिष-निमिष वह रूप न वह छबि, रति कीजै जेहि आनि।"

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि सौन्दर्य की स्थूल एव सूक्ष्म विशेषताओ की ओर कवियो का ध्यान गया है। आकार, विन्यासादि स्थूलता के बोधक है और नवीनता, आत्म-निर्भरता, लावण्य, रमणीयता आदि से सौन्दर्य के सूक्ष्म गुणो का ज्ञान होता है। इन गुणो से सयुक्त होकर सौन्दर्य पूर्ण हो जाता है। अत सौन्दर्य विवेचन मे ये गुण उसके प्रधान तत्व होगे। इन सभी गुणो का प्रादुर्भाव युवा काल मे होता है। इससे युवा काल के गुणो मे इनका आधार लिया जायगा। इसे वय-सौन्दर्य के अन्तर्गत स्पष्ट किया जा रहा है।

वय-सौन्दर्य—सौन्दर्य के दो विभाग 'स्थूल' और 'सूक्ष्म' किये जा चुके है। इनमे स्थूल सौन्दर्य भौतिक उपादानो या आधारो को लेकर चलने वाला होता है। सूक्ष्म सौन्दर्य मे शोभा, कान्ति जैसे तत्वो का ग्रहण होता है। इन तत्वो के ग्रहण से मानव-सौन्दर्य की अभिव्यक्ति की जाती है। मानव का यह सौन्दर्य नय-क्रम की दृष्टि से उसकी अवस्था पर निर्भर रहता है। बाल्यावस्था का सौन्दर्य, बालक की चपलता, क्रीडा आदि मे व्यक्त होता है, किशोरावस्था मे अगो के विकास, गठन, शोभा आदि से इस सौन्दर्य की प्रतीति होती है और प्रौढावस्था मे यही सौन्दर्य गभीरता और गुरुता आदि के द्वारा प्रकट होता है। भक्तिकालीन रचना मे बाल और किशोर अवस्था से सौन्दर्य का ही वर्णन है।

भक्त कवियो ने अवस्था की दृष्टि से आलम्बन के रूप-सौन्दर्य, क्रिया चेष्टाओ आदि के क्रमिक परिवर्तन का वर्णन किया है। मानव की इन अवस्थाओ मे पुरुष एव नारी दोनो के सौन्दर्य का वर्णन हो सका है। पुरुष रूप मे श्रीकृष्ण के सौन्दर्य का अकन जन्मकाल से आरम्भ कर दिया गया था। राधा-वल्लभी सम्प्रदाय के भक्त कवियो ने राधा बाल-वर्णन को भी काव्य मे उचित स्थान दिया है। राधा और कृष्ण दोनो की चेष्टाओ और शृङ्गारिक प्रवृत्तियो मे इनकी दृष्टि रमी है। ऐसे ही प्रसंगो पर उनकी अवस्थाओ का

सकेत मिल जाता है। गोपी द्वारा श्रीकृष्ण की 'अचगरी' का उलाहन देने पर यशोदा कहती है कि मेरा कुवर तो अभी पाँच ही बरस का है और अभी भी रोकर दूध मागता है। अत वह इन बातो को कैसे जानता होगा।[1] एक अन्य स्थल पर ऐसे ही प्रसग मे श्रीकृष्ण को दस वर्ष का बताया गया है।[2] गारुडि-प्रसग पर उनकी आठ बरस की अवस्था का कथन है, "आठ बरस को कुँवर कन्हैया, कहा कहति तुम ताही।[3] इस अवस्था मे ही उनकी बुद्धि विकसित हो चुकी थी। यशोदा भी इस विकास पर आश्चर्य प्रकट करती है।[4] ऐसे ही स्थल पर राधा को सात बरस का बताया गया है।[5] इस सभी उद्धरणो से प्रकट हो जाता है कि श्रीकृष्ण की शृङ्गार लीलाओ का आरम्भ उनकी पौगण्डावस्था से हो जाता है। यह पाँच वर्ष से लेकर दस वर्ष की अवस्था है। यहाँ कवि की दृष्टि मे श्रीकृष्ण के दोहरे व्यक्तित्व की कल्पना की गई है। वे यशोदा के समक्ष बाल भाव से और गोपियो के समक्ष तरुण-भाव से आते है। गोपियाँ उनकी इस लीला को जानती है और उन्हे तत्र-मत्र का ज्ञाता समझती है।[6]

श्रीकृष्ण के किशोर वय मे उनकी शोभा अधिक वर्णित है। इस वय मे युवतियो को मोह लेने वाले गुणो का विकास होता है। इसके लिए उनका द्वादश वर्ष की अवस्था का वर्णन अनेक पदो मे मिल जाता है।

गये स्याम तेहि ग्वालिन के घर। ....
तब भए स्याम बरस द्वादस के रिझै लई जुवति ता छवि पर।
सूरसागर पद ६१६

---

1 कहाँ मेरे कुँवर पाँच ही बरस के रोई अजहूँ सु पै पान माँगे।
तूँ कहाँ ढीठ जोबन प्रमत्त सुन्दरी, फिरति इठलाति गोपाल आगे।
सूरसागर। पद ६२५

2 मेरो हरि कहँ दमहि बरस को, तुम री जोबन मद उमदानी।
लाज नही आवति इन लगरनि, कैसे धौ कहि आवति बानी।
सूरसागर। पद २१०८

3 सूरसागर। पद १३७१

4 आठ बरस को कुँवर-कन्हैया इतनी बुद्धि कहाँ ते पायो।
माता लै दोहनी कर दीन्हौ, तब हरि हँसत दुहन को धायो। सू १२८५

5 भई बरस सात की, सुभ घरी जात की, प्यारी दौउ भ्रात की, बची भारी।
सूरसागर १३१७

6 हरि जानत है तत्र-मत्र सीख्यौ कछु टोना।
वन मे तरुन कन्हाई, घरहि आवत ह्वै छौना।

युगल-शोभा या युगल-केलि मे राधा और कृष्ण दोनो की अवस्था बारह वर्ष की बताई गई है ।[1] इसी अवस्था मे समागन और अनुराग का पूर्ण और सफल कथन हो सका है । राधा की इस अवस्था का सूर ने स्वतन्त्र रूप से वर्णन किया है ।[2] इस कथन मे द्वादस बरस को 'भारि' विशेषण मे व्यक्त किया गया है । इससे यह ध्वनि निकलती है कि यही अवस्था विशेष गुरुत्व और महत्ता की होती है । इसे शास्त्रीय दृष्टि से वय सन्धि की अवस्था मानते है ।

शृङ्गार की विकसित होती हुई भावनाओ का यह प्रथम काल है । इसी से कवियो ने पूर्ण तन्मयता के साथ इस काल के रूप-सौन्दर्य एव लावण्यादि का सफल चित्रण किया है । ऐसा प्रतीत होता है कि इन कवियो की दृष्टि मे वय सन्धि के सुख की बहुत महत्ता है । गोपियाँ इसी भाव को व्यक्त करती है ।[3] नारी के वय-सौन्दर्य की दृष्टि से इसे युवाकाल मे मानते है, जिसके चार विभाग वय सन्धि, नव्य-यौवन, व्यक्त यौवन और पूर्ण-यौवन किये गये है । भक्त-कवियो की दृष्टि मे केवल वय सन्धि और नव्य-यौवन काल की शोभा ही अधिक रमणीय प्रतीत होती है । राधा के रूप-सौन्दर्य के अकन मे इसी काल पर दृष्टि केन्द्रित रही है । अन्य गोपियो की अवस्था विभिन्न कालो की थी ।

राधा की अवस्था के इस काल का यह सकेत उसके लिये प्रयुक्त विशेषणो द्वारा कराया गया है । वयस की उठान, थोडे दिनन की राधा, भोली, छोटे दिनन की राधा का चित्र प्रस्तुत किया गया ।[4] इन विशेषणो से उसके वय सन्धि काल की ही व्यञ्जना होती है । यहाँ वयो मुग्धा और नवल-

---

1 (i) द्वादश कान्ह द्वादसी आपुन, वह निसि वह हरि राधा जोग ।
वह रसकी झलकनि, वह महिमा, वह मुसुकनि, वैसो सयोग । सू २६४८
(ii) जैसो स्याम नारि यह तैसी, सुन्दर जोरी सोहै ।
वह द्वादस वहऊ दश द्वै की, ब्रज जुवतिनि मन मोहै । पद २४२१

2 अग-अग अवलोकि सोभा मनहि देखि विचारि ।
सूर मुख पट देति काहे न, बरस द्वादश भारि । २३३१ सूरसागर

3 वैस-सन्धि सुख तज्यौ सूर हरि, गये मधुपुरी माँहि । सूरसागर ४४६६

4 तुम्हे कोऊ टेरत है जू कान्ह ।
भोरी सी गोरी थोडे दिनन्ह की, वारी वैस उठान । सूरसागर ।
(ii) उठत वैस को इहै दाँव री । पद ३२१५
(iii) जुवति इक जमुना जल को आई ।
सहज सिंगार उठत जोबन तन विधि निज हाथ बनाई । पद २०६५

अनंगा नायिका का सौन्दर्य वर्णित है। नई और थोडे दिनो की राधा मे चतुराई आगई है।[1] उसकी चेष्टाओ मे आकर्षण उत्पन्न हो गया है। एक गोपी कहती है कि तुम राधा को थोडे दिनो की मत समझो। उसके अग-अग मे चतुराई भरी हुई है, उसे पूर्ण ज्ञान है और वह बुद्धि की मोटी नही है। इसी से वह सखियो से भी 'चतुराई' करने लग जाती है। राधा की यह चतुराई उसके वय सन्धिकाल से ही आरम्भ हो जाती है। यही काल विकसित होकर नव्य-यौवन मे परिवर्तित हो जाता है।

भक्त कवियो ने राधा-कृष्ण-केलि के अनेक प्रसगो पर नवल' और 'नवेली' शब्द का प्रयोग किया है। इसीके साथ किशोर और किशोरी शब्द के प्रयोग से युवाकाल की आरम्भिक अवस्था का ज्ञान होता है। 'किशोरी राधा' के नये अग की नई सुषमा है।[2] अग मे सोलह श्रृङ्गार से शोभा बहुत बढ जाती है। ऐसी राधा रसिक गोपाल को अच्छी लगती है।[3] वर 'कोक गुन' मे प्रवीन एव सब-रस मे सुन्दर है।[4] किशोर अवस्था तारुण्य की अवस्था है। इसे अनेक कवियो ने 'नवल' शब्द के द्वारा व्यक्त किया है। नवल किशोर और नवल किशोरी का प्रयोग युगल स्वरूप के लिये किया गया है —

१ तोहि किन रुठब सिखई प्यारी।
नवल **बैस** नव नागरि स्यामा, वै नागर गिरधारी। सूरसागर

२ नयौ नेह नयौ गेह नयौ रस, नवल कुँवरि वृषभानु किशोरी।
सूरदास प्रभु नवरस विलसत, नवल राधिका **जोबन भोरी**। सू०

---

1 (i) सूर स्याम प्रभु प्यारी राधा, चतुर **दिननि की छोटी**। पद २५७८
(ii) सुनरी राधा **अबहि** नई।
बातै कहा बनावती मो सो हमहूँ तै तूँ चतुर भई। पद २३६०
(iii) तुम जानति राधा है छोटी।
चतुराई अग-अग भरी है, पूरन ज्ञान न बुधि की मोटी। पद २५१६

2 सुन्दरता की रासि **किसोरी**, नव सत साज सिंगार सुभग तन।
कुम्मनदास-अष्टछाप-परिचय पृ० ११३ पद ४१

3 राधा रसिक गोपालहि भावै।
सब गुन निपुन, नवल अग सुन्दर, प्रेम मुदित कोकिल स्वर गावे।

4 सब रस सुन्दरी **नवल किसोरी**, कोक कला गुन पाढी।
परमानन्द दास—अष्ट० परि० पृ० १९७ पद ७०

विश्लेषण करने से ज्ञात होता है कि इस 'नवल' शब्द का प्रयोग या तो केवल राधा के लिये अथवा राधाकृष्ण दोनो के लिये प्रयुक्त हुआ है। इस नवीन जोडी के सभी साधक अगो मे भी यही नवीनता दीख पडती है। इससे हृदय के उल्लास का बोध होता है। युगल स्वरूप के लिये प्रयुक्त इस शब्द मे वय की नवीनता का अर्थ व्यक्त होता है—

१. (i) आजु निकुंज मंजु मे खेलत **नवल किसोर नवीन किसोरी।**
हित चौरासी पद ७

(ii) **नवल नागरि** नवनागर किशोर मिली,
कुंज कोमल कमल दलनि सिज्जा रची। पद ५०, वही

२. नवल घनश्याम नवल वर राधिका,
नवल नव कुंज नव केलि ठानी।
नवल कुसुमावली नवल सिज्या रची,
नवल कोकिल कीरभृंग गानी।[1]

उपर्युक्त उदाहरणो मे युगल स्वरूप की नवीनता के प्रति आग्रह है। इस शब्द के द्वारा यह ध्वनित होता है कि राधा और कृष्ण दोनो की अवस्था अभी कम है।

श्रीकृष्ण और राधा की अवस्था की नवीनता का कथन व्यष्टि रूप मे भी हुआ है। राधा के नवल वयस को शृङ्गारस का प्रमुख आधार माना है। यही सम्पूर्ण रस साधना की मुख्य अवस्था है और "चढत वैस का यही दाँव है।" राधा की इस अवस्था का वर्णन अनेक कवियो ने अनेक स्थलो पर किया है।[2] शृंगार रस की उत्तम अभिव्यक्ति के लिये नायक-नायिका दोनो का समान वय होना आवश्यक है। अवस्था की अत्यधिक भिन्नता रस मे बाधक हो जाती है। इसलिये कवियो ने श्रीकृष्ण की नवीनता या नवल वयस का प्रतिपादन दो रूपो मे किया है (१) बाल्यभाव मे भी गोपियो के समक्ष तारुण्य आचरण का प्रदर्शन। इसमे श्रीकृष्ण के व्यक्तित्व के दो पहलू स्पष्ट होते हैं। (२) उनके नवीन 'वयस' का शब्दत कथन।

---

[1] राधावल्लभ सम्प्रदाय. सिद्धान्त और साहित्य पृ० २५८

[2] नयौ नेह नयौ गेह नयौ रस, नवल कुंवरि वृषभानु किसोरी। .....
सूरदास प्रभु नवरस विलसत, नवल राधिका जोवन भोरी। सूरसाग
(ii) नवल नवेली अलवेली सुकुमारी जू की,
रूप पिय प्रानिनि को सहज अहारु री। ध्रुवदास

श्री कृष्ण की यह नई अवस्था सबके आकर्षण की केन्द्र थी। गोपियो की भावनाओ को उद्दीप्त करने का प्रधान कारण थी। इसीसे इस अवस्था के वर्णन मे कवियो का विशेष आग्रह दीख पडता है—

१ देखो मेरे भाग्य की सुभ घडी।
नवल रूप किसोर मूरति, कठ लै भुजधरी।[1]

२. नवल रगीले लाल रस मे रसीले अति,
छबि सो छबीले दोऊ उर धुर लागे है।[2]

३. विहरत नवल रसिक राधा सग।
रचित कुसुम सयनीथ भामिनी, कमल विमल हरि भृंग।[3]

उपर्युक्त विचारो से अवस्था की नवीनता के प्रति तीन प्रकार की दृष्टियाँ व्यक्त होती है—

(१) युवावस्था के विभिन्न विकसित होते हुए आँगिक परिवर्तनो का सूक्ष्म और विभेदक वर्णन शास्त्रीय दृष्टि से भक्त कवियो ने नही किया है। अत. नारी अवस्था के चारो भेद—वय. सन्धि, नव्य, व्यक्त और पूर्ण यौवन का अलग-अलग ज्ञान नही हो पाता है। इन अवस्थाओ का एक क्षीण आभास मात्र हो जाता है। पुरुष वर्णन मे वल्लभ सम्प्रदाय के कवियो की दृष्टि राधा वर्णन की अपेक्षा अधिक रमी है। इसीसे इन कवियो के वर्णन मे श्रीकृष्ण के बाल, पौगण्ड और किशोर तीनो ही अवस्थाओ का सम्पूर्ण सार सगृहीत हो जाता है। विभिन्न अवस्थाओ मे सौन्दर्य को विभिन्न दृष्टिकोणो से देखने की सफल चेष्टा की गई है। यही कारण है कि श्रीकृष्ण का रूप-सौन्दर्य अष्टछाप के कवियो मे आकर्षक बन गया है। इस वर्णन की तुलना मे राधा का सौन्दर्य उनकी विभिन्न अवस्थाओ के सम्पूर्ण विश्लेषण के साथ सम्भव नही हो सका है। राधा के लावण्यादि के वर्णन मे उसकी कृष्णपरक उपयोगिता का ध्यान बराबर बना रहा। इसके विपरीत राधावल्लभी सम्प्रदाय मे राधा के रूप-सौन्दर्य की प्रधानता है और कृष्ण का रूप आनुषंगिक रूप मे अथवा राधा के साहचर्य के कारण वर्णित है। सौन्दर्यसम्पन्ना राधा के अभिन्न कृष्ण की शोभा भी अवर्णनीय ही होनी चाहिये। अत युगल स्वरूप के सौन्दर्य-वर्णन मे कवियो ने दोनो की विशेषताओ का उल्लेख समान स्तर पर किया है।

---

1 सूर सागर
2 रस मुक्तावली-पृ० १४६ ध्रुवदास
3 हरिराम व्यास–'व्यास-वाणी' उत्तरार्द्ध पद सं० २७४ पृ० ३८०

(२) अवस्थापरक सौन्दर्य की व्यञ्जना न होकर उसका अभिधा से कथन है। ऐसे स्थलो पर शास्त्रीय पद्धति का अनुसरण न करते हुए हृदय की तन्मयता के आधार पर अवस्था आदि का सकेत है। यह सकेत साक्षात् कथन द्वारा हुआ है। कवि या तो स्पष्ट रूप से अवस्था को बता देता है या 'नवल' शब्द के विशेषण से इसे प्रकट करता है। राधा और कृष्ण व्यष्टि रूप से 'नवल' है और समष्टि रूप मे भी उन दोनो की अवस्था, उनका केलि, शृ गार, सखियाँ, निकु ज आदि मे यही नवलता वर्तमान है। इस शब्द द्वारा उनके तारुण्य आगमन का सम्यक् ज्ञान हो जाता है। इस तारुण्य मे अगो के सूक्ष्म गुणो रूप लावण्यादि का वर्णन होता है।

(३) विशेपणो के प्रयोग से राधा और कृष्ण की अवस्था का सकेत किया गया है। भक्त कवियो ने प्राय तीन प्रकार की विभिन्न अवस्थाओ का सकेत विशेषणों द्वारा किया है। दिनन की थोडी, वैस की उठान, वारी वैस, उठत जौवन आदि शब्दो से वय सन्धिकाल का सकेत मिलता है। नायिका भेद की दृष्टि से वयोमुग्धा और नवल अनगा नायिका के रूपादि का चित्रण मिलता है। 'नवल' शब्द से किशोरावस्था और किशोर व किशोरी शब्द द्वारा युवावस्था के आरम्भिक काल का वर्णन किया गया है। अवस्था के इस निर्धा-रण के उपरान्त नायक अथवा नायिका के रूप-सौन्दर्यादि का वर्णन होता है। इस रूपादि का उत्कर्ष वय सन्धिकाल से आरम्भ होकर तारुण्य मे अपना चरम विकास पा लेता है। गुणो मे रूप-लावण्य, रूप की नवीनता, छवि एव ज्योति आदि द्वारा रूप सौन्दर्य स्फुरित होता है। अत इन्ही गुणो के आधार पर रूपोत्कर्ष को व्यक्त किया जायगा।

रूप-लावण्य—क्षण-क्षण मे नवीनता को धारण करने वाला रूप रम-णीय कहा जाता है। रमणीयता की छवि परिवर्तित होती रहती है। इस परिवर्तन मे सौन्दर्य निहित रहता है। इसी कारण रूप पकड मे नही आ पाता। किसी विशेष क्षण मे अनुभव मे आया हुआ रूप उस क्षण तो अपना एक निश्चित और स्थिर प्रभाव उत्पन्न करता है, परन्तु दूसरे ही क्षण नवीनता के कारण वह अग्राह्य हो जाता है। इसी से रूप आकर्षक होता है और हमारी पूर्ण तृप्ति का साधन नही बन पाता। इस रूप मे अगो मे वर्तमान तरलता ही लावण्य का मूल है।[1] छवि, अग दीप्ति, शोभा, ज्योति आदि इसके आवश्यक अग हैं। बोलचाल की भाषा मे रूप, सौन्दर्य का समानार्थक माना गया है,

---

1 मुक्ताफलेषु छायायास्तरलत्वमिवान्तरा।
प्रतिभाति यदङ्गेषु लावण्य तदिहोच्यते। उद्दीपन प्रकरण २६

परन्तु तात्विक दृष्टि से रूप मे आकार की महत्ता होती है, सौन्दर्य उस आकार के समुचित विन्यास से उत्पन्न होने वाला उसी मे स्थित कान्ति को व्यक्त करता है। रूप मे आकार की शोभा प्रतिभासित होती है, सौन्दर्य अगो के विन्यास से उत्पन्न होता है और लावण्य अगो का एक ऐसा बहुमूल्य तत्व है, जो उसी प्रकार उसके महत्व को वढा देता है, जैसे मोती मे वर्तमान आब मोती के मूल्य की वृद्धि कर देता है। रूप के प्रसग मे प्रतिभासित शब्द महत्वपूर्ण है। इसका यह तात्पर्य होगा कि वस्तु मे आभूषण की स्थिति न होते हुए भी उसके धारण करने से उत्पन्न शोभा का आभास होता है, परन्तु लावण्य मे तरलता या आब की स्थिति का आभास मात्र ही नही होता, अपितु उसकी स्थिति भी होती है। रूप और लावण्य के तत्व एव गुणो मे अनस्तित्व या अस्तित्व का भेद होता है। रूप मे आकार है, भूषण नही है, परन्तु अग शोभा भूषण धारण वत् प्रतीत होता है, लावण्य मे तरलत्व और आब दोनो की स्थिति है। इस दृष्टि से लावण्य का आन्तरिक मूल्य अधिक है और रूप का आभास जन्य मूल्य ही है। रूप और लावण्य के द्वारा अगो मे हृदय को आवर्जित कर लेनें का गुण उत्पन्न हो जाता है, आलम्बन मे एक अनोखापन आ जाता है, उसमे आकर्षण की एक ऐसी दिव्यता उत्पन्न हो जाती है कि आश्रय उसे देखकर मत्र मुग्ध हो जाता है, उसे आन्तरिक तृप्ति का अनुभव होता है। इसी से भक्ति काल के साधक भक्त कवियो ने अपने आलम्बन के रूप और लावण्य के चित्रण मे पूर्ण तन्मयता प्रदर्शित की है। यह निम्नलिखित रूपो मे व्यक्त हुआ है—

नवीनता—भक्त कवियो के अपने आलम्बन के रूप-लावण्य मे रमणीयता को प्रथम तत्व स्वीकार किया है। उनके आलम्बन की शोभा प्रतिक्षण बढती ही रहती है। उसमे स्थिरता नही है।[1] बालकृष्ण के वर्णन मे लावण्य के

---

1 (i) सखी री सुन्दरता को अग।
छिन-छिन माँहि परत छबि औरे,कमल नयन के अग।"
अष्टछाप-परिचय सूर १२८५

(ii) गोवर्धन धारी नित नवरग। कृष्णदास विद्या-विभाग काकरौली—
स २०१६ सं व्रजभूषण शर्मा।

(iii) कृष्णदास बलि-बलि अंग-अग पर,
प्रति छिनु नवरंग नन्दकुँवर की। कृष्णदास पद १५

(iv) कृष्ण दास प्रभु नवरग गिरवर, बोलत वचन रसाल। पद ३०

(v) गिरवर नवरग रग मगे, रग मगी पाग केसर रगे।

साथ कल्पना की नवीनता भी दर्शनीय है। हँसते हुए कृष्ण का रूप कमल पर जमी हुई विद्युत् की रेखा के समान है, या विधु मे उजारी बिजली तुल्य है। दाँतो की उज्ज्वलता को सुन्दरता के मन्दिर मे जगमग करती हुई रतन-ज्योति की उपमा प्राप्त हुई है। आलम्बन के रूप की नवीनता के साथ कल्पना की यह नवीनता उस रूप की कलात्मक अभिव्यञ्जना मे समर्थ हो सकी है। प्रतिक्षण वृद्धिगत होता हुआ यह रूप पकड मे नही आ पाता। गोपियाँ जब तक श्रीकृष्ण के रूप को आत्मसात् करने मे तन्मय होती है, तब तक वह रूप कुछ और ही हो जाता है और उनके पहचान मे कठिनाई उत्पन्न हो जाती है। सूर ने कहा है कि गोपियाँ श्रीकृष्ण से पहचान नही मानती है, क्योकि निमिष-निमिष मे वह रूप, वह छबि परिवर्तित हो जाती है।[1] रमणीय रूप की ऐसी कल्पना दुष्प्राप्य है। एक ओर रूप का असीम होना और दूसरी ओर लोभ का अतृप्त रह जाना—इन दोनो के द्वारा सौन्दर्य की अतिशयता और परिवर्तनशील की सफल व्यञ्जना हो सकी है। इस सौन्दर्य के समक्ष कवि की उन्मुक्त कल्पना भी पगु पड जाती है। नित्य-नूतन और लावण्य की निधि श्रीकृष्ण की शोभा बरबस आकृष्ट कर लेती है। उसे देखकर अनुराग उत्पन्न होता है 'मोहन बदन बिलोकत अँखियन उपजत है अनुराग।" उसकी शोभा और अपना सामर्थ्य देख उसके रूप-लावण्य के वर्णन मे कवि को लज्जा का अनुभव होने लगता है। 'सुभग साँवरे गात की मैं सोभा कहत लजाऊँ।"

नवीनता का यह आग्रह सभी भक्त कवियो मे दीख पडता है। कुम्भन दास ने श्रीकृष्ण को अपरिमित सौन्दर्य की निधि माना है। उनके वर्णन मे श्रीकृष्ण का लावण्य अनुपल नवीन, विलक्षण और विकासमान है। कवि प्रत्येक अग की नूतन कान्ति और उसकी परिमिति की इयत्ता व्यक्त करने मे अपने

(vi) नवकुंज बैठे आली री आजु।
नव बसन को बागे पहने, नव कुसुमनि को साजु।
नव मोहन अरु नवल राधिका, नव गोपी गावत गाजु।
कृष्ण दास प्रभु की सोभा पर वारौ अति रति राजु। पद १०२

[1] स्याम सो काहे की पहिचानि।
निमिष-निमिष वह रूप न वह छबि रति कीजै जेहि आनि।
इत लोभी उत रूप परम-निधि, कोउ न रहत मिति-मानि।
सूरसागर (सभा) पद २४७०

को असमर्थ पाता है।[1] चत्रभुज दास का अतृप्त मन रूप सुधा-पान की ओर उन्मुख होकर शरण मे रहने की अभिलाषा भी व्यक्त करता है।[2] श्रीकृष्ण का रूप आज और कल और, प्रतिदिन और प्रतिपल भी और ही और हो जाता है। छवि की तरंगे उठती रहती है, जिससे सम्पूर्ण विश्व मोहित हो जाता है। ऐसे भुवन-मोहन आराध्य की शोभा पर भला कौन ऐसा है, जो अपना सब कुछ वार न दे। लावण्य के निधि ऐसे श्रीकृष्ण को देख छीत स्वामी की गोपिका अपनी सुधि भूल जाती है। मन्द मुसकान का जादू चल जाता है।[3] परमानन्द दास की दृष्टि राधा की प्रत्येक वस्तु की नवीनता की ओर गई है।[4] इस प्रकार नवीनता के प्रति रुचि अधिकाश भक्त कवियो मे है। छवि और ज्योति से पुष्ट होकर यह नवीनता सौन्दर्य की और बढा देती है।

छवि और ज्योति—क्षण-क्षण की इस रमणीयता के साथ लावण्य का दूसरा प्रमुख तत्व छवि का अगो से प्रस्फुटित होना है। जैसे किसी प्रकाश पुञ्ज से प्रकाश की किरणे फूटती रहती है, उसी प्रकार रूप-लावण्य से युक्त अगो से छवि की ज्योति खिलती रहती है। इसमे पुष्पो की ताजगी और किरणो की उज्ज्वलता इन दोनो का युगपत् बोध होता रहता है। अगो मे वर्तमान छवि लावण्य निधि हो जाती है। जैसे ध्वनि मे प्रयुक्त शब्दो से एक प्रतीयमान अर्थ

---

1 छिनु-छिनु **बानिक औरहि** और।
जब देखो **तब नौतन** सखी री, दृष्ट जू रहति न ठौर।
कहा करौ परिमिति नहिं पावत, बहुत करी चित दौर।
कुम्भन दास प्रभु सौभग सीवा, गिरधर धर सिर मौर।

2 आज और काल्हि और, दिन प्रति और-और,
देखिये रसिक गिरिराज धरन।
छिन प्रति छिन नव छबि, बरनै सो कौन कवि,
नितही सिगार बागे बरन-बरन।
सोभा-सिन्धु अग-अग मोहित अनग, छबि की तरग विस्व को मन हरन।
चत्रभुज प्रभू गिरधर को सरूप सुधा, पीजै जीजै रहिये सदा ही सरन।
अष्टछाप परिचय पृ २८४

3 अरी हौ स्याम रूप लुभानी। ..
मो तन मुरि के जब मुसकाने, तब हौ छाकि रही।
छीत स्वामी गिरधर की चितवनि, जाति न कछू कही।

4 नवरग कंचुकी तन गाढी।
नवरग सुरग चूनरी ओढे, चन्द्रवधू सी ठाढी। अष्टछाप-परि० पृ १९७

उस कथन की शोभा मे वृद्धि करता रहता है, उसी प्रकार छवि द्वारा आलम्बन के लावण्य मे एक गुरुत्व एव आकर्षण की हृदय-ग्राही गम्भीरता आ जाती है। भक्तिकालीन कवियो ने इसका सकेत कटाक्ष का तरग, अग-रंग-छवि, जगमग ज्योति, उछलित छवि, दीप सा जलना जैसे वाक्याशो से किया है। कुछ उदाहरण दर्शनीय है।

१ रूप-जल मे **तरंग उठे कटाछनि** के,
अग-अग भौरनि की अति गहराई है।
नैननि की प्रतिबिम्व पर्यौ है कपोलनि मे,
तेई भये मीन तहाँ ऐसी उर आई है।
अरुन कमल मुसुकानि मानो फवि रही,
थिरकनि वेसरि के मोती की सुहाई है।
भयो है मुदित सखी लाल को मराल मन,
जीवन जुगल ध्रुव एक ठाँव पाई है। ध्रुव दास

२. रच्यौ स्याम जमुना जल पर रास।
सग राधिका **अंग-रंग** छवि,सव गुन रूप-निवास।
व्यास वाणी पद २४३

३ कौन मेरे आँगन ह्वै जू गयो।
जगमग ज्योति बदन की माई, सपनो से जु भयो।
अष्ट० परि०। पृ० १९४ परमानन्द दास

४ कहा कहौ मोहन मुख सोभा।
बदन इन्दु लोचन चकोर मेरे, पिबत किरन रस रूप लोभा।
अंग-अग उछलित रूप छटा, कोटि मदन उपजत तन गोभा।
गोविन्द प्रभु देखे विवश भई प्यारी, चपल कटाक्ष लग्यौ हृदै चोभा।
अष्ट० परि० पृ० २५४

५ कचन के वरन चरन मृदु प्यारी जू के,
जावक सुरग-रग मनहि हरत है।
हित ध्रुव रही फवि सुमिलिजै हरि छवि,
नूपुर रतन खचे दीप से बरत है।
रीझि-रीझि सुन्दर करनि पर पट धरै,
आरसी सी लिये लाल देखिवौ करत है।

उपर्युक्त उद्धरणो से यह स्पप्ट हो जाता है कि छवि-वर्णन मे सर्वाङ्ग

का चित्रण और अग-प्रत्यग का अलग-अलग चित्रण मिलता है। जगमग ज्योति के कथन द्वारा अग से निकलने वाली आभा का सकेत किया गया है। वास्तविक लावण्य वही है, जहाँ आभा शरीर मे न समाकर उछल पडती हो। इस अग छबि के साथ आभूषणो की एक अलग ज्योति ही होती है, जिसमे अग की शोभा मिलकर रूप मे निखार ला देती है। ब्रह्म कवि का छवि वर्णन सद्य स्नाता को आधार बनाकर प्रकट हुआ है। भीने दुकूल मे दीप-शिखा सी प्रतिभासित नायिका का सौन्दर्थ अनुभव का विषय है।[1]

उपर्युक्त विचारो से स्पष्ट हो जाता है कि कृष्ण शाखा के भक्तिकालीन कवियो ने रूप-लावण्य के वर्णन मे छवि और रूप की नवीनता को लावण्य का अनिवार्य तत्व स्वीकार किया है। रूप के वर्णन मे नवीनता के तीन कारण लक्षित होते है। प्रथम रूप के **आतिशय्य की कल्पना, द्वितीय कवियो का अपना दृष्टिकोण और तृतीय आलम्बन के प्रति असीम तन्मयता का भाव**। इन तीनो के ही कारण आलम्बन सर्वाधिक सुन्दर बनकर समक्ष आता है। अग-प्रत्यग के साथ सश्लिष्ट रूप का चित्रण अनेक विध रूपो मे आलम्बन की क्षण-क्षण की नवीनता का प्रतिपादन करता है। प्रत्यग से फूटती हुई छवि हर बार एक नई चेतना व भाव उत्पन्न करती है। उसका ताजापन या टटकापन बना रहता है। इन कवियो की यह सौन्दर्य चेतना स्वानुभूति के आत्म तत्व से प्रेरित है। इसी से इनके रूप-चित्रो मे इतनी सचाई, सूक्ष्मता और ताजगी वर्तमान है। और उनको आलम्बन के रूप मे सुन्दरता की सीमा है। इस सीमा का ध्यान सभी कवियो ने रखा है।

सौन्दर्य-सीमा—रूपाकन मे सूरदास की तमन्यता अद्वितीय है। बाल-कृष्ण के वर्णन मे छवि की दिव्यता के साथ अपरिसीम सौन्दर्य भी है। सौन्दर्य के प्रति इसी आकर्षण के कारण श्रीकृष्ण की प्रत्येक लीला सौन्दर्याभिमुखी है। सूरसागर की कथा को रूप आच्छादित कर लेता है। रूप का यह वर्णन दो प्रकार का है। (१) सौन्दर्य की अतिशयता मे कवि स्वय मुग्ध होता है दूसरा गोपियो के माध्यम से रूपासक्त चित्र प्रस्तुत करता है। इसमे पहले प्रकार के चित्रण मे रूप-सीमा, सौभग-सीमा, सुन्दरता की हद आदि शब्दावली के प्रयोग से कवि अकथनीयता का सकेत कर देता है। कृष्ण की शोभा का वर्णन नही

---

1 ब्रह्म भनै नन्दलाल विलोकति, लागि रही तट लागि मृपा सी।
भीनै दुकूल मे झाई झलमलै, देह दिपे दुति दीप सिषा सी।
अकवरी दरवार के हिन्दी कवि पृ० १७७

कर पाता[1] क्योंकि उनका अग-अग अनूप है ।[2] वे सुन्दरता के सागर है "देखो भाई सुन्दरता को सागर ।"[3] वे अनन्त शोभा से युक्त है ।[4] यह शोभा नन्द भवन मे पूर्ण होकर व्रज की वीथियों मे प्रवाहित होने लगती है । सूर के इस कथन मे रूप-सौन्दर्य की अतिशयता और असीमता की अभिव्यञ्जना हुई है । व्रज की वीथियो मे शोभा के बहने से यह अभिप्राय है कि नन्द-सुवन की अनन्त छवि व्रज मे सभी कही तरगित हो रही है । इस अनन्तता के प्रति अन्य भी कई कवियो की रुचि दीख पडती है । कुम्मन दास, गोविन्द स्वामी, हित हरिवशादि की दृष्टि इधर गई है । कुम्मन दास के श्रीकृष्ण अपरमित सौन्दर्य के निधि है । प्रतिक्षण की नवीनता के साथ उनका "सौभग सीवा" रूप उन्हे शोभा मे सिर-मौर बना देता है ।[5] कृष्णदास के कृष्ण की अभिरामता परम रमणीय है ।[6] गोविन्द स्वामी के इस वर्णन का प्रमुख गुण यह है कि रूप-सौन्दर्य की सीमा केवल कथन से अभिधेय मात्र नही है, अपितु प्रसाधन सामग्रियो के प्रयोग से अभिवर्द्धित होती रहती है ।

> अरी यह सुन्दरता को हद ।
> कुण्डल-लोल कपोल विराजत, विलगित भ्रुव ज्योति उनमद ।
> विद्रुम अधर दशन दार्यौ दुति, दुलरी कठ हार उर विसद ।
> गोविन्द प्रभु वन ते व्रज आवत, मानहुँ मदन गजराज धरत मद ।।
> अष्टछाप-परिचय पृ० २५५

---

1 सोभा कहत कहे नहि आवै ।
अचवत अति आतुर लोचनपुट, मन न तृप्ति को पावै । सूरसागर १०६६

2 सजनि निरखि हरि को रूप ।
मनसि, वचसि विचारि देखौ, अग-अग अनूप । सूरसागर २४४०

3 सूरसागर (सभा)

4 'शोभा सिन्धु न अन्त रही री ।
नन्द-भवन भरि पूरी उमग चली, ब्रजकी विथिनि फिरति वही री ।'सूरसागर

5 (१) छिनु-छिनु बानिक औरहि और ।
जब देखो तब नौतन सखी री, दृष्टि जू रहति न ठौर ।
कहा करौ परिमित नहीं पावत, बहुत करी चित दौर ।
कुम्मन दास प्रभु सौभग-सीवां, गिरधर धर सिरमौर ।।

(११) कुम्मन दास दम्पति सौभग सीवा जोडी भली बनी एक सारी ।
नव नागरी मनोहर राधे नवल लाल गोवर्धन धारी ।
पृ० १४३ अष्टछाप पदावली

6 कृष्णदास प्रभु गोवर्धन धर, सुभग सीग अभिराम । अष्टछाप परिचय २३५

इस पद मे प्रयुक्त शब्द 'अरी' मे एक साथ कई प्रवृत्तियो की सम्पृक्त भाव शबलता है। आश्चर्य मिश्रित औत्सुक्य के साथ रूप-सौन्दर्य की प्रशसात्मक अभिव्यञ्जना हुई है। कवि मानो उस सौन्दर्य की सीमा को व्यक्त करने मे अपने को पूर्णतया असमर्थ पाकर भीतर ही भीतर उस अनन्तता का अनुभव करता है, भावताएँ अपनी अभिव्यक्ति पाने के लिये प्रबल भाव-प्रवाह के सहज उद्रेक मे बह जाती है और कवि कह उठता है 'अरी, यह सुन्दरता को हद।' ऐसा लगता है मानो उसकी सम्पूर्ण कलात्मक अभिव्यक्ति की शक्ति इस एक ही पद मे आकर स्थिर हो गई है। यही कारण है कि कृष्णदास को श्रीकृष्ण की प्रत्येक वस्तु मोहक प्रतीत होने लगती है।[1] राधा वल्लभ सम्प्रदाय के कवियो ने रूप सौन्दर्य की सीमा का कथन राधा को आलम्बन बना कर किया है। हित हरिवंश ने कहा है कि करोडो वर्ष तक जीवित रहकर भी राधा के सौन्दर्य का वर्णन नही किया जा सकता है। उनके रूप का सहज माधुर्य अतुलनीय है। इसी से उसकी समता किसी अन्य से नही की जा सकती है।[2]

इससे स्पष्ट हो जाता है कि भक्तिकाल के कवियो ने सौन्दर्य की अनन्तता के वर्णन का आधार राधा और कृष्ण दोनो को ही बनाया है। यद्यपि इन दोनो के आलम्बन बनने के पूर्व कवियो के हृदय मे कोई विभाजक रेखा नही थी, फिर भी राधा वल्लभी सम्प्रदाय के कवियो मे हित-हरिवश, दामोदर दास, हरिराम व्यास ध्रुवदास आदि कवियो ने राधा को ही प्रमुखता प्रदान की है। इन सभी कवियो के वर्णन की दो प्रणालियाँ रही है (१) सर्वाङ्ग वर्णन

---

1 हरि मोहन को मोहन बानिक।
मोहन रूप-मनोहर मूरति, मोहन मोहे अचानक।
मोहन बरुहा चद सिर भूषण, मोहन नैन सलोल।
मोहन तिलक भाल मन मोहन, मोहन चारु कपोल।
मोहन श्रवण मनोहर कुण्डल, मृदु मोहन के बोल।
कृष्णदास गिरधरन मनोहर, नख-सिख प्रेमकलोल।

अष्टछाप परिचय पृ० २२६

2 देखो भाई सुन्दरता को सीवा।
ब्रज जन तरुनि कदम्ब नागरी, निरखि करति अध ग्रीवा।
जो कोऊ कोटि कलप लगि जीवै, रसना कोटिक पावै।
तऊ रुचिर बदनारविन्द की **शोभा कहत न आवै।**
देवलोक भू लोक रसातल सुनि सब कवि कुल डरिए।
सहज माधुरी अग-अग की कहि कासो पट तरिए। हित हरिवश

मे लावण्य निधि का सकेत करते हुए रूप की अनन्तता का वर्णन अभिधा या व्यग्यात्मक पद्धति पर करना। (२) अग-प्रत्यग के वर्णन या रूप की गहन आसक्ति द्वारा सौन्दर्य की असीमता का सकेत करना। यही पर उपमानो की व्यर्थता का सकेत भी किन्ही स्थलो पर कर दिया जाता है। ऐसे रूप के प्रभाव की भी व्यञ्जना हुई है।

रूप का प्रभाव—अनन्त सौन्दर्य के निधि श्रीकृष्ण के रूप का लावण्य असीम है। उसकी असीमता का सकेत 'सौभग-सीवाँ'' के प्रयोग द्वारा किया गया है। इसे देखकर गोपियाँ अपनी सुधि भूल जाती है, उनका मन 'रूप के भवर' मे उलझ जाता है। राधा का सौन्दर्य भी अतुलनीय है। वह तो अपने आप ही छलकता रहता है। राधा उसे छिपा नही पाती। छिपाने मे उसे कठिनाई प्रतीत होती है ''परी है कठिन अति नवल किसोरी जू कौ, छिन-छिन नई छ्रवि कहाँ लौ छिपावही।[1] उनके इस अप्रतिम रूप-लावण्य मे मन पूर्णत लीन हो जाता है। 'छिन-छिन' मे परिवर्तित होती हुई रूप की इस नवीनता मे अग शोभा स्वय प्रकट हो जाती है। अग ही रूप सौन्दर्य की अभिव्यञ्जना स्वय पुकार-पुकार कर कर देते है। आलम्बन के ऐसे मोहक रूप को देखकर सभी का मन आसक्त हो जाता है उसका प्रभाव अनन्त सुख का दाता सिद्ध होता है यह प्रभाव भक्तकालीन कवियो की रचनाओ मे दो रूपो मे है।

(१) रूप के प्रति आसक्ति का मानसिक भाव।
(२) आश्रय के विभिन्न अनुभावो का चित्रण।

रूपासक्ति के लिये आलम्बन का सौन्दर्य-निधि होना आवश्यक है। आलम्बन का अपरिमित सौन्दर्य ही आश्रय को आकृष्ट कर सकता है। यह आकर्षण एक ओर आलम्बन के रूप के उत्कर्ष को बताता है और दूसरी ओर आश्रय की अनेक प्रतिक्रियाओ को व्यक्त करता है। ये अनुभावगत क्रियाएँ आसक्ति के कारण ही प्रकट हो जाती हैं। यह आसक्ति अनेक रूपो मे स्पष्ट होती है—

(क) उत्कृष्ट सौन्दर्य-रस का पान करने की **अभिलाषा एवं औत्सुक्य** प्राय आश्रय के मन मे उत्पन्न होता है। भक्ति-काल मे रूप के प्रति यह औत्सुक्य रूप-पान के ललक के रूप मे प्रकट होता है। गोपियाँ सखियो को भी कृष्ण का रूप देखने की प्रेरणा देती हे "सखी री, नन्दनन्दन देखु," 'देखुरी नन्दनन्दन ओर,' 'साँवरो मन मोहन माई' आदि पदो मे औत्सुक्य का यही

---

[1] हित-शृङ्गार–ध्रुवदास।

भाव व्यक्त किया गया है ।[1] इन उक्तियो द्वारा रूप की अतिशयता व्यञ्जित की गई है । श्रीकृष्ण के रूप का पान कर गोपियाँ अपने मनोगत भावो को दूसरी सखियो के सग मिलकर आनन्द का उपकरण बना लेती है । नन्दनन्दन की ओर देखने की प्रेरणा देती हुई गोपी की औत्सुक्य भावना स्वय प्रकट हो जाती है । इससे रूप की उत्कृष्टता और उसके प्रति आसक्ति तथा प्रशसात्मक भाव अभिव्यक्त होता है ।

(ख) रूपासक्ति का दूसरा प्रभाव **आत्म-विस्मृति** के रूप मे प्रकट हो जाता है । श्रीकृष्ण के आकर्पक श्याम अग को निरख कर गोपियो को आत्म सुधि नही रह जाती है उनका मन वही उलझ जाता है प्राय सभी भक्त कवियो ने इस प्रकार का वर्णन किया है । छीत स्वामी ने 'अरी हौ स्याम रूप लुभानी'[2] कह कर श्रीकृष्ण की मोहिनी को व्यक्त किया है । श्रीकृष्ण के 'वदन की ओप' का वर्णन नही किया जा सकता है । उस शोभा को देखकर गोपी की गति ही कुछ और हो जाती है । ऐसा लगता है मानो काले नाग ने उसे डस लिया हो[3] । वह अपनी मुग्धावस्था के कारण कुसुम-कली का बीनना छोडकर वही उलझ जाती है ।[4] उलाहना देने को आई हुई गोपी की आत्म-विस्मृति का भाव चत्रभुजदास ने सशक्त शब्दो मे व्यक्त किया है । वह श्रीकृष्ण को सम्मुख देखकर इतनी प्रभावित होती है कि उलाहना देना भूलकर चित्र लिखी सी बन जाती है ।[5] नन्ददास ने लोकमर्यादा और रूप-लोभ इन दोनो के मध्य मे पडी गोपी की सशयावस्था और आत्म-विस्मृति का भाव कलात्मक ढग से अकित किया है । पनघट पर गई गोपी की सुधि बिसर जाती है, नेत्रो से अश्रु-जल प्रवाहित होने लगता है । लोक-लज्जा का सम्पृक्त भाव उसे विवश

---

1 सूर सागर—सूरदास ।

2 अष्ठछाप—परिचय पृ० २२६

3 मूरति साँवरी सी तन—मन माँहि बसी ।
देखति ही मति और भई मानो काले नाग डसी ।

4 लाडिले लाल तेरे देखति द्रगनि लुभानी ।
कुसुम कली हौ बीनन आई, सघनलता अरुमानी ।
अष्ट—परिचय से

5 भूल्यौ उलाहनो को दैवो ।
सनमुख दृष्टि परी नन्दनन्दन, चकितहि परति चितैवो ।
चित्र लिखी सी ठाढी ग्वालिन, को समुझै समुझैवो । 'चत्रभुजदास'

कर देता है ।[1] कुम्भनदास की गोपी अपना पट पटवार भी विसर जाती है । उसकी एक मात्र यही आकाक्षा रहती है कि वह नेत्र भर कर नन्द कुमार को देख ले ।[2] वह विवश हो जाती है ।

(ग) विवशता का यह भाव रूप की अतिशयता से उत्पन्न होता है । आश्रय का मन आलम्बन के रूप को देखकर जितना ही आसक्त होगा, उसी मात्रा मे वह परवश होकर आलम्बन की ओर खिच जायगा । गोपी इसी परवशता के कारण अपने नेत्रो पर नियन्त्रण नही रख पाती । ये नेत्र सदा लगे ही रहते है ।[3] गोवर्द्धनधर के जिस अग पर पड जाते है, वही रह जाते है ।[4] उसकी टकटकी बँध जाती है । नख–शिख तक लाल गिरधर के रूप को देखकर वह उसी मे वह जाते है ।[5] नेत्रो को ऐसी बान पड गई है कि रूप को देखे विना घडी पल भी युग के समान प्रतीत होने लगता है 'नैननि ऐसी बान पडी । बिनु देखे गिरधरन लाल मुख जुगभर गनत घरी ।' इस विवशता के कारण विना कार्य के भी बार-बार पनघट पर चला आना गोपियो का स्वभाव बन गया है । रूप की आसक्ति के कारण वह कृष्णदरस को वही अटक जाती है, लोक-लज्जा को तिलाञ्जलि दे देती है और रूप-सुधा के पान मे लीन हो

---

[1] जल कौ गई सुधि बिसराई, नेह भरिलाई, परी है ए चटपटी दरस की । इत मोहन गाँस उत गुरुजन त्रास, चित्रसो लिखी ठाढी नाऊ वरत सखि अरमफी । टूटे हार, फाटे चीर, नैननि बहत नीर, पनघट भई भीर सुधि न कलस की । नन्ददास ग्र० पृ० ३५२।८०

[2] नैन भरि देखौ नन्दकुमार ।
तादिन ते सब भूलि गई हौ, बिसरयौ पन पटवार ।
अष्ट छाप परिचय १०७ पृ० कुम्भनदास

[3] अब कहा करौ मेरी आली री अखियन लागैई रहत ।
अष्ट० परि० पृ० २५५ पद ४२

[4] रूप देखि नैननि पलक लागै नही ।
गोवर्धन धर अग-अग प्रति, जहाँ ही परत रहत तही–तही ।
कुम्भनदास-कॉंकरौली पृ० ९५ पद २३२

[5] नैननि टकटली लागिरही ।
नख-सिख अग लाल गिरधर के देखत रूप वही ।
अ० परि० पृ० १०७ । पद १३ कुम्भनदास

जाती है।[1] रूप–मदिरा मे छककर रूप-सुधा-निधि मनमोहन के रूप-रस को नयनो मे सचित कर लेना रूप एव लावण्य की उत्तमता को व्यक्त करता है। ऐसे उत्तम रूप सम्पन्न श्रीकृष्ण के अग-प्रत्यग की शोभा निरखकर तरुणियाँ उसमे अपने को भूल जाती है। तरुनि निरखि हरि प्रति अ ग। कोऊ निरखि नख इन्दु भूली कोऊ चरण जुग-रग।"[2]

(घ) ऐसे रूप का पान करके भी उनका मन तृप्त नही होने पाता। अतृप्ति के इस भावसे रूप के प्रति गहन आसक्ति की व्यञ्जना हो जाती है। श्रीकृष्ण के मुख के सौन्दर्य को बार-बार देख कर भी मन अघा नही पाता है। 'हरि मुख निरखि–निरखि न अघात। विरहातुर उठि अपने ग्रह ते आई सब अल सात।"[3] इस रूप को देखकर कोई भी तृप्त नही हो पाता। रूप की उत्तमता का यही लक्षण है कि बार-बार देखकर भी मन अतृप्त ही बना रहता है।

कमल मुख देखत कौन अघाई।
सुनिहि सखी लोचन अलि मेरे, मुदित रहे अरुझाई।

रूप की सहज आसक्ति के साथ सौन्दर्य-प्रसाधनो से युक्त श्रीकृष्ण की शोभा मन को आकृष्ट करने वाली हो जाती है। पनघट प्रसग पर ऐसे अनेक आकर्षक चित्र अकित किये गये है। इन चित्रो मे कृष्ण और गोपी दोनो के ही प्रसाधित सौन्दर्य का आकर्षण व्यक्त किया गया है।[4] इस चित्र मे मन की

---

1 ग्वालिन कृष्ण दास को अटकी।
बार-बार पनघट चली आवति, सिर जमुना जल मटकी।
मन-मोहन को रूप सुधानिधि, पीवत प्रेम रस गटकी।
कृष्णदास धनि धन्य राधिका, लोक–लाज धर पटकी।

2 सूरसागर (सभा) १२५२।६

3 गोविन्दस्वामी ११२। पद २४०

4 (क) जमुना जल भरन गई, देखत जिय सकुच भई,
पनघट पर देख्यो आजु नन्द को दुलारौ।
सुन्दर स्याम तन सुदेश नटवर पिय तरुन वेश,
मल्ल काछ पीतवसन कनक वर टिपारौ।
चदन की खौर और अरगजा अग-अग, फब्यौ
लकुट लिये कर-कमल लागत अति प्यारौ।
अष्ट० परि० पद २०५

परिवर्तित होती हुई दशा और रूप के प्रभाव का वर्णन है। रूप की यह प्रभावोत्पादकता प्रसाधनो से और भी बढ जाती है। सहज लावण्य के साथ आभूषण, सुगन्धित दव्यो का प्रयोग, सुरुचिपूर्ण नटवर वेश, एव साज-सज्जा आदि रूपोत्कर्षक तत्वो द्वारा आसक्ति बढ जाती है। यह आसक्ति भक्तिकाल मे दो रूपो मे व्यक्त हुई है —

(१) आश्रय या आलम्बन की एक दूसरे के प्रति आसक्ति।

(२) गोपी भाव से भक्त के मन की आसक्ति।

राधा-कृष्ण या गोपी कृष्ण की पारस्परिक आसक्ति एव मुग्धता का सफल चित्र अनेक कवियो ने अकित किया है। सूर ने प्रथम मिलन का हृदय-ग्राही वर्णन प्रस्तुत किया है। यहाँ राधा और कृष्ण दोनो आश्रय एव आलम्बन बन जाते है। श्रीकृष्ण राधा के रूप ठगोरी मे उलझकर रह जाते है।[1] छीत स्वामी के पद मे श्याम सुन्दर की मोहिनी और उनका मुडकर मुसकाना जादू का प्रभाव उत्पन्न करता है —

१ भई भेट अचानक आई।
हौ अपने गृह ते चली जमुना, वे उतते चले चारन गाई।
निरखत रूप ठगोरी लागी, उतको डगर अलि चल्यौ न जाई।
छीत स्वामी गिरधरन कृपा करि, मो तन चितए मुरि मुसिकाई।
अष्ट० पदावली २१६

(ख) गोकुल की पनिहारी पनिया भरन चली,
बडे-बडे नैन तामे खुभि रह्यौ कजरा।
पहिरै कुसुम्भी सारी अग-अग छबि भारी,
गोरी-गोरी बहियन तामे मोतिन को गजरा।
सखि सग लिये जात, हँसि-हँसि करत बात,
तनहू की सुधि भूली सीस धरे गगरा।
नन्ददास बलिहारी, बीच मिलै गिरधारी,
नैननि की सैननि मे भूलि गई डगरा।
न० ग्र० पृ० ३५३/पद ८३

1 खेलन हरि निकसे ब्रज खोरी।
गये स्याम रवि-तनया के तट अग लसति चदन की खोरी।
औचक ही देखी तहँ राधा नैन विशाल भाल दिये रोरी।
सूर स्याम देखत ही रीझै नैन-नैन मिलि परी ठगोरी। सूरसागर

छीत स्वामी और सूरदास मे मूल अन्तर यह है कि सूरदास मे राधा आलम्बन और कृष्ण आश्रय बनते हे परन्तु छीत स्वामी मे गोपी आश्रय और श्रीकृष्ण आलम्बन है। फिर भी दोनो पक्षो की आसक्ति एव रूप का प्रभाव समान स्तर पर एक है। परमानन्द दास ने दोनो को ही आश्रय और आलम्बन बना दिया है। उनकी दृष्टि मे प्रथम स्नेह बडा कठिन होता है। प्रथम दर्शन मे ही रूप की गहन आसक्ति और सौन्दर्य के समक्ष आत्म-विस्मरण आदि प्रवृत्तियो की अभिव्यक्ति हुई है।[1] इसी आसक्ति के कारण विपरीत व्यापार करके भी गोपी को ध्यान नही रहता "देखो री माई कैसी ग्वालिन उलटी रई मथनिया विलोवै।"[2]

आश्रय-आलम्बन की इस रूपासक्ति के अतिरिक्त कवियो ने स्वय भी अपनी आसक्ति की भावना को गोपी-भाव के रूप मे व्यक्त की है। ऐसे वर्णनो मे श्रीकृष्ण को लावण्य-निधि वताते हुए उनके रूप के प्रभाव की व्यञ्जना की है। उनके अनूप नख-शिख को वार-वार देखकर भी मन तृप्त नही हो पाता।[3] सकल काम-प्रद इस रूप से तृप्ति हो भी कैसे सकती है। भक्त भगवान के रूप का पान उनकी मुद्राओ से करता है। वह युगल-छवि का पान पावस ऋतु मे करने की आकाक्षा व्यक्त करता है—"भीजत कब देखौ इन नैना। दुलहिन जू की सुरग चूनरी, मोहन को उपरैना। स्यामा-स्याम कदम्व तर ठाढे, जतन कियौ कछ मै ना। कुम्भन दास प्रभु गोवर्धन धर, जुरि आई जल सैना।" इस पद मे भक्त की भगवान के प्रति आसक्ति के साथ कलात्मक सौन्दर्य भी वर्तमान है। 'गोवर्धन-धर' द्वारा पौराणिक सौन्दर्य, वस्त्रादि के कथन से प्रसाधनगत सौन्दर्य और रग वैभव का कथन भी हो सका है। रूप के इस निधि को देखने के लिये गोपियाँ अपनी अन्तर्दशा को व्यक्त कर देती है। वे प्रत्यक्ष के अतिरिक्त अन्य माध्यम से भी श्रीकृष्ण की शोभा देख लेती है। इससे सामाजिक मान्यता एव नियमो के पालन से मर्यादा की रक्षा भी हो जाती है।

---

1 प्रथम स्नेह कठिन मेरी माई।
दृष्टि परी वृपभानु नदिनी, अरुझै नैन निरवारै न जाई। ....
चारो नैन मिलै जव सनमुख, नन्दनन्दन को रुचि उपजाई।
परमानन्द दास उहि नागरि, नागर सो मनसा अरुझाई।

2 अष्ट० परि० २५५ पद ४२

3 कमल मुख देखत त्रिपती न होई।
इह सुख कहा सुहागिन जानै, रही निसा भरि सोई। परमानन्द दास

रूपाशक्ति मे तन्मय होकर गोपियाँ मर्यादा की रक्षा करने के हेतु वहाने से श्रीकृष्ण को देखती है । स्पष्टत श्रीकृष्ण की ओर निर्निमेष दृष्टि से देखने पर लोक बन्धन का कडा नियन्त्रण रहता है । इससे दृष्टि बचाकर रूप का पान आसक्ति का ही सूचक है । श्रीकृष्ण दास की गोपी के नेत्रो मे श्रीकृष्ण की छबि छा जाती है । उसे सर्वत्र उनकी माधुरी मूरति ही दीख पडती है ।[1] कौन उस रूप को देखकर अघा सकता है । कमल मुख को देखकर लोचन अलि उसी मे उलझ जाते है । "कमल मुख देखन कौन अघाई । सुनिहि सखी लोचन अलि मेरे, मुदित रहे अरुझाई ।" नेत्र कृष्ण की मधुरिमा मे चिपक जाते हैं । गोपी बिना देखे रह ही नही पाती है । रूप-लावण्य मे आसक्त उसका मन घर जाते हुए शरीर का साथ नही देना चाहता, नेत्र अनियन्त्रित हो जाते है । वह मुड-मुडकर देख लेती है । नारी-सुलभ लज्जा, सकोच, आसक्ति, दर्शनोत्कण्ठा आदि अनेक भाव एक साथ उदित हो जाते है । देखने के लिये बहाना ढूँढने का माध्यम भी मिल जाता है । आँचल को बार-बार गिराने और समेटने मे समय और अवसर दोनो ही मिल जाते है, रूप दर्शन के लिये इन अनुभावो या चेष्टाओ द्वारा आन्तरिक भावो की सफल अभिव्यक्ति के साथ सौन्दर्य की उत्तमता का सकेत भी मिलता है । एक पग आगे बढना, पुन रुकना, मुडकर शोभा को देखने लग जाने आदि चेष्टाओ मे रूप की अतिशयता और लावण्य की आकर्षकता इन दोनो की पुष्टि हो जाती है ।[2]

चत्रभुज दास की रूप पिपासा भी इसी प्रकार की है । कृष्ण का रूप देखे बिना पल युग के समान बीतता है । "नैननि ऐसी ए बान परी । बिनु देखे गिरधरन लाल मुख जुगभर गनत घरी ।"[3] उस अपार शोभा के सिन्धु श्रीकृष्ण

---

1 नैना मेरे निरखि छबि भूले ।
छबि छाई चचल दृगनि मे, मतवारे भये भूले ।
जित देखौं तित माधुरी मूरति, कालिंदी के कूले ।
कृष्णदास की जीवनी प्यारी, सदा रहौ दिन दूले ।
सगीत अष्टछाप से संगीत कार्यालय-हाथरस

2 चली जाति उत गेह को, मुरि-मुरि देखति इत ।
कबहूँ कै इहि मिस ठाढी ह्वै, लावल्याहि सुधारति,
कबहूँ औढति आँचरु बनाई ढिग जित-तित ।
कृष्णदास प्रभु के रूप गुन मन अरुझ्यौ,
तानै सुरझि न सकति, सकति अकति हित ।

3 सगीत-अष्टछाप से ।

को देखकर तन मन सभी कुछ आतुर हो जाता है।[1] रूप का आकर्षण व उसे देखने की उत्सुकता से मन का मन्थन होने लगता है। वह किसी प्रकार श्रीकृष्ण के रूप लावण्य को देखती ही रहना चाहती है। इसके लिये अपनी मणि माला को तोड कर आँगन मे बिखरा देती है और उसे बीनने के बहाने कृष्ण के रूप का पान करती है.—

मणि-माला आँगन मै लै-लै तोरि डारि वगरावै।
बीनन मिस मोहन अवलोकत, यो ही पहर बितावै। 'चत्रभुज दास'

अनुभावो के इन चित्रणो मे मुग्धा-नायिका की सरल चेष्टाओ के सौन्दर्य की अभिव्यक्ति और आलम्बन के रूप का आधिक्य व्यञ्जित है। सामाजिक मर्यादा से ईषद् ज्ञान युक्त होकर गोपन की प्रवृत्ति की ओर उन्मुख हो जाना आलम्बन के रूप-लावण्य की आसक्ति की स्वीकृति ही है इससे मनोगत भावो की अभिव्यक्ति के साथ ही चेष्टागत सौन्दर्य का अप्रतिभ रूप दीख पडता है। इन क्रियाओ द्वारा आलम्बन के रूप और लावण्य की अनन्तता, असीमता और हृदयावर्जकता का बोध होता है। यह बोध ही अनुभवो की आधार शिला पर रस का उद्रेक करते हुए उसे भावना जगत् की वस्तु बना देता है। कवि की महत्ता भी इसी मे है कि वह अनुभूति के धरातल पर भावो की तन्मयता मे अपनी सुधि-बुधि भूल जाय। भक्त कवियो मे इस गुण की प्रबलता के कारण ही उनके आलम्बन का रूप-लावण्य इस जगत् की वस्तुओ के समान ग्राह्य होते हुए भी अपनी अनन्तता और असीमता मे लोकोत्तर एव दिव्य है और यही उनके वर्णन की सफलता है। इन गुणो के साथ शारीरिक सुकुमाता से व्यक्ति की महत्ता और अधिक बढ जाती है।

सुकुमारता— सिद्धान्त-निरूपण करते हुए यह बताया जा चुका है कि विभिन्न ज्ञानेन्द्रियो का अपने विपयो से अनुकूल, सुखद और प्रिय सम्पर्क स्थापित होने पर उत्पन्न होने वाली अनुभूतियाँ कोमल और आनन्दप्रद प्रतीत होती है। यह अनुभूति जितनी प्रिय होगी, उस विपय मे उतनी ही कोमलता का अनुभव होगा। विभिन्न इन्द्रियो के विषय रूप, रस, स्पर्श, श्रवण और घ्राण है। इनमे शारीरिक कोमलता का अनुभव रूप एव स्पर्श से होता है। स्पार्शिक सुख से रूप का आकर्षण वढता है। शरीर की शोभा वढाने वाले

---

1 सुन्दर स्याम कमल दल-लोचन, सोभा सिन्धु अपार।
ता तिन तै आतुर भये भगतन चितवत वारम्वार।
मगीत अष्टछाप—चत्रभुज दास।

गुणो मे सौकुमार्य की गणना होती है। यह आलम्बन मे स्थित उसके रूप का उत्कर्षक गुण है। सुकुमारता नारी शरीर की एक आकर्षक विशेषता है। यही कारण है कि कलावादी, नायिका–भेद लिखने वाले कवियो ने सौकुमार्यादि का विशेष वर्णन किया है।

इस सुकुमारता का उद्‌भव दो कारणो से होता है। प्रथम अभिजात कुल मे उत्पन्न होने के कारण स्वाभाविक सुकुमारता और द्वितीय अनुलेपनादि सौन्दर्य प्रसाधनो से प्राप्त की जाने वाली सुकुमारता। यह सुकुमारता शरीर का एक गुण है जिसमे कोमल वस्तुओ का स्पर्श भी असहनीय माना जाता है।[1] इस असहनीयता मे स्पार्शिक सुख की अनुभूति सुखद होती है। यदि यही अनुभूति दु खद हो जाय तो स्पर्श का सुख न रह जायगा अपितु कठोरता का अनुभव होगा। इसी कारण सुन्दर व्यक्तित्व की कल्पना मे नायक-नायिका या आराध्य और आराध्या की मृदुता का वर्णन किया जाता रहा है। भक्तिकालीन कवियो की आत्मलीनता अपने आलम्बन के वर्णन मे इस प्रकार की कलात्मक अभिव्यक्ति करने की ओर उन्मुख न हो सकी। फिर भी कही–कही ऐसा वर्णन मिल जाता है।

भक्त कवियो मे ध्रुवदास की राधा का सौकुमार्य उच्च कोटिक है। वह केवल कोमल वस्तुओ के मूर्त रूप को ही सहन नही कर पाती है, अपितु अमूर्त का भार भी उसके लिये असहनीय हो जाता है यही कारण है। कि प्रिय के निरखने से उस पर पडने वाले दृष्टि के भार को सहन करने मे भी वह अपने को असमर्थ पाती हे। 'डीठिहुँ को भार जनि देखत न डीठि भरि, ऐसी सुकुमारी नैन प्रान हू ते प्यारी है।"[2] इस उदाहरण मे वस्तु को स्थूलता का भार न होते हुए भी सूक्ष्मतत्वो द्वारा भार की असहनीयता का वर्णन करके शारीरिक मृदुता की व्यञ्जना की गई है। ध्रुवदास ने अपने अन्य ग्रन्थ 'मनि–शृङ्गार' मे राधा के सौकुमार्य का वर्णन करके उसके रूप की अतिशयता की व्यञ्जना की है। 'रस-हीरावली' मे यही भाव व्यक्त किया गया है। छवि भी 'कुँवरि' की सुकुमारता को छूने मे सकोच करती है।[3] इनमे व्यञ्जना की कलात्मकता होते हुए भी ऊहात्मक वर्णन है। इस वर्णन की यथार्थता

---

[1] मार्दव कोमलस्यापि सस्पर्शासहतोच्यते।
उज्ज्वल नीलमणि-उद्दीपन प्रकरण ३५। निर्णय सागर सन् १९३२

[2] शृङ्गार सत–छद ४७ ध्रुवदास।

[3] छुव न सकत अग मृदुताई। अति सुकुमार कुँवरि तन माई।
रस–हीरावली छंद ६४ ध्रुवदास।

वास्तविक जगत् मे नही देखी जाती है। यह कल्पना जगत् की वस्तु है फिर भी इससे मृदुता-युक्त सौन्दर्य की अतिशयता का बोध होता है। इस दृष्टि से कवि की सफलता असन्दिग्ध है।

सुकुमारता का वर्णन व्यञ्जना की इस प्रणाली के अतिरिक्त अभिधा के स्वशब्द कथन द्वारा भी किया गया है। हरिराम व्यास ने कहा है कि राधा के सभी अग कोमल है, [1] परन्तु उनके इस कथन मे किसी प्रकार का कोई बिम्ब उपस्थित नही होता। अत यह केवल शुष्क वर्णन मात्र ही रह जाता है। इसमे काव्यगत वक्रोक्ति का पूर्णत अभाव है। ऐसे वर्णनो द्वारा कवि के मन की तृप्ति भले ही हो जाय, परन्तु इससे वास्तविक सौन्दर्य व्यञ्जित नही होता है। अत कहा जा सकता है कि भक्तिकालीन साहित्य मे सुकुमारता की व्यञ्जना कम हुई है, फिर भी जितना है, वह अपने आप मे पूर्ण है। इसकी गणना भी रूप-लावण्यादि के समान सूक्ष्म गुणो मे होती है। इन सूक्ष्म गुणो के अतिरिक्त स्थूल गुणो द्वारा भी शारीरिक सौन्दर्य की वृद्धि होती है।

स्थूल-तत्व—सौन्दर्य के विधायक उपकरणो मे आत्मगत और बाह्य-तत्वो की चर्चा पिछले अध्याय मे की जा चुकी है। वहाँ बताया गया है कि आत्मगत उपकरणो के अन्तर्गत आश्रय-आलम्बन के गुणो और चेष्टाओ की गणना होती है तथा बाह्य उपकरणो मे अलकृत (बाह्य-प्रसाधन) और तटस्थ वस्तुओ का सहयोग रहता है। आत्म-गत गुण के दो भेद स्थूल और सूक्ष्म बताये गये है। सूक्ष्म गुणो मे रूप, लावण्य, छवि, शोभा, कान्ति, दीप्ति आदि अनेक गुणो की चर्चा हो चुकी हे। इन सभी गुणो मे अमूर्त तत्वो की महत्ता रहती है। इससे ये गुण आकार मे रहकर भी आकार से भिन्न अस्तित्व रखते है। आकार के अवलम्बन के बिना इनका अस्तित्व सम्भव नही। इसीसे इनकी गणना आत्मगत सूक्ष्म गुणो के अन्तर्गत की गई है।

स्थूल गुणो मे आकार की महत्ता रहती है। विभिन्न अगो के समुचित विन्यास से उत्पन्न होने वाले सौन्दर्य की चर्चा इसके अन्तर्गत की जाती है। अगो की बनावट, उनके समानुपात आदि से शारीरिक आकर्षक बढ जाता है। यही आकर्षक सर्वाङ्ग के समष्टिगत सौन्दर्य को बढाने मे सहायक होता है। इसी से अग-प्रत्यग वर्णन की परम्परा साहित्य मे सदा से रही है। इसे नख शिख-वर्णन के नाम से जाना जाता है।

नख-शिख मे पैर के नख से आरम्भ करके शिख तक के सभी अगो के वर्णन की परम्परा रही है। वीर्य-विक्षोभन शक्ति से सम्पन्न काम सहायक

---

[1] सबै अग कोमल उरज कठोर—व्यास पृ० २८२

अगों का वर्णन अपेक्षाकृत विशेष तन्मयता के साथ किया गया है। इसी से स्तन, नितम्ब, उरु–युगल आदि अगो के वर्णन मे कवियो ने अपनी प्रतिभा और कल्पना का पूर्ण उपयोग किया है। यही कारण है कि इन अगो का उन्मादक चित्र स्थान–स्थान पर अनेक शृङ्गारिक प्रसगो पर प्रस्तुत किया गया है। यहाँ भक्तिकाल के पूर्व नख-शिख की सक्षिप्त परम्परा देते हुए इस काल के नख–शिख का सक्षिप्त विश्लेषण प्रस्तुत किया जायगा।

नख-शिख की पूर्व-परम्परा—नारी-शृङ्गार का वर्णन अपनी प्राचीनता के लिये प्रसिद्ध है। आरम्भ से ही कलाकार नारी के अगो को आकर्षक रूप मे प्रस्तुत करता रहा है। धार्मिक और लौकिक दोनो प्रकार के साहित्यो मे ऐसी प्रवृत्ति दीख पडती है। वेद और शतपथ ब्राह्मण[1] मे अगो का वर्णन है रामायण प्रसाधन सामग्रियो की चर्चा करता है। 'महाभारत' मे नारी-अगो का सूक्ष्म विश्लेषण प्राप्त होता है। उर्वशी के सौन्दर्य का मोहक वर्णन 'महा-भारत' मे है। वहाँ भृकुटी, कटाक्ष, कान्ति, स्तनो की पुष्टता, त्रिवली, क्षीण-कटि आदि का वर्णन है। आभूषणो मे मेखला आदि का वर्णन और वस्त्रो के आकर्षण की अभिव्यक्ति है।

सस्कृत कवियो और नाटककारो मे सभी ने नारी-सौन्दर्य की अभि-व्यक्ति अग-प्रत्यग के आधार पर की है। भास, अश्वघोष, हर्ष, भवभूति, कालिदास भर्तृहरि आदि ने नख-शिख परम्परा को प्रसगत बल दिया। इनकी दृष्टि स्थूलता की इयत्ता तक ही सीमित न रहकर नायिका के विभिन्न अगो की सूक्ष्म और आकर्षक चेष्टाओ तक आगे बढी। इसीसे नेत्रो के चाचल्य, पग-गति, मुस्कान, भृकुटि-भगिमा आदि का सजीव रूप-चित्र प्रस्तुत किया गया। अपभ्र श काव्यो के जैन कवि भी रमणी रूप-सौन्दर्य के समक्ष मुग्ध होकर अग-प्रत्यग के विश्लेषण मे प्रवृत्त हो गये।

सस्कृत के इस पृष्ठभूमि के साथ हिन्दी का वीरगाथा-कालीन साहित्य भी नारी के शृङ्गार-परक रूप-सौन्दर्य की ओर अधिक प्रवृत्त हुआ। सभी 'रासो' ग्रन्थो के मूल मे नारी का रूप-सौन्दर्य ही कार्य करता रहा। वहाँ पर नख-शिख की क्षीण होती हुई परम्परा का पुन सूत्रपात हो गया। भक्ति-कालीन साहित्य के सूफी शाखा के कवियो के काव्य का आधार नायिका का नख-शिख वर्णन रहा है। उसकी कथावस्तु की गति का मूल कारण नायिका का सौन्दर्य-चित्रण ही हे। सभी सूफी कवियो ने रूप-चित्रण मे नख-शिख का

---

1 शतपथ ब्राह्मण १/३/५/१६

वर्णन किया है। सौन्दर्य की अभिव्यक्ति के प्रति समान रुचि दीख पडती है। सुन्दरतम उपमानो के सचय से यह कार्य सम्पन्न किया गया है। इस नख-शिख मे भौतिक रूप-सौन्दर्य के साथ आध्यात्मिक सकेत भी मिल जाता है।

ज्ञान की शुष्क प्रधानता वाले हिन्दी काव्य की ज्ञान मार्गी शाखा के कवियो की दृष्टि से भी नख-शिख का वर्णन उपेक्षित नही रहा। प्रियतम की सौन्दर्य कल्पना सत-साहित्य मे आकर्षक बन पडी है। भगवान के रूप का तेज-पुञ्ज भक्तो को आकर्षित करता है। विभिन्न अगो का उतना वर्णन नही है, जितना उस रूप से उत्पन्न होने वाले प्रभाव का चित्रण है। नख शिख की महत्ता सत कवियो की दृष्टि मे पहले के काव्यो मे वर्णित नख-शिख के समान नही थी। उसका भोग-परक वर्णन न होकर वैराग्यपरक वर्णन किया गया है। वस्तु की स्थिति होते हुए भी वर्णन मे दृष्टिकोण का स्पष्ट अन्तर था। फिर भी अग वर्णन की परिपाटी का पूर्ण लोप नही हो सका और इसकी क्षीण पडती हुई धारा को पुन प्रवाहित करने के लिये भक्तिकालीन कवियो की सगुण चेतना अग्रसर हुई।

मर्यादावादी राम-भक्ति साहित्य का दाम्पत्य-रति रूप-वर्णन के लिये नख-शिख की अपेक्षा करने लगा। भक्त तुलसी का रूप-वर्णन से सम्बन्धित नख-शिख अपनी प्राचीन मान्यताओ का नवीन रूप मे पुनरुद्धार है। रामचरित मानस मे धनुष यज्ञ के प्रसग पर पुरुष रूप–वर्णन मे श्रीराम के नख-शिख का आकर्षक वर्णन है। इस वर्णन मे पुरुष के पौरुष और वीरत्व के साथ सौन्दर्य का वर्णन है।[1] सीता के नख-शिख वर्णन के अनेक स्थल है। वियोग के अवसर पर तो उपमानो का सग्रह प्रस्तुत कर दिया गया है। कही–कही राम का सौन्दर्य वर्णन ऐहिक न होकर आध्यात्मिक हो जाता है। ऐसे स्थलो पर वर्णित रूप 'उदात्त' की परिधि मे आ जाता है।[2] इन वर्णनो मे सौन्दर्य का ऐसा महान् स्वरूप दीख पडता है कि इसकी कल्पना द्वारा ही अपनी लघुता का ज्ञान होने लग जाता है। आलम्बन के विशाल और अलौकिक सौन्दर्य के समक्ष लघुता का बोध उस आलम्बन के वर्णन को उदात्त कोटि मे ले जाता है। भक्त कवियो की इन पृष्ठ भूमियो पर ही कृष्ण-भक्ति का प्रादुर्भाव हुआ। इसके पूर्व सौन्दर्य का खण्ड चित्र शताब्दियो से वर्णन का विषय बनता चला आ रहा था। अनुकूल पृष्ठभूमि से इन कवियो को अपने लिए एक सम्बल प्राप्त हो गया

---

1 रामचरित मानस बालकाण्ड।

2 रामचरित मानस लकाकाण्ड।

श्रौर उन्होने श्रीकृष्ण के रूप की एक ऐसी श्रछूती कल्पना की कि उनका आराध्य सौन्दर्य की श्रन्तिम सीमा हो गया। भक्ति की वल्गा ने उनकी कल्पना तुरगिनी को नख-शिख की अश्लीलता तक पहुँचने की छूट नही दी। इससे रूप-वर्णन की मर्यादा श्रनियन्त्रित नही होने पाई। जहाँ कही श्रगो का सागोपाग वर्णन श्रभीष्ट था, वहाँ कवि रूपकातिशयोक्ति के प्रयोग द्वारा मर्यादा की रक्षा करते हुए सौन्दर्य का श्रनिद्य रूप प्रस्तुत करने मे विचार-सशय मे नही पडा श्रौर श्रालम्बन का ऐसा रूप चित्र प्रस्तुत किया, जिसके सौन्दर्य की समता श्रन्य किसी काल से साहित्य मे उपलब्ध नही होती। यह रूप-चित्र नख-शिख का श्राधार लेकर प्रस्तुत हुश्रा हे।

नख-शिख वर्णन के मूल मे कवि की सौन्दर्य चेतना कार्य करती है। कवि किसी पात्र के रूप से प्रभावित होकर श्रपने मनोगत भाव को वाणी देना चाहता है। वाणी देने के इसी प्रयास मे वह श्रपने श्रालम्बन को श्रधिकाधिक सुन्दर रूप मे प्रस्तुत करता है। इसके लिये उसे काव्य-परम्परा की एक विशेष शैली का श्रालम्बन लेना पडता है। वह इसी श्राधार पर श्रालम्बन के रूप श्रौर श्राकार की विशेपताश्रो का वर्णन करता है। यह वर्णन ही नख-शिख के नाम से प्रचलित है।

नख-शिख के इस वर्णन मे उसकी कवि दृष्टि श्रौर काल्पनिक सचेतनता सदैव जागरूक रहती है। वह शरीर के विभिन्न श्रगो को वर्ण्य-विषय बनाकर श्रप्रस्तुत योजना द्वारा श्रपने मन की सौन्दर्य विषयक चेतना की श्रभिव्यक्ति करता है। यह श्रभिव्यक्ति तीन प्रकार से होती है (१) परम्परा पालनार्थ नख-शिख का उपमानो के माध्यम से वस्तु-परिगणन प्रणाली पर वर्णन (२) चमत्कारिक वर्णन मे रूपकातिशयोक्ति या दृष्टिकूट वाली शैली श्रपनाई गई है। इसमे भाव-प्रवणता न होकर बौद्धिक चमत्कार का प्रदर्शन होता है। इससे इसमे सौन्दर्य का रूप-चित्र उपस्थित नही होता, श्रपितु रूप का शुष्क कथन मात्र ही रह जाता है (३) रूप का भाव-प्रवण बिम्बात्मक चित्र मन मे श्राकर्षण श्रौर प्रियता के भाव को जाग्रत करता है। ऐसे वर्णनो द्वारा श्रालम्बन के रूप एव व्यक्तित्व मे निखार श्रा जाता है। वह दर्शक के हृदय एव मन को श्रपनी श्रोर खीच लेने मे समर्थ हो जाता है। प्राय रूप का यही वर्णन मन मे 'रति' का सचार करने मे समर्थ होता है। इसीसे रस-सिद्ध कवि के वर्णन का झुकाव इसी श्रोर श्रपेक्षाकृत श्रधिक रहता है। इन तीनो प्रणालियो का श्राधार लेकर कवियो ने श्रपनी मानसिक सौन्दर्य चेतना की श्रभिव्यक्ति दो ढग से की है—

(१) अंग-प्रत्यग का व्यष्टिगत वर्णन–इस वर्णन के अन्तर्गत प्रत्येक अग की स्वतः सभवी छबि और आभूषणो के माध्यम से वढ जाने वाली छबि का वर्णन होता है परन्तु नख-शिख का सामान्य अर्थ विभिन्न अगो के रूप, आकार विस्तार आदि का वर्णन करना माना जाता है।

(२) सर्वाङ्ग का समष्टिगत रूप–इसमे किसी अग विशेष का व्यक्तिगत कथन न होकर पूरे अग का सामूहिक वर्णन होता है। ऐसा वर्णन प्राय अगों के आकार विस्तार आदि का नही होता, अपितु अगो मे वर्तमान शोभा का होता है। शोभा की इस अभिव्यक्ति मे शारीरिक सूक्ष्म सौन्दर्य-विधायक तत्वो की चर्चा की जाती है। आकार मे वर्तमान रहकर आकार से भिन्न इनकी अलग सत्ता नही रहती है। इससे अमूर्त तत्वो मे इनकी गणना की जाती है। शरीर के सर्वाङ्ग वर्णन मे ये तत्व लावण्य, छबि आदि के रूप मे स्पष्ट होते है। सात्विक भावो को भी सौन्दर्य-विधायक गुणो मे माना जा सकता है, क्योकि इनका उद्भव यौवन मे सत्व से होता है और इनसे मुखादि मे एक चमक आ जाती है। इससे नायक अथवा नायिका का सौन्दर्य तो वढता ही है, आश्रय के मन मे ऐसे सौन्दर्य को निरखने मे पूर्ण आत्म-तृप्ति का अनुभव भी होता है।

सर्वाङ्ग के सौन्दर्य कथन मे कवियो का भाव-प्रवण भक्त हृदय सदैव स्पष्ट होता रहा है। इन कवियो ने मन की भावनाओ को अपने आराध्य के स्वरूप कथन मे व्यक्त किया है। इससे उनका आराध्य 'रूप की राशि' 'लावण्य का सदन', 'रूप-निधि' छवि को तरगित करने वाला और आश्रय को पूर्णत. प्रभावित करने वाला वन जाता है।[1] ऐसे रूप-राशि के समक्ष

---

1 (i) राधे तू **रूप की राशि**।
मदन मृग, हँसि सुवस कीन्हौ रची भौहनि पासि,
हँसन दामिनि, दसन बीज पगति, मधुर ईषद् हास।
नन्द नन्दन रसिक रिझवत, सुरत रग–विलास।
कृष्णदास पद ४० विद्या-विभाग काँकरौली,

(ii) तेरे रूप सम और नही खेचो हठि रेखी।
अग-अंग **लावण्य सदन** सखि, भ्रू विलास त्रिभुवन श्री सेखी।
तादिन ते कछु और विमल छवि, जादिन ते गिरधर पिय देखी।
कृष्णदास।

(iii) कृष्णदास स्वामिनी रूप निधि,
गिरधर पिय लिये जीति भौह छद। पद ४९ कृष्णदास

सौन्दर्य का देवता कामदेव भी मन मे लज्जित हो जाता है। अत' राधा और कृष्ण दोनो मे ही सौन्दर्य अपनी सीमा पा लेता है। इस अवर्णनीय सौन्दर्य मे स्वाभाविकता और उसकी गरिमा बनी रहती है। अग-अग की सहज माधुरी और वदनारविन्द की शोभा का वर्णन नही हो पाता है।[1] राधा अपने सहज श्रृङ्गार एव भृकुटि भगिमा से मदन को भी जीत लेती है।[2] ध्रुवदास के वर्णन मे रूप की सीमा और छवि की नवीनता के सयुक्त प्रभाव से भी मन तृप्त नही होता है और कामदेव माधुरी छवि तरंग को देखकर लज्जित हो जाता है।[3] इन सभी वर्णनो की श्रृङ्गार परक भावना के कारण इस रूप चित्र मे पूर्ण उल्लास एव आनन्द दीख पडता है।

सर्वाङ्ग वर्णन मे अगो की इस सूक्ष्मता के साथ उसके स्थूल गुणो का भी वर्णन हुआ है। यह वर्णन दो प्रकार से किया गया दीख पडता है। (१) रूपकातिशयोक्ति द्वारा (२) वस्तु-परिगणन प्रणाली द्वारा।

(iv) छवि-तरग अगनित सरिता ज्यो,
जलनिधि लोचन तृपति न माति। पद १५९ कृष्णदास

(v) अग-अग की छवि कहति न आवै,
मनसिज मनहि लजानौ। पद ५६ ॥

(vi) कहा कहो मोहन मुख शोभा।
कहि न जाय मुख परी ठगोरी,
रूप देखि मेरा मन लोभा। पद १८३ ॥

1 देखौ माई सुन्दरता को सीवा।
ब्रज नव तरुनि कदम्ब नागरी, निरखि करति अध ग्रीवा। हित-चौरासी

2 हित चौरासी पद ६७

3 कोटि–कोटि रसना जो रोम-रोम प्रति होइ,
प्यारी जू के रूप को न प्रमाण कह्यौ जात है।
अतिहि अगाध सिन्धु पार नहि पावै कोई,
थोडी बुद्धि सीप माँहि कैसे के समात है।
छिन-छिन नई–नई माधुरी तरग रग,
देखे नख–चन्द्रिकन चन्द्र हू लजात है।
हित ध्रुव अग–अग वरसत रस–स्वाति,
नैना पियै चातक तौ कहू न अघात है।

रूपकातिशयोक्ति मे उपमेय का उपमान मे अध्यवसान हो जाता है। ऐसे वर्णन मे उपमान के प्रयोगो द्वारा ही उपमेय का सकेत मिल जाता है। इस प्रणाली में रूप के वर्णन से दो उद्देश्यो की सिद्धि होती है। प्रथम रूप शरीर के विभिन्न अगो की सुन्दरता का स्थूल आकार या गुण-परक ज्ञान होता है और द्वितीय इस स्थूलता मे भी अश्लीलत्व नही आ पाता है। इससे सामाजिक मर्यादा की रक्षा भी हो जाती है तथा भक्त और भगवान के बीच सीमा का उल्लघन भी नही होने पाता।

रूपकातिशयोक्ति का यह वर्णन भक्त कवियो द्वारा तीन प्रसगो पर किया गया है (१) दान-प्रसग पर (२) मान प्रसग पर दूती के कथन मे. (३) रूप-वर्णन के अवसर पर नायका द्वारा नायिका का सौन्दर्य-चित्रण। इन तीनो ही प्रसगों पर सर्वाङ्ग-वर्णन की रुचि रही है।

दान-प्रसग पर एक बार अभिधेय रूप मे अपने मनोगत भाव को स्पष्ट करके पुन रूपकातिशयोक्ति द्वारा अग-वर्णन किया गया है —

१. जोबन दान लेहुँगो तुम सो।
जाके बल तुम बदत न काहुहि, कहा दुरावति हमसो।
कंचन-कलस महारस भारे, हमहूँ नेक चखावहु।
सूर सुनहु करि भार मरति कत हमहि न मोल दिखावहु।

इस उद्धरण मे "कचन-कलस" द्वारा स्तनो का सकेत किया है, जो अभिधेय रूप से स्पष्ट नही है, अपितु इस प्रयोग से स्तनो की व्यञ्जना होती है।

(२) राधा द्वारा मान किये जाने पर दूती के कथन मे अगो का आकर्षक वर्णन हुआ है। उपमानो द्वारा उपमेय रूप राधा के विभिन्न अगो के सौन्दर्य की व्यञ्जना करके श्रीकृष्ण के मन मे राधा के प्रति अनुराग उत्पन्न करने की चेष्टा की जाती है तथा सौन्दर्य के आकर्षण द्वारा दोनो के मन मे मिलने की एक भूमिका तैयार कर दी जाती है।[1]

(३) नायक या सखी द्वारा राधा के रूप-वर्णन पर भी यही प्रकृति लक्षित होती है। इस अवसर पर राधा के उपमानो की अवहेलना करके उन

---

1 अद्भुत एक अनुपम बाग।
जुगल कमल पर गजवर क्रीडत, तापर सिंह करत अनुराग।
हरि पर सरवर, सर पर गिरवर गिरि पर फूले कज पराग।
रुचिर कपोत बसत ता ऊपर, ता ऊपर अमृत फल लाग।
फल पर पुहप, पुहप पर पल्लव, तापर शुक पिक मृगमद काग।

उपमानो के माध्यम से ही शरीर के विभिन्न उपमेय या प्रस्तुत की व्यञ्जना की गई है।[1] व्यासजी ने भी इस प्रकार की पद्धति का अनुरण किया है —

(क) चन्द्र बिम्ब पर वारिज फूले।
तापर फनि के सिर पर मनि गन, तर मधुकर मधु-मद मिलि फूले
तहाँ मीन कच्छप सुक खेलत, बसिहि देखि न भये विकूले
विद्रुम दार्यौ मैं पिक बोलत, केसर नख-पद नारि गरूले
व्यास-वाणी पद ७८

व्याम के इस कथन मे सहजता, अकृत्रिमता आदि पर विशेष बल दिय है। सूर के शब्दो मे 'सहज रूप की रासि' राधिका के तन पर भूषण अधिव शोभित हो रहा है। ऐसे राधा के रूपाकन मे किसी प्रकार की वर्णन पद्धति अपनाई जाय, उस सौन्दर्य मे कोई व्यवधान नही पडने पाता।

(ख) अतिशयोक्ति मूलक उपर्युक्त रूप-चित्र के अतिरिक्त सर्वाङ्ग क चित्र प्रस्तुत करने के लिये कवियो ने वस्तु-परिगणन प्रणाली मे नख-शिख क वर्णन किया है। ऐमा वर्णन विशेपत दरवारी कवियो द्वारा किया गया है यहाँ पर केवल एक उदाहरण दिया जायगा।

केस पर शेष दृग चलन पर खजरी, भौह पर धनुप धरि सुरति सारो।
दसन पर दामिनी कण्ठ पर कोकिला, अधर पर बिम्ब रहि-रहि सम्हारो।
जघ पर कदली कटि छीन पर केहरी, कुचन पर मेघ महामड हारो।
ज्योति पर ज्योनि छबि अग पर गग श्री राधिका नखन पर चन्द्र वारो।
(अकबरी दरबार के हिन्दी कवि पृ० १७६

इस वर्णन मे परम्परा पालन का आग्रह अधिक होने से उपमानो क आधार लेकर उपमेयो के गुणो का सकेत किया गया है। ऐसे वर्णनो मे विम्वा त्मक चित्र का अभाव होने के कारण भाव-प्रवणता नहीं आ पाती है। इर उपमेय और उपमान का सग्रह कहना अधिक उपयुक्त कहा जा सकता है। यह

1 राधा तेरे रूप की अधिकाइ।
शशि उर घटत, हेम पावक परि, चम्पक कुसुम रहे कुम्हिलाइ।
इभ लूटत, अरु अरुन पक भये, विधिना आन बनाइ।
कद्रुज बैठि पाताल दुरै रहि, खगपनि हरि वाहन भये जाइ।
हस दुर्यौ, सर दुर्यौ, सरोरुह, गज मृग चलै पराई।
सूरदास विचारि देखि मन, तोर रसन पिक रही लजाई।
सूरसागर पृ० ५१

कारण है कि सौन्दर्य का विम्ब-विधायी चित्र उपस्थित नही हो पाता है। फिर भी कवि की सौन्दर्य-परक दृष्टि का ज्ञान हो जाता है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि राधा-कृष्ण के सौन्दर्य चित्रण मे लीला क्रम के बीच अवसर मिलते ही भक्तिकालीन कवियो ने सर्वाङ्ग या अग-विशेष का पूर्ण या खण्ड चित्र उपस्थित किया है। अंगो के आकार, गुणादि के अनुरूप अप्रस्तुतो के विधान द्वारा नख-शिख का वर्णन किया गया है। यह वर्णन वस्तु परिगणन रूप, रूपकातिशयोक्ति रूप और भाव-प्रवण रूप मे हुआ है। इन तीनो मे दो का विश्लेषण ऊपर प्रस्तुत किया जा चुका है। तीसरे प्रकार, भाव-प्रवण रूप मे विम्ब-विधायिनी प्रतिभा द्वारा अग-वर्णन मे मोहक एव रमणीय चित्र प्रस्तुत कर देना सूरदास जैसे रस-सिद्ध कवि का ही सामर्थ्य है

भुजा पकरि ठाढे हरि कीन्हे।
बाँह मरोरि जाहुगे कैसे, मै तुम नीके चीन्हे। सूरसागर

इस उदाहरण मे राधा द्वारा बाँह पकड लिये जाने पर पारस्परिक प्रेम पूर्ण नोक-झोक का सुखद और आकर्षक चित्र प्रस्तुत हो सका है। इस चित्र मे केवल बाँह और भुजा का सामान्य कथन मात्र है, फिर भी इससे निर्मित चित्र आकर्षक है। ऐसे चित्रो के अतिरिक्त अगो के खण्ड-चित्र या उनके व्यक्तिगत विशेषताओ आदि का कथन कवियो द्वारा किया गया है। इसमे प्रत्येक अग का अलग-अलग वर्णन अप्रस्तुतो के माध्यम से किया जाता है। अंग की शोभा का निरूपण करने वाली इन दो पद्धतियो-सर्वाङ्ग वर्णन और अगो का अलग-अलग वर्णन-के अतिरिक्त सौन्दर्य प्रसाधक उपकरणो द्वारा बढे हुए सौन्दर्य का भी वर्णन भक्त कवियो ने किया है। इन प्रसाधनो मे आभूषणो और गन्धद्रव्यो का प्रयोग उपयोगिता मूलक दृष्टिकोण से किया गया है। इनके दो उद्देश्य दीख पडते है (१) सौन्दर्य की अभिवृद्धि करना और (२) प्रिय को रिझाना। इसी से इनके प्रयोगो मे सदैव इस बात का ध्यान रखा जाता है कि शरीर अधिक से अधिक आकर्षक प्रतीत होने लगे। इस प्रकार स्वत सम्भवी सौन्दर्य और आभूषणो के माध्यम से बढ जाने वाले सौन्दर्य का महत्व है। अभी तक स्वतः सम्भवी सौन्दर्य का निरूपण किया गया। आभूषणो से बढे हुए सौन्दर्य का भी वर्णन मिलता है।

शोभा-विधायक तत्व के रूप में आभूषण—

शरीर पर धारण किये जाने वाले शोभा-विधायक उपकरणो को अलकार के नाम से जानते है। इन अलकारो के धारण करने के दो उद्देश्य

दीख पडते है (१) ऐश्वर्य और वैभव का प्रदर्शन (२) शारीरिक सौन्दर्य की अभिवृद्धि। इनमे अलकारो का प्रयोग विशेषत सौन्दर्य और आकर्षण को बढाने के लिये ही किया जाता है। लोक-व्यवहार को देखकर भी इस धारणा की पुष्टि होती है। भक्तिकालीन साहित्य मे आभूषणो को शोभा-विवायक सामग्री के रूप मे ग्रहण करके उससे उत्कर्प को प्राप्त सौन्दर्य द्वारा प्रिय को रिझाने का प्रथम उद्देश्य था। यह कार्य दो प्रकार से सिद्ध किया गया है।

(१) स्वय अपना श्रृगार करके प्रिय को रिझाने की चेष्टा की गई है। यथा --

"युवति अग सिगार सिगारति।
बेनी गूँथी माँग मोतिन की, सीसफूल सिर धारति। सूरसागर २११६

(२) श्रीकृष्ण द्वारा श्रृंगार किया जाना और उसे देखकर स्वय प्रसन्न होने की भावना व्यक्त की गई है। यथा--

'मोहन-मोहिनी अग सिगारति।
बेनी ललित-ललित कर गूँथत, सुन्दर माँग सँवारति।
नख-सिख सहज सिगार भाव सौ, जावक चरननि सोहत।
सूर स्याम तिय अग सँवारति, निरखि आपु मन मोहति॥
सूरसागर पद ३२४६

इन दोनो ही उदाहरणो द्वारा प्रसाधनो के माध्यम से रूपोत्कर्ष की अभिव्यक्ति की गई है। दूसरे उदाहरण की अन्तिम पक्ति 'निरखि आपु मन मोहति" द्वारा सौन्दर्य की उपयोगिता परक उद्देश्य की सिद्धि हो सकी है। प्रिय द्वारा श्रृंगार किये जाने पर प्रेम की गहनता और प्रेम गर्व की भावना पुष्ट होती है। इसमे आभूषणो द्वारा बढ जाने वाले सौन्दर्य का स्पष्ट रूप से प्रतिपादन किया गया है। सोलह श्रृगार के अन्तर्गत इन आभूषणो को शोभा-विधायक तत्व के रूप मे अन्य अगो के अप्रस्तुत विधानो के साथ लाकर इनसे उत्पन्न होने वाली अनोखी दीप्ति का आकर्षक चित्र प्रस्तुत किया गया है।[1]

आभूषणो के माध्यम से सहज-सौन्दर्य बढ जाता है। सूर ने इस विचार

---

[1] आजु तेरी अधिक छवि बनी नागरी।
माँग मोतिन छटा, वदन पर कच लटा, नील-पट घन घटा, रूप-रंग आगरी।
कृष्णदास पदावली से

का समर्थन किया है ।[1] केवल एक हार के कथन मात्र से अन्य-अगो मे धारण किये जाने वाले आभूषणो से अभिवृद्धि को प्राप्त शोभा का सकेत मिलता है ।[2] कृष्णदास ने आभूषणो से बढे हुए सौन्दर्य के पुन्ज बाल-कृष्ण का सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है ।[3] इससे स्पष्ट हो जाता है कि स्त्री और पुरुष दोनो ही आभूषणो के माध्यम से अपने सौन्दर्य को बढाने की चेष्टा करते थे । इसका उपयोगिता मूलक उद्देश्य सन्देह से परे है । आभूषणो के इस उद्देश्य की पूर्ति के साथ अगो के सहज सौन्दर्य के वर्णन की प्रवृत्ति भी लक्षित होती है । अत इन दोनो के सम्मिलित वर्णन द्वारा रूप का आकर्षण बडा तीव्र हो जाता है और नख-शिख वर्णन मे अनोखापन आ जाता है ।

निष्कर्ष रूप मे यह कहा जा सकता है कि भक्तिकालीन कृष्ण काव्य के कवियो ने नख शिख वर्णन की प्राचीन परम्परा का अपने ढग से उपयोग किया है । उनके इस वर्णन का स्वतन्त्र विकास न हो सका, अपितु प्रासगिक रूप मे ही आराध्य के सौन्दर्य-वर्णन मे इस पद्धति का अनुसरण किया गया । यह वर्णन रीतिकालीन कवियो के वर्णन की भाँति शास्त्रीय सिद्धान्तो मे बँधा हुआ न होकर भक्त कवियो के मुक्त हृदय की भावनाओ के अप्रतिहत प्रवाह के रूप मे है । प्रेम से प्लावित इन कवियो द्वारा वर्णित शारीरिक सौन्दर्य स्पृहा का कारण बन गया । इन्होने राधा-कृष्ण के अनिंद्य सौन्दर्य के वर्णन मे अपनी उर्वर कल्पना शक्ति का पूर्ण उपयोग किया । इनके निश्चित विचार और सस्कार बडे प्रबल थे । इसी कारण इस युग मे नख-शिख वर्णन की स्वतन्त्र परम्परा का विकास न हो सका । इन भक्त कवियो की सबसे बडी विशेषता यह थी कि इन्होने रूप की नवीनता, आतिशय्य और ज्योति सम्पन्नता नख-शिख वर्णन के माध्यम से ही व्यक्त कर दी है । इस वर्णन के द्वारा अपनी आत्म-तुष्टि और आराध्य का मोहक चित्र बन पडा है । इसी से इनका आलम्बन लावण्य-निधि बनकर समक्ष आता है । इनकी चलाई हुई इसी परिपाटी का अवलम्ब होकर रीतिकालीन कवियो ने स्वतन्त्र रूप मे नख-शिख वर्णन की

---

1 सहज-रूप की राशि राधिका, भूषण अधिक विराजै । सूरसागर पद २०६३ (सभा)

2 एक हार मोहि कहा दिखरावति ।
नख-शिख लौ अग-अग निहारहु, ये सब कतहि दुरावति ।
सूरसागर पद २१५८

3 अष्टछाप-परिचय पृ० २२७ स० प्रभुदयाल मित्तल ।

परम्परा का विकास किया। इन्होने भक्ति-काल मे प्रस्तुत की गई सामग्री का यथेष्ठ उपयोग किया। यह सभी वर्णन आलम्बन के गुण से सम्बन्धित है। यह गुण शारीरिक अथवा मानसिक रहा है। इन गुणो के सग मोहक चेष्टाओ द्वारा व्यक्तित्व का आकर्षण और वढ जाता है। इससे गुण चेष्टा से युक्त होकर आलम्बन की मोहकता वढाने मे समर्थ होते है।

चेष्टागत सौन्दर्य—

आलम्बन के सौन्दर्य-सावक जिन तत्वो की चर्चा की गई है, उनमे चेष्टा आत्म परक उपकरण है। यह आलम्बन के आश्रित रहकर रूप-सौन्दर्य की अभिवृद्धि मे सहायक होता है। चेष्टा अथवा अनुभावो से हीन रूप सात्विक रति का सचार करने मे समर्थ नही होता। चेष्टाओ से भावना उद्दीप्त होती है, रूप का आकर्पण वढता है और उसकी हृदय आवर्जक शक्ति का विकास होता है। चेष्टाएँ उद्दीपक एव मोहक होती है। इनके अभाव मे सौन्दर्य निर्जीव और शव-तुल्य हो जाता है, उसकी सजीवता रस की आधार भूमि पर चेष्टाओ के ऊपर ही निर्भर रहती है। इन चेष्टाओ से व्यक्तित्व मे आकर्पण आ जाता है रूप निखर जाता है उसकी मोहकता वढ जाती है। आश्रय का मन आलम्वन की चेष्टाओ पर रीझकर उसकी ओर ललकने लग जाता है। चेष्टाओ की यही सार्थकता है। इन चेष्टाओ के दो वर्ग हो सकते है (१) आलम्वन की चेष्टाएँ (२) आश्रय की चेष्टाएँ।

आलम्वन और आश्रय की चेष्टाएँ हाव, भाव, हेला और अनुभाव कही जाती हैं। इन सवकी गणना कायिक चेष्टाओ के अन्तर्गत हो सकती है, यद्यपि ये मानसिक प्रवृत्तियो की वाहिका होती हैं। इन चेष्टाओ से युवा काल की शोभा वढती है। इससे इन्हे युवा काल के शोभा-विधायक गुण मान सक्ते हैं। इनके दो विभेद किये जा सकते है—

(१) सामान्य चेष्टाएँ—इनके अन्तर्गत 'अलकारो' की गणना होगी।

(२) विशेष चेष्टाएँ—इन चेष्टाओ मे आगिक सचालन आदि का महत्व वना रहता है। सम्पूर्ण अनुभावो की गणना इसी के अन्तर्गत होती है। इनके अन्तर्गत मुख-विकास, मुसकान, भ्रू भगिमा, चितवन, हस्तपदादि का अर्थ-पूर्ण सचालन आदि अनेक चेष्टाओ का समाहार होता है। क्रमश इन दोनो प्रकार की चेष्टाओ का भक्तिकालीन साहित्य मे निरूपण होगा।

(क) विशेष चेष्टाएँ—आलम्वन की अनुभावगत चेष्टाओ को विशेष चेष्टा के अन्तर्गत माना गया है। भक्ति काल मे इन चेष्टाओ का विश्लेषण करने से ज्ञात होता है कि इनसे दो अभिप्रायो की सिद्धि हुई है —

(१) आन्तरिक भाव का प्रकाशन ।
(२) अभीप्सित प्रभावोत्पादन ।

आन्तरिक भावो के प्रकाशन मे सभी अनुभाव सहायक है । इसमे मुख्य रूप से नारी की चेष्टाओ का वर्णन होता है, परन्तु भक्ति काल मे पुरुष रूप श्रीकृष्ण की विभिन्न चेष्टाओ का मोहक वर्णन हो सका है । अपनी इस मोहकता के कारण ही इन चेष्टाओ की प्रभावोत्पादकता बढ जाती है और आलम्बन की आन्तरिक भावनाओ का अनुकूल प्रभाव पडता है । इस प्रकार इन चेष्टाओ का प्रभावमूलक वर्णन ही अधिक हुआ है । इन चेष्टाओ मे मुसकान, चितवन आदि की गणना होती है ।

मुसकान--भक्तिकाल मे मुसकान के वर्णन मे दो प्रकार की प्रवृत्ति लक्षित होती है । प्रथम केवल मुसकान का वर्णन (२) मुसकान के सग चितवन का सयोग । दोनो ही प्रकार का वर्णन लगभग सभी कवियो मे मिल जाता है । विभिन्न अवसरो पर प्रकाशित इस मुसकान को निम्नलिखित वर्गों मे विभाजित कर सकते है ।

१. सामान्य मुसकान वर्णन मे श्रीकृष्ण पक्ष मे वय की दृष्टि से दो प्रवृत्ति लक्षित होती है । (क) प्रथम बाल्यकाल की सरल और स्वाभाविक मुसकान जो अन्तर उल्लास की अभिव्यक्ति करती है । इसके लिए हँसति, विहँसति, किलकत आदि शब्दो का प्रयोग हुआ है । इस हँसी मे किसी प्रकार की काम मूलक भावना नही है । अपितु स्वाभाविक मुसकान की सहजता वर्तमान है यथा.--

१ किलकि हँसति राजति द्वै दतियाँ, पुनि-पुनि तिहि अवगाहत ।
सूरदास, अष्टछाप-परिचय पृ० १५५

२ अँगुठा गहि कमल-पानि, मेलत मुख माँही ।
अपनौ प्रतिबिंब देखि, पुनि-पुनि मुसुकाँही ।
परमानन्ददास--अष्ट० परि० पृ० १८३

इन उदाहरणो मे बाल्यकाल की सहज चेष्टा है, किसी प्रकार की भाव-भंगिमा नही है ।

(ख) किशोर वय की मुसकान मे अर्थवत्ता रहती है । कविगण सहज रूप मे इस मुसकान का सकेत करते है । ऐसे वर्णन मे मुसकान का प्रभाव कपोलो के विकास पर भी दिखाया गया है --

१ कछु मुसकान दसन छवि सुन्दर हँसत कपोल लोल भ्रू भ्रामहि ।
अष्टछाप पदावली पृ० ४५

२ मृदु मुसकान वक अवलोकनि, डगमग चलनि सहज ही सुढारै।
अष्टछाप परिचय पृ० १८३

द्वितीय उदाहरण मे मुसकान के सग वक अवलोकनि से उसकी महत्ता और वढ जाती है। ऐसे मुसकान से सौन्दर्य का वोध एव सौन्दर्य सृष्टि भी हो जाती है।

२ **भेद भरी मुसकान**—श्रीकृष्ण और गोपियो की भेद भरी मुसकान का सकेत अनेक स्थलो पर हुआ है। वहुधा ऐसा शृङ्गार वर्णन प्रसग पर ही हो सका है। क्रिया-विदग्धा या वचन-विदग्धा नायिका की क्रियाओ मे मुसकान का यह रहस्य छिपा रहता है, जो एक विशेष अर्थ या भाव का वाहक है। वहुधा ऐसी नायिकाएँ अपने भावो को अभिव्यक्त करके मुसकरा उठती है। राधा का एक चित्र देखे —

१ तव राधा इक भाव वतावति।
मुख मुसुकाइ सकुचि पुनि सहजहि, चली अलक सुरझावति।....
टेरि कह्यो मेरे घर जैहौ मैं जमुना तै आवति।
तव सुख पाइ चले हरि घर कौ, हरि प्रियतमहि मनावति।[1]

२ लहरिया मेरो भीजैगो, वह देखो आवत है मेह.......
गोविन्द प्रभु पिय हँसि कहै तो वढि है अधिक सनेह।

इन दोनो ही उदाहरणो मे वचन-विदग्धा के कथनो मे रस-रहस्य की भावना है, जो प्रसग की अनुकूलता मे मुसकान से प्रकट हो जाती है। क्रिया-विदग्धा की क्रियाओ को देखकर परस्पर मुसकान की यह चेष्टा रस-भेद को व्यक्त करने वाली है।[2] इसे केवल रावा कृष्ण ही समझ पाते हैं। अन्य लोगो के लिए यह एक रहस्य ही बना रहता है।

कृष्ण की रसिक चेष्टाओ मे इस मुसकान की वडी महत्ता है। यशोदा के सामने बालक कृष्ण गोपियो के समक्ष तरुण वन जाते है। इसे यशोदा नही जान पाती, परन्तु कृष्ण एव गोपी की यह मुसकान एक दूसरे के भावो की वाहिका बन जाती है।

---

1 सूरसागर पद २६४२ (सभा)

2 स्याम अचानक आय गये री।.... ...
आपु हँसे उत पाग मसकि के, हरि अन्तरयामी जान लिये री।........
लैकर कमल अधर परसायौ, देखि हरखि पुनि हृदय धर्यौ री।
सूरदास (पृ० २९८ सूर निर्णय—द्वारकाप्रसाद पारीख)

१ रहि री ग्वालिन ! जोबन मदमाती।
मेरे छगन-मगन से लालहिं, कत लै उछग लगावति छाती।....
खेलन दै घर जाहु आपने, डोलति कहा इतौ इतराती।
उठि चली ग्वालि, लाल लागे रोवन, तब जसुमति लाई बहु भाँति।
'परमानन्द' ओट दै अचल, फिरि आई नैननि मुमिकाती।[1]

(३) आनन्द सम्मोहिता की मुसकान उसके तृप्ति के भाव को व्यक्त करता है।[2] ऐसे प्रसगो पर सखियो द्वारा जान लिये जाने पर यही मुसकान लज्जा की वाहिका बन जाती है।[3] इम मुसकान मे **आत्म-सन्तोष** का भाव बना रहता है और लज्जा ऐसे मुसकान की साधिका बन जाती है।

भेद भरी इस मुसकान से सौन्दर्य बढ जाता है। कही-कही भेद पूर्ण मुसकान **गूढ अर्थ का व्यंजक** बन जाती है। इससे चरित्र का शीलपरक अग उभरता है। अनेक स्थलो पर श्रीकृष्ण की ऐसी मुसकान का वर्णन है। यथा–

१ तिय-वचन सुनि गर्व के पिय मन मुसुकाने। मैं अविगत अज अकल हौ यह मरम न जाने।[4] रास प्रसग की इस मुसकान मे श्रीकृष्ण का ऐसा **ईश्वरत्व प्रकट** है, जहाँ वे भक्त के अहकार को बढने नही देना चाहते। उनके मुख की मुसकान का यही अर्थ है। इस प्रकार की गूढार्थ-व्यञ्जक हँसी का वर्णन अनेक स्थलो पर हुआ है। रास प्रसग, दानलीला, झूलन प्रसग और मथुरा प्रस्थान करते समय कई अवसरो पर ऐसी ही हँसी है—

१ अब घर जाहु दान मै पायौ, लेखा कियौ न जाइ।
सूर श्याम हँसि-हँसि जुवतिनि सौ, ऐसी कहत बनाइ।
सूरसागर २२३२

यहाँ हँसना केवल भ्रम मे डालने के कारण है। दान लेकर चले जाने को कहना स्पष्ट रूप मे स्वार्थी प्रवृत्ति को व्यक्त करता है।

२ तनक हँसै, हरि मन जुवतिनि कौ, निठुर ठगौरी लाइ।
पद ३६१० सूरसागर।

---

1 अष्टछाप–परिचय पृ० १८२

2 अधर खुले पलक ललन मुख चितवत, मृदु मुसकात हँसि लेत जँभाई।
अष्ट० परि० पृ० २२८

3 'परमानन्द' प्रभु रमी निसा भरि, अब कहिं लपटि हँसी मुख मोर।
अष्ट० परि० पृ० २०१

4 सूर सागर–पद १७१६

३ विहँसि कह्यौ हम तुम नहिं अन्तर, यह कहिकै उन ब्रज पठई।
पद ४६१० सूरसागर।

इन दोनो पदो के गूढार्थ के समक्ष भोली गोपियाँ या राधा श्रीकृष्ण की हँसी का रहस्य समझने मे असमर्थ होती हैं, परन्तु श्रीकृष्ण की यह हँसी उनके दोहरे व्यक्तित्व को स्पष्ट रूप से व्यक्त कर देती है।

(४) कही-कही पर भक्त कवियो की हँसी मे मोहकता का भाव स्पष्ट दीख पडता है। सयोग के अवसर पर ऐसी हँसी से शोभा बहुत अधिक बढ जाती है। श्रीकृष्ण के रूप-सौन्दर्य को देखकर 'नागरि' की हँसी मे मन का समस्त उल्लास एव प्रेम प्रकट हो जाता है—

१. नागरि यह सुनि कै मुसुकानि।
को जानै पिय महिमा तुम्हरी, नैननि चितै लजानी।
इक सुन्दर दूजै रति नागर, तीजै कोक-प्रवीन।
सूरदास प्रभु अब ही तौ तुम जसुमति-सुवन नवीन।[1]

कही कोई श्रीकृष्ण की हँसी देखकर इतनी मुग्ध हो जाती है कि उसकी पूर्व नियोजित सारी व्यवस्था ही भग हो जाती है, वह ठगी सी रह जाती है। ऐसा लगता है मानो किसी ने उसके ऊपर जादू कर दिया हो। अन्त मे उस मोहकता के समक्ष उसे अपना सब कुछ दान देना पडता है।[2] दान के प्रसग पर यही मोहकता दीख पडती है। गोपी के दान देने से मना करने पर उसका आँचल पकडकर श्रीकृष्ण की मधुर हँसी उसका मन चोर लेती है--

'कमल नैन' मुसकाय मद हँसि, अँचर पकर्यौ जब हीकौ।
दास चत्रभुज' प्रभु गिरधर मन, चोर लियौ सब ही कौ।[3]

(५) **छेड-छाड की भावना**---श्रीकृष्ण के दान लीला के अवसर पर हँसी के कई अर्थ है। गूढार्थ बोधक, भाव-व्यञ्जक और छेडछाड की भावना दीख पड़ती है। पूर्वराग की अवस्था की यह हँसी विशेष महत्वपूर्ण है।

---

[1] सूर सागर पद २८२५

[2] हौ तकि लागि रही री माई।
जब गृहते दधि लै कै निकस्यौ, तब मैं बाँह गही री माई।
हँसि दीन्हो मेरो मुख चितयौ, मीठी सी बात कही री माई।
ठगि जु रही चेटक सो लाग्यौ, परि गई प्रीति सही री माई।
परमानद सयानी ग्वालिनि, सर्वस दै निवही री माई।
अष्ट० परि० पृ० १९३

[3] अष्ट छाप-परिचय पृ० २८१

१ स्याम सुन्दर हँसि बूझत है,
कहिधौ मोल या दधि कौ री ग्वालिन ।
गोविन्द प्रभु पीय प्यारी नेह जान्यौ, ...
तब मुसिक्याय ठाढी भई, सैना-बैनी करहिं सब आलनि ।[1]

२ अब हौ या ढोटा सो हारी ।
गोरस लेत अटक जव कीनी हँसत देत फिर गारी ।

अष्ट० परि०–गोविन्दस्वामी पृ० २५१

शृ गार-चेष्टा के मूल मे इस हँसी का महत्व बढ जाता है । विचारो के आदान-प्रदान का यह एक अच्छा साधन है ।

हँसि ब्रजनाथ गह्यौ कर पल्लव, जस भरि गगरी गिरन न पावै ।
'परमानद' ग्वालिनी सयानी, कमल नैन सो तन परसावै ।[2]

(६) **प्रभावमूलक व्यञ्जना**—मुसकान के अपूर्व प्रभाव की व्यञ्जना इन कवियो ने की है —

१ चले री जात, मुसिकाय मनोहर,
हँसि कही एक बात अटपटी री ।
हौ सुनि श्रवनि भई री अति व्याकुल,
परी है हिरदै मेरे मन सटपटी री ।
परमानद प्रभु रूप विमोही, नदनदन सो प्रीति है जटी री ।[3]

२. नेक चितै मुसिक्याए जू हरि, मेरे प्रान चुराइ लये ।
अब तो भई है चोप मिलन की, बिसरे देह–सिंगार ठये ।

(७) **व्यग्य मूलक मुसकान** खण्डिता प्रसग पर देखी जाती है । यह एक विकर्षक प्रसग है । रति-चिन्हो से युक्त श्रीकृष्ण के शरीर को देखकर अनायास आई हुई हसी मे व्यग्य का भाव लक्षित होता है ।

लाल न आये री रैन गँवाई ।
निशि भर क्षीण बोले तमचर खग, ग्वालिन तबहिं हँसि मुसकाई ।

सूरदास

ग्वालिन की इस हँसी मे कृष्ण के चरित्र की अर्थ पूर्ण व्यञ्जना हुई है । भ्रमरगीत प्रसग मे हँसी को कही-कही इसी प्रसग मे ग्रहण किया है ।[4]

---

1 अष्ट छाप-परिचय पृ० २५०

2 वही–पृ० १९६

3 वही–पृ० १९८

4 सूर स्याम जब तुमहिं पठाये, तब नेकहुँ मुसुकाने । सूरसागर

उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि भक्ति साहित्य मे श्रीकृष्ण और राधा आदि की मुसकान मुख्यत आकर्षण उत्पन्न करके सौन्दर्य की मोहकता बढाने वाली है। इससे रूप की आसक्ति उत्पन्न होती है और इसका तत्काल फल मिलता है। इसके अनेक रूपो मे मुसकान के भेद, मोहकता, सहज-शृ गार, चेष्टा सम्पन्नता और प्रभाव मूलक मुसकान का उदाहरण दिया गया। यह मुसकान अपने मूल रूप मे मोहक ही है और इससे रूप का आकर्षण बढता है। यही मुसकान चितवन से सयुक्त होकर रूप-सौन्दर्य का महत्व बढाने मे सोने मे सुहागे का कार्य करती है।

चितवन—आकर्षण को बढाने वाले व्यापारो मे चितवन महत्वपूर्ण है। इसका साधक अंग नेत्र है। नेत्रो के माध्यम से भावनाओ का प्रेषण होता है। मानसिक प्रवृत्ति के अनुकूल नेत्रो के चालन और उसकी स्थिति मे अन्तर आता चला जाता है। नेत्र भावनाओ के वाहक होते है। मन मे शृङ्गार भाव के जागृत होने पर नेत्रो मे विकासमूलक अनोखापन आ जाता है। इससे नेत्र-व्यापार मे मादकता आ जाती है। यही मादकता क्रियामूलक होकर अपने प्रिय के समक्ष चितवन के रूप मे प्रत्यक्ष होती है। इससे रूप-दर्शन मे तीव्रता के साथ खिचाव पैदा हो जाता है और आश्रय आलम्बन दोनो के मन मे एक दूसरे के प्रति ललक और निकटता होती चली जाती है। यह क्रिया उद्दीपक है। इस कारण शृङ्गार काव्य मे इसको समुचित स्थान मिला है। हिन्दी के भक्ति साहित्य मे राधा-कृष्ण प्रकरण पर 'चितवन' द्वारा भावो की अभिव्यक्ति का वर्णन लगभग सभी कवियो ने किया है।

भक्तिकाल मे वर्णित 'चितवन' के विश्लेषण से उसके द्वारा दो प्रकार की प्रवृत्ति लक्षित होती है—

(१) सयोग मे उद्दीपक रूप।

(२) खण्डिता प्रसग मे व्यग्यात्मक रूप।

खण्डिता प्रसग पर नायिका द्वारा अनवरत रूप से प्रियतम के मुख को देखते रहने का अर्थ हृदय की रति का वाह्य प्रकाशन नही है, अपितु रति-चिह्नो से युक्त प्रिय-मुख को देखकर उपहास के भाव को व्यक्त करना है। अनबोले रूप मे लगातार देखते जाने से ऐसे प्रसगो पर हृद्गत आक्रोश का भाव व्यक्त होता है, रति का सचार नही होता। यथा

(१) प्यारी चित्तँ रही मुख पिय कौ।
अजन अधर, कपोलन विन्दन, लाग्यौ काहु तिय कौ।
तुरत उठी दरपन कर लिन्ही, देखो वदन सुधारो।

प्रात समय मुख देखि आपुनो, तब कही अनत सिधारो । सूरसागर ।

मौन-प्रतारणा युक्त यह चितवन अनेक वाक्य-वाणो की अपेक्षा अधिक बलशाली है । इसका अनुकूल प्रभाव होता है । कृष्ण का सकोच एव नतमस्तक अपराध की स्वीकृति दे देते है । ऐसे प्रसगो पर 'चितवन' या 'दर्शन' रति भाव को उद्बद्ध नही करते, अपितु श्री कृष्ण के बहुनायकत्व को प्रकट कर देते है । यहाँ पर इसी बात का ज्ञान करा देना उद्देश्य है।

(२) सयोग के अवसर पर चितवन मन मे आनन्द का सचार करती है और रति को जगाती है । यह अपने विपरीत लिङ्गी को आकर्षित कर लेने का साधन है । इस चितवन के अनेक प्रभावो की अभिव्यक्ति की गई है —

(क) **काममूलक**—श्रीकृष्ण की चितवन के समक्ष गोपी के कचुकी के बन्द टूट जाते है ।[1] चितवन की मादकता से काम सहायक अगो मे स्फूर्ति आ जाती है । ऐसा वर्णन श्रीकृष्ण से कुछ समयोपरान्त मिलने के पश्चात् किया गया है ।

(ख) प्रतिक्रिया मूलक प्रभाव—श्रीकृष्ण या राधादि गोपियो के चितवन से आनन्द जन्य एक तीव्र प्रतिक्रिया होती है । इस प्रतिक्रिया का अनेक रूपो मे वर्णन मिलता है ।—

(१) लज्जा-त्याग—चितवन के समक्ष आत्म—विस्मृति की दशा हो जाती है । श्रीकृष्ण की चितवन से लज्जा की समाप्ति हो जाती है और घूँघट पट भूल जाता है ।[2]

(२) अभिलाषा का उद्भव—चितवन के अभाव से अनेक गोपियो के मन मे अनेक प्रकार की अभिलाषा का उद्भव होता है । गोपिया कृष्ण की एक बाँकी चितवन के लिये तरसती है । उन्हे कृष्ण की मुसकान मे 'फगुआ' मिलने का सुख मिलता है ।[3] किसी को चितवन, चारु–चिन्तामणि[4] किसी के

---

1 'कृष्णदास' प्रभु हरि गोवर्धन धारी, लाल, चारु चितवनि तोरे कचुकी के बदवा । अष्ट० पदावली पृ० ५०

2 महाचित चोर्यौ नैन की कोर ।
लाज गई घूँघट पट भूल्यौ, जब चितयौ यहि ओर ।....
देकर सैन मैन सर मारी, नागर नन्दकिशोर ।
चत्रभुजदास–अष्ट छाप-परिचय पृ० २८६

3 यह फगुवा हम पावही हो चितवन मृदु मुसकान । सूरसागर पद ३५००

4 चितवनि चारु चतुर चितामनि, मृदु मधु माधौ बैना । परमानन्द सागर

लिये मोह लेने वाला मत्र वन जाती है।[1]

चितवन के समक्ष गोपियाँ अपनी देह सुधि भूल जाती हैं। वे चित्रलिखी सी हो जाती है।[2] गोपियाँ अनुभव के क्षण से ही इसे 'जी' मे बसा लेती है, 'चितवनि तेरी जीय बसी।'[3] वे अपने को भूल जाती है "साँवरो बदन देखि भुलानी। चले जात फिरि चितयो मो तन, तब ते सग लगानी।"[4] इसके समक्ष मन परवश हो जाता है। चितवन हठपूर्वक उनके मन को मोह लेती है।[5] गोपियाँ घर को जाती हुई मुड–मुड कर कृष्ण को देखने लग जाती हैं। चितवन से रूप की आसक्ति वढ जाती है। प्रेम मे वैचित्र्य आ जाता है। रावा के मन मे तो मिलने के उपरान्त भी विश्वास नही आता और वह रंग मे पगी हुई वार-वार कृष्ण को देखती है –

(१) राधेहि मिलहिं प्रतीति न आवति।........

चितवति चकित रहति चित अन्तर, नैन निमेष न लावति। सूरदास।

चितवन का व्यापार परस्पर 'सैना-वैनी' के रूप मे भी विकास पाता है। गोपियाँ सकेत से प्रेम-रहस्य को प्रकट कर देती है। कृष्ण के विशाल नेत्रो की चितवन को गोपियाँ उसी रूप मे उन्ही व्यापारो द्वारा स्पष्ट करके अपने असीम प्रेम की अभिव्यक्ति कर देती है।[6] कही परस्पर की सैना-वैनी मे वस्तु को छिपाने का प्रयास किया जाता है।[7] इससे प्रस्तुत प्रसग की मोहकता वढ जाती है। चितवन द्वारा रहस्य का उद्घाटन होता है। "वक चितवनि चितै रसिक तन गुपत प्रीति को भेद जनायो।"[8]

---

1 चितवनि मोहन मत्र भौह जनु मन्मथ फाँसी। नन्ददास-रासपचाध्यायी।

2 चितवत आपुहि भई चितेरो।
मदिर लिखत छाडे हरि अक-वक, देखत हैं मुख तेरो।
चत्रभुजदास अष्ट० परि० पृ० २८७

3 अष्ट छाप–परिचय पृ० २८७ चत्रभुजदास

4 परमानन्द सागर

5 1, अरुन-विशाल वक अवलोकनि, हठि मन हरत हमारे। परमानन्दसागर
11, नेक चित्तै चलेरी लालन, सखी लैजु गयो चितचोर।
गोविन्द स्वामी अष्ट० परि० पृ० २५५

6 अष्ट छाप-परिचय पृ० २५० गोविन्द स्वामी पद सख्या २१

7 अष्ट छाप-परिचय पृ० २५१ गोविन्द स्वामी पद सख्या २५

8 अष्ट० परि० पृ. २३७ पद ५६

उपर्युक्त विश्लेपण के आधार पर यह निर्णय लिया जा सकता है कि चितवन प्रेम को बढाकर परस्पर आकर्पण की भावना उत्पन्न करने वाला एक रति-मूलक व्यापार है। इसके द्वारा हृदय मे अनेक प्रकार की भावनाए जाग्रत होती है। प्रिय की ओर आकर्पण, रति का उद्भव, लज्जा-त्याग, आत्म-विस्मृति, स्तब्धता, टकटकी वध जाना आदि इसके परिणाम है। चितवन के फल स्वरूप कई प्रतिचेष्टाए होती है। मुड-मुड कर देखना, रूप की आसक्ति, कुतूहल, प्रेम का प्रकाशन आदि चितवन-युक्त रूप की प्रतिक्रियाए है। यह चितवन सम-व्यापार की जनक है अर्थात् चितवन व्यापार आलम्बन और आश्रय दोनो की तरफ से होता रहा है। परस्पर प्रीति-प्रदर्शन का यह एक विलक्षण व्यापार है। इस सम-व्यापार द्वारा सात्विक रति का उदय माना जाता है। नायक और नायिका दोनो ही पक्षो मे इसका महत्व है, परन्तु नायिका के सदर्भ मे लज्जा से सवलित होकर यह चितवन विलक्षण हो जाती है। इससे उत्पन्न नायिका की मोहक मुद्रा अदा-पूर्ण हो जाती है। उसका आकर्षण बढ जाता है और वह अधिक सुन्दरी प्रतीत होने लगती है।

लज्जा—लज्जा स्त्रियो का आभूपण है। चारीत्रिक उच्चता से उत्पन्न इसका प्रकाशन शील–संकोच के रूप मे होता है। इसे कुलवती स्त्रियो का शृङ्गार मानते है। यह लज्जा सामान्य रूप से शृङ्गार से सम्बन्धित है। इसीसे शृङ्गार–प्रसगो पर, इससे नायिका के सौन्दर्य की वृद्धि मानी जाती है। लज्जा के आधार पर ही मुग्धा, मध्या और प्रौढा ये तीन भेद नायिकाओ के किये गये है। शृङ्गार–रस के प्रसंग पर इसकी गणना 'व्रीडा' सचारी भाव के नाम से होती है।

लज्जा के कुछ बाह्य-व्यञ्जक तत्व बताये गये है। झेपना, सिर नीचा कर लेना, भूमि पर लकीर खीचने लग जाना, मुँह फेर लेना आदि इस प्रकार के व्यापारमूलक तत्व है। लज्जा के उदय होते ही मुख आरक्तिम हो जाता है। रक्त दौडने लगता है। इन सवका सम्बन्ध वय से है। भक्तिकाल मे लज्जा का वर्णन अधिक हो सका है, क्योकि इस काल मे वय की सीमा किशोर अवस्था तक पुरुष पक्ष मे और किशोरी या यौवनावस्था तक स्त्री पक्ष मे थी। वय की इसी सीमा मे लज्जा का सबसे अधिक प्रकाशन सम्भव हो पाता है। इससे मुख की आभा मे अपूर्व वृद्धि हो जाती है और सौन्दर्य का विकास स्वत हो जाता है। आँचल से मुख ढाक लेना, तिरछी चितवन से देखना आदि भी इसके अनुभावो मे आते है। यह आँखो की ऐसी मूक भाषा है, जिसे रसिक हृदय ही समझ सकता है।

भक्तिकाल मे लज्जा व्यापार का वर्णन दो अवसरो पर किया गया है।

(१) श्रीकृष्ण द्वारा अनावृत सौन्दर्य को देख लिये जाने पर।

(२) सयोग के अवसर पर।

(१) कुलवधू की शालीनता सदा से मोहक होती है। इस शालीनता की रक्षा के लिये वस्त्रो का आच्छादन आवश्यक है। स्नानादि के अवसर पर कभी-कभी उसका सम्पूर्ण शरीर अनावृत हो जाता है। ऐसी स्थिति मे किसी द्वारा देख लिये जाने पर लज्जा का स्वाभाविक उदय मनोहर होता है। एक उदाहरण देखे —

(१) न्हान को खोले कचुकी के कसना।
सम्मुख ह्वै पिय झाँकि झरोखनि, तब अगुरी दीनी विच दशना।
लज्जित तन कपित ह्वै धाई, लीन्हे और वसना।
'कुम्मनदास' प्रभु गोवर्धन घर, तबहि लाल लगे है हँसना।

इस उदाहरण मे लज्जा का वडा अच्छा चित्र प्रस्तुत किया गया हे। विभिन्न अनुभावगत व्यापारो का रूप-चित्र हृदय आवर्जक है। यहाँ श्रीकृष्ण द्वारा अनावृत अग को देख लेना विभाव का कार्य करता है, इससे सुप्त लज्जा उद्दीप्त हो जाती है। अगुली को दाँतो के वीच मे दे देना, शरीर का कम्पित होना, दौडना और दूसरा वस्त्र ले लेना अनुभाव गत चेष्टाएँ है, इन चेष्टाओ से सयुक्त होकर नायक श्रीकृष्ण की रुचि नायिका मे वढ जाती है। 'तवहि लाल लगे हसना" के कथन से नायक के मन मे नायिका की इस घवडाहट के कारण आनन्द का अनुभव होता है। वह मानो चिढाने के लिये हँस देता है। सद्य स्नाता का ऐसा वर्णन प्राय होता है। विद्यापति की नायिका सरोवर से स्नान करके निकलते समय अपने दोनो स्तनो को ढक लेती है, क्योकि गीले वस्त्र उसके अगो से चिपक कर उसे अनावृत जैसा बना देते हैं।

(२) संयोग के अवसर पर लज्जा का प्रदर्शन आकर्षक बन जाता है। भक्त कवियो ने प्राय तीन निम्नलिखित परिस्थितियो मे इस लज्जा का स्वाभाविक उदय दिखाया है।

(क) गुरुजनो की उपस्थिति मे प्रिय दर्शन से उत्पन्न लज्जा व सकोच।

(ख) पारस्परिक छेड-छाड या वार्तालाप के अवसर पर लज्जा का प्रदर्शन।

(ग) रति के अवसर पर लज्जा।

गुरुजन सान्निध्य और लज्जा—स्त्रियो की स्वाभाविक प्रवृत्ति के अनुसार उनमे अपने प्रेम के गोपन की भावना रहती है। यह भावना वय के

आरम्भिक काल मे अधिक दीख पडती है, जो क्रमश. क्षीण होती चली जाती है। इसी कारण स्त्रियाँ दूसरो के समक्ष अपने प्रिय को भी देखकर सकुचित हो जाती है। इस सकोच की दो प्रवृत्ति दीख पडती है।

(१) वडो की मर्यादा रक्षा और अपनी गोपनीयता।

(२) लोक लज्जा और सामाजिक परम्पराओ का भय।

वडो की मर्यादा की रक्षा शालीनता से होती है। उनके समक्ष चपल आचरण करने से उच्छृङ्खलता वटती है और उनकी मर्यादा नष्ट हो जाती है। इससे वडो के समक्ष प्रिय को देखकर मौन हो जाना या मस्तक का नय जाना इसी सकोच युक्त लज्जा के अनुभाव है। यथा—

स्याम अचानक आय गये री।
मैं वैठी गुरुजन विच सजनी, देखत ही मेरे नैन नए री।[1]

यहाँ नेत्रो के नय जाने मे लज्जा का मौन अभिनय आकर्षक है। इससे चपलता भी नही होने पाई और गुरुजनो की मर्यादा रक्षा भी हो गई। इसी प्रकार के अनेक उदाहरण देखे जा सकते है।

समाज के समक्ष प्रेम का प्रदर्शन लज्जा का जनक होता है। स्त्रियाँ अपनी रहस्य लीला की चर्चा भी दूसरो के समक्ष करने मे सकोच का अनुभव करती है। इसी से यदि प्रिय द्वारा इसे प्रकट कर दिया जाय, तो ऐसी स्थिति मे उनके लज्जा से गड जाने का वर्णन मिलता है। प्यारी राधा लोक मर्यादा को समझने लगी है। इसी से वह श्याम से कहती है कि—

१. स्यामहि वोलि भयौ ढिग प्यारी।
ऐसी वात प्रकट कहुँ कहियत, सखिन माँझ कत लाजनि मारी।
इक ऐसेहि उपहास करत सव, तापर तुम यह वात पसारी।....
लाजनि मारति हो कत हमको, हाहा करति जानि वलिहारी।[2]

इस अवतरण मे लज्जा अनुभावो से प्रकट नही की गई है, परन्तु प्रस्तुत प्रसग मे समाज के सन्दर्भ मे लज्जा का वर्णन नायिका के मुख से ही किया गया है। कथ्य मात्र से भी लज्जा का सकेत मिलता है।[3] यहाँ शालीनता के कथन से लोक-व्यवहार की भाव-भूमि पर सकोच का वर्णन है।

---

1 सूरसागर पद २४६७
2 सूरसागर पद २१७५
3 व्रजवसि कोक बोल सहौ।
तुम विन स्याम और नहिं जानौ, सकुचि न तुमहि कहौ। सूरसागर २३०४

प्रिय को अचानक देखकर क्रिया-विदग्धा नायिकाओ के सकोच का वर्णन मिलता है। एक गोपी कृष्ण को देखकर मुस्कराती हुई इसी लज्जा का प्रदर्शन करती है, परन्तु दूसरे क्षण वस्तु-स्थिति का ध्यान आते ही क्रियाओ के द्वारा अपनी भावनाओ को कृष्ण तक प्रेषित कर देती है।[1] इस प्रकार की लज्जा का प्रदर्शन दूसरे की उपस्थिति मे सम्भव होता है। लोक-लज्जा मे सामाजिक नियमो के उल्लघन एव निन्दा के भय की प्रधानता रहती है, परन्तु पारस्परिक चर्चाओ आदि मे लोक पक्ष सामने नही रहता। अत एकान्त वार्तालापादि से उत्पन्न लज्जा स्त्रियो के सौन्दर्य का वास्तविक भूषण है।

पारस्परिक मनोविनोदादि मे लज्जा—श्रीकृष्ण और गोपियो आदि के वार्तालाप या छेड-छाड मे लज्जा का समुचित प्रदर्शन होता है। ऐसा प्राय तीन अवसरो पर हुआ है। दान-प्रसंग, पनघट प्रसग और राधा-कृष्ण के आरम्भिक परिचय के समय यही सकोच जन्य लज्जा दीख पडती है।

दान-प्रसंग पर कृष्ण की छेड-छाड बढ जाती है। वे दही का दान माँगते-माँगते यौवन दान मागने लग जाते है। गोपिया उनकी इस अचगरी को सुनकर लाज से गडी जाती है। कृष्ण को तो 'गो-रस' चाहिये दूध-दही नही।[2] कोई प्रगल्भा गोपी श्रीकृष्ण के अनौचित्य का प्रतिपादन करती है और किसी को अपने यौवन का बडा अभिमान है। एक गोपी कहती है कि 'हमरो जोवन रूप आँखि इनकी गडि लागत।'[3] इस कथन मे प्रेम की अभिव्यञ्जना एव अपने रूप का गर्व दोनो ही बाते दीख पडती है। ऐसे प्रसग पर सकोच का प्रदर्शन दाँतो के बीच अगुली देकर आपसी सैना-बैनी द्वारा और घूँघट के माध्यम से हुआ है। कही पर कृष्ण प्रेम मे कोई सखी लोक-लाज संकोच सब कुछ छोडकर कृष्ण की चेरी बन जाती है।[3]

---

1 तब राधा इक भाव बतावति।
मुखि मुसुकाइ सकुचि पुनि सहजहि, चली अलक सुरझावति।
एक सखी आवति जल लीन्हे, तासो कहति सुनावति।
टेरि कह्यौ मेरे घर जैहो, मैं जमुना तैं आवति। सूरसागर। सभा २६४२

2 अरी हम दान लैहै, रस-गोरस को, यही हमारो काज।
हम दानी तिहुँ लोक के, चारो जुग मे राज॥ अष्ट० परि० पृ० ११६

3 सूरसागर पद २०७६

4 लोक सकुच कुल कानि तजी,
जैसे नदी सिन्धु को धावै तैसे स्याम भजी। सूरसागर। वे० प्रेस पृ २५६

पनघट प्रसग पर कृष्ण की छेड-छाड से सकोच भाव का उदय दिखाया है। सामान्य रूप से दूध दूहने जैसे प्रसगो पर भी छेडछाड की यही प्रवृत्ति दीख पडती है। वनमार्ग मे स्त्रियो का संकोच वर्णित है। राधा कृष्ण के प्रथम परिचय पर राधा का लज्जित होना उसकी क्रीडा की भावना व्यक्त करती है—

'कनक वदन सुढार सुन्दरी सकुचि मुख मुसकाय।
स्यामा प्यारी नैन रांचै अति विशाल चलाय।[1]

वह सकोच पूर्वक कृष्ण का मुख देखती है। 'राधा सकुचि स्याम मुख हेरति। चन्द्रावली देख कै आवति, व्रज ही को प्रिय फेरति।"[2]

रति प्रसंग मे लज्जा—लज्जा का वर्णन भक्त कवियो ने रति प्रसग पर किया है। रति से सम्बन्धित तीन अवसरो पर लज्जा का वर्णन मिलता है।

(१) सामान्य रति प्रसग पर।
(२) विपरीत रति प्रसग पर।
(३) खण्डिता प्रसग पर।

सामान्य रति प्रसग पर लज्जा एक संचारी भाव के रूप मे है। यह नव वय की स्वाभाविक चेष्टा के रूप मे वर्णित है। आधुनिक काल मे हरिश्चन्द्र का एक पद इसका उपयुक्त उदाहरण है।[3] ऐसे प्रसगो पर राधा का सकोच रति रस का सर्वद्धन करने मे पूर्ण सहायक होता है। विपरीत रति का वर्णन सूरदास ने एक स्थल पर अच्छा किया है। 'नागरी' विपरीत रति मे सकोच सहित लिपट जाती है।[4] सखियो द्वारा रति-सुख प्रसग को जान लिये जाने पर गोपन की प्रवृत्ति मे सकोच दीख पडता है—

---

1 सूरसागर

2 सूरसागर पृष्ठ ३१३ बे० प्रेस।

3 प्यारी लाजन सकुची जात।
ज्यो-ज्यो रति प्रतिबिम्ब सामुहे आरसी माँह लखात।
कहत लाख यहि दूरि राखिये, बलकरि कर्षत गात।
'हरीचन्द्र' रस बढत अधिक अति, ज्यो-ज्यो तीय लजात।
भारतेन्दु ग्रन्थावली पृ० ४५८

4 सूर स्याम विपरीत बढाई।
नागरि सकुचि रही लपटाई। पद २२९६ सूरसागर

मोहनलाल के रसमाती ।
वधू गुपति गोपति कत मोसो, प्रथम नेह सकुचाती ।
जै श्रीहित हरवश बचन सुनि भामिनि भवन चली मुसुकाती ।
हित चौरासी पृ० २६

रति प्रसग के कुट्टमति अनुभाव' पर लज्जा का यही दृश्य मूर्तिमान हो जाता है । सूर की पैनी दृष्टि द्वारा व्रीडा का अच्छा चित्र प्रस्तुत किया गया है । रग मे फूले कृष्ण मुख का स्पर्श करते है और प्यारी लज्जा से सकुचित होती जाती है ।

१. आजु रग फूले कुँवरि कन्हाई ।
मुख परसत सकुचत सुकुमारी, मनहि मन अति भावत ।
तब प्यारी कर गहि मुख टारत, नेकहुँ लाज न आवत । सू ३०७५

प्यारी के इस निषेध और वचनो द्वारा कृष्ण को झिडक देने में रस का सवर्द्धन होता है और 'प्यारी' का आकर्षण बढ जाता है । नायक कृष्ण की प्रेम-विह्वलता दर्शनीय हो जाती है । वस्तुत. दाम्पत्य का सम्पूर्ण सुख ऐसी ही चेष्टाओ मे वर्तमान रहता है ।

नायिका के सकोच से ही इन कवियो की मानसिक तृप्ति नही हुई । अपितु नायक के सकोच का वर्णन एव चित्र भी उपस्थित किया गया है । अपराधी मनोवृत्ति के कारण प्राय नायक पक्ष मे ऐसे सयोग का वर्णन मिलता है । नायक कृष्ण की रमणशील वृत्ति अन्य नायिका मे आसक्त हो जाती है । वे रति-भोग के उपरान्त राधा के पास लौटते है, परन्तु उनके नेत्र नमित है, गति मन्थर है और दृष्टि मिलाने का साहस नही होता । उनकी इन अनुभावगत चेष्टाओ का वर्णन खण्डिता प्रसग पर देखा जा सकता है ।

१. बलि-बलि जाऊँ रसिक गिरधर प्रिय, नीके आए प्रात तमचुरके बोले ।
इतो सकोच कौन कहो मानत, अधिक लजाय रहे बिन बोले ।[1]

२. कौन के भोराये भोर आए हो भवन मेरे,
ऊँची दृष्टि क्यो न करो कौन ते लजाने हो । ....
कृष्णदास प्रभु छोडो अटपटी रहे हो लाल,
आज हौ तुम्हे देखि नीके पहचाने हो ।[2]

---

1 अष्टछाप पदावली—पृ० ६३ कृष्णदास का पद
2 " " ६७ "

इस उदाहरण मे रेखाओ के स्वच्छन्द प्रयोगो द्वारा खण्डिता नायिका व रसिक नायक का अच्छा चित्र प्रस्तुत हुआ है।

उपर्युक्त विश्लेषण से प्रकट हो जाता है कि लज्जा स्त्रियो का प्रमुख आभूषण है, जो सयोग की अवस्था मे रति-वर्द्धक चेष्टा के रूप मे प्रकट होता है। प्रिय का प्रत्यक्ष-दर्शन, प्रिय सम्बन्धी रस-चर्चा अथवा प्रिय की स्मृति मात्र से इस लज्जा का उन्मेष होता है। इस लज्जा मे सामाजिक नियमो की स्वीकृति वर्तमान रहती है। नय वय मे इसका मधुर रूप देखने को मिलता है। यह रूप दो ढग से अपना विकास प्राप्त करता है —

(१) रति-मूलक आनन्दवर्द्धक चेष्टाओ के रूप मे।

(२) अनुभाव के कथ्य मात्र से।

इन दोनो मे रति मूलक आनन्द-वर्द्धक चेष्टाओ का महत्व रस की दृष्टि से अधिक है। इन चेष्टाओ के विभिन्न शारीरिक परिवर्तनो एव अनुभावो का सक्षिप्त विश्लेषण प्रस्तुत किया जा चुका है। सयोग के अवसर पर इन चेष्टाओ मे निषेध से रस बढता है, नायक की लालसा मे वृद्धि होती है और नायिका आकर्षक प्रतीत होने लगती है।

"निषेध-परक-सौन्दर्य"—निषेध अस्वीकृति का बाहरी दिखावा है। इसके मूल मे मानसिक स्वीकृति मूलक सम्मति होती है, परन्तु सयोग प्रसग मे स्पष्टत अपनी स्वीकृति दे देना शालीनता के विपरीत है, सौन्दर्य एव आकर्षण का बाधक है। मुग्धा की कमनीयता, उसका आकर्षण इसी 'निषेध' मे छिपा रहता है। नायक की रुचि को बढाने का यह एक अमोघ अस्त्र है, जिससे एक ओर नायिका के प्रति नायक ललकता है और दूसरी ओर सयोग सुख मे सहजता और रस की सान्द्रता बढ जाती है। यही सान्द्रता और व्यक्तित्व का पूर्ण निलय सयोग का वास्तविक सुख है। अनुभावो से शून्य और स्वीकृति-गर्भ-निषेध से रहित नायिका का सौन्दर्य पूर्ण तन्मयता उत्पन्न करने मे समर्थ नही हो पाता। यही कारण है कि प्रौढा या प्रगल्भा की तुलना मे मुग्धा का निषेधात्मक अनुभाव नायक के मन मे रस-भाव का सचार करने मे अधिक समर्थ होता है। इसी से सयोग के प्रसग पर भक्त कवियो ने मुग्धा के निषेधात्मक सौन्दर्य को अपने काव्य का विषय बनाया है। रस का वास्तविक स्फुरण और उद्दीप्ति निषेध के माध्यम से ही सम्भव है।

सयोग के अवसर पर यह निषेध नायिका पक्ष का आभूषण बनता है। नायक-पक्ष मे निषेध का वर्णन साहित्य मे नही किया गया है, क्योकि नायक

भोक्ता और नायिका भोग्या मानी जाती है। इस निषेध के दो रूप दीख पडती है।

(१) चेष्टा या अनुभावगत निषेध।

(२) वचनगत निषेध।

निषेध के इन दोनो रूपो मे कोई प्रत्यक्ष विभाजक रेखा नही है। एक के सग दूसरे की स्थिति प्राय बनी रहती है। वचनगत निषेध मे सिर सचालन आदि आगिक क्रियाओ का योग रहता ही है। अनुभावगत निषेध मे अत्यधिक शालीनता मुग्धा को मौन रहने की प्रेरणा देती है। आगिक चेष्टाओ के साथ वचन या वाणी का स्फुरण हो भी सकता है और नही भी होता है। कवियो ने प्राय. प्रत्येक स्थिति मे इसका वर्णन किया है।

अनुभावगत निषेध—सयोग या रति-प्रसग पर मुग्धा नायिकाएँ अपनी स्वीकृति-निषेध को आगिक चेष्टाओ द्वारा व्यक्त कर देती है। यह निषेध छेड-छाड़ के प्रसग पर या रति-प्रसग पर दीख पडता है—

अलक सवारन व्याज मैं, परस्यौ चहत कपोल।
मृदुल करनि डारति झटकि, रसमय कलह कलोल। ध्रुवदास

यहाँ कृष्ण द्वारा कपोल स्पर्श करने की इच्छा और नायिका की अनिच्छा व्यक्त की गई है। यह अनिच्छा आगिक चेष्टा द्वारा स्पष्ट है। 'मृदुल करनि डारति झटकि" कोमल करो से प्रिय के हाथो को झटक देने मे क्रोध की व्यञ्जना न होकर निषेध मूलक प्रेम की ही व्यञ्जना है। इससे रसमय कलह आकर्षित करने वाला बन जाता है और मूल भाव अधिक रसमय बन जाता है। यह निषेध स्वीकार की तुलना मे अधिक आकर्षण उत्पन्न करता है।

राधा का निषेध भाव अपने अग का दृष्टि स्पर्श भी नही करने देता है। कृष्ण जिस अग को देखना चाहते है, राधा उसे छिपाकर इसी निषेधात्मक प्रवृत्ति को व्यक्त करती है—

जो अग चाहत रसिक प्रिय, इन नैननि सो छ्वाई।
सो ठा सुन्दरि पहिले ही राखति बसन दुराई।

रस-रत्नावली पद ४० ध्रुवदास

बसन से अगो को छिपा देना निषेध की अनुभावगत या चेष्टागत क्रिया है। इस प्रकार की चेष्टाएँ कई स्थलो पर दीख पडती है। कभी नेत्र मूँदने मे, कभी अगो के स्पर्श मे यह निषेध दीख पडता है —

१ मूंदि रहै पिय प्यारी लोचन ।

मन हरखित मुख खिझत सखिन कहि चतुर चतुरई भाव । सूरसागर

यहा मुख से खीझने मे अस्वीकार न होकर प्रेम का प्रदर्शन है, इसी से मन की प्रसन्नता व्यक्त की गई हैं । 'मन-हरखित' का यही रहस्य है । मुख से खीजना तो एक दिखावा मात्र है ।

अगो के स्पर्श करने मे निषेध का भाव व्यक्त किया गया है । प्यारी सकोच करती हुई इसका निवारण करना चाहती है । कृष्ण के मुख को अपने हाथो से हटाती हुई इसी प्रकार के भाव व्यक्त किये गये है --

कबहुँक कुच कर परस कठिन अति, तहा बदन परसावत ।
मुख निरखति सकुचति सुकुमारी, मनहि मन अति भावत ।
तब प्यारी **कर गहि मुख टारत,** नैकु लाज नहि आवत ।

सूरसागर ३०७५

यहा मुख हटाने मे लज्जा और निषेध के दोनो ही भाव लक्षित हो जाते है । यह निषेध करो द्वारा व्यक्त किया गया है । हरिराम व्यास ने ऐसे प्रसंग के उद्घाटन पर नेत्रो का सहारा लिया है ।

"स्याम काम बस चोली खोलत, आतुर निसि कै भोरे ।
डाँडी छाडि करत परिरम्भन, चुम्बन देत निहोरै ।
सैननि बरजति पियहिं किसोरी, दै कुच कोर अंकोरै ।

वचन-निषेध--दैनिक जीवन की छेड-छाड मूलक विभिन्न क्रियाओ मे नायिका द्वारा वचन-निषेध आकर्षक हो जाता है । दान-प्रसग पर इस प्रकार के निषेध का वर्णन प्राय किया गया है । एक गोपी कहती है कि कृष्ण आज प्रात काल से ही झगडा कर रहे है । वैसे तो मैं दही नही दे सकती, परन्तु वे छीन कर चाहे सम्पूर्ण दही ले ले । उसके इस वचन-निषेध मे भी उसका मन कृष्ण मे अटका रहता है और उसका पग आगे बढता ही नही है ।[1] इस पद्य मे

---

1 भोरहि ते कान्ह करत मो सो झगरो ।
औरनि छाँडि परे हठ हमसो, दिन प्रति कलह करत नहिं डगरो ।
अनबोहिनी **तनक नहिं दैहो, ऐसे हि छीनि लेहु बरु सगरो ।**
अचल खेचि-खेचि राखति हौ, जान देहु अब होत है दगरो ।
मुख चूमति हँसि कठ लगावति आपुहि कहति न लाल अचगरो ।
सूर सनेह ग्वारि मन अटक्यौ, छाडहु **दियो परत नहि पगरो ।**
परम मगन है रही चितै मुख, सबते भाग याहि को अगरो ।

सूरसागर

'ऐसेहि छीनि लेहु वरु सगरो" कहने से दही के छीन लिये जाने पर सुख की अनुभूति और तदर्थ स्वीकृति की पूर्ण व्यञ्जना है। कृष्ण द्वारा किये जाने वाले आलिंगन का गोपियाँ निवारण करना चाहती है। इस निषेध से उनके मिलन की इच्छा अधिक प्रबलता से व्यक्त हो जाती है। ऐसे दान के प्रसगो पर निषेध के दिये गये कारणो से मन की अभिलाषा ही व्यक्त होती है। इस दृष्टि से निवारण तो इच्छा-पूर्ति का माध्यम है। इसमे कृत्रिमता अथवा बनावटी पन नही दीख पडता है, अपितु अन्त करण की सम्पूर्ण लयता के साथ गोपी के मन की समस्त चेतना कृष्ण का सुखानुभूति मे अपने जीवन की सार्थकता पा लेती है। निषेध तो मिलन का एक बहाना मात्र है, जिसके अभाव में सयोग सुख मे फीकापन आ जाता है।

दान-लीला प्रसग पर गोपियाँ कृष्ण की क्रियाओ के अनौचित्य का प्रतिपादन करती है। उनका कथन है कि हमारे यौवन मे इनकी आँख क्यो गडती है "हमरो जोवन रूप आँखि इनकी गडि लागत"। वे नाना प्रकार से कृष्ण की विनती करती है, उन्हे छोड देने को कहती हैं, परन्तु मन मे सानिध्य-लाभ की लालसा वनी रहती है।[1] कृष्ण के अग-स्पर्श करने पर मना करती हैं।[2] गोपियाँ चाहती है कि कृष्ण चले जाँय, परन्तु उनका हाथ नही छोडती। इस निवारण का अपना महत्व है।[3] वचन द्वारा इस निषेध मे हृदय की

---

1 मटुकी लै जु उतार धरी।
इन मोहन मेरो अँचरा पकर्यौ, तब हौ वहुत डरी।
मोहि को तुम गहि जू रह्यौ हो, सग की गई सगरी।
पैंया लागि करत हौ विनती, दुहुँ कर जोरि खरी।
परमानन्द प्रभु दधि वेचन की विरियाँ जात टरी।

अष्ट० परि० पृ० १६२

2 (1) मोहन मनमथ मार, परसत कुच नीवी विहार।
वेपथु युत नेति-नेति वदति भामिनी।
(11) वधू कपट हठि कोप कहत कल नेति-नेति मधु बोल। हित हरिवश
(111) स्याम काम-बस तोरि कचुकी, कर जनि गहि कुच कोर।
स्यामा मु च-मु च कह, खण्डित गव अधर की ओर।।

पृ० ३८५ पद २८० उत्तरार्द्ध

3 राधा सकुचि श्याम मुख हेरति,
जाहु-जाहु मुख ते कहि भाषत, करते कर नहि छूटत।

सूरसागर। वे० प्रेस पृ० ३१३

सम्पूर्ण कोमलता अभिव्यक्त हो जाती है। छेड-छाड के प्रसगो पर इस प्रकार की निषेधात्मक उक्ति दीख पडती है। एक गोपी कृष्ण के अचगरी करने पर उसे मना करती हुई कहती है कि 'हे नन्द के लाल, इस प्रकार की बाते न करो, मेरा अचल छोड दो, अन्यथा बहुत जजाल मे पड जावोगे। अभी तो तुम्हारी अवस्था भी नही आई है। 'तरुनई' तो आ जाने दो और मेरे उर से अपना हाथ उठालो, अन्यथा मोतियो की यह माला टूट जायगी—

ऐसे जनि बोलहु नन्दलाला।
छाँडि देहु अँचरा मेरो नीके, जानत और सी बाला।
बारम्बार मैं तुम्हहिं कहत हौ, परिहौ बहु जजाला।
जौबन रूप देखि ललचानो, अबही तैं ये ख्याला।
तरुनाई तन आवन दीजै, कत जिय होत बिहाला।
सूर स्याम उरते कर टारहु, टूटै मोतिन माला।

इन पक्तियो मे निषेध का अनोखा सौन्दर्य है। निषेध और स्वीकृति इन दोनो का मिश्रित भाव भी कही-कही देखने को मिल जाता है। परमानन्द दास ने इसी प्रकार का चित्र प्रस्तुत किया है। उनके वर्णन मे गोपी एक ओर बाँह पकडने से मना करती है और दूसरी ओर कदम्ब की छाया मे बैठकर कृष्ण से वार्तालाप भी करना चाहती है। वह कहती है कि तुम बडे व्यक्ति के पुत्र हो। अत तुम्हारी बात को अस्वीकार भी तो नही कर सकती हूँ—

न गहौ कान्ह कोमल मेरी बहियाँ।
सुन्दर स्याम छबीले ढोटा, हौ नहिं आऊँ या बन महियाँ।
ब्रज बसि बास बडे को ढोटा, करि न सकति तुम सौ फिर नहियाँ।
परमानन्द प्रभु कहि निबहौं कछु, बैठहु नेकु कदम की छहियाँ।

इन उद्धरणो से स्पष्ट हो गया कि शृङ्गार के सयोग पक्ष मे निषेध का स्वीकारात्मक चमत्कार अनेक रूपो मे वर्णित है। वचन-निषेध और क्रिया-निषेध द्वारा मन की झूठी अनिच्छा बताई गई है। इससे नायक का नायिका के प्रति आकर्षण बढ जाता है। वह अपनी चेष्टाओ के कारण मोहक प्रतीत होने लगती है। यह मोहकता रूप-सौन्दर्य का साधक बन जाता है। इसी से रस की सिद्धि होती है। अत आकर्षण को बढाकर मन मे रति का संचार करने मे इन चेष्टाओ की अनिवार्य्यता स्वीकार्य है। इन विशेष चेष्टाओ के साथ अलकार मूलक सामान्य चेष्टाओ से भी रूप का आकर्षण बढ जाता है।

(ख) **सामान्य-चेष्टा**—चेष्टा द्वारा आलम्बन की सौन्दर्य-वृद्धि को

स्पष्ट करने के लिये उसे विशेष और सामान्य चेष्टाओ मे विभाजित किया गया था। सामान्य-चेष्टा के अन्तर्गत अलकारो का सकेत किया जा चुका है। यौवन मे ये अलकार नायिका के सौन्दर्य को बढाने मे सहायक सिद्ध होते हैं। इनके कारण शरीर मे मोहकता एव आकर्षण का आविर्भाव होता है। इन अलकारो की तीन कोटिया--अगज, अयत्नज और स्वभावज-बताई गई है। इनमे अयत्नज अलकार चेष्टापरक न होकर गुण-परक है, क्योकि ये कृति-साध्य नही है, अपितु स्वत ही गुणो के रूप मे इनका उद्‌भव होता है। स्वभावज अलकार स्वभाव सिद्ध होते हुए भी कृति की अपेक्षा रखते हैं। अगज अलकारो मे भी शारीरिक व्यापार ही भावो के वहन किये जाने का प्रधान साधन बनता है। इससे केवल अगज और स्वभावज अलकारो को ही चेष्टा के अन्तर्गत मानेंगे। अगज अलकार के अन्तर्गत, हाव, भाव और हेला की गणना होती है। निर्विकार चित्त मे उत्पन्न प्रथम काम-विकार की भाव' संज्ञा है। 'हाव' मे यही भाव भृकुटि नेत्रादि के विलक्षण व्यापारो द्वारा प्रकट कर दिया जाता है। इन दोनो मे हाव मे शारीरिक-व्यापार की प्रधानता होती है और 'भाव' मे मानसिक वृत्तियो मे एक परिवर्तन आ जाता है। दोनो के एक-एक उदाहरण से इसे स्पष्ट किया जा सकता है —

१ खेलन हरि निकसे व्रज खोरी।
औचक ही देखी तहँ राधा, नैन-विशाल भाल दिये रोरी। ......
सूर-स्याम देखत ही रीझे नैन नैन मिलि परी ठगोरी।

सूरसागर १२९०

२ राधा को मैं तवहि जानी।
अपनैं कर सो माँग सवारैं, रचि-रचि बेनी बानी।
मुख भरि पान मुकुर लै देखति, तासो कहति अपानी।
लोचन आजि सुधारति कर जनि, छांह निरखि मुसकानी।
बार-बार उरजनि अवलोकनि, वा तै कौन सयानी।
सूरदास जैसी है राधा, तैसी मैं पहचानी।

सूरसागर २६७०

इन उदाहरणो मे से प्रथम मे श्रीकृष्ण के चित्त मे राधा को देखकर रीझने का भाव उत्पन्न हो गया और दूसरे मे राधा की विभिन्न चेष्टाएँ उसकी सभोगेच्छा को प्रकाशित कर देती है। इन चेष्टाओ मे लोचनो को आजना, उरज को देखना आदि काम मूलक चेष्टाए हैं। यही चेष्टा सुव्यक्त होकर 'हेला' कही जाती है।

१ देखि सखी मोहन मन चोरत ।
नैन कटाच्छ, बिलोकनि मधुरी, सुभग भृकुटि बिबि मोरत ।
सूरसागर पद २४३२

स्पष्ट हो जाता है कि अगज अलकारो के द्वारा मोहकता बढाने की चेष्टा की जाती है । इन अलकारो से काम-मूलक विलास चेष्टाओ का ज्ञान हो जाता है ।

स्वभावज अलंकारो मे चेष्टापरक केवल दश अलकारो की ही गणना की गई है । इन्हे उनकी चेष्टा की प्रवृत्ति के अनुसार अनेक भागो मे बाँट दिया गया है ।

त्वरा से युक्त चेष्टा मे 'विभ्रम' की गणना होगी । इसमे प्रिय-आगमन के समाचार को सुनकर भूषणो का अन्य अगो मे पहन लेने की क्रिया सम्पन्न होती है ।

निसिवन को जुवती सवधाईं ।
उलटे अग अभूषन ठाई । सूरसागर १६०७

(२) विच्छित्ति,[1] और ललित[2] मे प्रसाधन गत चेष्टा वर्तमान रहती है । अल्प रचना से शरीर शोभा का बढ जाना विच्छित्ति तथा सयोग के समय अग-विन्यास आदि आगिक चेष्टा से मोहकता को बढा लेना 'ललित' कहा जाता है । यथा—

१. धनि वृषभानु-सुता बड भागिन ।
कहा निहारति अग-अग छबि धन्य स्याम अनुरागिनि ।
और तिया नख-सिख सिगार सजि, तेरे सहज न पूरैं ।
रति-रभा, उरबसी, रमा सी, तोहिं निरखि मन झूरैं ।
सूरसागर ३०६२

इस उदाहरण मे जिस सौन्दर्य को अन्य ललनाएँ प्रसाधनादि से प्राप्त करती है, उसे वृषभानुसुता सहज मे ही उपलब्ध कर लेती है ।

---

1 आधौ मुख नीलाम्बर सो ढकि, विथुरी अलकै सोहै ।
एक दिसा मनु मकर चाँदनी, घन बिजुरी मन मोहै । सूरसागर २८०६

2 मनो गिरवर ते आवति गंगा । ....
गौर गात द्रुति विमल बारि-विधि कटि तट त्रिवली तरह तरगा ।
रोम-राजि मनो जमुन मिलि अध, भँवर परत मानो भ्रु भगा ।।
सूरसागर ३०७२

(३) लीला के अन्तर्गत रम्य-वेश, क्रिया और प्रेमपूर्ण वचनो से पारस्परिक अनुकरण की प्रवृत्ति रहती है। इसमे नायक-नायिकाओ मे नकल या अनुकरण की चेष्टा का वर्णन होता है।[1] इस अनुकरण के द्वारा प्रेम की प्रगाढता का आभास मिल जाता है।

(४) अभिव्यक्ति मूलक चेष्टा मे 'कुट्टमित' मे निषेध का सौन्दर्य, 'विव्वोक' मे गर्व और अभिमान के कारण प्रिय के अनादर से उत्पन्न प्रेम भाव की सान्द्रता और 'विहृत' मे समय के अनुकूल अपने भावो को प्रकट न कर सकने के कारण लज्जागत सौन्दर्य होता है। यथा —

(क) आजु रग फूलै कुँवर कन्हाई।
कवहुँक अधर दशन भर खण्डित, चाखत सुधा मिठाई।
कवहुँक कुच कर परस कठिन अति, तहाँ वदन परसावत।
मुख निरखति सकुचति सुकुमारी, मनहि मन अति भावत।
तव प्यारी कर गहि मुख टारति, नैकु लाज नहि आवत।
सूरदास प्रभु काम सिरोमणि, कोक-कला दिखरावत।
सूरसागर ३०७५

(ख) वरज्यौ नहि मानत तुम नैकहुँ, उलझत-फिरत कान्ह घर ही घर।
मिस ही मिस देखत जु फिरत हौ, जुवतिनि-वदन कहौ काकै वर।
सूरसागर २६६१

इन दोनो उदाहरणो मे क्रमश कुट्टमित और विव्वोक के भाव को व्यक्त किया गया है।

विशेष प्रकार की चेष्टाओ से इन भावो की अभिव्यक्ति हो जाती है। 'विहृत' मे अपने भावो की अभिव्यक्ति ही नही हो पाती है। प्रिय-मिलन के अवसर पर लज्जादि के कारण अभिलाषाए अतृप्त ही रह जाती हैं।

१ कहत कछु नहि आजु वनी।
हरि आयै हौ रही ठगी सी, जैसे चित्त धनी। सूरसागर

1 तिहारी लाल मुरली नेक वजाऊ।
जो जिय होति प्रीति कहिवै की, सो धरि अधर सुनाऊँ।
... .
तुम वैठो दृढ मान साजि कै, मैं गहि चरन मनाऊँ।
तुम राधे हौ, मैं हो माधो, ऐसी प्रीति जगाऊँ। सूरसागर २७५६

(५) विलास, किलकिञ्चत और मोट्टायित का सम्बन्ध प्रिय के सदर्भ मे बना रहता है। 'विलास' प्रिय-दर्शनादि से उत्पन्न वैशिष्ट्य का बोधक है। यह शारीरिक चेष्टा या प्रेम के मधुर प्रदर्शन द्वारा व्यक्त होता है। भक्ति काल मे स्त्री और पुरुष दोनो ही पक्षो मे विलास की यह भावना व्यक्त की गई है।[1]

किलकिञ्चित् मे विपरीत एव भिन्न-भिन्न भावो की सबलता रहती है। इसमे प्रसन्नता, दु ख आदि अनेक भाव एक साथ व्यक्त किये जाते है। इन क्रियाओ से प्रेम के आधिक्य की व्यञ्जना होती है।[2] प्रिय वार्ता प्रसग पर उसके प्रति अन्यमनस्कता दिखाना 'मोट्टायित' कहा जाता है।[3]

चेष्टापरक इन सभी अलकारो से स्पष्ट है कि इनके मूल मे प्रेमाधिक्य और संयोग सुख की भावना वर्तमान रहती है। इनसे शारीरिक आकर्षण एव मोहकता की वृद्धि होती है। नायिका की इन अनुकूल चेष्टाओ से मन मे उल्लास और प्रसन्नता होती है, नैसर्गिक शोभा मे मादकता आती है और व्यक्तित्व का रूपाकर्षण बढ जाता है। अत आलम्बन की गुणगत और चेष्टापरक विशेषताओ द्वारा उसके सौन्दर्य की वृद्धि होती है। इन चेष्टाओ आदि के साथ बाह्य-प्रसाधक उपकरणो से भी रूप का आकर्षण बढ जाता है।

---

1 सखियन बीच नागरी आवै।
छबि निरखत रिझ्यौ नन्दनन्दन, प्यारी मनहिं रिझावै।
कबहुँक आगै, कबहुँक पीछै, नाना भाव बतावै।
राधा यह अनुमान करै, हरि मेरे चितहि चुरावै।
सूरसागर २०५८

(ii) गागरि नागरि लै पनघट तै चली कौ आवै।
ग्रीवा डोलति, लोचन लोलति, हरिके चितहि चुरावै।
ठठकति चलै, मटकि मुख मोरै, बकट भौह चलावै।
सूरसागर २०५६

2 सोच पर्‌यौ मन राधिका, कछु कहत न आवै।
कछु हरषै, कछु दुख करै, मन मौज बढावै।
कबहुँ विचारत निठुर ह्वै, सखि ज्वाब बनावै। सूरसागर २६६२

3 मूँदि रहे पिय प्यारी लोचन।
अति हित बेनी उर परसाये, वेष्टित भुजा अमोचन।
मन हरषित मुख खिजति सखिन कहि चतुर चतुरई भाव।
सूर स्याम मन कामिन के फल, लूटत है इहि दाव।

प्रसाधनगत-सौन्दर्य.—

रूप और सौन्दर्य के अभिव्यक्ति पक्ष पर विचार करते हुए बताया जा चुका है कि सौन्दर्य साधक सम्पूर्ण उपकरणो की दो कोटियाँ हो जाती हैं। उन्हे आत्मगत और वाह्य उपकरणो के रूप मे स्पष्ट किया जा चुका है। आत्मगत उपकरण के अन्तर्गत गुण और चेष्टा तथा वाह्य उपकरण मे 'अलंकृति' एव 'तटस्थ' साधनो की चर्चा की गई है।

पात्र के शरीर से भिन्न सौन्दर्य-साधक अन्य उपकरणो को वाह्य उपकरण की संज्ञा दी जाती है। ऐसे उपकरणो मे प्रसाधनगत उपकरणो द्वारा सौन्दर्य मे निखार आ जाता है और छिपा हुआ सौन्दर्य प्रकट और स्पष्ट हो जाता है। इसीसे प्रसाधन सामग्री द्वारा सौन्दर्य को बढाने का प्रयास सदा से होता आया है। वाह्य उपकरणो के माध्यम से सौन्दर्य को बढाने के लिए प्रयोग मे लाये गये शृङ्गार-प्रसाधनो की सख्या सोलह मानी गई है। उबटन, मजन, मिस्सी, स्नान, सुवसन, केश-विन्यास, माग-भरना, अजन, महावर, विन्दी, तिल लगाना, मेहदी, गन्ध-द्रव्य, आभूषण, फूलमाला और पान रचाना। विश्लेषण करने से ज्ञात हो जाता है कि इन सभी उपकरणो को तीन कोटियो मे बाँटा जा सकता है —

१ शरीर पर लगाये जाने वाले उपकरण-इन उपकरणो का स्वतत्र अस्तित्व होता है। उवटन, मजन, मिस्सी, माग-भरना, अजन, महावर, विन्दी, तिल, मेहदी और सुगन्धित द्रव्यो की गणना इसके अन्तर्गत होती है।

२ शरीर पर धारण किये जाने वाले उपकरण—इनके अन्तर्गत वस्त्र, धातु एव रत्नो से निर्मित आभूषण और फूल मालादि का प्रयोग होता रहा है।

३. अन्य उपकरणो मे स्नान, केश विन्यास और पान की गणना होगी। इनमे स्नान से शारीरिक निर्मलता और स्वच्छता आती है, केश-विन्यास से सजावट बढती है और पान द्वारा मुख का सौन्दर्य वृद्धि पाता है।

उपर्युक्त सभी उपकरणो के सामूहिक प्रयोग से रूप खिल उठता है और व्यक्तित्व का आकर्षण बढ़ जाता है। यही कारण है कि इनके प्रयोग की परम्परा विशेषत: स्त्रियो मे ही रही। पुरुषो ने इन सभी सोलह प्रसाधनो का प्रयोग नही किया है। पुरुष पक्ष मे केवल उवटन, स्नान, वस्त्र, आभूषण, माल्यादि और पान का ही वर्णन मिलता है। शरीर की रक्षा और शोभा बढाने वाले साधनो मे धारण किये जाने वाले उपकरणो की महत्ता अधिक होती है। महत्ता के इस क्रम के आधार पर पहले इन्ही का वर्णन किया जायगा.—

(क) **धारण किये जाने वाले सौन्दर्य के उपकरण**—इनमे वस्त्र आभूषण और फूल मालादि को स्थान मिला है। प्राप्ति के मूल स्रोत के आधार पर धारण किये जाने वाले सौन्दर्य-प्रसाधनो के तीन वर्ग हो सकते है (१) वस्त्रादि जिसका निर्माण मनुष्य द्वारा होता है। (२) खनिज पदार्थ अर्थात् धातुओ (स्वर्णादि) से बनाये जाने वाले आभूषण आदि (३) प्रकृति से प्राप्त होने वाले सौन्दर्य-साधक उपकरणो मे फूलमाला आदि द्वारा आकर्षण को बढाया जाता है। इन तीनो प्रकार के उपकरणो मे वस्त्रो की प्राथमिकता सर्वमान्य है। अत सबसे पहले इन्ही का वर्णन किया गया है।

वस्त्र—वस्त्र मनुष्य की सामाजिक आवश्यकताओ की पूर्ति करते है। इन वस्त्रो के प्रयोग मे ऋतु, काल, स्थान एव पद का ध्यान रखा जाता है। भक्तिकालीन वस्त्रो के वर्णन मे कवियो की दो दृष्टियाँ है। (१) दैनिक प्रयोग के वस्त्र (२) विशेष ऋतु और पर्व या उत्सवादि पर प्रयोग मे लाये जाने वाले वस्त्र। इन दोनो ही प्रकार के वस्त्रो की चर्चा भक्तिकालीन साहित्य मे मनोयोगपूर्वक की गयी है। वस्त्रो मे तनसुख, ताफता और खासा आदि वस्त्रो का वर्णन है, इन्हे अम्बर, चीर, पट, बसन आदि के नाम से वर्णित किया गया है। अवस्था और लिंग के अनुसार वस्त्रो मे परिवर्तन होता रहा है।

बालको का शृङ्गार कुलह, कुलही, पाग, पगा आदि से होता था। शरीर के अन्य अगो मे काछनी, चोलना, झगुली, पटुका, पिछौरा, पिताम्बर, बागा और सूथनादि धारण करते थे। श्री कृष्ण के पीत और नीले वस्त्र का वर्णन है। श्रीकृष्ण का पीताम्बर युक्त शरीर विशेष सुन्दर हो जाता है। धोती के स्थान पर काछनी का प्रयोग किया गया है। उपरैना और पिछौरा द्वारा ओढने का काम लिया जाता था। पाग द्वारा सिर की शोभा बढाते थे, "बलि कुंतल बलि पाग लटपटी" "लटपटी पाग पर जावक की छवि लाल।" कूलह और 'पनही' का प्रयोग होता था, 'पहिर पिताम्बर चरन पावरी, ब्रज वीथिन मे जात।' पुरुषो के वस्त्रो मे धोती और पिछौरा का वर्णन मिल जाता है, "यह कहि नन्द गए जमुना-तट लै धोती झारी विधि कर्मट।"

सूरसागर १०-४४

स्त्रियो के वस्त्रो मे भक्त कवियो ने अवस्था का ध्यान रखा है। इस दृष्टि से इन वस्त्रो को दो वर्गो मे विभाजित कर सकते है। (१) बालिकाओ के वस्त्र (२) स्त्रियो के वस्त्र।

बालिकाओ के वस्त्र मे शरीर के वर्ण का ध्यान रखा गया है। गोरे शरीर पर नील वसन और कटि मे फरिया का वर्णन मिलता है "नील वसन

फरिया कटि बाँधे बेरी रुचिर भाल झकझोरी ।"[1] सूथन, नारावद, ओढनी और चूनरी का वर्णन मिलता है ।[2] ध्यान रहे कि इन कवियो ने सामान्यतया वय प्राप्त बालिकाओ के वस्त्रो का ही ध्यान रखा है । किशोरी ललनाओ के प्रति इनकी अधिक रूचि रही है। इनके ओढने वाले वस्त्रो मे चूनरी का अधिक प्रयोग हुआ है ।[3]

स्त्रियो के वस्त्रो का वर्णन और उससे उत्पन्न होने वाली शोभा को सभी भक्त कवियो ने प्रमुखता प्रदान की है। वस्त्रो के इस वर्णन मे कवियो की दो दृष्टियाँ दीख पडती है —

(१) वस्त्रो की सामग्री, बनावट, रगादि की चर्चा ।

(२) अवस्था और परिस्थिति के अनुसार वस्त्रो मे परिवर्तन और उनकी आकर्षक योजना ।

इन दोनो दृष्टियो मे कवियो की प्रसाधक प्रवृत्ति स्पष्ट लक्षित हो जाती है । इस काल के प्रयोग किये जाने वाले वस्त्रो मे दुकूल, वसन, अम्बर, परिधान, कापर, चीर, वस्त्र, पट आदि का व्यवहार किया गया है। सूती और रेशमी दोनो प्रकार के वस्त्रो की चर्चा है । वस्त्रो के रग-साम्य और वैषम्य द्वारा गोरे वदन के रूप का आकर्षण बढाया गया है । अवस्था के अनुकूल किशोरी और तरुणी के वस्त्रो की बनावट आदि मे अन्तर ला दिया गया है । कही-कही दोनो के लिये समान वस्त्र का प्रयोग है । किशोरी राधा की चूनरी का वर्णन और स्त्रियो की चूनरी का वर्णन भी है । फिर भी दोनो के वस्त्रो मे भिन्नता है ।

स्त्रियो के प्रमुख वस्त्रो मे लँहगा, साडी, कचुकी और ओढनी आदि का वर्णन भक्त कवियो की रचनाओ मे मिलता है । इन सभी वस्त्रो की सजावट का ध्यान सदा रखा गया है । ऐसे आकर्षक वस्त्रादि का उपयोगिता मूलक प्रयोग वर्णित किया गया है । इनका मूल उद्देश्य प्रिय को रिझाना था, "ते गोपाल हेतु कुसभी कचुकी रगाय लई ।"[4] वस्त्रो के रग आदि का विशेष ध्यान रखा जाता था । सुरग, पचरग साडी, तन सुख की साडी, झूमक साडी, रेशम की साडी और पटोरी की चर्चा की गई है —

---

[1] सूरसारगर १०५७

[2] सूथन जघन बाधि नारावद,
फरिया दई फारि नवसारी । सूरसागर ७०८
आजु तेरी चूनरी अधिक बनी । परमानन्द ३७६

[3] (i) सुरख चुनरिया भिजोई मेरो, भीज्यौ पिछौरा । चतुरभुज दास २५
(ii) नीलाम्बर, पाटम्बर सारी, सेत पीत 'चुनरी' अनारीरु सूर० ७८४

[4] कृष्णदास पृ० ४४ अष्टछाप पदावली–स० सोमनाथ

१. तैसिये **सुरंग सारी** पहिरे अंग । चतुर्भुज १२६
२. पगनि जेहरि, लाल लँहगा, अग **पचरंग सारी** । सूर १०४६
३. चुनरी चोली बनी, **चुनरी की सारी** । चतुर्भुज दास ३६५
४. **तन सुख सारी** पहिरि झानी । चतुर्भुज दास २०२
५. लँहगा लाल झूमकी सारी, कसू भी बरन पिय हेत रगाई ।

कुम्मन दास ३१६

६. अँग मरगजी **'पटोरी'** राजति । सागर-वेकटश्वर प्रेस १३३२

आँगी, अगिया और कंचुकी को आकर्षक बनाने के लिये कटावदार, जडाऊ और रत्न जटित चोली का वर्णन है । कंचन के सूत से या रत्नो के धागे से बनी आँगी का वर्णन है ।[1] इसमे विभिन्न रगो के प्रयोग से आकर्षण उत्पन्न किया गया है । नील आँगी के साथ लाल माँडनि (तिकोना साज) का रंग-सयोग अच्छा बन बडा है, 'अगिया नील माडनी राती ।[2] गोविन्द स्वामी ने पीली माडनि का महत्व वर्णित किया है । 'चपक तन कचुकी खुली, स्याम सुदेश सुढारी हो । माँडनि पिय पट पीत की ता ऊपर मोतिन हारी हो ।'[3] यहाँ चम्पक वरण तन के साथ आँगी और मोती के हार का रंग–वैषम्य रूप को और अधिक निखार कर आकर्षण का कारण बना देता है । कचुकी पर कसीदा काढ कर उसका आकर्षण बढाया गया है । "कचुकी सोभित कसीदा सु दर ।"[4]

विभिन्न अवसरो एव पर्वो पर बठ-ठन कर सोलह-शृ गार से युक्त होली खेलने का वर्णन है । गोपियो की सुरग सारी, कसी हुई कचुकी, नेत्रो का काजल रूप का आकर्षण बढा देता है ।

१. सारी पहिरि सुरग, कसि कचुकी, काजर दै-दै नैन ।
बनि-बनि निकसि-निकसि भई ठाढी, सुनि माधव के बैन ।

सूरसागर २६८०

२ उततै सब सुन्दरि जुरि आई, करि-करि **अपनौ ठाठ** । नन्ददास
३ सकल सिंगार कियौ ब्रजवनिता, नख-सिख लौ भल ठानि ।

सू० सा० २८६१

---

1 देहो व्रजनाथ हमारी आँगी । ....
सकल सूत कचन के लागे, वीच रतनन की धागी । परमानन्द सागर २०१

2 सूरसागर

3 गोविन्द स्वामी पद १३५

4 गोविन्द स्वामी पद ४२

४ आइ बनि-बनि सकल घोष की सुन्दरि,
तजि अभिमान चली वृन्दावन । कुंभनदास ७१

५ जुवती जन-समूह सोभित तहाँ पहिरे भूषन नाना भेस ।
चतुर्भुजदास ७१

इन उदाहरणो से स्पष्ट है कि वस्त्रो के कटावदार और रत्न जटित होने के मूल मे इनका प्रयोग करने वालो की सौन्दर्य वृत्ति ही है। स्वर्ण के तार युक्त वस्त्रो का आकर्षण धारण करने वाली गोपियो मे भी आकर्षण का विकास कर देता है। ऐसे वर्णनो मे वैभव का प्रदर्शन भी होता है। वैभव सम्पन्न वस्त्रो का प्रयोग बहुधा होली या सावन के विभिन्न उत्सवो पर ही हुआ है। चत्रभुजदास द्वारा प्रस्तुत रूप-चित्रो मे वैभव की यही सम्पन्नता दीख पडती है।[1] वस्त्रो के वैभव, डिजाइन रग-साम्य और वैषम्य द्वारा व्यक्तित्व मे भी आकर्षण उत्पन्न किया गया है। इनका उद्देश्य सामान्य 'रति' का उद्दीपन न होकर अपने आराध्य के रूप-सौन्दर्य को अधिक से अधिक रमणीय बनाना है। यही कारण है कि वस्त्रो के रगादि का विशेष ध्यान रखा गया है।

रंग-सौन्दर्य—अवसर के अनुकूल वस्त्रो के रूप मे अन्तर आ गया है। शृङ्गार करते समय तनसुख की साडी का प्रयोग हुआ है।[2] होली के अवसर पर वस्त्रो के रंगो मे निरालापन आ जाता है। झूलन प्रसग पर भी यही दृष्टिकोण दीख पडता है।

१. झूलन आई रग हिंडोले।
पचरग बरन कसुंभी सारी, कचुकी सोधैं बोरै। सू० सा० ३४५६

२ वाम भाग वृषभानु नन्दिनी, पहिरैं कसुभी सारी।
चत्रभुजदास पृ (२९६–अष्ट० परिचय से)

३ स्याम अग कसुभी नई सारी। सू० ३४१७

४. साँवरे तन कसुभी सारी। , २७८३

नन्ददास ने शृ गार प्रसाधन और रगो के आकर्षण के साथ रूप-

---

1 चत्रभुजदास पृ. ४२/पद ७८

2 ह्या तो तरल तर्यौना कार्कै, अरु तनसुख की सारी। सूरसागर ४४३५
(ii) जुवती अग सिंगार-सवारति। ....
छुद्रघटिका कटि लहगा रग, तन तनसुख की सारी। सू २११६

सौन्दर्य का वर्णन भी किया है ।[1] चत्रभुजदास ने हिंडोला प्रसग पर प्रकृति की पृष्ठभूमि मे रग-वैभव को दिखाया है ।[2] झूलन के इस प्रसग पर युगल रूप का चित्र एव श्रीकृष्ण के सौन्दर्य का वर्णन मिलता है । ऐसे स्थलो पर रगो द्वारा रूप-चित्रण और वातावरण का निर्माण हो सका है ।[3] कवियो का सौन्दर्य-चित्र यहाँ पर दो रूपो मे प्रकट हुआ है । (१) स्त्री का सौन्दर्य-चित्र (२) श्रीकृष्ण का सौन्दर्य चित्र ।

श्रीकृष्ण के रूप-सौन्दर्य का वर्णन करने मे अनुरूप एव प्रतिरूप वर्ण योजना की सहायता ली गई है । स्वर्ण दाम के अनुरूप रग पीत काछनी और प्रतिरूप रग नील वर्ण की सुन्दर योजना कृष्णदास ने की है ।

कटि तट सोहति हेमनि दाम ।
पीत काछ पर अधिक विराजत, न्याइ लजावत काम ।
तेरे नील पट ओढ रसिक वर, अधिक विराजत जाम ।

अष्ट० परि० पृ २३५/०८ कृष्णदास

चत्रभुजदास ने प्रतिरूप वर्ण-योजना द्वारा फहराते हुए नील पट पर लाल पाग का सौन्दर्य देखा है ।[4] छीत स्वामी ने वेष-भूषा और प्रकृति-चित्रण मे इसी रग-योजना का सहारा लिया है ।[5] कुम्भनदास जी ने अनुकूल वर्ण-योजना द्वारा श्याम और पीत रगो की सगति बैठाई है ।[6] कृष्णदास ने वर्णो

---

1 गोकुल की पनिहारी पनियाँ भरन चली,
बडे-बडे नयना तामे खुभि रह्यौ कजरा ।
पहिरे कुसुभी सारी, अग-अग छबिभारी,
गोरी-गोरी बहियन तामे मोतिन को गजरा ।

2 छबीले लाल के सग ललना झूलत सुरग हिंडोरे ।
सोभित तन गोरे स्याम पीरो पटु कसुभी सारी ।
तैसिय हरित भूमि, तैसिये थोरी-थोरी बूँदे ।
चत्रभुजदास—पृ ७४ पद १२२ काँकरौली ।

3 झूलत सुरग हिडोरै, मुकुटधर बैठे है नन्दलाल ।
लाल काछनि कटिपर बाँधे, उर सोभित वनमाल । अष्ट० परि० २२६/१४

4 आजु भाई पिताम्बर फहरात ।
कुडल लाल कपोल विराजत, लाल पाग फहरात । चत्रभुजदास ११२/२०५

5 च० ४१/६२ काँकरौली

6 ककन-कुनित चारु चल कुडल, तन चदन की खोरी ।
माथे कनक वरन को टिपारो, ओढे पीत पिछौरी । कु० ७६/२०८

का कहीं-कहीं ध्वनि द्वारा निर्देश किया है ।[1] इनके मन मे रगो का विशेष मोह दीख पडता है । गोपी या राधा के वस्त्रो के विभिन्न रगो द्वारा प्रिय को रिझाने की चेष्टा की गई है—

लहँगा लाल झूमक की सारी, पचरग सिर ओढनी बनाई ।
नवरंग उर तन सुख की चोली, कसुभी वरन पिय हेतु रगाई ।
कृष्णदास पृ १६ कॉकरौली ।

ध्रुवदास ने गोरे शरीर पर हरी साडी द्वारा रूप को निखारने का प्रयास किया है । प्रसाधन के रूप मे राधा की साडी, कचुकी, वेनी आदि का वर्णन है । वस्त्र और आभूषण इन दोनो के युगपत् प्रयोग द्वारा राधा की रूप-माधुरी व्यक्त की गई है—

सारी हरी ने हर्‌यौ मन लाल को, मोहिनी-मोहिनी के तन सोहै ।
अगिया लाल सुरग बनी, लहि गातनि रग खरो मन मोहै ।
'शृ गार-सत' कवित्त १५४ ध्रुवदास

छीत स्वामी ने नील पट के बीच पीत कञ्चुकी के रग-वैषम्य द्वारा आकर्षण उत्पन्न किया है ।

"राधे रूप-निधान गुन आगरी नन्दनन्दन सग खेली ।.... ....
नील पट तन लसे पीत कचुकी कसे, सकल अग भुवननि रूप-रेली ।...

गोपी या राधा और श्रीकृष्ण रूप मे स्त्री और पुरुष दोनो के वस्त्रो का प्रसाधन रूप मे समुचित प्रभाव उत्पन्न करने के लिये कवियो ने वस्त्रो के वर्णन मे अपनी रग-सम्बन्धी प्रतिभा का पूर्ण परिचय दिया है । स्त्रियो के वस्त्रो द्वारा रूप को आकर्षक बनाने का प्रयास अधिक किया गया है । सूरदास का रग-विधान आकर्षक था । सारी के लिये लाल और पीले रग का वर्णन है । चूनरी के अनेक रग के होने का वर्णन है । 'नीलाम्बर पाटम्बर सारी, सेत पीत चुनरी अरुनाए ।'[2] "पहिरे राती चूनरी, सेत उपरना सोहे हो ।" पचरंग साडी का सकेत है । कुसुंभी रंग के अतिरिक्त नील, लाल, पीला आदि विभिन्न रगो द्वारा आकर्षण उत्पन्न किया गया है । श्रीकृष्ण के नवरगी स्वरूप का वर्णन है । 'आजु बनौ नवरग पियारो ।"[3] "आजु वने नवरग छबीले[4] अनेक रगो से युक्त वस्त्रो का प्रयोग भी वर्णित है 'पहिरे वसन अनेक वरन तन, नील

---

[1] अष्ट० परि० पृ० २२६ पद १
[2] सूरसागर १४०२ ।
[3] सूरसागर ३२६३ ।
[4] सूरसागर २२६४

अरुन सित पीत-पट"[1], "नये वसन आभूषण पहिरत, अरुन सेत पाटम्बर कोरी'।[2] बहुरगी चूनरी[3] और श्रीकृष्ण के पीत-पट की शोभा सभी कवियो को आकृष्ट करने मे समर्थ रही है।[4] इसके अनेक रग के होने का वर्णन है। चूनरी के गाढ़ेपन को व्यक्त करने के लिये चुह-चुही और डह-डही जैसे शब्दो का प्रयोग है।

कचुकी और लहगा के लाल, पीले और नीले रग बताये गये है। कही-कही श्वेत अगियाँ का वर्णन है।[5] पाग जावक रग मे रगी गयी है। 'लटपटी पाग महावर पागी।' इन रगो को चमत्कार पूर्ण बनाने के लिये प्रकृति से उपमानो को ग्रहण किया गया है। नीले, पीले और श्वेत रगो के लिये बादल, दामिनि-स्वर्ण रेखा, बक-पंक्ति आदि का साम्य उपस्थित किया गया है। फूलो के रगो मे केसर, कुमकुमा और टेसू के रग का सकेत है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि प्रसाधन के रूप मे प्रयुक्त वस्त्रो के धारण करने मे अवस्था, परिस्थिति और पर्व आदि का विशेष ध्यान रखा गया है। विभिन्न अगो मे भिन्न-भिन्न वस्त्र धारण किये जाने की परम्परा थी। स्त्री, पुरुष बालक और बालिकाओ के वस्त्रो मे भी भिन्नता और अवस्था के अनुसार उनकी लजावट और कटाव, कसीदाकारी आदि होता रहा हैं। कई वस्त्र स्त्री–पुरुष दोनो धारण करते थे। उपरैना ऐसा ही वस्त्र है। लहँगा का प्रयोग स्त्री और किशोरी कन्याए भी करती थी। किशोरी के प्रयुक्त वस्त्र के लिये 'फरिया' का प्रयोग हुआ है।[6] गोपी या राधा के वस्त्रो के रगो का गाढापन उनके व्यक्तित्व को निखार देता है। नील, पचरग, कुंसुभी लाल, सतरग आदि से गोरा रंग और अधिक खिल जाता है। पुरुष व बालको के वस्त्रो मे भी भिन्नता है। श्रीकृष्ण का पाग गोपियो को आकृष्ट कर लेता

---

1 सूरसागर ३४८७।

2 वही ३५२६

3 चूही-चूही चूनरी बहुरंगना ३४४८।
(ii) रग-रग बहु भाँति के गोपिन पहिराए। ३६६०

4 (i) भीजेगौ पियरो पट आवत है मेहरा ३१६५
(ii) नील-पीत दुकूल स्यामल गौर अग विकार। सूरसागर

5 सूरसागर ३४४९

6 नील वसन फरिया कटि वाँधे, वेनी रुचिर पीठ झकझोरी। सूरसागर

है ।[1] उनकी श्याम लहरिया आकर्षक है ।[2] अत स्पष्ट हो जाता है कि रूप के आकर्षण मे सिले या बिना सिले हुए वस्त्रो का महत्व है । इनके रगो के साम्य या वैषम्य द्वारा व्यक्तित्व को आकर्षक बनाया जाता है । रूप-सौन्दर्य के वर्णन मे वस्त्रो का प्रयोग अवस्था के अनुसार ही हुआ है । प्रसाधनो द्वारा रूप के प्रभाव की भी व्यञ्जना की गई है । सौन्दर्य की अभिव्यक्ति के साथ प्रसाधनगत उपकरण, नख–शिख और अग-विशेष का चित्रण हो सका है । कोमल, सुकुमार और आकर्षक व्यक्तित्व द्वारा सौन्दर्य का उत्कर्ष वर्णित है । यही कारण है कि श्रीकृष्ण के वीर-कर्म के उपरान्त तत्काल भक्तिकालीन कवि की दृष्टि मे उनका कोमल और मधुर व्यक्तित्व उभर आता है और वह पीताम्बर धारी श्रीकृष्ण के आकर्षक रूप का वर्णन करने लग जाता है । उनका वीर-रूप अधिक काल तक भक्त कवियो को नही रमा पाता । ऐसे वीर और मधुर रूप का वर्णन लीला-सौन्दर्य के अतर्गत माना जा सकता है, जिसमे विभिन्न लीलाओ के उपरान्त उनका प्रसाधित सौन्दर्य वर्णित है । ऐसे स्थलो पर वस्त्रो के साथ प्रसाधन रूप मे आभूषणो के प्रयोग से सौन्दर्य बढ जाता है । अत' आभूषणो को प्रधान और मुख्य सौन्दर्य-प्रसाधक उपकरण माना जाता है । वस्त्रो के साथ आभूषणो का समुचित सहयोग सौन्दर्य को बढा देता है । यही कारण है की भक्तिकालीन कवियो ने आभूषणो द्वारा सौन्दर्य वृद्धि का प्रयास किया है ।

आभूषण––सौन्दर्य-साधक उपकरणो मे आभूषणो का मोह सदा रहा है । इसकी गणना शरीर पर धारण किये जाने वाले सौन्दर्य-प्रसाधनो मे होती है । धातु-रत्नो से निर्मित अलकार शोभा बढाने के पर्याप्त साधन हो जाते है । इनकी प्राप्ति के दो स्रोत होते है । (१) खनिज पदार्थों के रूप मे जमीन से प्राप्त होने वाले धातु एव रत्न (२) प्राणियो से प्राप्त होने वाले उपकरणो मे मोती की गणना होती है । इन दोनो ही प्रकार के पदार्थों के प्रयोग का वर्णन भक्ति कालीन साहित्य मे मिलता है ।

आभूषणो द्वारा व्यक्ति के सामाजिक स्तर और स्थिति का ज्ञान होता है । इससे उसकी आर्थिक स्थिति भी स्पष्ट हो जाती है । इसी से स्त्री और

---

1 ता दिन ते मोहि अधिक चटपटी ।
जा दिन ते देखे इन नैननि, गिरधर बाँधे पाग लटपटी ।
परमानन्द प्रभु रूप विमोही, या ढोटा सो प्रीति अति जटी ।

2 आजु अति शोभित है नन्द लाल ।
श्याम लहरिया की पाग बनी है, तैसाई पिछौरा लाल ।
कृष्ण दास पृ० ११ पद ३० काँकरौली ।

पुरुष दोनो ही आभूषण के प्रेमी रहे है । इन आभूपणो के धारण करने से दो प्रकार के उद्देश्यो की सिद्धि होती है (१) आभूपणो के धारण द्वारा अपने वैभव का प्रदर्शन और उससे आत्म-तुष्टि का भाव । (२) आभूषणो के माध्यम से रूप के आकर्षण को बढाकर प्रिय को रिझाने का प्रयास । भक्तिकाल मे इन दोनो उद्देश्यो का वर्णन मिलता है । इस काल के कविगण स्वय भी आभूषणो के आधिक्य से युक्त अपने आराध्य के ऐश्वर्यपरक रूप को प्रस्तुत करके आत्मतृप्ति पाते है और गोपियो को भी सन्तोष होता है कि उनके पास आभूषणो की सख्या अधिक है ।[1] सामाजिक वैभव का पूर्ण-प्रदर्शन अच्छी प्रकार से हो सका है । यही कारण है कि इन भक्त-कवियो ने अपने आराध्य श्रीकृष्ण और उनकी अनन्त सहचरी श्रीराधा एव गोपियो के सौन्दर्य को बढाने तथा वैभव के प्रदर्शन हेतु आभूषणो की पूरी तालिका ही प्रस्तुत कर दी है । ये आभूषण स्वर्ण, मोती, माणिक, रत्न, लाल, आदि बहुमूल्य पदार्थो के बने हुए होते थे । इन बहुमूल्य पदार्थो को देखकर सहज मे ही यह अनुमान हो जाता है कि आभूषणो की यह समृद्धि जन-सामान्य की नही हो सकती है । यह वर्णन एक ऐसे वर्ग का है, जिसके चारो ओर समृद्धि बिखरी पडी है । विभाजन की दृष्टि से पुरुष एव स्त्रियो के अनेक आभूषणो मे भिन्नता रही है ।

आभूषणो से युक्त श्रीकृष्ण की जिस शोभा का वर्णन किया गया है, वह प्राय उनके शिशु रूप या किशोर रूप का चित्र प्रस्तुत करता है । उनके प्रत्येक अग मे भिन्न-भिन्न आभूषण शोभा पाते है । सिर पर मुकुट -माथे पर-गजमोती, लटकन, कानो मे दुर' और मकराकृत कुण्डल, गले मे कठुला हँसुली, मोती की माला, बाहु मे अगद और केयूर, हाँथ मे चूरा और पहुँची कटि मे क्षुद्रघंटिका और करधनी' पैरो मे नूपुर पैजनी[2] आदि द्वारा शारीरिक आकर्षण को बढाया गया है ।

---

1 जितनौ पहिरि आजु हम आईं, घर है याते दूनौ । सूरसागर १५४१

2 भूषण 'मुकुट जराइ जर्यौ है ।" सागर १०५०
''अष्ट छाप काव्य का सास्कृतिकमूल्यांकन' से उद्धृत
(ii) मोर मुकुट मुरली पीताम्बर अरु गु जा बन माल । परमानन्द २२३
(iii) कटि किकिनी चन्द्रिका मानिक, लटकन लटकत भाल ।
सागर १०–९६
(iv) कचन के द्वै 'रद्दु' मँगाय लिये, कही कहा छेदनि आतुर की ।
सू० सा० १०–१८०
(v) कठुला कठ वज्र केहरिनख राजत रुचिर हिये । सू० सा १०–८४

प्राणियो से प्राप्त होने वाले सौन्दर्य-प्रसावनो मे मोर का पख और मोती मुख्य है। मोती की माला गले मे धारण की जाती रही है। मोर पखो का बना मुकुट श्रीकृष्ण का प्रमुख सौन्दर्य-प्रसाधन है। इसके विना उनका शृ गार ही अधूरा रह जाता है। मोर मुकुट का प्रयोग स्वतत्र रूप से होता था। छीत स्वामी ने एक स्थल पर सेहरे के बीच मोर पख को गूंथकर नवीत और आकर्षक रूप उपस्थित करने की चेष्टा की है।

"अति उदार मोहन मेरे निरखि नैन फूले री।

बीच-बीच वरुहा चद फूलनि के सेहरा माई कु डल श्रवननि पर निगम-निगम झूलेरी।"[1] आभूषणो से युक्त श्रीकृष्ण की इस शोभा को देखकर गोपियाँ एव राधा रीझ जाती है। मोरमुकुट तो उनके लिये विशेष आकर्षण का केन्द्र वन जाता है। वे स्वय अपने रीझ को व्यक्त कर देती है कि 'मेरा मन गोपाल हर्‌यौ री माई।' श्रीकृष्ण की इस शोभा के पूरक रूप मे गोपियाँ एव राधा के प्रसाधित सौन्दर्य का वर्णन करके रस-दृष्टि से पूर्णता पाने की चेष्टा की गई है। इसीसे व्रजागनाओ के रूप-सौन्दर्य की अभिवृद्धि के लिए भक्त कवियो ने इन आभूषणो का सहारा लिया है।

भक्तिकालीन साहित्य मे व्रजागनाओ के आभूषणो की सख्या बारह-सोलह या बीस वताई गई है।[2] दान के प्रसग पर श्रीकृष्ण द्वारा मोतीमाल, टीका, करनफूल, नकवेसरि कठसिरि, हार, हमेल, कटावदार अगिया, चौकी,

---

(vi) कुडल स्रवन कपोल विराजत, सुन्दरता वन आई।

परमान्द सागर १२०

(vii) कंठ कठुला ललित लटकन, भ्रकुटि मन कौ फद। चर्तुजदास १०

(viii) काखा सोती हँसुली धारे मोहन पीत झँगुलिया सौहै।

परमानन्द ६०

(ix) नख-शिख अ ग सिगार महर मनि मोतिन की माल' पहिराई।

परमानन्द ३०६

(x) कटि किंकिनी कर ककन अंगद, वनमाला पद कमल लुभाई।

गोविन्द स्वामी।

(xi) रुनुक-भुनुक पग वाजत पैंजनियाँ—परमा० ४४

1 छीतस्वामी ३६/८१।

2 (i) द्वादस आभरण सजि कचन तन कीर्तन सग्रह भाग २ पृ० १७८ सू०

(ii) झूलन आई सकल व्रज सुन्दरि षटदस भूषनसारी।

परमानन्द पृ० ७६१

बहुँटा, ककन, बाजूबन्द, क्षुद्रघण्टिका, नूपुर, विछिया आदि का वर्णन कराया है।[1] इन आभूषणो के सम्बन्ध मे भक्तकवियो मे मतैक्य नही है। थोडे अन्तर के साथ इनकी सख्या अधिक हो जाती है। आभूषणो के प्रति सहज रुचि और उसके प्रदर्शन के माध्यम से समृद्ध वर्ग का ज्ञान होता है। गोपियाँ वडे अभिमान के साथ कहती है कि तू एक ही हार मुझे क्यो दिखलाती है। तेरे तो नख-से-शिख तक आभूषण विराज रहे है, इन्हे क्यो छिपा रही है ? [2] समृद्धि का यह प्रदर्शन दो रूपो मे हो सका है (१) दूसरे गोपी द्वारा आभूषणो की गणना वाले पदो से (२) स्वय गोपियो की अपनी उक्ति द्वारा आभूषणो का कथन और उससे उत्कर्ष को प्राप्त होने वाली शोभा का सकेत। एक गोपी अपनी सखी से कहती है कि अभी क्या देखती हो ? मैं आज जितने आभूषण पहन कर आई हू, घर पर अभी इससे दूने आभूषण हैं, "जितनौ पहिरि आजु हम आई, घर है यातै दूनौ।"[3]

आभूषणो के माध्यम से समृद्धि की अभिव्यक्ति करने और आत्मतुष्टि के लिये एक-एक अग मे अनेक आभूषण धारण किये जाते थे तथा प्रत्येक अग मे अलग-अलग आभूषण धारण करने की परम्परा थी। ये आभूषण विभिन्न अगो की शोभा वढाते थे। टीका, शीशफूल, माँगपाटी, चन्द्रिका और मोती की लड से मागो की शोभा वढाई गई है।[4] शीश पर बेनी या वेना धारण करके नवोढाएँ आज भी अपना सौन्दर्य एव आकर्षण बढाती हुई दीख पडती है "बेनी गुही बिज माँग सँवारी, सीसफूल लटकारी।"[5]

भक्तिकालीन साहित्य के अनुसार ब्रजाँगनाएँ कानो मे अवतस, कर्णफूल, खुटला, झुमका तरकी, तरिवन, तर्यौना, ताटक आदि धारण करती थी।

(1) कनक 'करनफूल' भृकुटि गति मोहत, कोटि अनग।

चतुर्भुजदास १०८

---

1 सूरसागर १५४०।

2 सूरसागर २१५८।

3 सूरसागर १५४१।

4 (i) बेनी गुही बिच माग सवारी, सीसफूल लटकारी।

गोविन्द स्वामी २०४

(ii) मोतिन माँग विथुरी ससि मुख पर। कुम्मनदास ३०५

5 गोविन्द स्वामी २०४

(ii) खुटिला खुँभी जराय की मृगमद आउ सुदेश ।
गोविन्द स्वामी-कीर्तन सग्रह भाग २ पृ-१३०

(iii) करनफूल 'झूमका' गज मोतिनि, विथुरि रहे लपटाने ।
चतुर्भुजदास-३६६

(iv) फूलन के 'तरौना' कुडल फूलन किंकिनी सरस सँवारी-
नन्ददास पृ-३७८

(v) स्रवन पास ताटक सोहत, मानो रवि ससि जुगल परे मन फद ।
कृष्ण० सोम० पदावली-पृ० ५४

तरकी धारण करने की परम्परा आज भी बनी हुई है । प्राय हीरे की तरकी पहनी जाती है । नाक के आभूषणो मे बेसर, बुलाक, नथ, नथिया आदि पहनते है ।

गले मे पहने जाने वाले आभूषणो की सख्या सबसे अधिक है । हार, कठश्री, चौकी, टीक, माला, मुक्तावली, हमेल, दुलरी, तिलरी, मोतिसिरि आदि द्वारा शोभा बढाई जाती थी । हाथो मे बाजूबन्द, टॉड और बहुँटा, कलाई पर कगन, कडा, चूरा, चूरी, पहुँची, वलय, अँगुलियो मे मुदरी, अँगूठी, कटि मे करधनी, क्षुद्रघटिका, दाम काँची, मेखला, रसना; पैरो मे अनवट, विछिया, पैजनी, नूपुर, पायल, घुँघरू, जेहरि आदि आभूषण पहने जाते थे ।

उपर्युक्त आभूषणो की अधिक सख्या और अगो मे उसके विन्यास द्वारा सामाजिक समृद्धि के साथ आत्म-प्रदर्शन की प्रवृत्ति भी दीख पडती है । धारण किये जाने वाले सौन्दर्य-प्रसाधनो मे आभूषणो का महत्व निर्विवाद है । इन आभूषणो को धारण करके सामाजिक स्थिति का ऐश्वर्यपरक रूप चित्र प्रस्तुत किया गया है । अपने को सजाना तो इसका प्रमुख उद्देश्य है ही । इन्ही आभूषणो से सहज रूप और भी अधिक खिल उठता है ।[1] स्वय 'मोहन' आभूषणो से 'सिंगार' करके 'मोहिनी' की शोभा को बढा देते है । 'नागरी' की

---

[1] सहज रूप की रासि राधिका, भूषन अधिक विराजै । सूरसागर २०६३

(ii) बनी ब्रजनारी सोभा भारि ।
पगनि जेहरि, लाल लहगा, अग-पचरग सारी । सूरसागर १६६१

(iii) जुवती अग सिंगार सवारति ।
वेनी गूथ माग मोतिनि की, सीसफूल, सिर धारति । सू० २११६

(iv) मोहन मोहिनि अग सिंगारति ।

शोभा अनोखी हो जाती है, उसकी छवि वढ जाती है। सौन्दर्य वृद्धि मे सहायक इन आभूषणो की उपादेयता भी कम नही रहती है। धातु एव रत्नो के अतिरिक्त प्रकृति द्वारा प्राप्त होने वाले सुगन्धित पदार्थो को भी सौन्दर्य प्रसाधनो के रूप मे धारण करने की परम्परा आजतक बनी हुई है। ऐसे पदार्थो मे फूल-माला आदि की गणना होती है।

प्रकृति-सुलभ सौन्दर्य के उपकरण—शरीर पर धारण किये जाने वाले सौन्दर्य प्रसाधनो मे प्रकृति से प्राप्त होने वाले पदार्थो का महत्व निर्विवाद है। ऐसे पदार्थो मे ऐश्वर्य का प्रदर्शन न होकर मुक्त प्रकृति के साधनो का प्रयोग होता है। इसमे नागरिक जीवन का वैभव न होकर स्वच्छन्द नैसर्गिक जीवन का उन्मुक्त उपभोग करने के लिये प्राप्त साधनो का प्रयोग होता है। ऐसे साधनो की दो कोटियाँ होती है (१) पशुओ से प्राप्त पदार्थ मे मोर चन्द्रिका और लगाये जाने वाले साधनो मे कस्तूरी का वर्णन किया गया है (२) वनस्पतियो से प्राप्त होने वाले पदार्थो मे फूल, गुजा, वनमाल, तुलसी आदि का प्रयोग वर्णित है।

मोर चन्द्रिका और गुजा माल को धारण करके श्रीकृष्ण की शोभा बढाई गई है। श्रीकृष्ण का शृगार मोर चन्द्रिका के बिना अधूरा रह जाता है। सभी भक्त कवियो ने इस साधन द्वारा श्रीकृष्ण के शृगार का वर्णन किया है।[1] नील-नलिन श्याम तन पर मोर चन्द्रिका शोभित है। 'सोभित सुमन मयूर

बेनी ललित ललित कर गूथत, सुन्दर माग सँवारति।....
नख-सिख सजत सिंगार भाव सौ, जावक चरननि सोहति।
सूर-स्याम तिय अग सवारति, निरखि आपु मन मोहति।
पद ३२४६ सूरसागर

(v) आजु तेरी छबि अधिक बनी नागरी।
माग मोतिन छटा, बदन पर कच लटा,
नील पट घन घटा, रूप रग आगरी। कृष्णदास

1 (i) मुख मुरली सिर मोर पखौवा, वन-वन धेनु चराई। सूर० ३७७२
(ii) बरही मुकुट इन्द्रधनु मानहु, तडित दसन-छबि लाजति" १२५६
(iii) सिखी-सिखण्ड सीस मुख मुरली वन्यौ तिलक उर चदन।" १०९४
(iv) देख सखी चदवा मोर के।
आजु बने सिर साँवरे पियके, पीत छबीली छोर के।
अष्ट० परि० पृ० ३२४ नन्ददास

चन्द्रिका, नील नलिन तनु स्याम' या 'मनिमय जटित मनोहर कुण्डल, सिखी चन्द्रिका सीस रही फवि ।'[1] मोर पंख के बीच के भाग को चन्द्रिका कहते है । श्रीकृष्ण के रूप और सौन्दर्य से सम्बन्धित सभी पदो मे पीत-पट के साथ मोर चन्द्रिका की शोभा वर्णित है ।[2] आज भी वल्लभ सम्प्रदाय के मन्दिरो मे तीन या पाँच चन्द्रिका का मोर-मुकुट विशेप उत्सवो या पर्वों पर पहनाया जाता है ।

वनस्पति और फूलो से भी श्रीकृष्ण एव गोपियो के शृंगार का वर्णन है । शृ गार-प्रसाधनो के रूप मे फूल की महत्ता सदा से है । फूलो के व्यापक प्रयोग की वात प्राय सभी कवियो ने की है । ग्रीष्मकाल मे तो 'फूलो की मण्डली' नाम से एक उत्सव भी मनाया जाता है जिसमे श्रीकृष्ण और राधा का सम्पूर्ण शृ गार फूल से होता है । सम्पूर्ण वातावरण, सभी साधन आदि फूलमय हो जाते है । फूल के हिंडोले पर फूल के खम्भे, डाँडी, चौकी आदि सभी मे फूल की निराली जग मगाहट रहती है ।[3] श्रीकृष्ण फूल के पाग, वागा, आभूपण और श्रीराधा फूल की चोली तथा ककन आदि आभूपण धारण करती है ।[4] इस प्रकार फूलो का शृ गार करके प्रिया-प्रियतम फूलो की सेज पर

---

1 सूरसागर पद ७७२ और २८३७

2 (i) करि सिंगार सव फूलन ही को । सूरसागर २८९२
(ii) कुसुमनि के आभूषण, कुसुमनि के परदा । गोविन्द स्वामी १४६

3 (i) माई फूलन के हिंडौरा वन्यौ झूलि रही जमुना ।
फूलन के खभ दोऊ, फूलन की डाँडी चार,
फूलन की चौकी वनी, हीरा जगमगा ।
फूले अति वशीवट, फूले हैं जमुनातट,
सव सखी मिल गावै, मन भयौ मगना । अष्ट० परि० ३२६ नन्ददास
(ii) फूलन की गेंद कली टपकत उर छिएँ
हँसत लसत हिल-मिल सव मकल गुन-निधान । अष्ट० परि० २६७

4 (i) फूलन की पाग, फूलन कौ चौलना, फूलन पट्टुकाधारी ।
फूलन के लँहगा सारी मधि फूलन अगिया कारी ।
गोविन्द स्वामी पद संग्रह ३ काकरौली
(ii) फूलनि की चोली, फूलनि के चोलना । परमानन्द ७७०
(iii) फूलनि के वसन आभूषण विराजै, फूलनि के फोदा फूल उरहार है ।
नद० परि० ४५
(iv) फूलनि के वागे अरु भूपण फूलनि ही की पाग सँवारी । चतु० १०४

फूलो का तकिया लगाये फूलो के ही भवन मे शोभा पा रहे है। "फूलनि के मडली मनोहर बैठे तहाँ रसिक पिय प्यारी। सोभित सबै साज नाना विधि फूलन को भवन, परम रुचिकारी। फूल के थभ फूल की चौखटि, फूलन बनी है सुदेश तिवारी। फूलनि के झूमका झरोखा, फूलनि के छाजै छवि भारी। सघन फूल चहुँ ओर कगू रनि फूलनि बदनवार सँवारि। फूलन के कलसा अतिशोभित फूलनि सजि विचित्र चित्रसारी। फूल की सेज गेदुवा तकिया फूलन की माला मनुहारी। चत्रभुज दास प्रफुलित राधा रस फूले गोवर्धनधारी।"

अष्टछाप परिचय पृ० २९६

फूलो के ऐसे व्यापक उपयोग से स्पष्ट हो जाता है कि फूल सी सुकुमारी राधा फूल से श्याम के सग फूलो का शृगार करके फूल सी ही खिली पडती है। फूलो के इस प्रयोग के कई उद्देश्य दीख पडते है (१) अपने रूप सौन्दर्य को विकसित करना (२) प्रिय को रिझाना (३) चक्षु एव घ्राणेन्द्रियो को तृप्त करता। इन तीनो उद्देश्यो मे भक्तिकाल का कवि सफल हुआ है। इसी से शृगार साधन मे सँवार-सँवार कर उसका उपयोग किया गयाहै। इससे उत्कर्ष को प्राप्त सौन्दर्य प्रिय को रिझाने मे समर्थ हो जाता है।"फूल सिंगार प्यारी तन सोहत, मदन गोपाल रीझिबे काजे।"[1] फूलो की सुगन्धि द्वारा वातावरण का सुखद निर्माण होता है। इन्द्रियो की तृप्ति होती है और भावनाओ मे अनुकूल वेदनीयता उत्पन्न होती है। विभिन्न फूलो की सुगन्धि मन के लिये रुचिकर प्रतीत होती है।[2]

फूलो के अतिरिक्त गुंजामाल, तुलसीमाल और जवारा धारण करने का वर्णन मिलता है। गुजा का दूसरा नाम 'घुघची' भी है। इसका रग लाल और मुख पर काला होता है। इसे श्रीकृष्ण गले मे धारण करते थे।[3] तुलसी की माला धारण करने का वर्णन भी मिलता है।[4] कमल की माल उनके सौन्दर्य-प्रसाधनो मे है।[5] शुभलक्षण सूचक 'जवारा' बाँधने की चर्चा मिलती है। 'जवारा' दशहरे के पुनीत पर्व पर धारण किया जाता है।[6]

1 छीत स्वामी ६१
2 जूही जई केवरो केतकी, सौरभ सरस धरम रुचिकारी। चतुर्भुजदास १००
3 केसरि की खौरि किये, गुंजा बनमाल हिये।
4 स्याम देह दुकूल दुति मिलि, लसति तुलसी माल।
5 कठ-कठुला नील मणि अंभोज माल सँवारि। सूरसागर १०१६९
6 आज दशहरा शुभ दिन नीको।
गिरधरलाल जवारे बाँधत, बन्यौ है माल कुकुम को टीको।
कीर्तन सग्रह भाग २ पृ० २९३

भक्तिकाल मे शरीर पर धारण किये जाने वाले इन सभी सौन्दर्य प्रसाधनो से स्पष्ट हो जाता है कि इस काल के नर-नारियो की सौन्दर्य-चेतना सदैव जागरुक रहती थी। इससे एक समृद्ध परिवार एव समाज का ज्ञान होता था। इन साधनो की तीन कोटियो का वर्णन है (१) मनुष्यनिर्मित वस्त्रादि प्रसाधन—इसमे वस्त्रो के कटाव, उनकी सिलाई, कटाई, कढाई और कसीदाकारी आदि द्वारा उसे आकर्षक बनाकर मानव शरीर को सजाने की चेष्टा की जाती है। (२) खनिज पदार्थो मे बहुमूल्य धातुओ, रत्नो और समुद्र से प्राप्त मोती आदि के आभूषणो को धारण करके शरीर की कान्ति बढाई जाती है। अपने वैभव का प्रदर्शन और आत्मतुष्टि इनका मुख्य उद्देश्य है। (३) प्रकृति-सुलभ सुगन्धित फूल आदि से अपने को सजाने की प्रवृत्ति रही हैं। इनमे फूल, माला, तुलसी, बनमाला आदि धारण किया जाता है। इन पदार्थों से प्रकृति-प्रियता, सौन्दर्य-वर्द्धन और इन्द्रियो की तृप्ति होती है। शरीर पर धारण किये जाने वाले इन पदार्थो के अतिरिक्त शृंगार प्रसाधनो मे अन्य ऐसे पदार्थों की चर्चा होती है, जिसे शरीर पर लगाकर या सजाकर सौन्दर्य की श्री वृद्धि की जाती है।

(ख) **लगाये जाने वाले सौन्दर्य-साधक उपकरण**—शृंगार के सोलह अंगो मे वस्त्रो आभूषण और फूलमालादि के उपरान्त शरीर पर लगाये जाने वाले सौन्दर्य प्रसाधनो की चर्चा होती है। इन उपकरणो मे उबटन, मिस्सी, अजन, सिन्दूर, महावर, मेहदी, तिल, विन्दी, अगराग आदि की महत्ता है। शरीर पर इन तत्वो के लगाये जाने के कई उद्देश्य प्रतीत होते है—

(१) शरीर मे मार्दव और सौकुमार्य के विकास के उपकरण—उबटन

(२) शारीरिक सौन्दर्थ की अभिवृद्धि करने वाले उपकरण—मिस्सी, अजन, महावर, मेहदी, तिल आदि।

(३) सौभाग्य सूचक उपकरण—सिन्दूर का प्रयोग, माँग भरना, विन्दी और तिलक।

मृदुता उत्पन्न करने वाले उपकरण—शृंगार के उपर्युक्त सोलह अगो मे से स्त्रियाँ सभी का उपयोग करती है।[1] परन्तु पुरुष पक्ष मे इन सभी के

---

1 **नवसत** सजे माधुरी अग-अग। सूरसागर ३२२६

(ii) स्यामा **नवसत** सजि सखि लै, कियौ बरसाने तैं आवनी।

सूरसागर ३४५०

(iii) सजे शृंगार **नवसत** जगमगि रहे अगभूषन। ,, १६७०

(iv) षट-दस सहित सिंगार करति है, अग-अग निरखि सवारति २११५

उपयोग का वर्णन भक्तिकाल मे नही मिलता है। उबटन का वर्णन अनेक स्थलो पर किया गया है। इन प्रसाधनो का मूल उद्देश्य शारीरिक आकर्षण को बढाना है। इससे सर्वप्रथम स्पर्श सुख के लिये शरीर का सुकुमार होना आवश्यक माना गया है। इसके लिये उबटन का प्रयोग होता है।

भक्तिकालीन साहित्य मे उबटन को महत्वपूर्ण प्रसाधक सामग्री मानते थे। शरीर मे स्पर्श की सुखदता लाने के लिये हल्दी, सरसो, तेल, चिरौजी, केशर, अन्य गन्ध द्रव्य या सन्तरे के छिलके आदि को दूध मे पीसकर लगाया जाता था।[1] लोबान, गुलाब, अर्क बहार, अगर, चन्दन, कस्तूरी और सेव आदि के उबटन भी बनाते थे। उबटन का प्रयोग स्त्री-पुरुष दोनो करते थे। श्रीकृष्ण तो 'ताते जल' और 'उबटन' को देखकर तत्काल भाग जाते थे।[2] बालक-बालिकाओ को आरम्भ से ही उबटन लगाया जाता था। भक्तिकाल मे राधा के उबटन लगाये जाने का वर्णन अनेक पदो मे है।[3] इस उबटन के तीन उद्देश्य दिखाई पडते है (१) शरीर के मैल को छुडा देना।[4] (२) शरीर मे मार्दव और सुकुमारता को उत्पन्न करना (३) शरीर की सुगन्धि द्वारा[5] घ्राणेन्द्रिय की तृप्ति और मन को आकर्षित करना।

उबटन और स्नान के उपरान्त गोपागनाये सुगन्धित द्रव्यो से शरीर को सुवासित करती थीं। इन सुगन्धित पदार्थों का प्रयोग उबटन के साथ या गन्ध द्रव्य के रूप मे होता था। सौन्दर्य-प्रसाधन की यह एक प्राचीन परम्परा

---

1 कुमकुम उबटि कनक तन गोरी। अग-अग सुगध चढाई किसोरी।

(ii) प्रात समय उठि जसुमति जननी, गिरधर सुत को **उबटि** न्हवावति।
अष्ट० परि० पृ० २७४ गोविन्द स्वामी

(iii) *अतिहि सुगध फुलेल उबटनौ, विविध भाँति की सौज धर।*
अ० परि० पृ० २६५ छीतस्वामी

(iv) अमित सुगध सुबास अग करि **'उबटन'** गुन गाऊँ री।
परमानन्द ६०८

(v) तेल उबटनौ लै आगे धरि, लालहि चोटत-पोटत री। सा १०-१८६

2 तातो जल अरु तेल उबटनौ देखत ही भज जातै। सूरसागर

3 इत उबटि खोरि सिंगार सखियन, कुँवरि चौरी आनियौ। सू सा १०७२

4 केसरि को उबटनौ बनाऊँ, रचि-रचि मैल छुडाऊँ। सूरसागर १०/१८५

5 केसर सोधी घोरि-जननी प्रथम लाल अन्हवायो री। परमानन्द ०२०७

रही है। इन द्रव्यो मे केशर, कस्तूरी, अगरु, अगरजा, कपूर, मृगमद, चोवा, कुमकुम आदि का प्रयोग होता था।[1] इनका प्रयोग प्राय होली के अवसर पर अधिक वर्णित है। वसन्त पचमी से आरम्भ करके होली तक इन द्रव्यो का प्रयोग आज भी मन्दिरो मे होता है। भक्तिकाल मे ऐसा वर्णन सभी कवियो ने किया है।[2]

सौन्दर्योत्कर्षक-उपकरण—व्यक्तित्व के सौन्दर्य की अभिवृद्धि मे 'अजन' आलम्बन को आकर्षित कर लेने का प्रमुख प्रसाधन है। इससे सम्पूर्ण शरीर की शोभा का विकास होता है। इससे नेत्र कटीले और नुकीले हो जाते है। नयन कोरो मे वर्तमान अजन की एक क्षीण रेखा अनियारे दृगो की शोभा वढाने मे पूर्ण समर्थ हो जाती है। काजल के प्रयोग के दो उद्देश्य दीख पडते हैं (१) प्रिय को रिझाना (२) प्रिय की रसिकता का ज्ञान प्राप्त कर लेना। इनमे सौन्दर्य की वृद्धि द्वारा रूप मे निखार लाना तथा इसी के माध्यम से

---

7 मृगमद मलय कपूर कुमकुमा केसर भलिए साख। सूरसागर ३६१७
(ii) चोवा चदन और अगरचा, जा सुख मे हम राजी ,, ३६०१

2 चद वदन पर चोवा छिरकत, उडत अवीर गुलाल।
नन्ददास अष्ट० परि० ३२६

(ii) चोवा को ढोवा कर राख्यो केसर कीच घनी। ,, ८६
(iii) चोवा चदन अगर कुमकुमा, विविध रग वरसायै।
चत्रभुदास ,, ३२६

(iv) मृगमद अगर कपूर कुमकुमा, मिले अगरजा देह चढ़ाऊँ।
कृष्णदास ,, २२३

(v) तेल फुलेल अगरजा चोवा, कु कुम रस गगरी सिर ढोरी।
परमानन्द दास ,, ३३३

(vi) उडत गुलाल कुमकुमा चदन, परसत चारु कपोल। कुम्भनदास ८०
(vii) चोवा चन्दन बूका वदन, अवीर गुलाल उडाए। चत्रभुजदास ७४
(viii) मोहन प्रात ही खेलत होरी।
चोवा चदन अगर कुमकुमा केसरि अवीर लिए भरि झोरी।
छीतस्वामी–अ परि ५८
(ix) चोवा चदन अगर कुमकुमा, उडत गुलाल अवीर।
गोविन्द स्वामी–अ० परि० १०६

प्रिय को रिझाने का उद्देश्य प्रथम है।[1] सयोग के अवसर पर प्रिय की प्रसन्नता का साधन है। काजर की एक रेखा वशीकरण मत्र के समान है,[2] जिसके समक्ष गोपियाँ आत्म समर्पण कर देती है। यह उनके हृदय मे गड जाता है।[3] काजल की इसी उपयोगिता के कारण गोपियाँ श्रीकृष्ण के अभाव मे काजल लगाना छोड देती है। उनके पुन मिलने पर ही इसे लगाने की बात कहती है।[4]

काजल प्रिय की रसिकता और उनके भ्रमर-वृत्ति को बताने के साधन के रूप मे भी प्रयुक्त हुआ है। ऐसे स्थलो पर काजल का प्रयोग नेत्रो मे न होकर मुख के अन्य किसी भाग पर होता है। यह अनायास ही हो जाता है। प्राय अधरो पर काजल की रेखा देखकर प्रिय की इस रसिकता का ज्ञान होता है।[5] ऐसा वर्णन सभी भक्त कवियो ने किया है।

'तिल' लगाने का उपयोग सौन्दर्य मूलक है। यह कपोल या चिबुक पर लगाया जाता है। तिल या तो नैसर्गिक रूप मे स्वय वर्तमान रहते है या प्रसाधन रूप मे इनकी रचना कर ली जाती है। भक्तिकाल मे नैसर्गिक एव कृत्रिम दोनो प्रकार के तिलो का वर्णन है। सूर आदि सभी कवियो की ऐसी प्रवृत्ति है।[6] तिल के सम्बन्ध मे कवियो की उद्भावनाएँ मौलिक, नवीन और सौन्दर्य मूलक है।

---

1 काजल की रेख बनी, नैननि मे प्रीतम चित चोरै।
कृष्णदास-अष्ट० परि० पृ २२८

2 बसीकरण रस सो भिजी रचि-रचि अजन रेख बनाई। परमानन्ददास ९१९

3 चिबुक विन्दु बर खु भी नैन अजन धरिकै अब जोहै। चतुर्भुजदास १९९

4 तादिन काजल दैहो सखी री।
जा दिन नन्दनन्दन के नैना, अपने नैन मिलैहो सखी री।
परमानन्द दास ५४४ पृ १३५

5 प्यारी चितै रही मुख पियको।
अजन अधर कपोलन विन्दन, लाग्यौ काहू तिय को। सूरसागर

6 (i) चिबुक चारु तिल ताकि बनायौ। सूरसागर २६११।
(ii) चिबुक विन्दु बिच दियौ विधाता, रूप सीव निरुवारि। वही २११८
(iii) चिबुक मध्य सामल विन्दु राजै, मुख-सुख सदन सयानी।
परमानन्द ९१९

१. आनन की उपमा पै सकल विकल भई,
भली शोभा लै रह्यौ तिल कपोल पर को ।
पकज के बीच आली अलिगो समाइ तहाँ,
मानो री बिछुरि छौना बैठ्यो मधुकर को ।[1]

पकज के बीच समा जाने वाले भ्रमर का यह तिल बिछुड जाने वाला छौना है । इसी प्रकार की अनेक नवीन उद्‌भावनाएँ और अछूती कल्पनाएँ समक्ष आती है ।[2] इनसे कवियो की बौद्धिक उर्बरता का ज्ञान होता है ।

हाथ और पैरो का सौन्दर्य बढाने के लिये मेहदी और महावर को प्रसाधन रूप मे प्रयोग किया जाता रहा है । परमानन्द दास और कुम्भन दास ने मेहदी रचाए जाने का वर्णन किया है "अचल सुहाग भाग्य की लहरे, हस्त है मेहदी दागे ।[3] पॉय पैजनी मेहदी राजति पीठि पुरट के पान ।"[4] महावर या जावक स्त्रियो का प्रमुख सौन्दर्य प्रसाधन है। इससे पैरो का आकर्षण बढता है । इसे देखकर प्रिय प्रसन्न होता है 'नखनि रंग जावक की सोभा, देखत पिय मन भावत ।'[5] जावक 'नाइन लगाती थी "नाइन बोलई नवरगी, ल्याऊँ महावर वेगि" ।[6] प्राय शृगार के अन्य उपकरणो के साथ इसका वर्णन किया गया है ।

सौभाग्यसूचक सौन्दर्य के उपकरण—शरीर पर लगाये जाने वाले सौन्दर्य-प्रसाधनो मे सिन्दूर, बिन्दी और तिलक आदि को सौभाग्य सूचक उपकरण मानते हैं । सधवा स्त्रियाँ सिन्दूर का प्रयोग करती है । बिन्दी का प्रयोग कुमारी कन्याएँ भी करती हे । इन उपकरणो से दो उद्देश्यो की सिद्धि होती

---

1 अकबरी दरबार के हिन्दी कवि—पृ ४२०

2 (i) चद से आनन मे तिल राजत, ऐसे विराजत दाँत मसि के ।
फूलन की फूलवारिन मे मनो खेलत है लरिका हबसी के । गग कवि

(ii) रूप की रासि मै कै रसराज को, अकुर आनि कढ्यौ शुभ होना ।
कै शशि ने तम ग्रास कियो, तिहि को रह्यौ शेष दिखात सो कोना ।
प्यारी के गोल कपोलन पै, द्विजराजि रह्यौ तिल श्याम सलोना ।
कै मधु पान पर्‌यौ अलमस्त किधौ अरविन्द मलिन्द को छौना ।

3 परमानन्द ६१६ ।

4 कुम्भनदास ५० ।

5 सूरसागर १०५४

6 वही—१०/४०

है (१) सौभाग्य की सूचना (२) रूप का आकर्षण बढाना। इन दोनो उद्देश्यो की सिद्धि भक्तिकालीन रचनाओ मे बताई गई है।

बालो को सँवार कर बीच से माग निकालने और उसे सिन्दूर से भरने की परम्परा सधवा स्त्रियो मे ही पाई जाती है। माग निकालने को 'पाटी पारना' कहते है "मुण्डली पाटी पारि सँवारे।"[1] माग को सजाने की स्पष्ट प्रवृत्ति दीख पडती है। इसके लिए तीन उपकरणो का उपयोग भक्तिकाल मे किया गया है। फूल, मोती और सिन्दूर द्वारा माग भरकर शोभा बढाने का बार-बार वर्णन किया गया है। मोती से माग की शोभा बढ जाती है।[2] फूलो के द्वारा माग को सजाया गया है।[3] सिन्दूर तो प्रमुख उपकरण ही है। इसका प्रयोग अनिवार्य रूप से होता रहा है।[4] इससे स्त्रियो के मुख पर चमक आ जाती है। इसी कारण माग की शोभा का वर्णन अधिक हुआ है।[5] सिन्दूर लाल रग का एक विशेष पदार्थ होता है। इसी से मिलता एक दूसरा पदार्थ 'इ गुर' भी काम मे लाया जाता है, जिसे अभ्रक, पारद और गधक को घोटकर बनाते है।

बिन्दी अथवा तिलक भी सौभाग्य का सूचक माना जाता है। बिन्दी के लिए सिन्दूर, रोरी और चन्दन का प्रयोग तथा तिलक के लिए मृगमद, केशर आदि का प्रयोग किया जाता था। तिलक का प्रयोग पुरुप वर्ग भी करता था। तिलक लगाने के कई प्रकारो का वर्णन है। सीधा और आडा तिलक लगाया जाता था।[6] तिलक लगाने के लिए कुमकुम, गोरोचन, सिन्दूर आदि का प्रयोग होता था। सिन्दूर सौभाग्य सूचक है। गोरोचन शुभ अवसरो पर प्रयुक्त होता

---

1 सूरसागर ३०२६ बेकटेश्वर–प्रेस

2 (i) मोतिन माग बिथुरी ससि मुख पर, मानहुँ नक्षत्र आए करन पूजा। कुम्मनदास ३०५

(ii) गजमोतिनि सुन्दर लसत मग। सूरसागर २८४६

3 (i) बेनी गुही बिच माँग सँवारी, सीस फूल लटकारी। कुम्मनदास २५०

4 (i) मुख-मण्डित रोरी रग सेन्दुर मांग छुही। सूरसागर १०-२४

(ii) मुखहि तम्बोल नैन भरि काजर, सेन्दुर मांग मु देस जू। कुम्मनदास ६२

5 सिर सीमत सवारी। सूरसागर २११८

6 (i) सोहत केसर आड कुमकुम काजर रेख। चतुर्भुज ८०

(ii) कुमकुम आड स्रवत श्रम-जल मिलि। सूरसागर १७०३

था ।[1] सिन्दूर के साथ कस्तूरी या मृगमद के आडे तिलक की सजावट आकर्षक हो जाती है ।[2] कुम्भनदास ने काजल का तिलक लगाये जाने की बात कही है, "काजल तिलक दियौ नीकी विधि, रुचि-रुचि माग सँवारी ।" ऐसा लगता है कि गोरे बदन पर काले काजल के तिलक से रग-वैषम्य का वैचित्र्य उत्पन्न किया गया होगा । सूरदास ने तिलक के चारो तरफ चूनी लगाकर यही निरालापन दिखाया है, "नाटक तिलक सुदेश झलकत, खचित चूनी लाल ।"[3] बिन्दी द्वारा मुख की शोभा बढाई जाती है । "गोरे ललाट सोहै सेन्दुर को बिन्दु ।"[4] हरि इस 'बिन्दु' को देखकर रीझ जाते है "बदन बिन्दु निरखि हरि रीझै, ससि पर बाल-विभास ।" केसर के तिलक के बीच मे बनाया गया सिन्दूर बिन्दु अद्भुत शोभा युक्त हो जाता है । अब तक स्पष्ट हो गया कि शरीर पर लगाये जाने वाले सौन्दर्य साधनो मे तीन दृष्टियाँ—शरीर को कोमल बनाना, सौन्दर्य की अभिवृद्धि करना और सौभाग्य की सूचना—कार्य करती रही है । इन तीनो द्वारा किसी न किसी रूप मे सौन्दर्य स्पष्ट ही होता है । इन सभी शृङ्गार-प्रसाधनो का एक मात्र उद्देश्य प्रिय को रिझाना है । इस रूप मे भक्तिकालीन कवियो को सफलता मिली है ।

(ग) **सौन्दर्य-साधक अन्य उपादान**—सोलह शृगार के अन्तर्गत जिन सौन्दर्य-प्रसाधनो की चर्चा की गई है, उनमे शरीर पर धारण किये जाने वाले और लगाये जाने वाले उपकरणो के अतिरिक्त भी कुछ ऐसे सौन्दर्य-प्रसाधन है, जो इन दोनो की सीमा मे नही आते है, फिर भी उनकी गणना शृगार-साधन के अन्तर्गत ही होती है । इनसे सौन्दर्य उत्कर्ष को प्राप्त होता है । ऐसे प्रसाधनो मे स्नान, केश-विन्यास और पान रचना का नाम लिया जा सकता है । स्नान से शरीर की 'सुघरता' खुल जाती है, केश-विन्यास से मुख का आकर्षण बढता है और पान अधर की लालिमा को निखार कर व्यक्तित्व का आकर्षण बढा देता है । भक्तिकालीन साहित्य मे इन तीन सौन्दर्य-प्रसाधनो का वर्णन है ।

स्नान से शारीरिक निर्मलता के सम्बन्ध मे मत-वैभिन्य नही है । प्राय. उबटन और तेल-मर्दन के उपरान्त ही स्नान की व्यवस्था होती है । स्नान के

---

1 दधि रोचन को तिलक कियो सिर । परमानन्द ४८९

2 (i) भाल-लाल सिन्दूर बिन्दु पर मृगमद दियो सुधारि । सूरसागर २११८
(ii) सेन्दुर तिलक तम्बोल खुटिला बने बिसेख । चतु० ८०
(iii) तिलक केसरि को ता बिच सिन्दूर बिन्दु बनायौ । सूरसागर २६११

3 सूरसागर २८४२

4 वही–१०७६

जल मे सुगन्वित पदार्थ मिलाये जाते थे। भक्तिकालीन कृष्ण साहित्य मे स्नान के जल मे केशर और अष्टगध मिलाये जाने का वर्णन मिलता है।[1] यह जल ऋतु के अनुसार उष्ण या शीतल हुआ करता था।[2] स्नान का वर्णन प्राय श्रीकृष्ण के प्रसग मे आया है। स्नान के पूर्व 'तेल-मर्दन' एव उबटन का वर्णन बार-बार किया गया है।[3] तेल मर्दन एव स्नान से शरीर मे मृदुता और चमक पैदा हो जाती है।

स्नान के उपरान्त केश-विन्यास द्वारा मुख की शोभा बढाई जाती है। केश-विन्यास का मूल सम्बन्ध स्त्रियो से रहता है। सद्य स्नाता के लटो से टपकते हुए जल का वर्णन किया गया है।[4] लम्बे एव एडी तक पहुँचने वाले बालो का सौन्दर्य वर्णित है।[5] ऐसे बालो को सुगन्धित द्रव्यो एव तेल-फुलेल से सुबासित करके उसे चमकीला बनाया जाता है। बिना तेल के बालो मे लटे आ जाती है। बालो के द्वारा ही नायिका की मानसिक स्थिति का ज्ञान हो जाता है। वियोग की अवस्था का आभास बालो के रुखेपन से हो जाता है। कृष्ण की दूरी बढ जाने से गोपियो के बालो की लटे बन जाती है,[6] ये केश-विन्यास करना छोड देती है। कृष्ण के वियोग मे राधा के अलक भी छूट जाते है और उसका बदन कुम्हला जाता है।

सयोगावस्था मे बालो की ऐसी दशा नही रहती है। प्रिय मिलन की भूमिका के लिये विन्यस्त केश आकर्षक होते है। रूप गर्विता या प्रेम गर्विता ब्रजागनाओ के केशो का विन्यास श्रीकृष्ण स्वय करते है।[7] कभी-कभी सखियाँ

---

1 केसर सौधि घोरि जननी प्रथम लाल अन्हवायो री। परमानन्द २०७
(ii) अष्टगध उष्णोदक सौ अस्नान कराये।
नन्ददास—रुक्मिणी मगल पृ० १४६

2 तातो जल अरु तेल उबटनो देखत ही भज जाते। सूरसागर
(ii) उष्ण शीतल अन्हवाय खोर जल चदन अग लगाऊँगी। परमा० ६०८

3 तेल लगाइ कियो रुचि मर्दन, वस्तर मलि-मलि धोए। सूरसागर १—५२

4 तैसीय लट बगरि रही उर पर, स्रवत नीर अनूप। सूरसागर ११६६

5 बडे-बडे बार जु एँडनि परसत, स्यामा अपने अचल मे लिए। सू० २६१७

6 अलक जु हुती भुवगम हू सी, बट लट मनहुँ भई। सूरसागर ३४०४

7 मोहन मोहिनि अग सिंगारति।
बेनी ललित ललित कर गूँथत, सुन्दर माँग सँवारत।

भी वेनी गूँथकर उसे सजा देती है। 'वेनी चम्पक बकुलनि ग्रथित, रुचि-रुचि सखिन सँवारी।' सयोग की अवस्था मे बालो को गूँथकर वेणी बना ली जाती है। इसे फूलो से सजाया जाता है। कलियो का गजरा लगाते है। फुँदने से सुशोभित करते है, "पाँच चँवर पटियन पै गूँथी, डोर चुनाव मे झूले। झूलत छबि फबि सुन्दरता फुँदना जहाँ समतूले।"[1] बालो के सजाने से ही मन के उल्लास का ज्ञान होता है। वेणी के बँधे होने से प्रिय के सानिध्य का ज्ञान होता है और उनका खुला और बिखरा होना वियोगावस्था का सूचक है। मान-दशा मे भी बिखरे बालो का वर्णन है। यह भी एक प्रकार का वियोग ही है। मिलन एव बिछोह की मानसिक अवस्थाओ की सूचना बालो के विन्यास अथवा उसके बिखरे हुए होने से ही मिल जाती है। अत सयोग मे ये बाल सौन्दर्य साधक और वियोग मे दुख को व्यक्त करने वाले होते है। यहाँ पर सौन्दर्य-साधक रूप मे बालो के विन्यास का महत्व स्वीकार किया गया है।

स्नान और केश-विन्यास के साथ पान-रचना का महत्व भी शृङ्गार के प्रसाधनो मे रहा है। सोलह शृङ्गार मे इसकी गणना होती है। इससे अधर मे लाली आती है और मुख का सौन्दर्य बढता है। प्राय मुख की बढी हुई छवि, अधर की लाली और हरि के सुरग वर्ण की चर्चा पान खाने के प्रसग पर की गई है।[2] पान के सग सुगन्धित पदार्थो के सेवन से मुख सुवासित हो जाता है। पान खाने या खिलाने के माध्यम से प्रेम भाव की अभिव्यक्ति होती है। प्राय रच-रच कर पान खिलाया जाता था।[3] प्रिया-प्रियतम एक दूसरे को पान देकर तृप्त होते है।[4]

(ii) वेनी सुभग गुही अपने कर, जावक चरनन दीन्हौ।

(iii) वेनी सुन्दर स्याम गुहीरी—गोविन्द० २०३

1 परमानन्द० ६१६

2 उज्ज्वल पान कपूर कस्तूरी, आरोगत मुख की छबि रूरी। सूरसागर ३९६

(ii) तब बीरी तनक मुख नायौ, अतिलाल अधर ह्वै आयौ।
सूरसागर १०—१८३

(iii) पान मुख बीरी राँची हरि के रग सुरगे। परमानन्द ६६७

3 तब तमोल रचि तुम्हहिं खवावौ। सूर० १०—२११

(ii) बीरी देत बनाय-बनाय। परमानन्द ६७७

4 परमानन्द दास को ठाकुर हँसि दीनौ मुख बीरा। परमानन्द ७१२

(ii) लेकर बीरी पिय प्रिया वदन मनोहर देत।
लेत नाहि जब लाडिली, विनय करन सुख हेत।
युगल शतक पद ४४ 'आदि वाणी'।

भक्ति साहित्य में पान की पीक की चर्चा अधिक हुई है। इसका वर्णन खण्डिता-प्रसंग पर रसिक नायक की लोलुप भ्रमर वृत्ति को व्यक्त करने के लिए किया गया है। कपोलो पर लगी हुई पान की पीक नायक की इस वृत्ति को स्पष्ट कर देती है।[1] परन्तु शृङ्गार प्रसाधन के रूप मे इससे मुख की शोभा बढाई गई है। इसी से इसके सेवन से अधर मे लालिमा के कारण आकर्षण बढता है; दाँतो की द्युति हीरे के समान उज्ज्वल हो जाती है।[2] आलम्बन खिचकर आश्रय के सौन्दर्य-पाश मे बँध जाता है। पान के अभाव मे मुख की शोभा खिल नही पाती है। इसी से विरह के प्रसग पर प्राय इसके अभाव से उत्पन्न प्रभाव का वर्णन मिलता है, क्योकि वहाँ मुख की मलिन द्युति का ही सकेत होता है।[3]

उपर्युक्त विचारो के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सौन्दर्य प्रसाधन के रूप मे भक्त कवियो ने जिन उपकरणो को ग्रहण किया है उन सबसे शारीरिक सौन्दर्य की ही सिद्धि होती है। इन्हे आत्मगत साधन के अन्तर्गत न मानकर सौन्दर्य के बाह्य साधन बताये गये है। गुण और चेष्टा का सम्बन्ध नायक या नायिका की स्वाभाविक या अर्जित वृत्ति से रहता है, जो इसके आश्रय या आलम्बन मे स्वत ही रहते है। इससे इन्हे सौन्दर्य के आत्मगत साधन के रूप मे स्वीकार किया गया है।

सौन्दर्य के बाह्य उपकरणो मे सोलह-शृङ्गार का वर्णन हुआ है। इन उपकरणो का स्वतन्त्र अस्तित्व होता है, परन्तु इनके प्रयोग से शारीरिक शोभा का विकास अधिक होता है। इन उपकरणो की तीन कोटियाँ बताकर उनके व्यावहारिक रूप की समीक्षा द्वारा प्रसाधनगत सौन्दर्य का स्पष्टीकरण किया गया है। नीचे की तालिका से यह स्पष्ट हो जायगा।

(iii) बीरी अरोगत गिरधरलाल।
अपने कर सो देत राधिका, मोहन मुख मे मधुर रसाल।
अष्ट० परि० पृ० २०० परमानन्ददास

1 अधर दसन छत बसन पीक सह अरु कपोल स्रम-बिन्दु देखियत।
गोविन्द दास २४५

2 पीरे पान पुराने बीरा। खात भई दुति दाँतनि हीरा।
मृगमद कन कपूर कर लीने, बाँटि-बाँटि ग्वालिन को दीने।
सूरसागर १२१३

3 मुख तँबोर नहि काजर विरह शरीर विगोये। परमानन्द ५२१

प्रसाधनगत सौन्दर्य—शृङ्गार प्रसाधनो का वर्गीकरण—

(क) शरीर पर लगाये जाने वाले उपकरण—

(अ) मृदुता उत्पन्न करने वाले उपकरण—उबटन, तेल आदि

इनका उद्देश्य (i) शरीर को निर्मल करना

(ii) सुवासित करना

(iii) सुकुमार बनाना।

(आ) सौन्दर्योत्कर्षक उपकरण—

अंजन, महावर, मेहदी, तिल आदि

उद्देश्य (i) सौन्दर्य की वृद्धि

(ii) प्रिय को रिझाना

(इ) सौभाग्य सूचक उपकरण—सिन्दूर, बिन्दी, तिलक

उद्देश्य (i) सौभाग्य की सूचना

(ii) आकर्षण का बढाना।

(ख) शरीर पर धारण किये जाने वाले उपकरण—

वस्त्र, आभूषण, फूलमाला आदि।

प्राप्ति के स्रोत

(अ) **मनुष्य निर्मित**—वस्त्रादि

(i) दैनिक प्रयोग के वस्त्र

(ii) ऋतु एव पर्वो के वस्त्र

उद्देश्य—स्त्री और पुरुषो के रूप सौन्दर्य को बढाना

(आ) **धातु एवं खनिज**—आभूषण

उद्देश्य— (i) वैभव का प्रदर्शन और आत्म तुष्टि

(ii) सौन्दर्य का उत्कर्ष

स्रोत—(i) प्राणियो से प्राप्त होने वाले–मोर पख, मोती

(ii) खनिज रूप मे प्राप्त–स्वर्ण, हीरा, माणिक आदि

(इ) प्रकृति से प्राप्त होने वाले उपकरण

(i) पशुओ से प्राप्त–मोर चन्द्रिका, कस्तूरी (मृगमद)

(ii) वनस्पतियो से प्राप्त–फूल, गु जा वनमाला, तुलसी

(ग) अन्य सौन्दर्योत्कर्षक पदार्थ —स्नान, केश-विन्यास और पान रचना

उद्देश्य (i) शारीरिक स्वच्छता और निर्मलता।
(ii) आकर्षण की अभिवृद्धि।
(iii) नायिका की सयोग या वियोगावस्था का ज्ञान। सयोग मे इनका महत्व और वियोग मे इनका अभाव।

तटस्थ-सौन्दर्य—

भक्तिकाल मे आलम्बन से भिन्न सौन्दर्योत्कर्षक बाह्य-तत्वो का ग्रहण अपने इष्ट देव के माध्यम से किया गया है। ऐसे तत्वो मे तटस्थ अर्थात् प्राकृतिक पदार्थो द्वारा आलम्बन की भावना को उद्बुद्ध करने की चेष्टा की गई है। इस काल मे वर्णित प्राकृतिक सौन्दर्य मे मानव-भावनाओ की सापेक्षता का महत्वपूर्ण स्थान है। इसी से प्रकृति प्राय भगवान के अस्तित्व को लेकर ही समक्ष आती है, उन्ही के समक्ष गतिमान् और क्रियाशील होती है, सहानुभूति तथा चेतना का प्रसार करती है। यह चेतना प्रकृति की अपनी न होकर कवि की आत्म चेतना है। इसी से वह अनेक रूपो मे प्रस्तुत की गई है।

१ **प्राकृतिक–सौन्दर्य का आदर्शात्मक रूप** – यहाँ प्रकृति के माध्यम से उसके मुग्धकारी रूप द्वारा वातावरण निर्माण की मोहकता उत्पन्न की जाती है। कृष्ण की लीला-स्थली मे सर्वत्र प्रकृति की बसन्तकालीन सुषमा छाई रहती है। प्रकृति की शोभा लीला के माध्यम से ही रहती है। अत उसका चिरन्तन सौन्दर्य मुग्धकारी बना रहता है। सूर के वृन्दावन मे सदैव, बसन्तकालीन शोभा बनी रहती है।[1] परमानन्ददास की सौन्दर्य-कल्पना मे यमुना का अवगाहन सुखद रहता है, लहरे चचल होकर झलकती है, कपोतादि गान करते रहते है।[2] गोविन्ददास ने लीला भूमि मे चिर बसन्त देखा है।

प्राकृतिक सौन्दर्य द्वारा रास एव मुक्त-क्रीडाओ के लिये सुखद वातावरण की सृष्टि होती है। इसमे यथार्थ प्रकृति की नवीनता द्वारा सौन्दर्य की कल्पना करके उसे मानव भावनाओ के अनुकूल बनाने की चेष्टा की गई है। इस वर्णन मे प्रकृति के रग-रूपादि के कथन द्वारा प्रभाव उत्पन्न किया गया है।

---

1 वृन्दावन निज धाम कृपा करि तहा दिखायो।
सब दिन जहाँ बसन्त कल्पवृक्षन सो छायो। सूरसागर

2 "अति मजुल जल प्रवाह।" कीर्तन सग्रह (भाग ३ उत्तरार्द्ध) पृ० ८

(२) प्रकृति का सौन्दर्य लीला की भावना से होने के कारण विस्मय-कारी हो जाता है। वह भगवान के समक्ष गतिमान् ग्रौर क्रियाशील हो जाती है। उसमे सहानुभूति ग्रौर चेतना का प्रसार हो जाता है। वशी-नाद से चल-ग्रचल सभी स्तम्भित हो जाते है, जमुना का प्रवाह रुक जाता है। कृष्ण द्वारा ग्रपने मुख मे ग्रगूठा मेलने से भी प्रकृति का यही विस्मयकारी रूप देखने को मिलता है। इसका कारण कवि की ग्रात्म चेतना ही है। प्रकृति तो एक रस रहती है। कवि ग्रपनी भावनाग्रो के ग्रनुकूल उसे बना लेता है। प्रकृतिगत मोहकता के मूल मे भावनाग्रो का ही प्रथम महत्व है, उसका यथातथ्य रूप गौण महत्व रखता है।

(३) प्रकृति का गतिमय रूप कवि के मन के उल्लास को व्यक्त करता है। यह उल्लास भगवान के ग्रानन्द रूप के कारण है। वसन्त फाग ग्रौर हिंडोले के प्रसग पर प्रकृति का उल्लसित रूप देखने को मिलता है। यहाँ कृष्ण एव गोपियो के मानसिक ग्रानन्द का सौन्दर्य प्रकृति मे दीख पडता है। ग्रत प्रकृति-सौन्दर्य प्रमुख ग्रालम्बन का विषय न होकर भगवान के माध्यम से ग्रपने रूप-सौन्दर्य का विस्तार पाती है। उसके रूप की गति, चेतना ग्रादि कृष्ण के सानिध्य के कारण ही इतनी मोहक हो जाती है।

(४) तटस्थ-सौन्दर्य का वर्णन करने के लिये ग्रालम्बन से भिन्न प्रकृति ग्रादि जिन पदार्थों को ग्रहण किया गया है, उसमे मानवीय रूप-सौन्दर्य का ध्यान वरावर बना रहा है। प्रस्तुत की सौन्दर्याभिव्यक्ति मे प्रकृति का ग्रहण ग्रप्रस्तुत रूप मे भी हुग्रा है। राधा ग्रादि के रूप-सौन्दर्य वर्णन मे प्रत्यक्ष रूप से सादृश्य-विधान द्वारा प्रकृति-सौन्दर्य का बोध कराया गया है। यह वोध 'कूट-शैली' द्वारा ग्रथवा सामान्य-कथन द्वारा हो सका है। सूर का "ग्रद्भुत एक ग्रनुपम बाग" पद कूट शैली का प्रसिद्ध पद है, जिसमे केवल उपमानो के माध्यम से ही उपमेय के सौन्दर्य का वोध करा दिया गया है। ऐसे स्थलो पर उपमानो की उन-उन सौन्दर्यगत विशेषताग्रो के द्वारा उपमेय के रूप-सौन्दर्य की व्यञ्जना की गई है। प्रकृति की शोभा के साथ श्रीकृष्ण या राधा ग्रादि के रूप-सौन्दर्य का ध्यान स्वत ही ग्रा जाता है।

ग्रन्त मे कहा जा सकता है कि भक्तिकालीन कवियो ने ग्रालम्बन से भिन्न प्रकृति ग्रादि तटस्थ सौन्दर्य का जो वर्णन किया है उसमे ग्रात्मीय सम्वन्धो की ही ग्रधिक व्यञ्जना हुई है। यह सम्वन्ध इष्ट देव के माध्यम से व्यक्त हुग्रा है। ग्रलकारो की योजना द्वारा प्रकृतिगत उपमानो के प्रयोग मे भी भावो की ही प्रधानता है। दूती ग्रादि के कथनो मे प्रकृति के सादृश्य मूलक ग्रौर सौन्दर्य-

विधायक अगो का प्रयोग किया गया है। इस प्रकार प्राकृतिक सौन्दर्य का तादात्म्य मानव से कराया गया है। इससे पात्र के भावो का प्रतिविम्ब प्रकृति मे दीख पडने लगता है और वह अवसर एवं परिस्थिति के अनुकूल मोहक, मादक या उद्दीपक बनकर समक्ष आती है। प्रकृति मे मानव-सहानुभूति की चेतना का विकास कही-वही पर यौन-भावना के सग होने लगता है। इससे प्रकृति का ग्रहण मानसिक भावनाओ के प्रतिबिम्ब रूप मे होता है। मन प्रकृति से सौन्दर्य का सचय करके सौन्दर्य की अनुभूति कराता है। इसमे प्रकृति के रूप एव गुण की नितान्त उपेक्षा नही है, क्योकि वही उसकी आधार भूमि है। ऐसे रूप पर भाव का आरोप ही अनुभव एव चयन द्वारा सौन्दर्य का विधान करता है। भक्तिकालीन साहित्य मे प्रकृति के रूप और हृदय के भाव की युगपत् महत्ता है। प्रकृतिगत इस सौन्दर्यानुभूति मे वस्तु का गुण रूप-पक्ष के आधार पर व्यक्त होता है और विभिन्न गुणो को ग्रहण करने की भावना विषयक अनुभूति से वह सुन्दर बनता है। अत कहा जा सकता है कि भक्तिकालीन तटस्थ सौन्दर्य में प्रकृति हमारी भावना और हमारे विचारो से युक्त होकर ही सुन्दर लगती हैं।

निष्कर्ष

भक्तिकाल के उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर इस निर्णय पर पहुँचा जा सकता है कि मानवीय रूप-सौन्दर्य वर्णन के हेतु स्त्री और पुरुष रूप मे राधा-कृष्ण के सौन्दर्य का चित्र अ कित किया गया है। इन दोनो के चित्रो मे समता और भिन्नता दोनो ही दृष्टियाँ दीख पडती है।

श्री कृष्ण का रूप-सौन्दर्य—श्रीकृष्ण के रूप सौन्दर्य का अकन करने मे भक्तिकालीन कवियो ने गुण, चेष्टा, वेशभूषा आदि को अपरिहार्य महत्व दिया है। अ ग-वर्णन की विशेष रुचि प्रदर्शित की गई है। अगो के स्थूल आकार से आरम्भ करके द्यु ति आदि की सूक्ष्मता का अ कन अप्रस्तुत विधान द्वारा हुआ है। अ ग-द्यु ति के लिये अतिसी कुसुम, सजलमेघ, मरकतमणि और पीताम्बर-द्यु ति के लिये विद्यु त आदि का प्रयोग है।

श्रीकृष्ण लावण्य-निधि है। व्रज बालाए उनके अग-अ ग पर रीझ जाती है। उनके नेत्र 'शोभा-निधि' श्रीकृष्ण के रूप मे डूबते-उतराते उसमे अवगाहन करने लग जाते है। क्षण-क्षण परिवर्तित होती हुई रमणीयता को आखो मे बन्द कर लेने के लिये गोपिया रोम-रोम मे आखो के हो जाने की अभिलाषा करती है। उनकी छवि की चमक से गोपियो पर रूप की ठगोरी पड जाती है। वे अनेक माध्यम एव बहानो से श्रीकृष्ण को देखने की चेष्टा करके भी तृप्त नही होती। उनकी मोहिनी के समक्ष सुर, नर मुनि सभी विवश हो जाते हैं।

गोपियो की ग्राखे तो उनके 'रूप-रस मे राँची' सदा उन्ही मे लगी रहती हैं। ऐसे श्रीकृष्ण के प्रसाधनो से उनकी शोभा बढ गई है।

श्रीकृष्ण का सहज सौन्दर्य कोटि-कदर्प को लज्जित करने वाला महा-प्रकाश का पुञ्ज है। ऐसे रूप-पुञ्ज के चित्राकन मे ग्राभूषणो का मोह कवियो के मन मे सदा बना रहा। सिर पर मोरमुकुट, क्रीट, गले मे मोतियो की माला, वनमाला, गुञ्जामाल, कनक-दुलरी ग्रादि, कानो मे कुण्डल, हृदय पर कौस्तुभ मणि, भुजाग्रो मे केयूर ग्रादि, कटि मे कनक मेखला, चरणो मे नूपुर ग्रौर शरीर मे पीतपट शोभा को बढा देते है। कपोलो पर रत्न जटित मुकुट की ग्रद्भुत शोभा विराजमान है। श्रीकृष्ण के इस प्रसाधन मे कवियो की दो दृष्टि काम करती थी (१) श्री कृष्ण के सहज रूप की उद्भावना ग्रौर (२) ग्रप्र-स्तुत रूप मे प्रकृति के रमणीय एव मनोज्ञ वस्तु या दृश्यादि का ग्रहण। इन ग्रप्रस्तुतो के कथन मे व्यतिरेक, उत्प्रेक्षा, उपमा, रूपकादि ग्रलकारो का प्रयोग है। मुख को देखकर चन्द्रमा हतप्रभ हो जाता है, सूर्य-चन्द्र दोनो छिप जाते है। नेत्रो के समक्ष खजन, मीन, मृगज, की चचलता नीरस प्रतीत होती है। ग्रलक छवि के समक्ष ग्रलि कुल मात हो जाता है। कमल प्रतिदिन खिलकर भी मुस्कान की शोभा धारण नही कर पाता। दाँत के समक्ष दाडिम का हृदय फट जाता है . शुक नासिका के समक्ष लज्जित है। ग्रधरो की ग्ररुणिमा के समक्ष बधूक, बिम्बफल ग्रौर प्रवाल पक्ति की महत्ता नही रह जाती। गहरी नाभि सुधा सरसी है, रोमावली, ग्रलि श्रेणी, बक-भृकुटि, कमान है। इस प्रकार ग्रनेक उपमानो के माध्यम से श्रीकृष्ण की शोभा बढाई गई है।

श्रीकृष्ण की चेष्टाग्रो से साक्षात् रस की धारा प्रवाहित होने लगती है। उनकी मन्द मुस्कान, मन्थरगति चटक-लटकभरी चाल, बक बिलोकनि, छबीली चितवन, मुरली वादन, नृत्य-भगिमा, त्रिभगी रूप ग्रादि की मोहकता सर्वोपरि है। उनके ग्रनुभाव उद्दीपक है। उनकी छेड-छाड मे हृदय परबस हो जाता है। हास-परिहास मे ग्राकर्षण है ग्रौर ऐसी चेष्टाग्रो से युक्त उनके शरीर का रग-वैभव ग्रपूर्व है। श्यामल तन-द्युति, ग्ररुण ग्रधर, श्वेत दंत—पक्ति, नेत्रो का तीन रग, गगन की नीलिमा, बाल ग्ररुण की रक्तिमा ग्रादि ग्रसामान्य शोभा विधायक रग वैभव है। इन सभी के संग पीतवस्त्र, फूल-मालादि की श्वेतिमा मणियो की प्रतिबिम्बित कान्ति इन्द्रधनुषी शोभा को धारण करता है। हरित, नील, पीला, ग्ररुण, श्वेत ग्रादि रंगो का ऐसा दुर्लभ सम-न्वय ग्रन्यत्र उपलब्ध नही होगा, परन्तु श्रीकृष्ण की यह शोभा राधा की शोभा के बिना ग्रधूरी है। ग्रत भक्तिकाल मे राधा के रूप-सौन्दर्य की ग्रभिव्यञ्जना पूर्ण तन्मयता से हुई है।

कृष्ण तमालतरु की कनक-वल्लरी राधा के शरीर रूपी केलि-सरोवर का सम्पूर्ण शैशव जल यौवन सूर्य द्वारा शोषित कर लिये जाने पर रूप की उस राशि की सहज माधुरी सम्पूर्ण विश्व के उपमानो की शोभा धारण करने लग जाती है। उसकी तन-द्युति चम्पक एव कनक की स्पर्द्धा का कारण बन जाती है। रति, रभा, उमा, रमा, उर्वसी का रूप उसके रूप के समक्ष मलीन हो जाता है। उपमान अ ग छबि वर्णन मे असमर्थ हो जाते है। रूप की निधान राधा विश्व के सम्पूर्ण सौन्दर्य तत्वो के सार से निर्मित होकर सर्वातिशायिनी हो गई है। वह सुन्दरता की सहज राशि है। उसका अ ग-प्रत्यग आकर्षक है।

राधा के नेत्र खजन मीन और मृग की महत्ता नष्ट कर देते है। गुरु नितम्ब पर झूलती वेणी स्वर्ण खम्भ पर सर्पिणी की शोभा धारण करती है। कुटिल भृकुटि मे कामदेव के धनुष का रूप दीख पडता है। बिखरे कु चित केश मुख-शशि का मधु पान करने वाले सर्प है। भुजाओ मे कमल नाल की सुडौलता है। उरोज कनक-कलश, चक्रवाक युग्म, श्रीफल या अनंग के मगल कलश है। अधर मे विद्रुम की लालिमा है। नाभि ह्रद के समान गहरी है। रोमावली मानो रेगकर जाती हुई सर्पिणी है। चरण मे मसृणता और सुढरता है। उपमानो की सम्पूर्ण शोभा धारण करने वाली राधा के रूप को देखकर पशु-पक्षियो को भ्रम हो जाता है। मोर कबरी को सर्प, भ्रमर चरण को कमल, शुक करो को नवाकुरित किसलय समझने लगता है। ऐसी राधा का रूप अनुपम है। सौन्दर्य के अपूर्व घटक से निर्मित हुआ है। वह कृष्ण 'चन्द्र' की निर्मल 'चन्द्रिका' है। उनकी शोभा भूषणो से अधिक बढती है। वेश भूषण-भूषित होने पर अधिक सौन्दर्य को धारण करता है।

सोलह शृङ्गार मण्डित पद्मिनी राधा का अ ग भूषणो से व प्रसाधनो से मण्डित है। मुख पर केशर, मृगमद या सिन्दुर-विन्दु, नयनो मे अजन की रेख, चिबुक मे श्यामल बिन्दु शोभित है। कानो मे ताटक, नाक मे वेसर, माग मे गूथे मोती, चिकुर मे कुसुम, कर्ण मे कठ मे मणिमय भूषण कटि मे किंकिनी, चरणो मे जेहर और नूपुर, हाथो मे ककन व चूडिया आदि आभूषण शोभा को बढाते है। गोरे वदन पर रंगीन वस्त्रो की शोभा अकथनीय है। नीलवसन, नीली साडी और नीले अम्बर मे मेध मे यामिनी तुल्य राधा का अनुपम सौन्दर्य चमकता है। मुख नव घन मे मयक की प्रभा तुल्य है। अवस्था की वृद्धि के सग वस्त्रो के रग मे चटकीलापन आता जाता है। पचरग साडी और नीली अगिया से शोभा बढ जाती है।

राधा का सम्पूर्ण रूप श्री कृष्ण को प्रसन्न करने हेतु है। वह इतनी रूपवती है कि स्वयं ही रीझ जाती है। इस रूप की सार्थकता कृष्ण के समक्ष

पूर्ण समर्पण मे है। यौवन उपभोग के योग्य है। उस सौन्दर्य के पान और समर्पण मे मानसिक उल्लास रहता है। प्रिय की स्मृति उसमे नवीन छवि का सचार कर देती है। राधा की इस शोभा के साथ रत्युपरान्त उसकी तन्द्रिल अस्त व्यस्त बिखरे शृङ्गार की शोभा अवर्णनीय है। इस शोभा का वर्णन सभी भक्त कवियो ने किया है। खण्डिता प्रसग मे श्रीकृष्ण की भी इस शोभा का वर्णन कवियो ने मनोयोग पूर्वक किया है। इस वर्णन मे काम शास्त्रीय प्रवृतियाँ दीख पडती है। अधर कपोल और कुचो का नख-क्षत, विथुरी अलक, ढीली नीवी की शोभा अनुपम है। इस समय की मुद्रा एव चेष्टा दर्शनीय है। बाँह उठाकर कमनीय कामिनी का जँभाई लेना आकर्षक है। नीचे गिरती हुई बॉह बिजली जैसी है। रति के कारण राधा की कमनीयता मे जो आकर्षण आ जाता है, उसका पूर्ण सचाई के साथ वर्णन किया गया है। इस अवसर पर प्रयुक्त उपमानो मे सम्पूर्ण शोभा एव सौन्दर्य की चेतना वर्तमान रहती है। ऐसी राधा की उद्दीपक चेष्टाएँ इतनी मनोहर हैं कि कृष्ण पूर्णत उनके दास हो जाते है।

गुण रूप चेष्टा प्रसाधन आदि से बढा हुआ सहज सौन्दर्य अनग को भी विबश कर देता है। युगल शोभा का वर्णन करने मे कवि असमर्थ हो जाता है। भक्तो के राधा कृष्ण सुन्दरता की खान है, रस के समुद्र है, आनन्द को देने वाले है। ऐसे रूप-रस मे उलझा हुआ कवि उसीमे तन्मय होकर आत्म सुधि खो बैठता है। उसकी सम्पूर्ण साधना उसकी भक्ति, सब कुछ मानो सौन्दर्य की साधना है और इस साधना मे भक्तिकालीन कवि पूर्ण सफल हुआ है। रूप की इस आसक्ति का प्रभाव रीतिकालीन कवियो पर भी पडा और उन्होने भक्तिकाल के पद चिन्हो का अनुसरण करते हुए राधा-कृष्ण का ऐसा सौन्दर्य उपस्थित किया, जो अपने आकर्षण और चमक मे बेजोड है।

अनिर्वचनीय रूप-सौन्दर्य के अनन्त भण्डार श्रीकृष्ण की छवि इन्द्रनील-मणि एव नील कमल की कान्ति से युक्त भूषणो को भूषित करने वाली है। पीताम्बरधारी, रत्न-मण्डित, कुञ्चित और दीर्घकेश, मस्तक पर तिलक, घूर्णायमान रक्त नीलोत्पल कान्ति तुल्य नेत्र, मणि-कुण्डल सुशोभित कर्ण युगल, कोटि चन्द्र प्रभ मुख, त्रिभगी मुद्रा आदि से कन्दर्प-मोहक शक्ति वाले श्रीकृष्ण की शोभा अवर्ण्य है। सौन्दर्य उनके अगो मे मूर्तिमान् हो जाता है, अग-कान्ति से सभी प्रकाश-पुज मन्द पड जाते हैं। नख चन्द्र तुल्य और अगुलियाँ अरुण कान्ति तुल्य है। माधुर्य एव सौन्दर्य के समूह श्रीकृष्ण का सब कुछ मधुर है। वर्ण, अवस्था, क्रीड़ाएँ, चेष्टाएँ, शरीर, रूप भूषण, वस्त्रादि वचन, प्रसाधन

सामग्री आदि मे यही मधुरता है। ससार मे सभी मधुर वस्तुओ के शिरोमणि हैं। उनका व्यक्तित्व माधुर्य की पूर्णता से युक्त है। वे सौन्दर्य के शिरोमणि है। ऐसे माधुर्य एव सौन्दर्य-शिरोमणि भगवान कृष्ण की उपासना भक्तो का ध्येय है। आचार्य बल्लभ ने अपने 'मधुराष्टक' नामक ग्रन्थ मे कहा है कि 'मथुरा के अधिपति श्रीकृष्ण की सभी वस्तुएँ मधुर है।' अधर, वदन, नयन, मुसकान, हृदय, गमन, बचन, चरित्र, वसन, वलित, वेणु, रेणु, पाणि, पाद, नृत्य, सख्य, गीत, रूप, रमण, गु जा, माला, कमल, लीला, गोपी, भोग, दृष्टि, गौ, यष्टि, सृष्टि, आदि सभी कुछ मधुर है। मधुर भाव की इस सर्वाङ्गीणता मे वल्लभाचार्य ने कृष्ण और उनसे सम्बन्धित वस्तुओ मे यही माधुर्य देखा है। यह माधुर्य अग, चेष्टा, नृत्य आदि सब पदार्थो मे दीख पडती है। ऐसे माधुर्य और सौन्दर्य के निधि भगवान की ओर किस रसिक का मन आकृष्ट न हो जायगा। उनके विशाल लीलायित नेत्र किसको दास न बना लेगे। इन नेत्रो मे मद की अरुणता, रस की शीतलता, भोग का आलस्य एव लीला की विशालता आदि है।

अगो का लावण्य प्रतिक्षण एक दूसरे मे प्रतिबिम्वित होता रहता है। उनके रूप की अपार छवि मिलन का आमन्त्रण देती है। गौर श्याम वरण की युगल शोभा एक दूसरे मे प्रतिबिम्वित होती रहती है। उनके नख-शिख के सर्वाङ्ग-सौन्दर्य मे मन विभोर हो जाता है, आँखे रूप देखने मे अतृप्त ही रह जाती है। मुख की मुसकान, अर्द्धोन्मीलित पलके, वकिम भौह, अग-लावण्य, शृंगार, सुरग पाग, दन्त-कान्ति, कुण्डल-मण्डित कपोल औ र मोहक गज गति को निरख भक्त और गोपियाँ दोनो ही अपने को भूल जाती है।[1] वे कृष्ण की रूप-माधुरी का पान करने के लिये व्यग्र रहती है।[2] स्वय राधा की भी

---

1 लालकी रूप माधुरी नैननि निरखि नेकु सखी।
रग मगी सुरग पाग लटकि रही वाम भाग,
चपकली कुटिल अलक वीच-वीच रखी।
आयत दृग अरुण लोल, कु डल मण्डित कपोल,
अधर-दसन दीपति की छवि क्यो हू न जाति लखि।"......
उर पर मदार हार, मुक्ताहार वर सुढार,
दुरद गति, तियन की देह दशा करखी। हित हरि वश-स्फुट वाणी

2 सखि, मोहि हरि-दरस रस प्याइ।
हौ रगी अव स्याम मूरति, लाग्न लोग रिमाइ।
स्याम सुन्दर मदन मोहन, रग-रूप सुभाई।
सूर स्वामी प्रीतिकारन सीस रह्यौ कि जाइ।
अनुराग-पदावली पृ ३९ गीता प्रेम

यही दशा है। राधा-कृष्ण मे कौन अधिक सुन्दर है, इसका निर्णय नही हो पाता। दोनो ललिता से जानना चाहते है।[1] यहाँ सौन्दर्य के आधिक्य की व्यञ्जना सीधे-सादे और सरल शब्दो मे की गई है। ऐसे रूप-सौन्दर्य की निधि युगल स्वरूप मे साधक रम जाता है। इन भक्त कवियो के सौन्दर्य वर्णन मे दो दृष्टिकोण दीख पडता है——

(१) श्रीकृष्ण को प्रधान मानकर

(२) राधा को प्रधान मानकर

श्रीकृष्ण की प्रधानता वाले पदो मे उनके रूप, कान्ति, छबि, लावण्य की अतिशयता द्वारा गोपी या राधा के मुग्ध भाव का चित्रण है। श्रीकृष्ण के रूप-माधुर्य मे भक्त अपनी भावनाओ को तल्लीन करके सदा उनका पान करना चाहता है। ऐसे श्रीकृष्ण के रूप-वर्णन की विभिन्न विधाओ के आधार पर तीन भेद करेंगे——

(१) कौमार रूप का वर्णन।

(२) पौगण्ड रूप का वर्णन।

(३) किशोर रूप का वर्णन।

उपर्युक्त तीनो प्रकार की अवस्थाओ मे स्फुरित होने वाली भावनाओ एव क्रियाओ आदि के सौन्दर्य के साथ रूप-सौन्दर्य का वर्णन मध्यकालीन सभी कवियो ने किया है, परन्तु साम्प्रदायिक दृष्टिकोण के कारण वल्लभ सम्प्रदाय के अनुगामी भक्तो ने श्रीकृष्ण रूप की महत्ता स्वीकार की तो राधावल्लभियो ने राधा-रूप को महत्वपूर्ण और प्रधान माना। इस दृष्टि भेद के कारण सूर आदि की सख्यभक्ति हित हरिवश आदि मे सखी-रूप की विभिन्न अभिलाषाओ मे परिणित हो गई। इसी से पहले मे रूप का माधुर्य और दूसरे मे केलि का माधुर्य प्रधान हो गया। सूर आदि की दृष्टि मे वाल रूप की प्रमुखता है और हित हरिवश मे किशोरी रूप की। पुरुष और स्त्री रूप मे आलम्बन की भिन्नता के कारण सौन्दर्यांकन की विधा मे स्पष्ट अन्तर दीख पडता है। उनकी क्रियाओ, चेष्टाओ, अनुभावो, अग-वर्णन, नख-शिखादि मे यह अन्तर देखा जाता है। दृष्टिकोण की यह भिन्नता साम्प्रदायिक मान्यताओ के कारण है।

---

1 बातकरत रस-रग उच्छलिता।
फूलन के महल विराजत दोऊ, भेद सुगध निकट वहै सरिता।
मुख मिलाय हँसि देखति दरपन, सुरत स्रमित उर माल विगलिता।
'परमानन्द' प्रभु प्रेम विबस हम दोउन मे सुन्दर को कहि ललिता।
परमानन्द सागर

कही पर युगल रूप का युगपत् चित्र प्रस्तुत करते हुए 'राधा-लली' की ओर कवियो की पक्षपात पूर्ण दृष्टि रही है।[1]

श्रीकृष्ण के रूप-सौन्दर्य का वर्णन करने के हेतु अवस्था क्रम से उनकी विकसित होती हुई भावनाओ एव क्रियाओ का वर्णन है। ऊपर बताये गये अवस्था के तीन रूपो मे पाँच वर्प तक की आयु कौमार अवस्था कही जाती है। ब्रज की आरम्भिक लीलाएँ इसी अवस्था की है। इस अवस्था के तीन भेद हो सकते है —

(१) आद्य कौमारावस्था मे वालक के सौन्दर्य का वर्णन है। अतिशय कोमलता, दतुलियो की ईषत् श्वेत छवि, जघो की स्थूलता आदि का वर्णन हुआ है। विभिन्न चेष्टागत सौन्दर्य मे चलना, गिर पडना, देहली लाँघना, अँगूठा पीना आदि वर्णित है। आभूपणो मे बघनख, करधनी, सूत्र तथा अन्य प्रसाधनो मे तिलक-काजल आदि का वर्णन है।

(२) मध्य कौमारावस्था के विकास के सग चेष्टाओ मे अन्तर आ गया है। अलको का इधर-उधर फैलना, मधुर तोतले स्वर, थोडा रेगना, मुक्ता के वेसर, नवनीत, किंकिणी आदि से शोभा वढाई गई है।

(३) शेष कौमार अवस्था के प्रसाधनो मे अन्तर आ जाता है। अगो का विकास होने लगता है। मोर-पख, लगोटी, काछनी, लकुटी आदि से शोभा वढाई गई है। सखाओ के सग क्रीडा का वर्णन है। वेणु शृ ग आदि वादन की रुचि व्यक्त की गई है।

पौगण्ड अवस्था मे श्रीकृष्ण के रूप-सौन्दर्य के क्रमिक विकास का वर्णन है। विभिन्न नवीन क्रीडाओ मे अभिरुचि व्यक्त की गई है। गायो के बीच रज-मण्डित शोभा, केलि-नृत्यादि युक्त लीलाएँ, पीताम्बर, धातु के अलकारो का धारण, वन-विचरण आदि का वर्णन मिलता है। नख-शिख की भावना का ईषत् सकेत है। अधरो की लालिमा और उदर की क्षीणता, कम्बुग्रीव की शोभा आकर्षक है। इस अवस्था के द्वितीय चरण के अगो मे गोलाकार कपोल और पार्श्वभाग, सुन्दर नासिका, तिल और स्निग्धता जन्य शोभा है। मुखकान्ति से मणि एव दर्पण का दर्प समाप्त हो जाता है। उष्णीष और लकुटी विशेष प्रसाधन है। अलौकिक लीलाओ मे गोवर्द्धनधारण आदि का वर्णन है।

---

1 वेसर कौन की अति नीकी।
होड परी प्रीतम अरु प्यारी, अपने-अपने जी की।
न्याय परो ललिता के आगे, कौन सरस को फीकी।
नन्ददास प्रभु विलगि जिन मानौ, कछु इक सरस लली की।
नन्ददास ग्रन्थावली पृ० ३४९ पद ६९

पौगण्ड अवस्था के अन्तिम चरण मे शरीर शोभा मे अनोखापन व आकर्षक शक्ति का उद्भव हो जाता है। उन्नत स्कन्ध, अलको का लीलापूर्वक हिलना आदि वर्णित है। प्रसाधनो मे पगडी, केसर का तिलक, कस्तूरी विन्दु आकर्षित करती है। वचन की वकता, नर्म सखाओ के साथ वार्तालाप का आनन्द और बालाओ की शोभा की प्रशसा होती है।

कृष्ण के किशोर रूप के वर्णन मे सभी कवियो की रुचि रही है। राधावल्लभीय और चैतन्य सम्प्रदाय के भक्तो के लिये यह अवस्था परम सुखकारी है। पौगण्डावस्था मे क्रीडाओ का महत्व, कौमारावस्था मे वाल्य केलि का सौन्दर्य और कैशोरावस्था मे रति-केलि के सौन्दर्य का वर्णन है।

किशोर वय के आरम्भ मे वर्ण की उज्ज्वलता, नेत्रो की लालिमा, और रोमावली का उद्भव होता है। भौहो की धनुषाकारता, नखो की तीक्ष्णता, दाँतो की शुभ्रता आदि रूप-सौन्दर्य के लक्षण दीखने लगते है। वैजयन्तीमाला, मयूर पख, वस्त्रादि की शोभा, नटवर-वेष, वशी की मधुरता से श्रीकृष्ण का आकर्षण वढ जाता है। इस अवस्था के मध्य भाग मे स्मित पूर्ण आनन, विलास युक्त चचल कटाक्ष, चितवन और मुसकान, मधुर अनुभावादि प्रकट होने लगते है। शरीर के अगो मे वाहु, वक्षस्थल और जघाओ की शोभा वढ जाती है। त्रिवली दीखने लग जाती है। शरीर का सौन्दर्य मूर्तिमान् हो जाता है। गोपी-लीलाओ का यह प्रमुख काल है। इसमे होली, कु जलीला रासलीला आदि अनेक रसमय लीलाओ का आचरण हुआ है। अन्य लीलाओ मे नृत्य, हिडोला, झूला, होली, दान, मान, रास, जल क्रीडा आदि लीलाओ का वर्णन है। इन सभी लीलाओ मे पूर्णावतार श्रीकृष्ण की रासलीला के अन्तर्गत हाव-भाव, नृत्य-गीत, आलिगन चुम्बनादि का वर्णन है। यहाँ गोपी और कृष्ण के सौन्दर्य से मिलकर प्रकृति का सौन्दर्य साधक वन गया है।

राधा-सौन्दर्य वर्णन की प्रधानता राधा-वल्लभ सम्प्रदाय की विशेषता है। इस सम्प्रदाय मे राधा के रूप-गुणादि का वर्णन करके श्रीकृष्ण को उसका अभिलाषी बताया गया है। लीला की अपूर्वता मे दृष्टिभेद के कारण सक्रीयता राधा की है, कृष्ण की नही।[1] राधा या गोपियो के समस्त रूप-शृङ्गार का एक मात्र लक्ष्य श्रीकृष्ण का सुख है।

---

[1] पिय को नाँचन सिखावत प्यारी।
वृन्दावन मे रास रच्यौ है, सरद चंद उजियारी।
मान गुमान लकुट लियै ठाढी, डरपत कु ज विहारी।
'व्यास' स्वामिनी कौ छवि निरखत, हँसि-हँसि दैकर तारी।
भक्त कवि व्यसा ३६१ पृ पद६२२

युगल रूप-सौन्दर्य मे कु जविहार के प्रसग की मधुरिमा वर्णित है। दोनो एक दूसरे के रूप से मुग्ध हो वस मे हो जाते है। इस छवि का वर्णन उपमा आदि के द्वारा स्पष्ट नही होता। कही वेसर की अच्छाई के सम्बन्ध मे प्रतिस्पर्द्धा है, कही रतिकेलि जन्य गात के सौन्दर्य का वर्णन है। युगल-सौन्दर्य वर्णन प्रसग पर भक्तो का ध्यान पारस्परिक अनुराग की ओर रहा है। सौन्दर्य की खान राधा को देखकर कृष्ण तन्मय हो जाते है। वे स्वय वेनी गूंथकर उसमे फूल लगा देते है। अजन, महावर, चित्र आदि लिख देते है। शृङ्गार सज्जित राधा के रह केलि का वर्णन अच्छे ढग से हुआ है। कृष्ण द्वारा शृङ्गार करने का वर्णन और प्रेम प्रदर्शन अनेक स्थलो पर हुआ है।[1]

इस प्रकार की सयोग सुख को वढाने वाली चेष्टाओ से 'रूप की मादकता बढ जाती है। भक्त इस रह केलि मे गोपीभाव से सम्मिलित होता है। रस की अविरल एव सान्द्र धारा प्रवाहित होने लगती है। वह उसमे डूबकर सम्पूर्ण जगत से विमुख हो जाता है। उसे सर्वत्र श्याम का रूप-सौन्दर्य दीख पडता है विश्व उसके लिये 'श्याम-मय' हो जाता है "जित देखौ तित स्याम मई है।" भक्तिकाल के इस आधार का सहारा लेकर रीतिकालीन कवियो ने श्री कृष्ण का मोहक रूप उपस्थित किया, जिसकी शोभा लौकिक धरातल पर अधिक रमणीय बन गई।

'अरी प्यारी के लाल लागे देन महावर पाँय।
जब भरि सीकहि चहत स्याम घन, दीजै चित्र-विचित्र बनाय।
रहत लुभाय चरन लखि इकटक विवस होत रग भर्यौ न जाय।
'नददास' खिजि कहत लाडिली रहौ, रही तव पगनि दुराय।
नन्ददास ग्रन्थावली पृ ३४७

रीतिकाल में रूप-सौन्दर्य

(१) सामयिक परिस्थिति व पृष्ठ-भूमि

(२) रीतिकाल मे श्रीकृष्ण का रूप

(अ) आत्मगत गुण परक सौन्दर्य

(क) आत्मगत सूक्ष्म गुण

(ख) आत्नगत स्थूल गुण

(आ) आत्मगत चेष्टा परक सौन्दर्य

(क) विशेष चेष्टा

(ख) सामान्य चेष्टा

(इ) प्रसाधनगत सौन्दर्य (षोडश शृंगार)

(क) षोडश शृंगार और इनका उद्देश्य

(ख) लगाये जाने वाले प्रसाधन

(ग) शरीर पर धारण किये जाने वाले प्रसाधन

(घ) शरीर की रक्षा करने वाले सौन्दर्य प्रसाधन

(ई) सौन्दर्य के उत्कर्ष के अन्य शृंगार प्रसाधन

(उ) तटस्थ सौन्दर्य

रीतिकाल की सामाजिक मान्यता—रीतिकालीन समाज के जीवन-दर्शन मे नारी की मान्यता अधिक रही है। विदेशी यात्रियो के विवरणो से स्पष्ट है कि नारी की कल्पना भोग्य पदार्थ के रूप मे की जाती थी। राज-महलो मे शृङ्गारिक नृत्य, गीत, जासूसी, वासना आदि का प्राबल्य था। सुन्दर स्त्रियाँ धोखे से लाई जाती थी। नारी केवल प्रमदा और कामिनी थी, पत्नीत्व का महत्व लुप्त हो चुका था। रक्षिनाओ के इ गित पर शासक अपनी मर्यादा को भग कर रहे थे। नैतिक जीवन मूल्यो का ह्रास तीव्र गति से आरम्भ हो गया था। भक्तिकालीन आध्यात्मिक उच्चता समाप्त हो चुकी थी। इस युग मे आकर भक्ति के आलम्बन सामान्य नायक-नायिका के रूप मे प्रस्तुतकिये जाने लगे थे। आदर्श का महान् स्तर समाप्त हो गया था। इससे काव्य के क्षेत्र मे उज्ज्वल रस या भक्तिभावना का माधुर्य लौकिक शृङ्गार मे स्थूल-रूप ग्रहण करने लग गया था।

नैतिक आदर्शों के स्थान पर वासनापूर्ण वातावरण का विकास हो गया। काम प्रवान इस वातावरण मे निर्बाध-वासना और स्थूल रसिक चेष्टाओ की प्रधानता थी इसी से शारीरिक-सौन्दर्य की इयता मे ही प्रेम का अन्त स्वीकार किया गया, मानसिक आत्मिक प्रेम कम ही दीख पड़ता है। यह सब सामन्तीय वातावरण एव दृष्टिकोण का प्रभाव था। इसीसे चेतन आकर्षण के स्थान पर निष्क्रिय भोग प्रधान आकर्पण की ही महत्ता थी। नायिका-भेद मे नारी के इसी रूप का विस्तार किया गया। नारी के सानिध्य की उलझनो और भोगो पर अपेक्षाकृत दृष्टि केन्द्रित रही है। सहेट, सहचरी, मिलन परकीया, अभिसार आदि प्रसग वर्णन के विषय रहे है। नारी के अन्य रूपो—मातृत्व पत्नीत्व, भगिनीत्व आदि पर या तो दृष्टि गई ही नही है या उनका स्पर्श मात्र ही हो सका है। ऐसी एक आध पक्तियाँ ढूढने पर मिल जाती हैं। यहाँ चेतन नारी की अनुभूति प्रधान शृङ्गारिक चेष्टाओ की प्रमुखता न होकर एक विशेष निष्क्रिय यन्त्र मे लगी हुई क्रियाओ का वर्णन रूढि और परम्परा के आधार पर हो सका है। स्वकीया की कुलकानि, खण्डिता का मान, क्रिया विदग्धा की चातुरी, अभिसारिका की गोपनीयता, विप्रलब्धा की चिन्ता आदि मे ही कवियो का काव्य-वैभव अपनी सीमा पाने लगा।

रीतिकाल की दो काव्यगत प्रवृतियाँ—आचार्यत्व और कवित्व—मानी गई है। इन पर तत्कालीन भावनाओ का प्रभाव है। सैद्धान्तिक विवेचन के प्रसगो

पर भी उदाहरण के रूप मे शृङ्गार परक उक्तिया ही लाई जाती रही है। काम जीवन का अनिवार्य सत्य बन गया था। यो तो हिन्दी साहित्य के प्रत्येक युग मे इसको उचित स्थान मिला था, परन्तु रीतिकाल मे एक मात्र काम एव शृङ्गार तत्व की ही प्रधानता थी। यहाँ तक कि जीवन से निराश होकर आध्यात्मिक स्फुरण के क्षणो मे अलौकिक सत्ता के साथ भी अपनी यही शृङ्गार भावना रूप ग्रहण करती रही है। भक्ति युगीन साधना मे राधाकृष्ण के जिस रूप की स्थापना हुई थी, समय की गति से उसमे भी स्थूल लौकिक शृङ्गार का समावेश हो गया। नारी के दृष्टिकोण मे रसिकता आ गई। फलत नारी का नैसर्गिक रूप लुप्त हो गया और उसकी मान्यता शृङ्गार साधना के रूप मे हो गई।

समाज मे सामन्तीय युग की प्रवृतियो का प्रभाव कई रूपो मे बढने लगा।

(१) ऐश्वर्य और वैभव के उपकरणो मे विलास पूर्ण वातावरण की सृष्टि की गई और रत्नो आदि की जगर-मगर ज्योति मे नायिका का सौन्दर्य वर्णित हुआ।

(१) प्रकृति के ग्रहण से पुष्पो आदि के माध्यम द्वारा शृङ्गार साधन और उपवनो के एकान्त मिलन को बल मिला। सरोवरो के स्नान मे सुन्दरियो का अनावृत सौन्दर्य वर्णित हुआ।

(३) गन्ध-द्रव्यो के प्रयोग से आकर्षण बढा। चोवा, चदन, कपूर इत्रादि से शरीर सुगन्धित रहने लगा। इसकी मादकता और मोहकता का चित्र वस्त्राभूषणो के आकर्षण, झीने और पारदर्शी वस्त्रो से झाकते हुए अ ग नायिकाओ की उन्मादक शोभा के विधायक हो गये। समाज की दिनचर्या मे सुन्दर स्त्रियो की उपस्थिति का महत्व बढा। लोगो के आभिजात्य की कसौटी उनकी रसिकता और आस्वदयोग्यता बनी। काव्यानन्द लेने की प्रवृति छोटे-छोटे जागीरदारो मे भी बढने लगी। ग्राम्य-सस्कृति की रुचि बढी। फलस्वरूप ग्रामीण नायिकाओ के अपूर्व सौन्दर्य की ओर ध्यान आकृष्ट हुआ। उनके उन्मादक सौन्दर्य मे जगमग उठता हुआ यौवन, कुच और उन्मादक अंग वर्णन के विषय बने।

इस युग मे समाज मे दो वर्ग बन गये थे। उच्च वर्गीय लोगो मे अभिमान की भावना अधिक थी। शोषण करना इनका ध्येय था। निम्न वर्ग द्वारा उपार्जित धन का अपव्यय अधिक होता था। वेश भूषा और जीवन मे विलासिता अधिक थी। जरी काम के कपडे, मलमल के पारदर्शी वस्त्र एव रेशम आदि के उत्तम कपडो मे वैभव का प्रदर्शन था। वस्त्र और आभूपणो का

मूल्यवान् होना सामाजिक उच्चता का प्रतीक माना जाने लगा। उच्चता के प्रतीक इन तत्वो के आकर्षण के कारण इनका अर्ा‹क प्रयोग होने लग गया। मुगल रनिवासो मे स्त्रियो की अधिकता के कारण अपने को सजाकर प्रिय को आर्कापित करने की विभिन्न सौन्दर्य प्रसाधक साम।ग्यो का उपभोग होने लग गया था। इन सामग्रियो के फल स्वरूप बाह्य ‹न्दर्य की महत्ता बढ गई। मासल सौन्दर्य का अनावृत रूप प्रदर्शित होने लगा और इसी का प्रभाव रीति-कालीन साहित्य पर भी पडा।

इस काल मे वैभवपूर्ण साधनो की सम्पन्नता लोगो को आर्काषित करती रहनी थी। नारी की आकृति, स्वभाव, आदि का चित्रण होने लगा। उसके सौन्दर्य को बढाने मे रत्न, हीरे, स्वर्ण, रजत आदि काम मे आने लगे। स्त्रैण अभिव्यक्तियो मे काव्य की उच्चता मानी ज‌ाने लगी। नारी केवल उपकरण मात्र रह गई। इसी रूप मे कवियो ने उसे प्रस्तुत किया। सौन्दर्य चेतना राजसी ठाठ मे दीख पडने लगी। नारी को यही राजसी वैभव प्राप्त हुआ। इन बहुमूल्य वस्तुओ से नारी का सजा हुआ अग लोगो का ध्यान अपनी ओर आर्काषित करने लगा। यथा—

१. लहरत लहर लहरिया लहर बहार।
मोतिन जरी किनरिया, विथुरे बार।
लागेऊ अति नवेलियहि मनसिज बान।
उकसन लाग उरोजवा, दृग तिरछान॥

२ चुची जभीरी सी बनी, गोल लाल है गाल।
जाके नयन बिसाल वह, गरे लगे कब बाल॥

नारी की इस शारीरिक शोभा से कवियो की उद्भावना मे कोमलता आ गई। उसके रूप-वर्णन मे कला सार्थक होने लगी। पुरुष नारी के चरणो मे झुक गया। यहाँ तक कि श्रीकृष्ण भी राधा का अवलम्ब ग्रहण करने लग गये। समाज की इस स्थिति का उत्तरदायित्व तत्कालीन राजनैतिक विचारो पर है, क्योकि राज्य सत्ता की व्यावहारिकता का अनुसरण समाज का सामान्य वर्ग भी करने लग गया था।

राजकीय-परिस्थिति—रीतिकालीन विभिन्न परिस्थितियो और साहित्यिक प्रवृत्तियो से काव्य के प्रभाव और उसके रूप का निर्माण हुआ है। युग चेतना साहित्य मे अपनी अभिव्यक्ति पा लेती है। प्रेरक तत्वो के अभाव मे साहित्य सृजन की कल्पना केवल कल्पना मात्र ही स्वीकार की जा सकती है। इन तत्वो मे विभिन्न परिस्थितियाँ पृष्ठभूमि का कार्य करती है। रीतिकाल मे राजनैतिक

चेतना ने काव्य-प्रणयन की दिशा को रूप दे दिया । इस युग की व्यक्तिगत निरकुश राज्य-सत्ता द्वारा जीवन-दर्शन का नियमन होने लगा । जीवन के कई क्षेत्रो का शोषण स्पष्ट होने लगा । व्यावहारिकता मे ऐसे शासको द्वारा नारी का सर्वाङ्गीण शोषण हुआ । काम सहायक अगो का उत्तेजक एव मादक वर्णन किया गया । साहित्य मे इन भावनाओ के वर्णन का दायित्व राजनैतिक परिस्थितियो पर है ।

मुगलकाल मे अकबर की दूरदर्शिता समन्वय की साधना करने वाली थी । जहाँगीर का सुरा और सुन्दरी के प्रति आग्रह, शाहजहाँ की कलात्मक प्रतिभा मे व्यक्त हो गई । कलागत और सास्कृतिक चेतना शान्ति की प्रतीक बन कर स्पष्ट हुई । प्रदर्शन और अलकरण की प्रवृत्ति बढ चली । इसी से शृङ्गार-परक जीवन दर्शन और काव्यात्मक प्रदर्शन को इस युग मे सहारा मिल गया । साहित्य और कला की महत्ता बढी, उन्हे सामन्तीय आश्रय प्राप्त हो गया । अपने काव्य को अधिक से अधिक प्रभावोत्पादक ढग से प्रस्तुत करने पर ही यह सम्मान प्राप्त हो सकता था । इससे **चमत्कारपूर्ण शब्द नियोजन और अभिव्यञ्जनात्मक कौशल** का प्रदर्शन बढ गया । शाहजहाँ की अभिरुचि और दारा की उदारता से हिन्दी और सस्कृत के कवियो को भी सरक्षण प्राप्त हो गया । सुन्दरदास और चिन्तामणि को पुरस्कार मिल चुका था । निर्णय सिन्धु (कमलाकर भट्ट) और ऋग्वेद की व्याख्या (कवीन्द्राचार्य) की जा चुकी थी । पण्डितराज द्वारा दाराशिकोह तथा आसफ खा का प्रशस्तिगान किया गया । नित्यानन्द ने ज्योतिष ग्रन्थो का सृजन किया । इस प्रकार दरबारी प्रवृत्तियो ने काव्य-प्रणयन की दिशा को पूर्णत मोड दिया । यहाँ तक कि भक्तिकालीन कृष्ण और राम की आध्यात्मिकता भी इन शासको की रसिकता मे परिणित हो गई । शृङ्गार वर्णन और राज प्रशस्ति मे पाण्डित्य प्रदर्शन एव कवि कर्म की महत्ता स्वीकार की जाने लगी ।

इन विदेशी शासको की अपनी भाषा के प्रति रुचि बनी रही । फारसी मे शीरी-फरिहाद, लैला-मजनू आदि की प्रेम कथाएँ यहाँ के कवियो को प्रभावित करने लगी । प्रेम के आलम्बन के रूप मे राधा-कृष्ण का वर्णन चण्डीदास, विद्यापति, जयदेव आदि कवियो ने की थी, इसमे भारतीय आदर्श बना रहा । राजसत्ता की रुचि और परम्परा की बढती हुई शृङ्गारिता मे शृङ्गार के आलम्बन और आश्रय भारतीय परम्परा मे राधा और कृष्ण ही बन सकते थे, क्योकि भक्तिकालीन साहित्य मे इन्ही का प्राधान्य था । इधर युग की भावनाओ के अनुसार प्रसिद्ध आलम्बन के शृङ्गारी रूप की मांग बढने लग गई

थी। राधा का मार्दव और त्याग शारीरिक मासलता और चचलता मे बदलने लगा। फारसी का विलास राज सत्ता के कारण नारी के नायिका-भेद के रूप मे प्रकट हो गया। इन भेदो मे नारी-सौन्दर्य को परखने की चेष्टा की गई। राधा के परकीया रूप की स्थापना हो गई। मान अभिसारादि का चित्रण आरम्भ हो गया। शाहजहाँ के शासनकाल मे काव्य एव कला की श्रीवृद्धि होती रही, परन्तु बाद के शासक औरङ्गजेब के समय मे इनकी गति अवरुद्ध हो गई।

औरङ्गजेब की कट्टरता और असहिष्णुता से सामाजिक स्थिति मे एक अव्यवस्था उत्पन्न हो गई। विधर्मियो का नाश उसके जीवन का मूल मत्र हो गया। हिंदु धर्म, सस्थानो एव मूर्तियो की तोड-फोड, कला की अवहेलना, सगीत एव साहित्य के प्रति घृणा के भाव आदि प्रवृत्तियो से कलादि के सरक्षण के समक्ष प्रश्न का चिह्न लग गया। सौन्दर्य, ऐश्वर्य, विलास और रागात्मक तत्त्वो का पूर्णत बहिष्कार कर दिया गया। कवि कलावत दिल्ली दरबार से निकाल दिये गये। कला प्रदर्शन, नृत्य गीतादि, वेश्याकर्म, मद्यपान आदि को अवैधानिक घोषित कर दिया गया फिर भी सामन्तो आदि की रक्षिताओ और रनिवासो मे स्त्रीयो की बहुलता बनी रही। इस प्रवृत्ति को वडप्पन का प्रतीक माना जाने लगा। काव्यकला को हेय दृष्टि से देखा गया। मन्दिरो के विनाश मे स्थापत्यकला की मर्यादा भग होने लगी। मुगल दरबार के राजकीय सरक्षण का अभाव हो गया। फलस्वरूप कलाकारो ने सामन्तो और नरेशो का आश्रय लिया। इन राजाओ के लिये भी यह गौरव की वस्तु मानी गई। यही पर दरवारी कविता का विकास हुआ। कोटा, ओरछा, बूँदी, जयपुर, जोधपुर, महाराष्ट्र आदि दरवारो मे इनकी महत्ता बढी।

राजस्थान मे कविता के प्रश्रय का दूसरा कारण यह था कि मुगल आक्रामको के भय से वृन्दावन की मूर्तियाँ राजस्थान मे पहुँच गई। 'सिहोर' नामक स्थान पर श्रीनाथ जी की स्थापना हुई। काकरौली भी वैष्णवो का केन्द्र हो गया। इसी धर्म के सरक्षण मे कविता का विकास राधा-कृष्ण के आश्रय आलम्बन मे होता रहा। वाद मे चलकर शृङ्गार युग के कारण धर्म की पवित्रता नष्ट हो गई और राधा-कृष्ण का नाम मात्र रह गया। इसी रूप मे कृष्ण काव्य का सृजन होने लगा। ऐसी कविताओ मे इस काल की सभी विशेषताएँ आ गई। धर्म की पवित्रता युग के शृङ्गार धर्म मे नष्ट हो गई।

मुगल दरबार मे हिन्दी की अवहेलना होने लगी। उनकी अपनी राजनैतिक समस्याओ की जटिलता से उन्हे अवकाश नही था, परन्तु मुगल दरवार

की कोमलता राजपूतो के रक्त मे भी समा गई। पौरुष का स्थान विलास ने ले लिया। इन राजपूतो ने कला को विलास के रूप मे ही ग्रहण किया। दूसरी बात यह थी कि राजाओ के विश्वासपात्र उच्चवर्गीय न रह कर निम्न वर्ग के व्यक्ति हो गये। आश्रय प्राप्त कवि भी इनके निर्देशन मे कल्पना और वाक-वैदग्ध्य के द्वारा भोगपरक जीवन की व्यञ्जना करने लगे। इन सब का यह फल हुआ कि राजनैतिक व्यवस्था से इस युग मे साहित्यादि कलाओ को ऐश्वर्य और अलकार के भोगपरक उद्दीपनात्मक रूप मे ग्रहण किया गया। जनभाषा होने के कारण हिन्दी का प्रचार एवं प्रसार जन सामान्य मे होता रहा, यद्यपि औरङ्गजेब द्वारा उसका विरोध किया जा रहा था। इस राजकीय सरक्षण के अभाव मे उसका समुचित विकास नही हो सका। यह बात दूसरी है कि सामन्तो और नरेशो की प्रदर्शन प्रियता ने काव्य के मान्य रूपो को नई दिशा मे मोड दिया। उन्होने प्राचीन आख्यानो, पात्रो और नायको को नवीनता के ढाँचे मे ढालकर उन्हे, युगानुकूल शृङ्गार प्रधान बनाने मे सफलता प्राप्त की। उनका अतीत आश्रयदाता की रुचि मे बदलकर नये कलेवर मे आया और कवियो ने राधा-कृष्ण को भी रसिक नायक-नायिका के रूप मे प्रस्तुत किया। यहाँ विषय की इतनी महत्ता नही है, जितनी वचन-वक्रता, विदग्धता, शब्द चयन, और मण्डन-शिल्प की है। इससे विषय तत्व मे प्राय परम्परा का ही पालन किया गया है। इसका प्रभाव अन्य कलाओ पर भी पडा। स्त्रियो का नग्न-सौन्दर्य चित्रो मे बताया गया। ऐन्द्रिय भावना बढी, श्रीकृष्ण शृङ्गार नायक बन गये। राधा का अनावृत्त सौन्दर्य प्रकट हुआ, जिसकी नीव विद्यापति के सद्य स्नाता आदि के वर्णन मे पड चुकी थी। इस प्रकार राजनैतिक व्यवस्था, सामन्तीय वातावरण, सत्ता का विकेन्द्रीकरण, विलासमूलक प्रवृत्तियो आदि ने कलाकार की आत्मा को प्रभावित करके उनकी सूक्ष्म भावना के ऊपर स्थूलता की इयता का प्रभाव उत्पन्न कर दिया। इसके अतिरिक्त धार्मिक प्रवृत्तियो से भी काव्य मे रूपादि के चित्रण की अभिरुचि बढी।

धार्मिक परिस्थितियाँ—समाज मे नैतिक ह्रास के साथ धर्म की उदात्त भावना भी क्रमश क्षीण होने लगी। अनेक विकृतियो का प्रादुर्भाव होने लगा। अंध-विश्वास, वाह्य आडम्बर, रूढियो के अनुकरण मे धर्म की समाप्ति मानी जाने लगी। धर्म अग्रगण्यो ने अपने को ईश्वर का प्रतिनिधि समझा। गुरु पूजा मे गोपी भाव ने अनाचार को पल्लवित किया। इस भक्ति मे वित्तजा सेवा ने महन्तो के वैभव और विलास को प्रश्रय दिया। देवदासियो का अनुपम और अछूता सौन्दर्य मठाधीशो की सेवा मे अर्पण होने लगा। घुँघरुओ की

झनकार भावनाओ को उद्दीप्त करने मे सहायक सिद्ध हुई। आध्यात्मिकता की यह विकृति स्थूलता के आकर्पण मे परिणत होने लगी।

भक्तिकाल की माधुर्य-भावना की उदात्तता समाप्त हो गई। श्रीकृष्ण की भक्ति क्रमश: स्थूल और मासल शृङ्गार के रूप मे परिणित होने लगी। श्रीकृष्ण-सम्प्रदाय की परम्परा मे मान्य माधुर्य भक्ति की स्निग्ध सरल उपासना की कामरूपा और सम्बन्ध रूपा रागानुगा प्रवृति की उदात्तता और प्राञ्जलता क्रमश स्थूल शृङ्गारपरक भावना मे बदलने लगी। भक्ति की आड मे भ्रष्टाचार वढ चला। रागात्मिका भक्ति के मूल रूप को समझने की मानसिक स्थिति का ह्रास हो गया। इस भावना मे 'राग' तो शेप रह गया था, परन्तु उसमे भक्ति का अभाव हो चला। इसी से राधाकृष्ण की उदात्तता समाप्त हो गई।

भक्ति के क्षेत्र मे उज्जवल रस की प्रधानता वढी। माधुर्य मे प्रेम लक्षणा भक्ति और उज्ज्वल रस मे शृङ्गार परक भावनाएँ समक्ष आई। रूप गोस्वामी ने चैतन्य-परम्परा का अनुसरण करते हुए प्रेम के उच्च रूप की प्रतिष्ठा करने की चेष्टा की। इन्होने यद्यपि स्थूल तत्वो को परिमार्जित करने का प्रयास किया परन्तु आगे चलकर काम परक चेष्टाओ की अभिव्यक्ति मे ही भक्ति का स्वरूप देखने की प्रवृत्ति वढ चली। चैतन्य और राधावल्लभ सम्प्रदाय रसिकता के केन्द्र हो गये। राम-सम्प्रदाय का आदर्श भी स्थिर न रह सका। मर्यादा पुरुषोत्तम राम 'रसिक सम्प्रदाय' मे सरयू के तट पर कृष्ण के पद चिह्नो का अनुसरण करते हुए काम-क्रीडा मे निमग्न होने लगे। उनकी वीरता शृगार के मार्दव मे वदल गयी। सीता रमणी हो गई और भक्त सखी वनकर उनकी लीलाओ का दर्शन करने लगे। साधको की स्त्रैण चेष्टाओ और स्थूल शारीरिक आकाक्षाओ ने भक्ति के आध्यात्मिक स्वरूप मे परिवर्तन ला दिया। फल यह हुआ कि भक्ति का स्वरूप वदल गया और आराध्य का केवल नाम मात्र शेष रह गया। उसकी दीव्यता पूर्णत समाप्त हो गई। कवियो ने सचाई के साथ अपने इस भाव को व्यक्त किया कि 'आगे के सुकवि रीझिहैं तो कविताई, नातरु राधिका कन्हाई सुमिरन को वहानो है।" इस प्रकार भक्तिकालीन काव्य के रूप मे प्राप्त भावनाएँ लौकिक रूप मे स्वीकार की जाने लगी।

इसके पूर्व वैष्णवो की भक्ति मे कृष्ण के रूप की कल्पना अलौकिक थी। श्रीमद् भागवत मे उनके किशोर रूप के प्रति आकर्षण उत्पन्न किया गया था। निम्वार्क, चैतन्य और वल्लभाचार्य ने इसी रूप की उपासना पर जोर दिया था। वल्लभाचार्य ने वालरूप और श्री विट्ठलनाथ जी ने किशोर कृष्ण की युगल लीलाओ को भक्ति मे स्थान दिया। वाल, पौगण्ड और किशोर मे

तीसरी अवस्था ही रस दृष्टि से सर्वोत्तम है। राधा भी यहाँ किशोरी हो जाती है। इसी छबि का वर्णन अधिक किया गया है। 'कुज मे विहरत नवल किशोर", "नवल किशोर नवल नागरिया "किशोरी अग-अग भेटी श्याम" आदि पदो मे किशोर और किशोरी के इसी रूप का सकेत है। देव ने शृङ्गार के सार रूप मे इन्हे माना है "बानी को सार बखान्यो सिंगार, सिंगार को सार किशोर-किशोरी।" सुख सागर तरग छ० १०।

रीति कालीन कृष्ण काव्य को प्रभावित करने मे **परकीया भाव** का अत्यधिक महत्व रहा है। ब्रजागनाओ को 'कृष्णवधू' कहा गया है।[1] जार-भाव या परकीयात्व मे आकर्षण अधिक बढ जाता है। इसी से चैतन्य मत मे परकीया का पक्ष लिया गया। गौडीय वैष्णवो ने राधा को परकीया रूप मे ही ग्रहण किया। चंडीदास मे भी यही भाव है। निम्बार्क मे स्वकीया होते हुए भी परकीयात्व का आभास है। सूर ने राधाकृष्ण के गान्धर्व विवाह का वर्णन किया है। इस प्रकार कवियो या आचार्यो की साधना 'कही न कही' नारी जीवन से अवश्य सम्बद्ध रहती है। यही कारण था कि भक्तिकाल का गूढ व्यञ्जक भाव रीति काल की शृङ्गार परक उक्तियो मे बदल गया। सात्विकता समाप्त हो गई। राधा नाम ही स्वकीया या परकीया का पर्याय हो गया और कृष्ण सामान्य नायक बन गये। बाद मे अवध के नवाबो को भी 'कन्हैया" बनने का शौक बना रहा।

भक्तिकाल मे वर्णित कृष्ण लीलाओ को भी एक नये रूप मे ग्रहण किया गया। इनका उपयोग युग की प्रवृत्तियो के आधार पर होने लगा। 'अष्टयाम' मे देव ने कृष्ण की अष्टकालिक क्रिया का लौकिक प्रेम व्यापार-युक्त वर्णन किया। ये लीलाएँ केवल प्रेम प्रदर्शन का माध्यम मात्र रह गई। अत यह कहा जा सकता है कि भक्तिकाल के दीव्य एवं अलौकिक कृष्ण को रीतिकाल के **सामान्य नायक** मे परिवर्तित कर दिया, उनकी लीलाओ का **ऐहिकता परक** अर्थ व वर्णन हुआ, उनका किशोर वय आकर्षण का केन्द्र बना तथा मधुर भाव को शृङ्गारिक रूप मे ग्रहण किया गया। भक्त कवियो ने राधा-कृष्ण के रूप मे भगवान की लीलाओ का जो वर्णन किया था, सामान्य लोगो के लिये उसमे शृङ्गारिकता ही अधिक मिली। राज दरबारो का आश्रय कृष्ण के वासनामय प्रेम के उद्गार को व्यक्त करने का साधन बन गया। श्रीमद् भागवत के ही कृष्ण किशोरी राधा के साथ भक्तिकालीन कवियो को परमानन्द देने वाले और

---

1 श्री मद्भागवत १०/३३/८

रीति कालीन रसिको को श्रृंगारिक प्रेरणा देने वाले वन गये थे। ऐसे ही राधा-कृष्ण का रूप-सौन्दर्य इस काल मे प्रस्तुत हुआ।

धर्म मे श्रृगार भाव के इस प्रवेश मे वोद्धो के वज्रयान शाखा के महासुख की कल्पना और त्रिपुर सुन्दरी के साथ ही पराशक्ति की भावना काम करती रही है। इसने मध्यकालीन कवियो को वहुत अधिक प्रभावित किया। भक्ति काल मे इस पर आध्यात्मिक रग चढा था, परन्तु रीति काल मे मानवीय प्रवृत्तियो और उसकी विपरीत लिंगी के प्रति सौन्दर्य-चेतना अधिक सचेष्ट रही। सूर आदि भक्त कवियो ने अनजान मे ही श्रृङ्गार की खुली और स्पष्ट रचनाएँ प्रस्तुत कर दी थी। परकीया भाव की प्रधानता कई सम्प्रदायो मे वल पा चुकी थी। साहित्य मे राधा का प्रवेश एक विशेष घटना हो गई और वाद के कवियो ने इसका पूरा लाभ उठाया। भागवत की असख्य गोपियाँ हिन्दी कवियो की राधा के व्यक्तित्व मे समा गई। इससे उसकी शोभा अधिक विस्तार पाने लग गई थी। कृष्ण का असख्य गोपियो से सम्पर्क वाद मे उनके जार भाव का प्रतीक वन गया। परकीया का महत्व वढ गया और पर पुरुष को रिझाने के लिये अग-प्रत्यग वर्णन, नायिका की शोभा, लावण्य और सम्पूर्ण सौन्दर्य मे आकर्षण उत्पन्न करने की भावना वढती चली गई। राधाकृष्ण श्रृगार-रस के अधिष्ठाता देवता माने जाने लगे। इस प्रकार विभिन्न वैष्णव धर्मो और दर्शन की शक्ति भावना ही राधावाद के रूप मे विकसित हुई। भक्तिपरक इस परिवेश एव विचारो के कारण तत्कालीन साहित्यिक रचनाएँ प्रभावित हुई। विभिन्न भक्ति सम्प्रदायो मे राधाकृष्ण और गोपियो के स्वरूप-निर्धारण मे यही प्रवृत्ति कार्य करती रही।

साहित्यिक पृष्ठभूमि—हिन्दी के रीतिकालीन साहित्य की रचना का एक साहित्यिक विकास क्रम रहा है। हाल की सतसई, अमरुक शतक और गोवर्धन की आर्या सप्तशती आदि श्रृङ्गार ग्रन्थो मे प्रसिद्ध है। इनमे प्राकृत जीवन का सहज सौन्दर्य और अलकरण की प्रवृत्ति है। सस्कृत मे भी कालिदास का श्रृङ्गार तिलक, घटकर्पर, भर्तृहरिकृत श्रृङ्गारशतक, विल्हण की चौरपचाशिका आदि सरस ग्रन्थो की रचना हो चुकी थी। भक्ति परक मुक्तको मे दुर्गासप्तशती, चडीशतक, वक्रोक्ति पचाशिका और कृष्णलीलामृत आदि स्तोत्रो मे श्रृङ्गार की प्रधानता है। श्रृङ्गार और स्तोत्र ग्रन्थो के साथ ही कामशास्त्र के ग्रन्थो का प्रणयन भी आरम्भ हो गया था। कामसूत्र, रतिरहस्य और अनगरग की रचना का प्रभाव भी नायिकाभेद और श्रृङ्गार मुक्तको पर पडा।

हिन्दी साहित्य के विकास के प्रारम्भिक युग मे श्रृङ्गार के प्रति रुचि दीख पड़ती है। पृथ्वीराज रासो के पद्मावती-समय मे नख-शिख का वर्णन

है। विद्यापति की ऐन्द्रिय श्रृङ्गारिकता रीतिकालीन भावनाओ को प्रभावित करने मे समर्थ सिद्ध हुई है। इनके काव्य मे भक्तिरस के साथ ऐन्द्रिय-उल्लास की प्रधानता है।

सूर मे श्रृङ्गार चित्रो की अधिकता है। अलकरण का प्राचुर्य और नायिका भेद के अन्य सभी रूप देखे जा सकते है। सूर ने विपरीत रति और रति चिन्हो का वर्णन भी किया है। रस, हाव-भाव, सभी प्राप्त हो जाते है। इस प्रकार एक ओर जहा भक्ति के क्रोड मे श्रृङ्गार पलता रहा, वही दूसरी ओर 'साहित्य-लहरी' की रचना से अलकारो और रीति परम्परा का मोह भी व्यक्त हो रहा था। रहीम का नायिका-भेद और नन्ददास की रस-मञ्जरी आदि नायिकाओ पर लिखे गये सरस ग्रन्थ है। इन सभी पृष्ठ-भूमियो का प्रभाव हिन्दी की रीतिकालीन रचना पर पडा। एक ओर रीतिबद्ध ग्रन्थो की रचना हुई और दूसरी ओर रीति मुक्त। इन दोनो प्रकार की रचनाओ मे पूर्व साहित्य और सिद्धान्तो का प्रभाव पडा। यही कारण है कि इस युग के कवि की रचनाओ मे श्रृङ्गार की ही प्रधानता है, भक्ति तो नाममात्र के लिये है।

हिन्दी साहित्य मे भी श्रृङ्गार परक रचनाओ की परम्परा है। विद्यापति ने अभिसार, मान, मानभग, मुग्धा के रूप विन्यासादि का श्रृङ्गारिक रूप प्रस्तुत किया है। सूरदास ने सयोग-वियोग वर्णन के साथ नायिका के विभिन्न रूपो वासक सज्जा, खण्डिता आदि का अच्छा चित्र उपस्थित किया है। नन्ददास के सामयिक कवियो मे मोहनलाल मिश्र का 'श्रृङ्गार सागर' करनेस का 'कर्णा-भरण' 'श्रुतिभूषण' और 'भूप-भूषण' इसी समय लिखा गया है। इनमे रीति परम्परा का पूर्व रूप है। केशव की रसिक प्रिया प्रसिद्ध है।

सस्कृत काव्यो मे भी इस प्रकार की परम्परा थी। श्रृङ्गार का वर्णन सौन्दर्यानुभव के साधन के रूप मे किया जाता रहा है। गीत गोविन्द मे कहा है कि "हरि कथा मे मन सरस हो और विलास मे कुतूहल हो, तो जयदेव की ललित पदावली सुनो।[1] इस कथन मे भक्ति और श्रृङ्गार दोनो का ही सकेत युगपत् किया गया है। भागवतकार ने भक्ति के लिए श्रद्धा और रति का समर्थन किया है।[2] इन सबका बाद की रीतिकालीन प्रवृत्तियो पर प्रभाव पडा।

---

1 यदि हरिस्मरणे सरस मनो यदि विलास-कलासु कुतूहलम्।
मधुर कोमल- कान्त-पदावली श्रृणु तदा जयदेवसरस्वतीम्॥

2 सता प्रसगान्मम वीर्यसविदो भवन्ति हृत्कर्णरसायन्त कथा।
तज्जोषणादाश्वपवर्गवर्त्मनि श्रद्धारतिर्भक्तिरनुक्रिमप्यति॥
भागवत ३/२०/२२

हिन्दी मे प्रेममार्गी शाखा के कवियो ने लौकिक प्रेम के माध्यम से अलौकिक ईश्वरीय प्रेम तत्त्व का आभास दिया। इसमे किसी राजकुमारी के अनुपम सौन्दर्य की चर्चा रहा करती थी। ऐसी कथाओ द्वारा जन-सामान्य मे मासल प्रेम का ही प्रचार हुआ और इसके उद्दीपन के रूप मे नारी-अगो की शोभा का वर्णन हुआ। इस शाखा के मुसलमान कवियो के सम्पर्क से हिन्दु कवियो ने भी अपनी शृगारिक मानसिक ग्रन्थियो को स्पष्ट करने के लिए राधा और कृष्ण को अपना आधार बनाया। इस प्रकार साहित्यिक प्रवृत्तियाँ पहले से वर्तमान थी, उन्हे केवल युगानुरूप बनाने का काम सामयिक कवियो ने किया।

उपर्युक्त प्रेरणा स्रोतो के आधार पर कहा जा सकता है कि रीतिकालीन कविता की अभिव्यञ्जना मे सस्कृत काव्य-शास्त्र सहायक सिद्ध हुआ और उसका वर्ण्यविषय एव रस भक्तिकालीन कविता का ही विकसित रूप है। भक्तिकालीन राधाकृष्ण की लीलाए अनेक विधाओ मे रीतिकाल मे पल्लवित हो गई। विरासत मे प्राप्त भावपरक इन रचनाओ को रीतिकाल मे युगानुरूप लौकिकता प्रदान कर दी गई। इससे राधा और कृष्ण सामान्य नायिका और नायक बन गये और इनकी लीलाओ का ऐहिकतापरक लौकिक अर्थ लगाया जाने लगा। फल यह हुआ कि शृगार के लिए सर्वोत्तम अवस्था किशोर वय का उन्मादक रूप-सौन्दर्य रीतिकाल मे ग्रहण किया गया। इस काल की रचनाओ मे श्री कृष्ण के व्यक्तित्व-चित्रण एव रूप-सौन्दर्य के चित्रण मे यही भावनाए कार्य कर रही थी। श्री कृष्ण के इस रूप का सक्षिप्त विचार असगत नही माना जायगा।

रीतिकाल में श्रीकृष्ण का रूप—

भक्तिकालीन श्रीकृष्ण के रूप एव चरित्राकन का आधार लेकर रीतिकाल मे कृष्ण-साहित्य विशेष परिवेश मे उपस्थित हुआ। माधुर्य-भाव मे ही भक्ति-साहित्य का अधिक वर्णन हुआ था। सूर और नन्ददास जैसे प्रवीण वात्सल्य रस के पोषक कवियो का अन्तिम वर्ण्य माधुर्य भाव था। विभिन्न सम्प्रदायो के गोपी-भाव और सखी भाव मे यही माधुर्य दीख पडता है। उनका शृगार वर्णन उज्ज्वल रस नाम से प्रसिद्ध हो गया। जन मानस ने इस भाव को पूर्णतया ग्रहण कर लिया। भक्ति की तल्लीनता मे इन कवियो को उस युगल केलि वर्णन मे किसी प्रकार की अश्लीलता नही दीख पडी, परन्तु इस भाव के लोप होते ही श्रीकृष्ण राधा के रूप वर्णन मे स्थूल एव मासल कायिक चेष्टाओ का प्रभाव बढ गया। उनके अनुभावो, रूप-चित्रणो और सौन्दर्याकन मे यही

मासलता दीख पडने लगी। भक्तिकाल के आलम्बन श्रीकृष्ण रीतिकाल मे 'नायक' कृष्ण हो गये। वे अपना समस्त भक्तिपरक रूप भूल गये और 'नायक' रूप मे विभिन्न नायिकाओ की उद्भावना के प्रेरक बने। ऐसी नायिकाओ से घिरे श्रीकृष्ण का वैभव-परक वर्णन हठी आदि अनेक कवियो ने किया। स्पष्ट रूप से इन कवियो पर दरबारी सस्कृति और वातावरण का प्रभाव पडा। श्रीकृष्ण की रसिकता देखकर वे ही शृंगार के अधिष्ठाता बनाये गये। उनका वर्णन लाल, ललन, रसिक आदि रूप मे होने लगा और इसका आभास भक्तिकाल मे प्रचलित उनकी साज सज्जा के सकेत से होने लगा।[1] उनकी भक्तिकालीन लीलाएँ महत्त्व हीन हो गई। उनका माधुर्य रूप प्रधान हो गया। वे रसिक बनकर 'कुञ्ज कुटीर मे राधा के पाँयन पर लोटने' लगे।[2] उनके नायकत्त्व की महत्ता बढी।

नायक के रूप मे श्रीकृष्ण की रसात्मकता का चित्रण, बाल, पौगण्ड और किशोर रूप मे हुआ है। इन सभी मे शृंगार का स्वर प्रमुख था। उनकी पौगण्ड लीला मे सौन्दर्य के अनेक चित्र है। किशोर चित्र मे उनका भुवन मोहन रूप कोटि कदर्पो के मद को मर्दित करने वाला और अपनी कमनीयता जन्य रूप-लावण्य से असख्य गोपियो मे काम की विह्वलता उत्पन्न करने वाला है। किशोर-किशोरी का इतना रमणीय, आकर्षक और मधुर रूप अन्यत्र नही मिलता। उनके प्रेम की गहनता श्रीकृष्ण को अधिक मधुर बना देती है। इनके इस रह केलि मे प्रकृति सहायक होती है, वे राधा का प्रसाधन करते है। ऐसे प्रसगो पर शृगार का वर्णन मिलता है।[3] उनका 'उपपति' रूप स्पष्ट होने लगा। भक्तिकाल के वात्सल्य रस के बोधक 'लाल' रीतिकाल मे नायक 'लाल' हो गये। गोपियाँ रूप गुण से उत्पन्न विभिन्न चेष्टाओ से मोहित कर लेने वाली बन गई। विलास और वैभव की छटा सूर्य-किरण के समान अपना प्रकाश फैलाने लगी। यह वैभव शृंगार प्रसाधक सामग्री और उपकरणो मे दीख पडने

---

1 कहा लडैते दृग करै, परै लाल बेहाल।
कहुँ मुरली कहुँ पीत-पट, कहुँ मुकुट बनमाल।

2 देख्यो दुर्यौ वह कुञ्ज कुटीर मे, बैठ्यो पलोटत, राधिका पायन। रसखान

3 आइ हो पाँय दिवाय महावर कुञ्जन सो करिकै सुखदैनी।
साँवरो आजु सवारो है अजन, नैननि को लखि लाजत ऐनी।
बात के बूझत ही 'मतिराम', कहा करिए मद भौह तनेनी।
मूदी न राखति प्रीति अली यह गूँदी गुपाल के हाथ की बेनी। मतिराम

लगा। कृष्ण के नायक रूप को रिझाने के लिए हर प्रकार के प्रयत्न किये गये। शृंगार सामग्री प्रस्तुत की गई। रूप सौन्दर्य का चित्रण हुआ। नख-शिख का वर्णन अप्रस्तुत योजनाओ, आभूषणो एव प्रसाधन सामग्रियो के साथ हुआ। रति की उद्दीपक चेष्टाओ का प्रभाव बढा और ऐन्द्रिय रूप-सौन्दर्य के वर्णन को प्रमुखता प्राप्त होने लगी। दोनो एक दूसरे का शृंगार करने लगे।[1] दूध के समान जोवन वाली अहीरी मोहन को मीठी लगने लगी,[2] और कृष्ण की सुघराई और लटक को देखकर सास और माय की अटक समाप्त होने लगी —

"माय की अटक तौलो सासु की हटक जोलो,
देखी ना लटक मेरे दूलह कन्हैया की।" रसखान

रीतिकाल की शृंगार-परक दृष्टि ने नायिका के सम्बन्ध मे ही श्रीकृष्ण का रूप-चित्र प्रस्तुत किया है। उनके स्वतन्त्र रूप चित्र का अभाव है। वे नायक रूप मे आये है। इसी से उनकी चेष्टाओ आदि का मोहक रूप मिल जाता है, परन्तु उनकी वेश-भूषा आदि का आकर्षक चित्र कम मिलता है। कही-कही भूले-भटके रूप मे मुकुट, गुंजामाल, पीताम्बर आदि का कथन भक्ति-कालीन क्षीण होती हुई कृष्ण विचारधारा का सकेत कर देती है। भक्तिकाल मे श्रीकृष्ण की शृंगार भावना बडी प्रवल थी। उनका नयनाभिराम वह रूप रीतिकाल मे वर्णन का विषय नही रह गया। इस काल मे पुरुष का सौन्दर्य चित्रण न होकर नारी के सौन्दर्य का ही चित्रण अनेक रूपो मे किया गया और ऐसा कमनीय रूप प्रस्तुत हुआ कि श्रीकृष्ण भी अपनी उदात्तता भूलकर भौतिक धरातल पर रूप के रसिक हो गये। श्रीकृष्ण विपयक ऐसा वर्णन विशेपत रीति-वद्ध कवियो द्वारा किया गया है। रीति मुक्त कवियो के विचारो मे थोडा अन्तर दीख पडता है।

इन रीतिमुक्त कवियो मे रसखान आलम आदि के प्रेम की सूक्ष्मता ने श्रीकृष्ण के रूप-वर्णन मे पुन उन्हे अलौकिकत्व की श्रेणी मे लाने का प्रयास किया। रीतिकाल मे प्रचलित स्थूलता और मासलता की ओर से इन्होने अपनी

---

1 पीतम पाग सवारि रखी, सुघराई जनायो प्रिया अपनी है।
प्यारी कपोल के चित्र बनावत, प्यारे विचित्रता चारु सनी है।
'दास' दुहू को दुहू को सराहिवो, देखि लह्यो सुख लूटि घनी है।
वे कहे भामते, कैसे वने, वे कहे मन भामती, कैसी वनी है। दास

2 माखन सो मन दूध सो जोवन, है दधि सो अधिकी उरईठी।...
ऐसी रसीली अहीरी अहै कहौ, क्यो न लगै मन मोहनै मीठी। देव

दृष्टि हटाकर मानसिक पक्ष की ओर उसे स्थिर किया। ससर्ग जन्य शारीरिक रमणीयता का महत्व कुछ कम हुआ, अश्लील चेष्टाओ के वर्णन की रुचि-प्रियता कम होने लगी। आन्तरिक मनो दशाओ के चित्रण की प्रवृत्ति भक्त कवियो मे बढने लगी। अपनी अनुभूतियाँ ही प्रेम-चित्रण या रूप के आस्वादन मे प्रकट हुई है। रसखान, आनन्दघन, आलम की भाव-सघनता प्रसिद्ध है। ठाकुर और बोधा की भावनाएँ स्थूल और सूक्ष्म के मिश्रित रूप को लेकर चली है। इन कवियो मे प्रेम की गम्भीरता है, रीतिबद्ध कवियो के समान रसिकता की उद्दाम भावनाओ का मासल रूप सौन्दर्य नही है।

रीतिमुक्त कवियो मे रसखान का रूप वर्णन देव-मिश्रित मानव का रूप वर्णन है। कृष्ण का रसात्मक स्वरूप अपनी मोहकता मे अतुलनीय है। कृष्ण सम्बन्ध से अन्य लौकिक परिवेशो का सौन्दर्य उन्हे अधिक आकृष्ट करता है। इसी से वे ब्रज के पाहन, करील कुञ्जो, पशु, मानुष आदि विभिन्न रूपो मे अपनी ब्रज वास की अभिलाषा व्यक्त करते है। कलधौत के धाम को करील के कुञ्जो पर वार देना चाहते है।[1] आलम के कृष्ण गोपीवल्लभ है। उनका रूप सौन्दर्य दृष्टि की पकड मे नही आता और अन देखे सन्तोष नही होता। इस प्रकार दोनो ही स्थितियो मे दु ख का ही अनुभव होता है।[2] इन्होने सचारी भावो का अच्छा अकन किया। लज्जा और अभिलाषा का सघर्ष बडा मधुर है। कृष्ण का लोक मगलकारी रूप भी दीख पडता है। घनानन्द मे मधुर भाव की व्यञ्जना दान-केलि हास-विलासमय प्रसगो पर हुई है। वे राधा-वल्लभ है। उनकी तरुनाई की नई आभा फूट पड़ती है।[3] ठाकुर ने श्रीकृष्ण के माधुर्य एव रूप-सौन्दर्य का वर्णन मानवीय रति की दृष्टि से किया है। कृष्ण यहाँ मानव प्रेम के पोषक है और इसी रूप मे इनका रूप सौन्दर्य रीतिकाल मे वर्णित है।

सौन्दर्य साधक उपकरण.—

रीतिकाल के रूप-सौन्दर्य वर्णन मे कवियो के उद्देश्य और आलम्बन

---

1 कोटिक हौ कल-धौत के धाम करील के कुञ्जन ऊपर वारौ।

2 देखे टक लागे अनदेखे पलकौ न लागै,
देखे अन देखे नैना निमिष रहत है।
सखी तुम कान्ह हौ जु आन की न चिन्ता,
हम देखे हू दुखित अन देखे हू दुखित है। आलमकेलि छद १८५

3 नई तरुनई की ओप भई मुख सुख समोह पुलकाते।
रीझि चोप आनन्दघन बरसत मिलत हार करि हाते।

के स्वरूप मे अन्दर आ गया। समाज मे विलास की बढती हुई भोगपरक भावना ने रमणी रूप के आकर्षण को बढाने मे सहयोग दिया। सौन्दर्य-प्रसाधन का प्रयोग अधिक से अधिक होने लगा। युवा काल मे ये प्रसाधन सौन्दर्य के उत्कर्ष मे सहायक होते है। नायिका के गुण, चेष्टाओ आदि से भी आकर्षण बढ जाता है। अत गुण, चेष्टा, अलकार, प्रसाधन आदि को सौन्दर्य साधक उपकरण कहा जायगा। इस दृष्टि से सौन्दर्यपरक सम्पूर्ण उपकरणो को दो कोटियो मे विभाजित किया जा चुका है। इन्हे आत्मगत उपकरण और बाह्य उपकरण बताया गया है।

आत्मगत उपकरण—पिछले अध्याय से स्पष्ट हो गया है कि आलम्बन से सीधा और प्रत्यक्ष सम्बन्ध रखने वाले सौन्दर्योत्कर्षक साधनो को आत्मगत उपकरण कहते है। ये उपकरण शरीर मे बिना किसी बाह्य साधन के अपने आप ही वर्तमान रहते है। गुण और चेष्टा के रूप मे सौन्दर्य-विधायक इन तत्वो का महत्व युवाकाल मे अधिक होता है। रीतिकालीन साहित्य ने इसे इसी रूप मे ग्रहण किया है।

गुण—नायक एव नायिकाओ की शारीरिक एव मानसिक विशेषताओ का नाम 'गुण' है। इन गुणो मे कुछ तो प्रत्यक्ष रूप से अपने आप शरीर मे युवाकाल के आरम्भ होते ही प्रकट होने लगते है और कुछ पर नायिका या नायक का नियत्रण बना रहता है। इस दृष्टि से कायिक और वाचिक गुणो का विश्लेषण पहले किया जा चुका है। क्रमश रीतिकालीन साहित्य मे इन्ही गुणो का विश्लेषण किया जायगा।

कायिक गुण—शरीर की शोभा बढाने वाले आकारगत अथवा आकार मे वर्तमान शोभा, लावण्य आदि विशेषताओ को कायिक गुण की सज्ञा दी गई है। इन गुणो को दो वर्गो मे—भौतिक स्थूलगुण और सूक्ष्मगुण—विभाजित किया जा चुका है। इनमे स्थूल गुण आकारगत विशेषता को और सूक्ष्म गुण उस आकार मे वर्तमान सत्त्व से उत्पन्न होने वाली विशेषता मे माना जाता है।

सूक्ष्म गुणो के अन्तर्गत वय, रूप-लावण्य, रमणीयता, अभिरूपता, सौकुमार्य, यौवन मे सत्त्व से उत्पन्न होने वाले गुणो आदि की चर्चा होती है। इन गुणो से आलम्बन का रूप-सौन्दर्य अपेक्षाकृत अधिक आकर्षक प्रतीत होने लग जाता है। रीतिकालीन सामयिक चेतना के फलस्वरूप इस काल मे नारी को ही वर्णन का प्रधान आधार बनाया गया है। पुरुष या तो कवियो की आखो को लुब्ध न कर सका अथवा ग्वाल जैसे एक दो कवियो ने श्रीकृष्ण के

रूप-सौन्दर्य का स्वतत्र वर्णन किया, जिसका अनुसरण अन्य कवियो द्वारा नही हो सका। प्रासगिक रूप मे भी कही-कही श्रीकृष्ण के रूप-सौन्दर्य का खण्ड चित्राकन किया गया है। इससे नारी सौन्दर्य के आधार पर ही रीतिकालीन सौन्दर्य विषयक भावनाए व्यक्त की गई है।

गुण-परक सौन्दर्य के सूक्ष्म उपादान—सौन्दर्य-निरूपण मे गुण परक उपादान का स्थूल और सूक्ष्म भेद किया गया है इनमे स्थूल गुणो मे अगो के आकारादि का वर्णन अग के अलग-अलग रूप मे या सर्वाङ्ग के सामूहिक रूप मे किया गया है। इन दोनो मे कवियो की दृष्टि उसकी स्थूलता पर रही है। इससे अगो का मासल और स्थूल गुण स्पष्ट होता है। स्थूल गुणो के वर्णन मे नख-शिख वर्णन और सम्पूर्ण वर्णन आता है, जिसकी रीतिकालीन परम्परा रूढि होकर रह गई है।

सूक्ष्म गुणो मे आकार रहित गुणो का वर्णन होता है। इन गुणो का एक स्वतन्त्र अस्तित्व होता है। शरीर मे स्थित रहते हुए भी इनका अस्तित्व होता है, परन्तु शरीर से अलग रहकर इनकी सत्ता नही रह सकती है। अत. शरीर मे आश्रय लेने वाले इन गुणो का महत्त्व निर्विवाद है। इन गुणो से वास्तविक सौन्दर्य का आभास मिलता है, रूप मे चमक आती है, आकर्षण उत्पन्न होता है और 'रूपवती' सज्ञा सार्थक होती है। इन गुणो मे रूप, लावण्य, रमणीयता, नवीनता, अभिरूपता, सौकुमार्य और यौवन मे सत्त्व से उत्पन्न होने वाले गुणो की चर्चा होती है। इन्ही गुणो के माध्यम से 'विशेष-वय मे अभिवृद्धि को प्राप्त सौन्दर्य का विश्लेषण होगा।

वय सौन्दर्य—शारीरिक सूक्ष्म गुणो मे यौवन का आगमन अपने आप मे स्वय भी सौन्दर्य का जनक होता है। इसके साथ सत्व से उत्पन्न गुणो का सहयोग सोने मे सुगन्धि का कार्य कर देता है। नायिका के स्वरूप का निर्धारण करते हुए कहा गया है कि जिनमे यौवन, रूप, गुण, शील, प्रेम, कुल, वैभव और आभूषण हो, वही नायिका है। इन आठ विशेषताओ मे यौवन को प्रथम स्थान दिया गया है इसका सम्बन्ध वय और स्वास्थ्य से है। युवाकाल और स्वास्थ्य के अभाव मे रूप का महत्व ही नही रह जाता है। 'यौवन' और 'रूप' आकर्षण का प्रथम तत्त्व है। मानसिक गुणो का परिचय व्यवहार से मिलता हैं। यह बाद की चीज है। प्रथम दर्शन से हृदय मे स्थान पाने के लिए रूप और यौवन ही महत्त्वपूर्ण है। रूप और यौवन मे स्थायित्व नही होता। अत प्रेम के आकर्षण मे निरन्तरता लाने के लिए नायिका मे अन्य मानसिक गुणो का वर्णन किया गया है। इन गुणो से रूप भी शोभा पाता है। रूप के सग

गुण का मिश्रण नायिका के सौन्दर्य मे अनोखापन ला देता है। यौवन अवस्थागत गुण है। रीति काल मे इसके वर्णन के विश्लेषण से प्रतीत होता है कि यौवन का अकस्मात् आगमन नही हो जाता। शरीर मे इसका प्रवेश क्रमश होता है। इस क्रम की दृष्टि से यौवन को चार भेदो मे विभाजित कर देते हैं। इन्हे क्रमश वय सन्धि काल, नव्य-यौवन, व्यक्त यौवन और पूर्ण यौवन मान सकते हैं।

वय सन्धिकाल से यौवन का आरम्भ माना जाता है। इसे मुग्धा के भेद के अन्तर्गत स्वीकार किया गया है। मुग्धा नवीन वय वाली, रति से विमुख और क्रोध मे मृदु स्वभाव वाली नायिका होती है। इस अवस्था मे विभिन्न काम सहायक अगो का विकास आरम्भ हो जाता है। वय सन्धिकाल यौवन और बालपन के विचारो का ऐसा सन्धि-स्थल है, जहाँ नायिका के मन मे अस्थिरता बनी रहती है। वह बालपन और यौवन दोनो ही विचारो से परिचालित होती हुई भी यौवन के आगमन से अनभिज्ञ रहती है। रीतिकालीन साहित्य मे इस अवस्था का वर्णन निम्नलिखित रूपो मे किया गया है—

१ मानसिक अस्थिरता और परिवर्तित होती हुई भावनाओ का आकर्षक वर्णन।

२. शारीरिक परिवर्तन।

३. विभिन्न अगो के उठान एव काम-कथाओ के प्रति जिज्ञासा के भाव।

रीतिकालीन कवियो के अनुसार वय सन्धि काल मे नेत्रो का नवीन ढग से विकास होने लगता है, चतुरता एव छबि उत्कर्ष को प्राप्त होने लगती है, शरीर मे लालिमा का सचार होने लगता है, अग खिलने लगते है।[1] वैस के उठान के साथ 'रूप' चूने लग जाता है, नयनो मे चचलता आ जाती है, मदन के मद से 'औरे आभा' हो जाती है। नेत्रो का विलास, मद का आधिक्य शारीरिक आकर्षण की अभिवृद्धि कर देते है। इन लक्षणो से युक्त वय सन्धिकाल का सरस वर्णन हुआ है।[2] 'श्यामा' का सलोना तन दो एक दिन मे मन्मथ के अधिकार

---

[1] आवत जोवन कछुक तन होत डहडहे अग।
शिशुता की हलचल कहौ, ललिता ललित सुरग।
कछु जोवन आभास ते बढी बधू दुति अग।
ईगुर छीर परात मे परै होत जो रग।
कृपा राम—रीति काव्य सग्रह पृ० १३६

[2] **वैस की उठान** ठौन रूप की अनूप कान्ह,
अग-अग औरे कछू ओप उलहति है।

मे पहुँच जाता है। शिशुता और यौवन इस प्रकार लगते है जैसे शीशी मे जल या सुमन मे पराग हो।[1] कही इस काल का वर्णन दो चुम्बको के बीच पडे हुए लोहे के समान किया गया है। नायिका शिशुता और यौवन दोनो के द्वारा समान रूप से खिची चली जाती है।[2] शारीरिक परिवर्तनो का वास्तविक स्वरूप नव्य-यौवन काल मे दीख पडता है।

इस वय मे अगो के उठान के प्रति रीति कालीन कवि जागरूक है। इसकी आरम्भिक चेतना एव विकास 'व्यक्त-यौवन' मे स्पष्ट हो जाता है। यहाँ आकर रूप एव कान्ति मे गतिमयता आ जाती है। रूप का आधिक्य और अग-ज्योति का वर्णन अधिक किया गया है। मुकुलित स्तन बढने लगते है। त्रिवली दीख पडने लगती है। पूर्ण यौवन मे अगो का विकास अपनी पूर्णता को प्राप्त करता है। यौवन की इन सभी अवस्थाओ का वर्णन रीतिकालीन साहित्य मे हुआ है। इस अवस्था के विभिन्न परिवर्तनो पर कवियो की दृष्टि रही है। यौवन रूप-राशि को बिखेर देता है। शरीर से ज्योति उमगने लगी है।[3] आँखो मे दीर्घता आ जाती है, अपाग कानो तक पहुँचने लगते है। देह की दीप्ति से

'चिन्तामणि' चचला विलास को रसाल नैन,
मदन के मद औरे आभा उमहति है।
कुन्दन की वेली सी नवेली अलबेली बाल,
केतिक गरब की सौ गौरता गहति है।
उझकि झरौखै तुम्हे चाहिबे को चन्द्रमुखी,
द्यौस हूँ मे चन्द्रिका पसारति रहति है।
रीतिकाव्य सग्रह पृ० १६७ चिन्तामणि

1 स्यामा कौ सलोनोतन, तामे दिन द्वैक माँझ,
फिरी सी चहत मनमथ की दुहाई सी।
सीसी मे सलिल जैसे, सुमन पराग तैसे,
सिसुता मे झलकत जोवन की झाँई सी।
ब्रज भाषा साहित्य का नायिका भेद—पृ० २३२ गंग कवि

2 लरिकापन यौवन सन्धि भई, दुहुँ वैस को भाव मिले न हिलै।
बिबि चुम्बक बीच को लोह भयो, मन जाइ सकै न इतै न उतै।
रीतिकाव्य सगह पृ० ४०७

3 रीति काव्य सग्रह पृ० २०१ और ३४०

भवन फटिक के समान स्वच्छ हो जाता है ।[1] राधा की इस देह दीप्ति को देखने के लिए घड़ी भर के लिए यमुना भी रुक जाती है। मुख की नई झलक से रूप खिलता जाता है ।[2] यौवन की लाली चमक उठती है। इन गुणो से सम्पन्न काया मे अनोखापन आ जाता है। क्रमश बढ़ती हुई अवस्था के साथ रीतिकाल मे दो प्रकार के परिवर्तनो का सकेत किया गया है। शरीरगत और भावगत। इन परिवर्तनो के माध्यम से नायिका का रूप-चित्र अच्छे प्रकार से प्रस्तुत किया गया है।

शरीरगत परिवर्तन के अन्तर्गत सूक्ष्म और स्थूल परिवर्तन का वर्णन किया गया है। सूक्ष्म परिवर्तन 'रूप' मे रहकर भी रूप मे भिन्न अस्तित्व रखता है। इन गुणो से सुकुमारता आदि की गणना की जा चुकी है। रूप, लावण्य छवि, ज्योति, उज्ज्वलता, कान्ति आदि द्वारा इसी सूक्ष्म गुण का सकेत मिलता है।

रूप-लावण्य—आत्म परक सूक्ष्म गुणो के अन्तर्गत रूप-लावण्यादि का सकेत किया जा चुका है। मोती मे उसकी कान्ति की तरलता के समान अगो मे स्वत प्रतिभासित होने वाली ज्योति को 'लावण्य' कहते हैं। अगो मे भूषण आदि प्रसाधनो के विना ही जब शोभा भूषणादि धारणवत् प्रतीत होती है, तो ऐसी शोभा को रूप कहते है। इसके अगो मे एक प्रकाश रहता है, जिससे सौन्दर्य की वृद्धि होती है। इससे व्यक्तित्व मे आकर्षण उत्पन्न होता है। यह सौन्दर्य का आवश्यक तत्व है। लावण्य के व्युत्पत्तिगत अर्थ मे **'लवणस्य भावः लावण्य'** कहा गया है अर्थात् शारीरिक नमकीनपने के भाव मे लावण्य रहता है। जैसे खाद्य सामग्री मे नमक के योग से उसका स्वाद बढ़ जाता है, इसी प्रकार शरीर मे लावण्य से सर्वाङ्ग की शोभा बढ जाती है। यह लावण्य रीति कालीन काव्य मे छवि, ज्योति, अग दीप्ति आदि रूपो मे प्रकट होता है।

---

1 फटिक शिलान सो सुधारो सुधा मन्दिर,
उदधि दधि की सी अधिकाई उमँगै अमन्द।
बाहिर ते भीतर लौं भीति ना दिखाई देति,
दूध कैसो फेन फैल्यो आगन फरस बन्द।
तारा सी सु तामे ठाढी आनि झिलि-झिलि होति,
मोतिन की जोति मिलि मल्लिका को मकरन्द।
आरसी से अम्बर मे आभा सी उज्याही लागै,
प्यारी राधिका को प्रतिबिम्ब सो लगत चन्द।

2 रस-रत्नाकर पृ० ६९४

इस लावण्य का विश्लेषण करने से उसके वर्णन मे कवियो की दो प्रवृत्तियाँ लक्षित होती है। १ लावण्य का काम मूलक दृष्टिकोण २ लावण्य के निरपेक्ष सौन्दर्य का वर्णन।

काममूलक दृष्टिकोण के अन्तर्गत युवा काल मे उत्पन्न होने वाले अयत्नज अलकारो की गणना होती है। यौवन मे इन अलकारो से नायिका की शोभा उत्कर्ष को प्राप्त होती है। अत शोभा-विधायक इन अलकारो को कृति-साध्य न मानकर स्वय-सभूत अलकार मानते है। इनकी इस नैसर्गिकता से रूप का आकर्षण बढ जाता है और अग-शोभा मे प्रकाश उत्पन्न हो जाता है। इनके अन्तर्गत सभी अयत्नज अलंकारो को न मानकर केवल शोभा, कान्ति, दीप्ति और माधुर्य को ही मानेगे। शेष तीन अलकारो—प्रगल्भता, औदार्य और धैर्य में चेष्टा अथवा मानसिक गुणो का समावेश होता है। इससे इन तीनो अलंकारो की सीमा गुणपरक तथा काम मूलक नैसर्गिक शोभा से भिन्न है। अत केवल प्रथम चार अलकारो का ही सकेत किया जाता है।

'शोभा' रूप यौवन और सुख-भोग से युक्त शरीर की सुन्दरता को कहते है। इसका वर्णन दो प्रकार से किया गया है (१) क्षण-क्षण की नवीनता और (२) शारीरिक विकास मे अनोखापन। यथा —

१ छन-छन नवता लहत है, छबि छलकत अवदात।
चन्द्र सरिस सुन्दर बदन, मृदुल सलोने गात।

२. बिसरन लागो बालपन को अयानप,
सखीन सो सयानप की बतियाँ गढै लगी।
दृग लागे तिरछे चलन पग मन्द लागे,
उर मे कछूक उकसन सी बढै लगी।
अगन मे आई तरुनाई यो झलकि,
लरिकाई अब देह ते हरै-हरै कढन लगी।
होन लागी कटि अब छटी की छला सी,
दूँज चन्द की कला सी तन दीपति बढै लगी।[1]

इन दोनो उदाहरणो मे दोनो प्रवृत्तियाँ व्यक्त हुई है। पहले मे क्षण-क्षण की नवीनता और दूसरे मे अगो के विकास का बाँकपन व्यक्त हुआ है।

स्मर-विलास से बढी हुई शोभा को 'कान्ति' कहते है। इसमे विभिन्न अगो मे रमणीयता और अनोखापन आ जाता है, जो गति, हाव-भाव या

1 रस-रत्नाकर पृ० १४४

विभिन्न क्रियाओ द्वारा व्यक्त हो जाता है। नेत्र, भौह आदि मे विलक्षणता आ जाती है। यथा —

फरकै लगी खजन सी अँखियाँ, भरी भायन भौहे मरोरे लगी।
अँगराई कछू अँगिया की तनी, छबि छाकि छिनौ छिन छोरै लगी।
वलि जैबे परै 'द्विजराज' कहै, मन-मौज मनोज हिलौरे लगी।
बतियाँन मे आनन्द घोरै लगी दिन द्वै मे पियूष निचोरै लगी।

अधिक मात्रा मे बढी हुई कान्ति ही दीप्ति कही जानी है। इसमे स्मर-विलास का प्राधान्य रहता है यथा। "दीपावली तन द्युति निरखि दबकी सी दिखराति। विविध जोति उजरी फिरति जरी बीजुरी जाति।" "प्रत्येक दशा की रमणीयता को 'माधुर्य' कहते है। इस माधुर्य से शोभा का विकास होता है। यथा "तिरछे चलि लहि वकता, करि चचलता मान। अधिक मधुमयी बनति है, ललना की अँखियानि।[1]

उपर्युक्त चारो गुणो के मूल मे वर्णित शोभा कामपरक दृष्टि से स्पष्ट की गई है। यौवनागम से इन गुणो का स्वत विकास होता है। इससे ये यौवन मे कामपरक गुण के अन्तर्गत माने गये है।

(ख) लावण्य का निरपेक्ष-सौन्दर्य—

रीतिकाल मे लावण्य के स्वरूप का निर्धारण करने के हेतु उसका समुचित चित्र-विधान किया गया है। उसके वर्णन मे ऐसे उपमानो का प्रयोग होता है, जिससे लावण्य का मूर्त-विधान हो जाता है। अगो मे वर्तमान छवि, ज्योति और अग-दीप्ति का अकन किया गया है। इनके वर्णन के अप्रस्तुत विधान मे अनेक बातो का ध्यान रखा गया है। ये अप्रस्तुत **गुण मूलक, क्रियामूलक और प्रकाशमूलक** वर्णित किये गये है।

गुणपरक उपमानो द्वारा लावण्य को बिम्बात्मक रूप देने के लिए जगर-मगर ज्योति, लावण्य के उफान और जुन्हाई के धार जैसे उपमानो का प्रयोग हुआ है। यह ज्योति सम्पूर्ण शरीर मे व्याप्त होकर सौन्दर्य-वर्द्धक बन जाती है। इसी से इस काल की नायिकाएँ लावण्य युक्त मधुर छवि धारिणी और ज्योति पुञ्ज होकर आई हैं। उनके रूप की ज्योति चारो ओर फैल जाती है। उनकी छवि की झलमलाहट मे दीपावली का दृश्य उपस्थित हो जाता है। पैर के तलवो की लालिमा उमड पडती है। ज्योति चारो ओर फैल जाती है —

---

1 रस-रत्नाकर पृ० २२०

१ अग-अंग तरग उठे दुति की, परि है मनो रूप अवै घर च्वै ।
२ डगर-डगर वगरावति अगर अग,
जगर-मगर आपु आवति दिवारी सी । देव०
३ भौनते निकसि प्यारी पाय धारै वाहिर लौ,
लाली तरवान की उमडि इक ओर की ।
वगर-वगर अरु डगर-डगर वर,
जगर-मगर चार्यो ओर दुति हो रही ।
४ थोडी-थोडी वैस की किसोरी तन गोरी-गोरी,
भोरी-भोरी वातन सो हियरो हरति है ।
× × × × × × × × ×
जगर-मगर ज्योति इन्दु वदनी की दुति,
सेखर अवास को प्रकाशित करति है ।
मानौ भज्यौ मजु मैन-मुकुर महल तामैं,
अमल अधूम महताव सी वरति है ।
चन्द्र शेखर वाजपेयी

अग-दीप्ति के सम्बन्ध मे कवियो की दृष्टि एक जैसी है । मतिराम ने नायिका के अग मे इसी दीप्ति की शोभा देखी है ।[1] इसकी ज्योति सदैव जलती रहती है ।[2] सुवास से 'दुति' के दुगुन होने की चर्चा है ।[3] घनानन्द ने अगो के वर्णन मे उसमे प्रतिभासित होने वाले तरल सौन्दर्य और गुण का सकेत किया है । अनुभूति की सत्यता से उन्होने नये प्रतीको को जन्म दिया है । देव ने प्यारी के रूप-पानिप मे मन को नमक के समान बिला जाने की बात की है ।[4]

छबि और लावण्य को मूर्त रूप देने के लिए अग-ज्योति को मशाल की लौ के समान माना गया है । घूँघट हटाने पर यह छवि अचानक ही मशाल की लौ के समान एक वारगी जल उठती है ।[5] हठी की राधा का रूप स्वत

1 रसराज छन्द ६ मतिराम
2 बदन-चन्द की चाँदनी देह दीप की जोति । ललित-ललाम ३३६
3 सहज सुबास जुत देह की दुगुन-दुति, दामिनि दमक दीप केसरि कनक है ।
रसराज १९५
4 प्यारी के रूप के पानिप मे मन माइल मेरो बिलाइगो लोन सो ।
5 घूँघट टारि चलावती, तिय हरि ताकि गुलाल ।
बुझी रही मानो वरी, एकै वार मशाल । भूपति सतसई ४७२

स्वर्ण मन्दिर मे फैलता रहता है।[1] उनका लावण्य और मुखच्छवि चारु किरणो की कतार को बिखेर देती है।[2] मणि के सिंहासन से निकलती हुई ज्योति के सग मुख की ज्योति मिलकर अपूर्व शोभा का उद्घाटन कर देती है। इस छवि मे वैभव सम्पन्नता, स्वप्रकाश्य गुण और गति की अपूर्व शोभा वर्तमान है।

गति-सम्पन्न ज्योति मे स्थिरता न होकर गतिशीलता है। इसमे ज्योति युक्त छवि की क्रियाशीलता देखी जा सकती है। अगो मे 'दुति' की तरगे उठती है। ऐसा लगता है, मानो रूप अभी चू पडेगा।[3] द्विज देव की नायिका के लावण्य से 'जुन्हाई की धार' प्रवाहित होने लगती है।[4] इन वर्णनो मे दुति की गतिशीलता प्रत्यक्ष रूप से लक्षित हो जाती है। इसका एक चित्र उपस्थित हो जाता है। इसके अतिरिक्त रूप के फैलने, मुख से किरण जाल के निकलने, जुन्हाई की धार प्रवाहित होने आदि मे छवि की यही गतिशीलता दिखाई पडती है। पद्माकर की गति छवि और शब्द दोनो की ही है। ब्रज ठाकुर के पास जाती हुई ठकुराइन के अग-अग से 'रोसनी' निकलती है।[5] अग की शोभा फैल जाती है।[6]

स्पष्ट है कि रूप-लावण्य के वर्णन मे उसके प्रकाश गति और गुण का घ्यान रखा गया है। कही-कही रग-सकेत भी है। इसमे मुख्यत उज्ज्वल वर्ण की आभा का ही वर्णन जुन्हाई या उजेरी चद आदि के उपमानो द्वारा किया

---

1 'हठी' ब्रज मण्डल मैं रूप बगराय आज,
बैठी जात रूप के महल महरानी है।
श्रीराधा सुधाशतक छन्द २२

2 राधे महरानी बैठी मणि के सिंहासन पै, फैली मुख चारु किरन कतारे हैं।
अङ्गादर्श छन्द १०६ रग नारायण पाल

3 अग-अग तरग उठे दुति की, परिहै मनो रूप अबै धर च्वै। घनानन्द

4 भीतर भौन ते बाहिर लौ, 'द्विज देव' जुन्हाई की धार सी धावति।
री० का० सग्रह से

5 ये अग-अग की रोसनी मे, सुभ सोसनी चीर चुम्यो चित चाइन।
जाति चली ब्रज ठाकुर पै, ठमका ठुमकी-ठमकी ठकुराइन।
जगद्विनोद—पद्माकर

6 आली औरे आभा भई है बदन पर, जगर-मगर जोति होति अग-अग की।
वृहत् इतिहास भाग ६ पृ० ३२३

गया है ।[1] 'रूप के ज्वार' से सौन्दर्य व्यञ्जित किया गया है । अंगो मे व्याप्त रहने वागी शोभा का रूप-चित्र प्रस्तुत किया गया है । रूप-लावण्य के गुण और गति दोनो का ही ज्ञान कराया गया है । स्वत प्रकाशित होने वाले लावण्य के प्रभाव मूलक गुण को व्यक्त करने के लिए 'रूप' मे चकाचौध उत्पन्न कर देने वाले गुण का सकेत किया गया है । अत इस काल के रूप-लावण्य वर्णन मे तरलता, गतिमयता, वैभव की चमक और नमकीनपन है । इसी से 'लुनाई' का वर्णन करते नही वनता । वह आँखो को प्रिय लगता है । एक वार ऐसे छवि पुञ्ज आलम्बन को देखकर पुन दूसरा कुछ देखना शेष नही रह जाता । 'आज की या छबि देख भटू, अब देखिबे को न रह्यौ कछु बाकी ।" यही कारण है कि ऐसे रूप के प्रभाव की भी अभिव्यञ्जना की गई है ।

रूप का प्रभाव—नारी के रूप की सार्थकता दर्शक को प्रभावित कर लेने मे है । रूप वही सुन्दर होगा, जो अपने आकर्षण से लोगो के नेत्र और मन दोनो को ही अपनी ओर खीच ले । ऐसा होने पर ही नारी की मोहिनी संज्ञा यथार्थ मानी जा सकती है । रीतिकालीन कविता मे इस मोहकत्व शक्ति और रूप-सौन्दर्य के प्रभाव की व्यञ्जना अनेक कवियो ने की है । यह व्यञ्जना नायक अथवा नायिका के वास्तविक सौन्दर्य और उसके तेजपुञ्ज रूप के माध्यम से हो सकी है । इस काल का कवि केवल अगो की स्थूलता मात्र मे ही बँधकर नही रह गया है, अपितु उसके प्रभाव को अनेक रूपो मे व्यक्त करने मे सचेष्ट रहा है । यह प्रभाव मन और शरीर दोनो पर ही पड़ा है ।

रूप के मानसिक प्रभाव की अभिव्यक्ति मे स्नेह की उत्पत्ति, मन की अभिलाषा और चित्त के परवश हो जाने की बात का समर्थन किया गया है । स्नेहोत्पत्ति मे रूप का तत्काल और सद्य प्रभाव पडता है । यह प्रभाव दोनो ओर से अभिव्यक्त हुआ है ।[2] राधा और कृष्ण दोनो के हृदय मे स्नेह का सचार होने लग जाता है । अन्य स्थल पर रूप-दर्शन से सदा निहारते रहने की भावना का उदय होता है । गोपी अभिलाषा करती है कि समाज, कार्य और लज्जा को छोडकर पल-पल और घडी-घडी श्री कृष्ण के सुख को ही

---

1 चली स्याम हित राधिका, सरद उजेरी माँहि ।
चद उजेरी सो मिलत, नेकु न जानी जाहि । री० का० स० पृ० १४१

2 धोखे कढी हुती पौरि लौ राधिका नन्दकिशोर तहाँ दरसाने ।
'वेनी-प्रवीन' देखा देखी ही मे, सनेह समूह दोउ सरसाने ।
नवरसतरग पृ० ६२ छद ४४७

निहारा करे। वह उनकी आरती उतारते रहने की अभिलाषा व्यक्त करती है[1] उसका मन परवश हो जाता है। रूप के आकर्षण मे खिचकर 'ललिता' मैन-मतवारी' हो जाती है।

रूप-दर्शन से उत्पन्न शारीरिक प्रभाव की व्यञ्जना की गई है। नायक अथवा नायिका के सौन्दर्य को देखकर मन इतना आसक्त हो जाता है कि उसका प्रभाव शरीर पर भी पडता है। सौन्दर्य और आकर्षण के अभाव मे शारीरिक परिवर्तन सम्भव नही हो सकता है। इस परिवर्तन मे स्तब्धता, विस्मय विमुग्धता, माध्यम से देखने की भावना और अन्य अनेक शारीरिक प्रतिक्रियाओ का वर्णन है।[2]

रूप-सौन्दर्य को देखकर श्रीकृष्ण के मन पर पडते हुए प्रभाव मे स्तब्धता का यही भाव है। राधा गुलाल की 'मूठि मार कर' चली जाती है। श्रीकृष्ण हाथ मे पिचकारी लिये ही रह जाते हैं और उसे चलाने की सुधि भी उनमे नही रह जाती। वे राधा-रूप को देखकर स्तब्ध हो जाते है।[3] होली के एक अन्य प्रसग पर राधा रूप से प्रभाव की व्यञ्जना की गई है। श्रीकृष्ण उसे देखकर विस्मय-विमुग्ध होते हुए हतचेत से हो जाते हैं।[4] केवल हाथ मलकर रह जाते है।

---

1 ऐसी मति होति अब ऐसी करौ आली,
बनमाली के सिंगार मे सिंगारवोई करिये।
कहै 'पदमाकर' समाज तजि काज तजि,
लाज को जहाज तजि डारवोई करिये।
घरी-घरी पल-पल छिन-छिन रैन-दिन,
नैनन की आरती उतारवोई करिये।
इन्दु ते अधिक अरविन्द ते अधिक,
ऐसो आनन गोविन्द को निहारवोई करिये। जगद्विनोद छद ६४९

2 सनेहसागर पृ० १६

3 पिचका लियेई रहै रह्यौ रग तोहि देखि,
रूप की घसक लागे थके है थसरि के।
कौधि 'घन आनन्द' को भिजयौ हसनि ही मे,
हाथ कियो लालहि गुलालहि मसरिके। घन आनन्द।

4 गोरी बाल थोरी बैस, लाल पै गुलाल मूठि,
तानि के चपल चली आनन्द उठान सो।

दूसरी ओर श्रीकृष्ण की रूप माधुरी का प्रभाव गोपियो के मन पर भी व्यक्त किया गया है। उसे देखकर गोपियो के शरीर मे अनग की दॉवरी सी आ जाती है, उसके हृदय मे पीडा सालने लगती है।[1] वे अन्य माध्यम से देखकर अपनी रूप-दर्शन की भावना तृप्त कर लेती है।[2]

उपर्युक्त विचारो से स्पष्ट है कि रीतिकालीन काव्य मे रूप-सौन्दर्य के प्रभाव की व्यञ्जना अभिधेय रूप मे न होकर व्यग्य रूप मे हुई है। अभिव्यक्त भावो से रूपोत्कर्ष का आभास मिल जाता है। यह आभास ही रूप-सौन्दर्य के प्रभाव को स्पष्ट करने मे समर्थ होता है। यह इस रूप की क्षण-क्षण की नवीनता द्वारा व्यक्त किया गया है।

नवीनता—रीतिकालीन काव्य मे छवि की नवीनता के द्वारा रूप के अतिशय की व्यञ्जना की गई है। इससे रूप की महत्ता बढती है आलम्बन के प्रति मुग्धता का भाव आता है, उसका महत्त्व बना रहता है और एकरसता के कारण ऊब उत्पन्न नही होती। प्राय दैनिक अनुभवो से यह सिद्ध होता है कि एकरसता और अनाकर्षण आलम्बन के महत्त्व को गिरा देता है। अत आल-म्बन के महत्त्व को बनाये रखने के लिये रूप-छवि की नवीनता का वर्णन

बाये पानि घूँघट की गहनि चहनि ओट,
चोटनि करति अति तीखे नैन बान सौ।
कोरि दामिनीनि के दलनि दलमलि पाय,
दाय जीति आय झुड मिलि सयान सौ।
मीडिबै के लेखै कर मीडिबोई हाथ लग्यौ,
सौ न लगी हाथ रह्यौ सकुचि सखान सौ।

1 सिर मोरपखा मुरली कर लै, हरि दै गयो भोरहिं भावरी सी।
कहि 'तोष तहिं जबही ते चढी, अग-अग अनग की दॉवरी सी।
नट साल सी सालि रही न कढै चढि आवति है तन तॉवरि सी।
अँखियाँ मे समाइ रही सजनी, वह मोहिनी मूरति सॉवरी सी।
नवरस तरग छद ४२०

2 बैठी हुती गुरु-मण्डली मे, मन मे मनमोहन को न बिसारति।
त्यौ 'नन्दराम जू आइ गये बन ते, तहँ मोरपखा सिर धारत।
लाज ते पीठ दै बैठी बहू, पति मातु की आँख ते ऑख न टारत।
सासु की नैनन की पुतरीन मे, प्रीतम कौ प्रतिबिम्ब निहारत।
ब्र० सा० का नायिका भेद छद २८६

किया गया है। रीतिकाल मे रूप-छवि की इस नवीनता के कई कारण हो सकते है---(१) कवियो के जीवन का व्यक्तिगत मोह एव प्रेम (२) अपने प्रिय पात्र के रूप के अतिशय का वर्णन (३) प्रेम के आधिक्य की व्यञ्जना। इन तीनो प्रेरक कारणो से रीतिकाल मे जिस रूप-छवि की व्यञ्जना की गई, वह नित नवीन बना रहा। यह नवीनता दो रूपो मे स्पष्ट हो सकी है।

(१) निकट से देखने पर नवीनता का ज्ञान।
(२) प्रत्येक अग की नवीनता और आकर्षण।

रूप-छवि के सम्बन्ध मे यह सामान्य अनुभव है कि निकट से देखने पर उसकी कमियाँ स्पष्ट हो जाती हैं। केवल दूर से ही आकर्षण बना रहता है, परन्तु रीतिकालीन नायिका का रूप निकट से देखने पर और खरे रूप मे प्रकट हो जाता है---

१. ज्यो-ज्यो निहारिये नेरे ह्वै नैननि,
त्यौ-त्यौ खरी निकरै सी निकाई। मतिराम

२ रावरे रूप की रीति अनूप नयो-नयो लागत ज्यो-ज्यो निहारियै।
त्यौं इन आँखिन बानि अनोखी,अघानि कहू नही आनि तिहारियै।
घनानन्द

इन उदाहरणो से स्पष्ट है कि रूप-छवि वर्णन मे केवल परिपाटी के निर्वाह का आग्रह न होकर नवीनताजन्य सरसता और आकर्षण का वर्णन हो सका है। रूप का ऐसा वर्णन आश्रय की भावनाओ को उद्दीप्त करके उसे आलम्बन की ओर आकृष्ट कर देता है। उसके प्रत्येक अग मे सुन्दरताई दीख पड़ने लगती है। "ज्यो-ज्यो निहारिये जू प्रति अगन, त्यो-त्यो लगै अति सुन्दरताई।"[1]

इस युग का कवि रूप-छबि का वर्णन करने मे सर्वाङ्ग अथवा अग-प्रत्यग का शुष्क वर्णन न करके उसका बिम्बात्मक रूप भी प्रस्तुत कर देना चाहता है। भिन्न अवयवो का नवीन दृष्टियो से वर्णित सौन्दर्य अनन्त छवियो को लेकर अवतरित हुआ है। हर बार एक नई कान्ति और ताजगी का अनुभव हो जाता है। यह तभी सम्भव होता है जब कवि अपनी व्यक्तिगत अनुभूतियो का सहारा लेता है। ऐसी स्थिति मे वर्णन की सजीवता और सचाई प्रत्यक्ष हो जाती है। इस छवि के चित्रण मे वाह्य रूप-सौन्दर्य और लावण्य की आन्तरिक कान्ति का चित्रण मिलता है। इसी कारण नायिका प्रत्येक बार

[1] बेनी–प्रवीन।

नवीन छवि धारण करके समक्ष प्रस्तुत की गई है। हर बार की यह नवीनता दृष्टिकोण की सौन्दर्यपरक मनोवृत्ति को स्पष्ट कर देती है। इसके अतिरिक्त आत्म-तत्त्व के अभाव मे परिपाटी निर्वाह के अवसर पर नीरसता और पुनरुक्ति दीख पडती है। ऐसे स्थलो पर रूप-सौन्दर्य के वाह्य-चित्रण मे आलकारिक पद्धति एव उपमानो के प्रस्तुत करने मे ही कवियो की वृत्ति रमी है। फिर भी अनुभूत्यात्मक चित्रणो की कमी नही है। इस प्रकार स्पष्ट है कि वाह्य एव आन्तरिक दोनो ही चित्रणो मे कवि की स्वच्छन्द वृत्ति नवीनता का आग्रह लेकर चली है। यही नवीनता रूप-छवि के महत्व को स्थिर करने मे प्रमुख है।

कोमलता—स्पार्शिक सुखानुभूति के लिये मार्दव गुण परमावश्यक है। मार्दव कोमल वस्तु के भी स्पर्श की असहनीयता को कहते है। जिस नायिका मे यह गुण अधिक होगा उसका सौन्दर्य उत्तम कोटि का माना जाता है। स्पर्श की असहनीयता की दृष्टि से शारीरिक कोमलता की उत्तम, मध्यम और अधम ये तीन श्रेणिया वताई जा चुकी है। कोमलता के उद्भव के दो कारण हो सकते है। प्रथम उत्तम कुल मे जन्म लेने से निसर्गगत कोमलता और दूसरी अर्जित कोमलता। अर्जित कोमलता अनुलेपन आदि के सतत प्रयोग से प्राप्त की जा सकती है। प्राप्त की गई यह कोमलता शारीरिक ही होती है। इससे स्पर्श सुख की प्राप्ति हो सकती है। अत इस कोमलता मे त्वचा के स्पर्श का महत्व रहता है। यह कोमलता केवल वाह्य होने से एकागी है। इसे पूर्णता देने के लिये निसर्गगत कोमलता द्वारा सौन्दर्य की अभिव्यञ्जना की जाती है।

निसर्गगत कोमलता का मूलकारण नायिका का उत्तम एव उच्च कुल माना जाता है। उत्तम कुल मे उत्पन्न होने से उसकी कोमलता सर्वाङ्गीण होकर प्रत्यक्ष होती है। शरीर, मन और भावो की यह कोमलता उत्तम सौन्दर्य की अभिव्यक्ति करती है। रीतिकालीन काव्य मे कोमलता की यह सर्वाङ्गीणता अनेक रूपो मे प्रत्यक्ष हुई है। इसकी अभिव्यञ्जना दो रूपो मे की गई है—

१. असहनीयता के माध्यम से
२. अन्य माध्यम से

असहनीयता के माध्यम से प्रकट की जाने वाली कोमलता अभिधेय न होकर व्यग्य रूप मे प्रकट की गई है। असहनीयता का अर्थ किसी वस्तु के भार को सहन करने की क्षमता का अभाव है। इस अभाव की अधिकता के अनुसार ही सुन्दरता की कोटि का निर्धारण होता है। जिस वस्तु के सग

असहनीयता की भावना उत्पन्न होती है, उस वस्तु की प्रकृति के अनुसार ही कोमलता की उत्तमता आदि का स्थिरीकरण होता है। यह असहनीयता रीति-कालीन काव्य मे निम्नलिखित रूपो मे स्पष्ट की गई है।

(१) भार की असहनीयता
(२) ताप की असहनीयता
(३) स्पर्श की असहनीयता
(४) चक्षु या दृष्टि की असहनीयता

इस काल का कवि कोमलता की अभिव्यञ्जना के लिये असहनीयता के इन माध्यमो के प्रति सदैव जागरूक रहा है। यद्यपि रीतिकाल के शुद्ध कृष्ण काव्य मे इतने विभेद सूक्ष्मता के साथ वर्णित नही किये गये है, फिर भी रीतिकालीन सम्पूर्ण काव्य चेतना मे यह प्रवृत्ति स्पष्ट रूप से लक्षित होती है। क्रमश इन सब पर विचार किया जायगा।

(१) भार की असहनीयता—उत्तम शरीर वाली नायिका जो किसी प्रकार का भार सहन नही कर पाती है, उसे कोमल कहते है और इस गुण को कोमलता कहते है। यह गुण वस्तु की असहनीयता से उत्पन्न होता है। वस्तु की यह कल्पना रीतिकालीन साहित्य मे दो प्रकार से की गई है। प्रथम मूर्त या साकार पदार्थो को सहन न कर सकना और दूसरा अमूर्त पदार्थो को सहन न कर सकना।

मूर्त या दृश्य पदार्थो के भार के अनुसार व्यक्त होने वाली कोमलता से उद्भूत सौन्दर्य की तीन कोटियाँ बताई जा चुकी है। जिन्हे उत्तम मध्यम और अधम कोमलता की सज्ञा दी जा चुकी है। ये तीनो प्रकार रीतिकालीन कविता मे देखे जा सकते है। कचभार द्वारा लक का लचक जाना, बालो के बोझ को सभाल न सकना [1] जावक के भार की असहनीयता और महावर के भार से पता लगा लेना कि किस पग मे महावर लग चुका है, रीतिकालीन कविता मे वर्णित है। द्विजदेव की कोमलागी जावक-भार के कारण धरा पर मन्द गति से पग आगे बढाती है। दास की कोमल एव अरुणवर्णी नायिका एक पग मे जावक लग जाने की बात जावक के प्रत्यक्ष दर्शन से न बताकर उसके भार

---

1 (i) पानिप के भारन सभारत न गात लक,
लचि-लचि जाति कच भारन के हलकै।
द्विजदेव रीतिकाव्य सग्रह पृ २६७

(ii) 'चिंतामणि' कच, कुच भार लक लचकति,
सोहै तन तनक बनक छवि खान की। रीतिकाव्य सग्रह पृ० १६८

से ही बता पाती है ।[1] मतिराम ने बताया है कि भार के डर से ही सुकुमारी अगराग, कुमकुम आदि का प्रयोग नही करती ।[2] बलभद्र के अनुसार कपडे और बालो के बोझ के कारण नायिका घर से बाहर निकलती ही नही ।[3] द्विजदेव ने स्वय अपने अगो के भार को भी असहनीय बताया है। यहाँ तक कि 'वरुनि' के भार के कारण आँखे झुक-झुक जाती है ।[4]

इन सभी उदाहरणो से स्पष्ट हो जाता है कि अपने ही शरीर के किसी अग अथवा प्रसाधन सामग्री के भार की असहनीयता के कारण सौन्दर्य की अभिव्यञ्जना की गई है। इस भार का एक भौतिक और मूर्त अस्तित्व होता है, फिर भी यह वास्तविक भार की दृष्टि से नगण्य है। सामान्य व्यवहार मे इन तत्त्वो को बाधक या असहनीय तत्व नही मानते है, परन्तु इसके माध्यम से नायिका का कोमलता-जन्य सौन्दर्य व्यञ्जित हो जाता है। कहीं-कही सम्पूर्ण शरीर की कोमलता व्यञ्जित है। द्विजदेवने जावक, गध, वरुनि, पानिप और कचभार की असहनीयता से युक्त कोमल नायिका के प्रति सभी रसिको के मन की ललक को व्यक्त कर दिया है ।[5] मतिराम ने एक ही छद मे भार, ताप, स्पर्श और चक्षु की असहनीयता का वर्णन करके नायिका की कोमलता का सश्लिष्ट रूप प्रस्तुत कर दिया है ।[6] उनकी नायिका का मुख वातायान से बाहर निकलने मात्र से ही आतप के कारण मलिन पड जाता है, हवा मे आने से लक लचक जाता है और मुख की शोभा मद पड जाती है।

---

1 (क) दास न जानै धौ कौन है दीबौ, चितै दुहूँ पाँइन नाइन हारी ।
आप कह्यौ अरी दाहिनै दै मोहि, जानि परै पग बाम है भारी ।
री० का० सग्रह पृ० २२७ भिखारीदास

(ख) बोझिल सो यह पाँव लगै, तब यौ मुसुकाइ कह्यौ ठकुराइन ।
रघुनाथ ।

2 भार के डरनि सुकुमारि चारु अगनि मै,
करति न अगराग कु कुम को पक है । री० का० स० पृष्ट १९६

3 रस-रत्नाकर पृ० ७००

4 द्विजदेव तैसिये विचित्र वरुनि के भार,
आधे-आधे दृगनि परि है अध-पलकै । री० का० स० पृष्ठ २६७

5 रीतिकाव्य सग्रह पृ० २६७ द्विजदेव ।

6 रीतिकाव्य सग्रह पृ० १७६ छद १९

भार के इन सभी कारणो मे मूर्तिमत्ता रहती है, परन्तु रीतिकाल का कलाकार कवि अमूर्त तत्त्वो के माध्यम से भी नायिका की कोमलता की अभिव्यन्जना करता है।

अमूर्त अथवा अरूप की भार सम्बन्धी भौतिक सत्ता नही होती है। फिर भी कवियो ने ऐसे तत्वो का सहारा लिया है। इसका उद्देश्य उत्तम कोटि के सौन्दर्य एव कोमलता की व्यन्जना करना है। शोभा एव रूप के भार की प्रतिक्रियाओ का वर्णन विहारी, घनानन्द और द्विजदेव आदि कवियो ने किया है। शोभा के भ.र से पावो का सूधे ढग से न पडना[1] रूप के भार से मुख का लज्जित हो जाना,[2] कटि का लच र जाना आदि का वर्णन किया गया है। रस-लीन ने 'दृष्टि पडने' मात्र से नायिक। की विकलता का वर्णन किना है। "क्यो वा तन सुकुमारि तनि देखत पैयत नीठि। दीठि परति यो तरफरति, मानो लागी दीठि।"[3] इस उदाहरण मे दीठि लगना' मुहावरे के प्रयोग द्वारा प्रयोजनवती लक्षणा का सहारा लिया गया है। इस प्रकार के वर्णनो का उद्देश्य शारीरिक सौन्दर्य की कलात्मक अभिव्यक्ति द्वारा वर्ण्य वस्तु को प्रभावशाली ढग से प्रस्तुत करना होता है। इससे भावात्मक व्यन्जना सरस रूप मे प्रस्तुत नही हो पाती है। इसके लिये शोभा, रूप आदि के भार का वर्णन करके लाक्षणिक प्रयोगो द्वारा शोभाजन्य कोमलता के अतिशय' का अर्थ ग्रहण किया जाता है। अरूप की इस असहनीयता से चरम कोटि की उत्तम कोमलता अभिव्यक्त होती है।

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट हो गया कि भार की असहनीयता के माध्यम से कोमलता की व्यन्जना होती है। यह अपने ही शरीर के अंगो का भार

---

1 भूषण भार सभारिहै, क्यो ये तन सुकुमार।
सूधे पॉव न पडि सकै, शोभा ही के भार।
शोभा ही के भार, चलत लटकत कटि छीनी।
देतो पवन उडाय, जौ न होती कुच पीनी।

2 (क) रूप के भार न होति है सौही, लजौही यै दीठि सुजान यो फूली।
री० का० सग्रह पृ० ३५० घनानन्द

(ख) 'पानिप' के भारन सभारत न गात लक.
लचि-लचि जाति कच भारन के हलकै। री का पृ २६७ द्विजदेव

3 अग-दर्पण-रसलीन

अथवा प्रसाधन सामग्री के भार का मूर्त रूप होता है। ऐसे रूपो मे कच, हार,[1] कुच, कुकुम जावक आदि के भार का वर्णन है। अमूर्त भार मे शोभा रूप आदि का वर्णन किया गया है। भार की इस असहनीयता के साथ ताप की असहनीयता के द्वारा भी कोमलता की व्यञ्जना की गई है।

ताप की असहनीयता द्वारा प्रतिकूल परिस्थिति मे पडी नायिका का चित्रण है। मडन कवि ने लिखा है कि नायिका का स्वर्णिम अंग रसोई घर की ताप को सहन नही कर सकेगा। 'यह सोनो सो अग सोहाग भरो, कहौ कैसे के आगी की आँच सहै।'[2] इस वर्णन मे शोभा, कान्ति और कोमलता की व्यञ्जना एक साथ कर दी गई है। व्यञ्जना यह है कि जैसे सुहागामिश्रित सोना अग्नि के ताप के सम्पर्क से गल जाता है, उसी प्रकार यह नायिका भी रसोई घर के ताप को सहन नही कर सकेगी। 'सोनो सो अग' कहकर शरीर मे वर्तमान कान्ति का बोध कराया गया है। ताप की असहनीयता द्वारा कोमलता की अभिव्यञ्जना की गई है। आतप के द्वारा मुख के मलिन हो जाने मे सुकुमारता की अधम श्रेणी का वर्णन किया गया है। हार आदि के भार की असहनीयता मे 'मध्यम कोटि' का सौकुमार्य व्यञ्जित होता है और कोमलतम वस्तुओ के स्पर्श की असहनीयता उत्तम कोटि की सुकुमारता को व्यञ्जित करती है।

स्पर्श की असहनीयता द्वारा व्यञ्जित सौकुमार्य उत्तम कोटि का माना जाता है। इसमे कोमलतम वस्तुएँ भी स्पर्श से दुःख देने वाली बन जाती है। इसका वर्णन दो प्रकार से किया गया है। प्रथम वास्तविक स्पर्श और दूसरा स्पर्श की आशका। इन दोनो का वर्णन रीतिकालीन काव्य मे मिल जाता है।

वास्तविक स्पर्श मे वस्तु की उपस्थिति रहती है और उसके सम्पर्क से नायिका की कोमलता व्यञ्जित होती है। यह कोमलता उसके शारीरिक

---

1 एक तो तिहारी हेली रूप ही हरत मन,
तामै ये छकै से नैन मुसुकि मिलाइ है।
हारन के भार लक लचकत नागरी सु,
गागरी लिये ते सीस तन थहराइ है।
'ब्रजभाषा के कृष्ण भक्ति काव्य मे अभिव्यञ्जना-शिल्प' से उद्धृत
पृ० २४८ डा० सावित्री सिन्हा।

2 रीतिकाव्य सग्रह पृ० ३९६

परिवर्तनो द्वारा व्यक्त हो जाती है। वस्तु और कोमल अगो के सम्पर्क मात्र से यह परिवर्तन दीख पडने लगते है। 'देवकी नन्दन' ने कहा है कि गाँव की चूडीहारिन गाँव छोडने को तैयार है, क्योकि उसकी नायिका अँगुली के स्पर्श मात्र से सिसकने लग जाती है।[1] इससे वह उसे चूडी पहिराने मे अपने को असमर्थ पाती है। इसमे स्पर्श की असहनीयता द्वारा उत्तम कोटि की कोमलता एव सौन्दर्य की अभिव्यञ्जना हो सकी है। इसमे कोमलता का सकेत अभिधेय रूप मे न होकर व्यग्य रूप मे है। मतिराम ने 'विजन के बयारि' लग जाने से लक के लचक जाने की बात का समर्थन किया है। 'कैसे वह बाल लाल बाहिर बिजन आवै, बिजन बयारि लागै लचकत लक है।[2] बलभद्र कवि के अनुसार नायिका पखा के पवन के स्पर्श से उड जाती है और समीर चले जाने पर तो सौतो की मन चीती हो जाती है।[3] एक अन्य कवि महोदय के अनुसार बात यहाँ तक बढ जाती है कि श्वासो के स्पर्श से नायिका ऐसी गिरती है मानो उसे धक्का दे दिया गया हो। यही कारण हे कि वह प्रिय के समक्ष ठहर नही पाती है।[4] लोक सीमा की वास्तविकता का अतिक्रमण करने वाले ऐसे वर्णनो के द्वारा उत्तम कोटि की कोमलता की व्यञ्जना भले ही हो जाय, इससे रस-सिद्धि नही होने पाती। यह युग की चमत्कारिक प्रवृत्ति का फल है। ऐसा वर्णन मजाक से अधिक महत्व का नही रह जाता, क्योकि यह वास्तविकता से नितान्त शून्य है।

स्पर्श की असहनीयता द्वारा कोमलता की व्यञ्जना करना वास्तविकता के आधार पर ठीक माना जा सकता हे, परन्तु इस असहनीयता के ऊहात्मक वर्णन के माध्यम से वास्तव मे शरीर पर चोट दिखाना या नायिका को गिरा देना जैसे वर्णनो द्वारा रागात्मक अनुभूति की तृप्ति नही हो पाती है। पद्माकर की नायिका के पगो मे मखमल के बिछौनो का स्पर्श गड जाता है और कोमल गुलाब की पखुडियाँ भी प्रतिकूल सिद्ध होती है। कोमलता के अतिशय

---

1 वे अँगुरी के छुवै सिसकै करबार सी पातरी जौ मैं चढाऊँ।
दन्तन दाबती जीभै उतै इत प्यारी के नैन रुखाई बचाऊँ।
'देवकी नन्दन' मोहि बडो दुख कौतुक होय सो काहि लखाऊँ।
छोडिहो गाव बबा कि सौ मैं पर चूरी न ह्या पहिरावन आऊँ।
रीति काव्य सग्रह पृ० ३६१

2 मतिराम—ललित ललाम १२१

3 रस-रत्नाकर पृ० ७००

4 रस-रत्नाकर प० ७०१

की व्यञ्जना रागात्मक स्तर पर स्वस्थ और उचित मानी जा सकती है। परन्तु दो पग चलने से पैरो मे छाले पड जाना या पान की बीडी उठाने मात्र से ताप चढ जाना जैसा वर्णन ऊहात्मक ही माना जायगा। फिर भी इनसे कोमलता की व्यञ्जना तो हो ही जाती है।

वास्तविक स्पर्श की इस असहनीयता के साथ स्पर्श से उत्पन्न प्रतिकूल प्रभाव की आशका द्वारा भी कोमलता की व्यञ्जना की गई है। बिहारी के वर्णन मे सखी को यह आशंका बनी रहती है कि बार-बार करवट लेने से नायिका के शरीर पर गुलाब की पखुडियो की खरौच लग जायगी। इसमे पखुडियो का स्पर्श भी प्रतिकूल प्रभाव उत्पन्न करने की क्षमता रखता है। ऐसे वर्णन मे स्पर्श की प्रतिकूलता का भय व्याप्त रहता है। कुसुम शैया पर खरौच लगने के भय द्वारा इस प्रकार की व्यञ्जना की गई है। मतिराम की नायिका कठोर भूमि पर पग न रखकर कुसुम बिछे पर्यंक पर ही पांव रखकर विहरण करती है। "चरन धरै न भूमि बिहरै तहाँई जहाँ फूले-फूले फूलनि बिछायौ परजक है।"[1] इन उदाहरणो से स्पष्ट है कि रीतिकालीन नायिकाएँ फूल जैसे कोमल पदार्थों के स्पर्श को सहन करने मे असमर्थ थी। ऐसी स्थिति मे कठोर पृथ्वी के स्पर्श की क्षमता प्राप्त कर लेने का तो कोई प्रश्न ही नही उठता। इन प्रसगो से स्पष्ट है कि स्पर्श की असहनीयता द्वारा कोमलता से युक्त नायिका के सौन्दर्य की मधुर व्यञ्जना की गई है। यह स्पर्श शारीरिक होता रहा है, परन्तु कही-कही केवल दृष्टि के स्पर्श के प्रभाव की भी अभिव्यक्ति हुई है।

रीतिकालीन कवियो की कुसुम कोमल नायिकाएं चाक्षुष स्पर्श के दृष्टिभार को भी सहन नही कर पाती है। रसलीन ने कहा है कि नवला नायिका पिय की चितवन को सहन नही कर पाती है। इसीसे वह मुख फेर कर बैठ जाती है।[2] इस प्रकार के दृश्य चित्र सौन्दर्योपासक भावना को व्यक्त करते है। सुकुमारता के ऐसे वर्णनो मे जीवन की स्फूर्ति और प्राणो का स्पन्दन दीख पडता है। अन्य स्थलो पर ऊहात्मक वर्णनो द्वारा चक्षु की स्पर्शजन्य असहनीयता को चमत्कार के क्षेत्र मे ला दिया गया है।[3]

---

1 ललित ललाम १२१ मतिराम।

2 नवला मुरि बैठनि चितै, यह मन होत विचार।
कोमल मुख सहि ना सकति, पिय चितवनि को भार।

रस-प्रबोध पृ० ८ छ्द ८६

3 रस-रत्नाकर से पृ० ७०१ वलभद्र कवि

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि रीतिकालीन कवियो ने असहनीयता के माध्यम से कोमलता की व्यञ्जना की है । यह असहनीयता भार ताप, स्पर्श और चक्षु की बताई गई है। इन सभी स्थलो पर कवियो ने अभिधा के प्रयोग का निवारण करके व्यञ्जना अथवा लक्षणा का प्रयोग किया है। ऐसे प्रयोगो द्वारा प्रस्तुत की कोमलता जन्य शोभा अधिक बढ गयी है। इसीसे रीतिकालीन नायिकाओ की सुकुमारता सर्वाङ्गीण है। इस असहनीयता के अतिरिक्त अन्य माध्यमो, परिस्थितियो एव प्रसगो के द्वारा भी कोमलता की यही अभिव्यञ्जना कराई गई है ।

(ख) **अन्य माध्यमों से कोमलता की व्यञ्जना**—भार आदि की असहनीयता के अतिरिक्त अन्य माध्यमो द्वारा भी नायिका की कोमलता अभिव्यञ्जित हुई है। इसमे मन की कोमलता और भावनाओ आदि की कोमलता व्यक्त हो सकी है। यह अभिव्यक्ति अनेक प्रकार से रीति कालीन कविता मे हुई है।

(१) घनानन्द ने मन की सुकुमारता के लिये उपमालकार का प्रयोग किया है। राधा के मान करने पर सखी कहती है कि माखन सा कोमल मन मान जैसे कठोर वान को कैसे जानता है।[1] श्रीपति ने भी अलकारो का सहारा लेकर ससार मे प्रसिद्ध कोमल वस्तुओ की कोमलता को नायिका के अगो की कोमलता के समक्ष कठोर बताया है। इनकी नायिका चन्द्र किरणो के समान सुखद एवं शीतल है। वह मक्खन के महल जैसी, गुलाब के पहल जैसी और मखमल जैसी मुलायम है ।[2] ऐसे वर्णनो मे कोमलता स्वशब्द से वाच्य होने के कारण अभिव्यञ्जना की दृष्टि से अभिधेय हो जाता है। फिर भी कोमलता की अभिव्यक्ति होती है।

भावना का सौन्दर्य और उसके द्वारा कोमलता की अभिव्यञ्जना शेख रंगरेजिन ने एक स्थल पर अच्छे ढग से की है। दूती श्रीकृष्ण से कहती है कि हे कान्ह, वह तो तुम्हारे पास आने की वात सुनकर ही नेत्रो को सावन वना लेती है। उसकी इस नवल बैस मे बलपूर्वक उसे बश मे कैसे किया जा

---

1 राधे सुजान इतै चित्त दै हित मैं कित कीजति मान मरोर है।
माखन ते मन कोवरो है यह वानि न जानति कैसे कठोर है।
सुजानहित ३७२

2 रस-रत्नाकर पृ० ७०३

सकता है।[1] इस उदाहरण मे ऐसी वैस कहौ कान्ह, कैसे वस कीजिए' द्वारा अवस्था जन्य सम्पूर्ण कोमलता की अभिव्यक्ति हो गई है। मुग्धात्व और भोले पन का इतना सुन्दर उदाहरण अन्यत्र दुर्लभ ही होगा।

आलम की वियोगिनी अपनी सुकुमारता के कारण विरह को सहन करने मे असमर्थ होती है और वह नमक सी गलने लगती है, एक अन्य नायिका का मुख भावनाओ की असहनीयता के कारण 'ओले के समान विला' जाता है। विहारी की नायिका के विछुवे की चाप से उसके पैरो से इंगुर सा चूने लगता है। ऐसे स्थलो पर कोमलता की अभिव्यक्ति वर्ण-वोध के माध्यम से की गई है।[2] रीतिकालीन काव्य मे वर्ण-वोध की प्रचुरता द्वारा अनेक स्थलो पर कोमलता की व्यञ्जना मिल जाती है। द्विजदेव ने गत्यात्मक वर्ण–योजना द्वारा सुकुमारता की अभिव्यक्ति की है। इससे निर्मित चित्र-विधान कलात्मक सौन्दर्य को व्यक्त करता है। "भीतर भौन ते वाहरि लौ द्विजदेव जुन्हाई की धार सी धावति" पक्ति मे ज्योत्स्ना की धार की गतिमयता स्वय ही स्फुरित होकर कोमलता एव सौन्दर्य का मूर्त प्रत्यक्षीकरण कर देती है। इससे शुभ्र-वर्णी, तन्वगी और ज्योत्स्ना की तरगो सी प्रवाहित गतिशील ज्योति से युक्त

---

1 कीनी चाहौ चाहिली नवोढा एकै वार तुम,
एक वार जाइ तिहि छलु डर दीजिये।
सेख कहौ आवन सहेली सेज आवै लाल,
सीखन सीखैगी मेरी सीख सुन लीजिये।
आवन को नाम सुनि सावन कियौ है नैना,
आवन कहे सो कैसे आइ जाइ छीजिये।
वरवस वस करिवे को मेरो वस नही,
ऐसी वैस कहौ कान्ह कैसे वस कीजिये।
मध्यकालीन हिन्दी कवियित्रियां पृ० २२५

2 (क) पांव धरै ढरै ईंगुर सो तिन मैं मनि पायल की घनि जोति है।
हाथ द्वै तीनी लौं चारिहू ओर ते चांदनी चूनरी के रंग होति है।
[illegible]

(ख) [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] पद्माकर

सुकुमारता का चित्र प्रस्तुत किया गया है। इसमे प्रवहमान चन्द्र ज्योत्स्ना सी ज्योति असाधारण सौन्दर्य की अभिव्यक्ति करती है।

आलम ने सुरतात के वर्णन मे रति-केलि के उपरान्त नायिका की श्रमित अवस्था द्वारा उसकी कोमलता को व्यक्त किया है "काम रस माते ह्वै करेरी केलि कीन्ही कान्ह, फूलनि की मालिका हू मीडि मुरझानी है।"[1] छद मे नायिका के कुम्भला जाने के वर्णन मे लाक्षणिक पदो की सहायता ली गई है। उपमान 'फूल की मालिका' मे उपमेय नायिका का अस्तित्व छिपा हुआ है। इससे रति-केलि की गोपनीयता कुछ अशो मे वनी रहती है। यहा लाक्षणिक पद एव उपमानो के माध्यम से नारी-सौन्दर्य एव सुकुमारता की सवेदनीयता स्पष्ट की गई है। ऐसी अभिव्यक्तियो द्वारा नायिका के रूप, गुण, अवस्था, सुकुमारता आदि को ध्वनित किया जाता है।

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट हो जाता है कि रीतिकालीन काव्य मे कोमलता की अभिव्यञ्जना असहनीयता तथा अन्य माध्यमो से की गई है। असहनीयता के अन्तर्गत वस्तु के सम्पर्क से शरीर या मन की प्रतिकूलता व्यक्त होती है। यह प्रतिकूलता भार, ताप, स्पर्श, और चक्षु के सम्पर्क को सहन करने की अक्षमता को व्यक्त करती है। असहनीयता के भाव को व्यक्त करने मे मूर्त और अमूर्त दोनो ही प्रकार की वस्तुओ का सहयोग लिया गया है। शोभा, छबि, लावण्य, रूप आदि अमूर्त पदार्थों की असहनीयता से उत्तम कोटि की सुकुमारता व्यञ्जित हो सकी है और दृश्य तथा साकार पदार्थों द्वारा मध्यम या अधम कोटि की सुकुमारता भार की असहनीयता के माध्यम से व्यक्त हुई है। सुकुमारता को भार की असहनीयता से भिन्न अन्य प्रकार से व्यक्त करने के लिये अलकार योजना, भाव-सौन्दर्य, अवस्था और वर्ण-योजना आदि का माध्यम ग्रहण किया गया है। इन दोनो ही प्रकारो से सौकुमार्य व्यञ्जित हुआ है। रीतिकालीन कलात्मक काव्य चेतना के कारण सुकुमारता का स्व शब्द से कथन न होकर व्यग्य रूप मे हुआ है। ऐसे कलात्मक सौन्दर्य के अन्तर्गत लाक्षणिक प्रयोगो का प्राचुर्य मिलता है। वचन भगिमा, उक्तिवैचित्र्य और मुहावरो आदि के प्रयोग से अनुभूति एव भावो की सवेदनशीलता एव प्रेषणीयता वढाई गई है। उपमेय रूप नायिका की कोमलता और सुकुमारता के माध्यम से शारीरिक एव मानसिक सौन्दर्य की अभिव्यक्ति की गई है। इस गुण के कारण आलम्बन का रूप एव सौन्दर्य रुचिकर और हृदय-

---

[1] आलम केलि—स लाला भगवान दीन पृ० २५ छद ५७ स १९७९ विक्रमी

आवर्जक वन गया है। इसे सूक्ष्म गुण के अन्तर्गत माना गया है। इसके अतिरिक्त शारीरिक स्थूल गुणो से भी सौन्दर्य उत्कर्ष को प्राप्त होता है।

सौन्दर्य परक स्थूल गुण :—सम्पूर्ण नाम रूपात्मक जगत अनन्त सौन्दर्य का भण्डार है। इस सौन्दर्य-निधि के मध्य उत्पन्न होकर वढने वाले मानव की भावनाओ मे स्वाभाविक रूप से इसके प्रति अनुराग का आविर्भाव होता रहता है। उसकी चित्तवृत्तियाँ अपनी रुचि के अनुकूल वस्तु अथवा प्राणी मे सौन्दर्य की अनुभूति किया करती है। अनुभूति की यह परम्परा आदिम युग से चली आ रही है। मानव देश और काल की सीमाओ मे वँवकर युग की भावनाओ एव अपनी व्यक्तिगत अनुभूतियो से अनुप्राणित होती हुई वस्तु के सौन्दर्य का पारखी वनता है। उसके जीवन का सिद्धान्त, उसकी मान्यताएँ, उसकी रुचियाँ आदि ही सुन्दर अथवा असुन्दर वन जाने का आधार बनती है। वस्तु की उपयोगिता के माध्यम से भी सौन्दर्य का निरूपण एव निर्धारण किया जाता है। यही कारण है कि प्रत्येक युग मे सौन्दर्य-सम्वन्वी धारणाएँ परिवर्तित होती रही है। आरम्भिक युग की सौन्दर्य चेतना वाह्य तत्वो को देखकर जागृत होती थी। उतु ग पर्वत शिखरो, सागर की उत्ताल तरंगो, भास्कर नक्षत्रो आदि मे जो सौन्दर्य देखा गया था, वह 'उदात्त' कोटि का था। क्रमश सौन्दर्य का आधार मूक वस्तु की सीमा मे न रहकर मानवीय जगत होने लगा और विधि की अत्यधिक आकर्षक सृष्टि नारी को सौन्दर्य का केन्द्र माना जाने लगा। यही कारण था कि आरम्भिक कलाकारो ने भी मानवीय सौन्दर्य के वर्णन मे अपनी रुचि का प्रदर्शन किया। साहित्य आदि ललित कलाओ के विकास और सृष्टि मे भी व्यक्ति की सौन्दर्य वृत्ति ही कार्य करती है। सौन्दर्य का अन्वेषण करते हुए मानव ने मुख्यत प्रकृति और नारी को ही अपनी रचना का आधार वना लिया। इन दोनो मे भी मानवीय ससर्गो के निकटतम सम्वन्धो के कारण प्रकृति के ऊपर नारी की विजय होगई और मुख्य रूप से समस्त मानवीय सौन्दर्य चेतना नारी के चतुर्दिक केन्द्रित होने लगी। वाद मे तो प्रत्येक वस्तु को नारी के माध्यम से समझने की चेष्टा की जाने लगी। छायावादी काव्य मे प्रकृति के मानवीय करण का यही रहस्य है कि मानव अन्तश्चेतना पर नारी के अमिट सौन्दर्यपरक भाव का प्रभाव जम चुका था। यह प्रभाव इतना वढा कि रीतिकाल मे नारी का सौन्दर्य वर्णन ही काव्य-प्रणयन का एक मात्र ध्येय हो गया। सौन्दर्य की पूर्ण अभिव्यक्ति के लिये उसके अग-प्रत्यग के आकर्षण के साथ उसकी वनावट, सुडौलता, समानुपातिकता, समता आदि सौन्दर्य विषयक तत्वो की अभिव्यक्ति मुक्त हृदय से की गई। रीतिकाल मे यही से नख-शिख

परम्परा का सूत्रपात हुआ। यह नख-शिख सौन्दर्य भावना को लेकर अग्रसर हुआ था, परन्तु बाद मे केवल नख-शिख वर्णन के निर्वाह के लिये कवियो ने इस परम्परा का अनुसरण किया। परवर्ती साहित्य की नीरसता और रूढि-बद्धता का यही कारण है।

इन सभी वर्णनों का मूल उद्देश्य आनन्द की प्राप्ति है। मानव मन अपने विपरीत लिङ्गी की ओर खिचता है। वह नारी की शरीर यष्टि को देखकर उसके विभिन्न अगो मे आकर्षक तत्वो को ढूँढने की चेष्टा करता है, उनका वर्णन करता है और उन-उन अगो की बनावट मे सापेक्षता (Proportion), समता (Symmery) सगति (Harmony) और सन्तुलन (Balance) को दृष्टि मे रखते हुए विभिन्न उपमानो के द्वारा उसे स्पष्ट करता है। इन उपमानो की योजना मे अगो के आकार, बनावट, विशालता, लघुता, मृदुलता, बाँकपन आदि अनेक गुणो का ध्यान रखा जाता है। उपर्युक्त चारो तत्वो को प्रत्यक्ष करने के लिये नारी-शरीर के अग-प्रत्यग का विश्लेषण, उसकी चेष्टाएँ, प्रसाधन सामग्री आदि के द्वारा उसके रूप को प्रस्तुत किया जाता है। यही कलात्मक रूप धारण कर के अगो के वर्णन की कवि-परिपाटी के रूप मे विकसित हो जाता है। नख-शिख वर्णन की यही वृत्ति है। यह नारी के वर्णन मे उसके सौन्दर्य का आधार बनती है। यद्यपि यह बाह्य आधार है, फिर भी इसकी महत्ता अस्वीकार नही की जा सकती है। नख-शिख वर्णन का मूल आधार सौन्दर्यानुभूति है। सौन्दर्य-बोध से शृ गार-भावना का आविर्भाव होता है। इसका मूल साधन रमणी है। इसीसे रमणी-रूप-सौन्दर्य के प्रति रीतिकालीन कवियो की इतनी अधिक आसक्ति है। यह आसक्ति नख-शिख वर्णन के रूप मे प्रकट हुई है।

नख-शिख वर्णन शारीरिक सौन्दर्य का खण्ड-खण्ड चित्र है। इन्ही खण्ड चित्रो के द्वारा सम्पूर्ण शरीर का एक सामूहिक चित्र प्रस्तुत होता है। अनेक खण्ड-चित्रो के सयोजन से रूप सौन्दर्य वर्णन मे पूर्णता आती है। इन खण्ड चित्रो मे विभिन्न अवयवो का अपना सौन्दर्य होता है। इसीसे निजत्त्व के अस्तित्त्व मे स्थित नख-शिख रूप इन अवयवो के खण्ड रूप-चित्रो मे वर्तमान सौन्दर्य एव आकर्षण सम्पूर्ण शरीर के सौन्दर्य की अनुभूति कराते हैं। सौन्दर्य की इस अनुभूति की अभिव्यक्ति प्रत्येक युग के शृङ्गार-कवियो ने नख-शिख वर्णन मे की है।

नख-शिख नाम से प्रसिद्ध अग-प्रत्यग वर्णन की यह परिपाटी दो रूपो मे दीख पडती है। (१) नख से आरम्भ करके शिख तक का वर्णन करना।

यहाँ नख का तात्पर्य पैर के नाखून से है। इस वर्णन के आलम्बन रूप मे ईश्वर आदि को मानते हैं, तथा इस वर्णन से उत्पन्न सौन्दर्य आकर्षक नख-शिख सौन्दर्य होता है। (२) शिख-नख-वर्णन—इसमे चोटी से आरम्भ करके पैर के नाखूनो तक का वर्णन होता है। इस वर्णन का आलम्बन मानव होता है और इससे उत्पन्न सौन्दर्य की गणना मानव-सौन्दर्य के अन्तर्गत होती है। इस दृष्टि से मानव सौन्दर्य का आधार बनाकर किया गया अग-प्रत्यग का वर्णन "शिख-नख" के अन्तर्गत होना चाहिये, परन्तु रीतिकालीन कविता मे 'नख-शिख वर्णन' के नाम से अगो का वर्णन मिलता है। दो-चार ग्रन्थ 'शिख-नख' नाम से मिल जाते है।[1] मानवीय वर्णन होते हुए भी नियम के अनुकूल 'शिख-नख' नाम न देकर 'नख शिख' नाम-करण के औचित्य के सम्बन्ध मे दो बाते कही जा सकती है —

(१) रीतिकाल के आरम्भ मे अग-प्रत्यग के वर्णन के लिये राधा-कृष्ण को आधार बनाया गया था, जो परम्परा से अवतारी पुरुष है। ऐसे पुरुषो के अग-वर्णन का 'नख-शिख' नाम देना उचित और समीचीन कहा जायगा। कवियो ने ऐसे वर्णनो का नाम 'नख-शिख' रख दिया और बाद मे यही नाम देने की पद्धति चल पडी होगी। इससे इस नाम की समीचीनता मे सन्देह नही किया जा सकता है।

(२) कवियो के द्वारा स्वय भी 'शिख-नख' नाम न देकर 'नख-शिख' नाम ही दिया गया है। इस दृष्टि से भी यह नाम उचित है। रीति युग के उत्तरकाल मे श्रीकृष्ण के नख-शिख का स्वतन्त्र वर्णन मिलता है। इसमे नायक रूप मे कृष्ण के अग-प्रत्यग का वर्णन, आभूषणो से युक्त अगो की शोभा का वर्णन और मानसिक शोभा का वर्णन किया गया है। हृदय का एक वर्णन यहाँ पर्याप्त होगा—

'ग्वाल कवि कैंधो भाप जोगी की गुफा है,
तामे ह्वै रह्यौ प्रकाश महातेज के समाज को।
कैंधो वद विमल कमल दल हू ते मृदु,
मजुल हृदय है श्री मुकुन्द महाराज को।[2]

---

1 (क) 'शिख-नख'—केशवदास, नागरीदास, रस आनन्द, रसिक मनोहर और सुजान कविकृत।
(ख) "हनुमान शिख-नख"—खुमान। 'शिख-नख-दर्पण'—गोपालकृत

2 कृष्ण जू को नख-शिख—छन्द २४ ग्वाल कवि।

वर्णन की ऐसी आलकारिक परम्पराएँ परवर्ती साहित्य मे रूढिमात्र रह गई । अग-वर्णन मे दूर की सूझ, उक्ति-चमत्कार और कल्पना की उर्वरता देखी जाने लगी । इस अर्थ की सिद्धि के लिये काम के सहायक अगो का मासल अनावृत सौन्दर्य वर्णन का विषय बना । नायिका के तिल को कुचो के कोर पर देखकर इसी भावना की पुष्टि की गई है ।[1] यहाँ प्रयुक्त अप्रस्तुत चित्र-योजना से आकर्षक बिम्ब-विधान हुआ है । सादृश्य का इतना सफल और उपयुक्त वर्णन कम स्थानो पर मिल सकेगा । इस उदाहरण मे कुच-कोर की समता कली से करके आकार साम्य के साथ कली के स्पर्श सुख की आनन्ददायकता की अभिव्यञ्जना हुई । 'कली' शब्द का प्रयोग साभिप्राय है । यह नायिका के अगो के अछूतेपन का सकेत करता है । तिल को भ्रमर बताने मे वर्ण का सादृश्य है । अप्रस्तुत की ऐसे सादृश्य विधान द्वारा कलात्मक सौन्दर्य की अभिव्यक्ति हुई है । अग-वर्णन की इस दौड मे शरीर का कोई अग कवियो की दृष्टि से बच नही पाया है । तिल और ठोढी के गढे आदि का वर्णन इनकी पैनी दृष्टि को बताता है । अग-वर्णन के विस्तार के साथ कवियो की चमत्कारिक अन्वेषक बुद्धि का सूक्ष्म भोग-परक रूप सराहनीय था, कल्पना की उर्बरता प्रशसा के योग्य थी, सौन्दर्यानुभूति को कलात्मक सौन्दर्य के काव्यमय रूप देने मे वर्णन की विविधता और ज्ञान की व्यापकता असीम थी । आलम्बन उन्हे पहले से ही प्राप्त था । ऐसे आलम्बन को युग की प्रवृतियो और विचारो के अनुकूल बना लेने की क्षमता इन कवियो ने पा ली थी । इसीसे इनके वर्णनो मे सचाई और ईमानदारी अधिक है । अत कहा जा सकता है कि रीतिकालीन कवियो की सौन्दर्य-चेतना सूक्ष्म एव विशद थी । इन्होने नायक के सौन्दर्य का भी चित्र उपस्थित किया है, परन्तु नायिका के अग एव रूप वर्णन मे इनकी दृष्टि खूब गहराई के साथ जमी हुई है । अगो मे तरवा, एडी, पिंडुली, नीवी, चिबुक, रसना, कपोल, तिल, श्रवण, नासिका नयन, पलक, बरौनी, मुखमण्डल, केश, बेनी, भाल, भ्रू, अधर, दशन, वाणी, उदर, कंठ, भुजमूल, बाहु, मणिबन्ध, करतल, कुच, कुचकोर, स्तन, त्रिवली, नाभि, रोमावली, कटि, पार्श्व, नितम्ब, जघा, मुरवा, गुल्फ आदि का वर्णन सूक्ष्मता के साथ किया गया है । अगो के रूप-चित्र उपस्थित करने के लिये प्रयुक्त उपमानो को प्रकृति

---

[1] नवल वाम कुच कोर पै, स्याम सु तिल छबि देत ।
समद अली मानहुँ भली, कमल कली रस लेत ।

शिख नखावली—छन्द ९८ रामसहायदास

के क्षेत्र से चुना गया है। इन उपमानो मे कमल, चाँद, चन्द्रिका मोती, हीरा, दाडिम के दाने, विम्बाफल, केसर, विजली, मिश्री, किरण, खंजन, चकोर, हरिण, शुक, चक्रवाक, कदली, कनक लता, भ्रमर, श्रीफल आदि का वर्णन है। अग-वर्णन मे उत्कर्ष लाने के लिये आभूषण अनुलेपन आदि उपकरणो एव अग की विशिष्ट चेष्टाओ का ध्यान रखा गया है। आभूषणो मे हार, सीसफूल, पायजेब, घु घरू, मुरवन, सुलफ, विछिया, अनवट, नीवी डोरी, किंकिनी, बाजूवन्द, मुंदरी, चम्पाकली, कर्णफूल, बेसरि, क्षुद्रघण्टिका आदि की जगमगाहट व ध्वनि फैलती रही है। इनमे प्रयुक्त होने वाले विभिन्न रत्नो की जगर-मगर ज्योति और आभा तन-द्युति को वढाकर मोहक एव मादक वातावरण की सृष्टि कर देती है। अनुलेपन के सुगन्धित द्रव्यो मे केशर, कस्तूरी, इत्र, कपूर, चन्दन तथा अन्य सुगन्धित पदार्थों के साथ जावक, मेहदी, कमल पत्र, पान, बिन्दी, सिन्दूर आदि लगाकर अग-शोभा बढाई गई है। अग की मोहक चेष्टाएँ नायिका के सौन्दर्य को वढा देती है। मुसकान, बकिम दृष्टि, अँगराई लेना, वाणी का विलास आदि विभिन्न अनुभावो आदि से अंगो मे मोहकता आ जाती है। शरीर के रूपरग, कान्ति, सौकुमार्य गठन, सुडौलता, सुघरता, आयु, तन-द्युति आदि के वर्णन अगो मे आकर्षण उत्पन्न करते है। इस प्रकार स्पष्ट है कि रीतिकालीन कवियो ने नख-शिख वर्णन मे अग-प्रत्यग, उनमे प्रयुक्त होने वाले आभूषणो, सादृश्य रूप मे लाये गये उपमानो, अनुलेपन एव गन्ध-द्रव्यो, शरीर की मोहक चेष्टाओ, और अगो मे वर्तमान कान्ति एव आभा आदि का वर्णन किया है। अत स्पष्ट है कि नख-शिख वर्णन मे नायिका के अगो का सौन्दर्य पूर्ण कथन होता है। अगो की सुन्दरता से रति-भाव की उद्दीप्ति होती है। यदि नख-शिख द्वारा अग-प्रत्यग की सुन्दरता वर्णित न हो, तो ऐसी स्थिति मे नायिका के उपस्थित रहने पर भी रति भाव के सचार मे पूर्ण योग प्राप्त न हो। अग-सौष्ठव से ही माधुर्य और आकर्षण की उत्पत्ति होती है। इसी से नख-शिख द्वारा सौन्दर्य की अभिव्यक्ति हो पाती है। इस नख-शिख का सक्षिप्त संकेत यहाँ किया जायगा।

रीतिकालीन नख-शिख गत सौन्दर्य का ज्ञान प्राप्त करने के हेतु शरीर के कुछ अगो के आकार आदि का सौन्दर्य प्रस्तुत किया जा रहा है। शरीर के विभाजन की दृष्टि से उसे तीन वर्गो मे बाँट सकते हैं। (१) उत्तमाग—इसके अन्तर्गत मुख्य अग नेत्र हैं (२) मध्यवर्ती अगो मे स्तन और अधोवर्ती अग मे नितम्ब और चरण आदि हैं। इन्ही अगो के वर्णन मे रीतिकालीन दृष्टि स्पष्ट हो जायगी।

नेत्र--शारीरिक स्थूल अगो मे सौन्दर्य परक दृष्टि से नेत्र की महत्ता सर्वमान्य है। इसके लिये प्रयुक्त उपमानो की सौन्दर्य दृष्टि स्पष्ट है। इसी से आदर्श रूप मे नेत्रो के गुणो की कल्पना और वर्णन किया गया है। नेत्र के सौन्दर्य वर्णन मे कवियो की तीन दृष्टियाँ रही है (१) आकार या रूप परक (२) गुण परक (३) व्यापार परक।

आकार और गुणपरक दृष्टि—आकारगत विशेषता की अभिव्यक्ति मे रूप साम्य पर दृष्टि रमी है। आकार मूलक उपमानो का प्रयोग कम ही हुआ है। आकार की विशदता का अधिक ध्यान रखा गया है। इसमे नेत्रो के लिये दीरघ नयन, विशाल लोचन, वडी-वडी आँखे, वडे दृग, कानन लौ अँखियानि आदि का वर्णन मिलता है। इनसे चाक्षुप आकार मूलक विम्व-विधान हो सका है। कलाकार की अनुभूतियाँ, कल्पना और प्रत्यक्ष-दर्शन द्वारा पूर्वानुभूत विम्वो को जागृत करके उमे कलात्मक साँचे मे ढालने का प्रयास किया गया है। काव्य की यह उपलक्षित चित्र-योजना वर्ण्य वस्तु से आकर्पक वन गई है। मूर्त चित्रो के आधिक्य से स्पर्श मूलक चित्र का विधान हुआ है। इससे उत्तम विम्वो द्वारा सौन्दर्याभिव्यक्ति हो सकी है इसी से इस काल मे आकार मूलक स्पार्शिक विम्वो की अधिकता है।[1]

---

1 (क) थोटी सी सुदेश वेष दीरघ नयन केश,
गौरी जू सी गोरी भोरी भाव जू की सारी सी।
री का. सग्रह पृ. १४८ केशव

(ख) लोचन लोल विशाल विलोकनि, को न विलोकि भयो वस माई।
वही पृ १७७ मतिराम

(ग) ते हरिदास वसे इन नैननि, एते वडे दृग राधिका तेरे।
वही पृ २२४ दास

(च) 'वेनी प्रवीन' वडे-वडे लोचन वाँकी चितौन चलाकी की जोर है।
साँची कहै व्रज की जुवती, यह नन्द लडैतो वड़ो चित चोर है।
वही पृ २४६

(v) कानन लौं अँखिया ये तिहारी हथेली हमारी कहाँ लगि फैलिहै,
मूँदे तऊ तुम देखति हौ, यह कोरै तिहारी कहाँ लौं सकेलिहै।
वही पृ ३८७

(vi) ठाढे हो तो सो कहौगी कछू, अरे ग्वाल वडी-वडी आँखिन वारे
वही पृ ३६६ रघुनाथ

रीतिकाल मे नेत्रो की गुणपरक दृष्टि को बताने के लिये उसके वर्ण का कथन हुआ है। श्वेत, श्याम और रतनार नेत्रो द्वारा आकर्षण उत्पन्न किया गया है। कमल आदि उपमानो के माध्यम से आकार और शीतलता की व्यञ्जना की गई है। इसमे गुण साम्य की महत्ता व्यक्त की गई है। सारूप्य-मूलक अलकारो मे गुण का ही समावेश होता है। नेत्रो के गुणो मे लज्जा अनुराग, रसार्द्रता आदि हृदय की आन्तरिक अनुभूतियाँ वर्णित है। लजीली रसीली, छके दृग, गरुवाई भरे नयन, आसव–घूमरे नयन आदि का वर्णन है। आकार से उनके बाह्य गुण और विशेषताओ से उनके आन्तरिक गुण का सकेत किया गया है। नेत्रो की सौन्दर्य सत्ता वस्तुनिष्ठ रूप मे स्वीकार की गई है। इससे उसके गुण परक सौन्दर्य का ज्ञान हो जाता है। नेत्रो के व्यापार परक वर्णन मे उसके प्रभाव के बारे मे लिखा गया है। इसमे नेत्रो की क्रियाओ का वर्णन किया गया है। इसका आधार क्रिया साम्य है परन्तु इसके प्रभाव की व्यञ्जना मे रूप और गुण साम्य की महत्ता भी स्वीकार की गई है। नेत्र व्यापार से उत्पन्न प्रभाव दो प्रकार का है (१) प्रियता मूलक (२) मादक। दोनो ही प्रतिक्रियाए सौन्दर्य के आधार पर अनुभूतिमूलक क्रियाएँ है। इससे आश्रय के मन की भावनाएँ स्पष्ट होती है। विशाल नेत्र से वशीभूत होने का वर्णन है। कही-कही नेत्र व्यापार द्वारा सचमुच मे शरीर पर प्रभाव व्यक्त कर दिया गया है।[1] ऐसा वर्णन विशेष ग्राह्य नही माना जाता है। यह वर्णन मजाक जैसा प्रतीत होता है। नेत्रो के चितवन के प्रभाव को विषमूलक

(vii) घूँघट उघारि मुख लखि-लखि रहै एकै,
एकै लगी नापन वडाई अँखियान की। वही ४०२ शभु

(viii) साँवरे सुन्दर रूप अनूप रसाल वडे-वडे चचल नैन री। वही देव

1 (क) राधिका के दृग खेल मे, मूदे नन्दकुमार।
करनि लगी दृग कोर सो, भई छेद उर पार।

री का संग्रह पृ १८०

(ख) पैने, अनियारे पै सहज कजरारे चख,
चोट सी लगाई चितवनि चचलाई की।

री० का० पृ० २०५ देव

(ग) काजर दै जनि ए री सुहागिन। आंगुरी तेरी कटैगी कटाछन।
रीति काव्य सग्रह पृ० ३६७ मुबारक

बताया गया है ।[1] नेत्र के प्रियतामूलक प्रभाव मे उसकी गुणपरक दृष्टि अपनाई गई है । नेत्र घनसार के समान शीतलता उत्पन्न करने वाले है ।[2] इससे 'मूठि सी मार' दी जाती है । 'नेक चितै तिरछी करि दीठि चलो गयो मोहन मूठि सी मारै ।'[3] नेत्र के अनेक व्यापारो मे देखना, हँसना, रोना, क्रोध प्रकट करना, मोह लेना, लज्जा करना, गभीर बनना आदि वर्णित है । भावो के वाहक रूप मे नेत्र-व्यापार की महत्ता निर्विवाद है । इन क्रियाओ से शोभा बढती है और रूप निखर कर सबको लुभा लेने मे समर्थ हो जाते है । इसीसे नेत्रो की चपलता चचलता और लालचीपन का अनोखा सौन्दर्य वर्णित है ।[4] ललित किशोर जी ने एक ही छद मे नेत्र के सभी गुणो का वर्णन एक साथ कर दिया है ।[5] इससे स्पष्ट है कि नेत्रो के इन बहुमुखी व्यापारो से नायक या नायिका दोनो के ही सौन्दर्य की वृद्धि होती है और प्रेम का उद्दीपन उचित रीति से हो जाता है । नेत्रो की स्थिति मुख पर होने से मुख की महत्ता का वर्णन भी हुआ है ।

---

1 कान्ह बुरो जिन मानौ तिहारी, विलोकनि मे विष बीस बिसै है ।
केशवदास सग्रह पृ० १४६

2 (क) एक घरी घन सो तन सौ, अँखियानि घनो घनसार सो दैगो ।
मतिराम

(ख) सीरे करिबे को पति नैन घनसार कैधो,
बाल के बदन बिलसत मृदुहास है । मतिराम

3 रीतिकाव्य संग्रह पृ० ३३२

4 चचल चपल ललचोहै दृग मूँदि राखि,
जौ लौ गिरधारी गिरि नख पर धरै है री ।

5 लजीले, सकुचीले, सरमीले, सुरमीले से,
कटीले और कुटीले चटकीले मटकीले है ।
रूप के लुभीले, कजरीरे, उनमीले,
बरछीले, तिरछीले से फँकीले औ वसीले है ।
'ललित किशोरी' झमकीले जरबीले मनौ,
अति ही रसीले चमकीले औ रगीले है ।
छबीले, बँकीले अरुनीले से नसीले आली,
नैना नदलाल के नचीले औ नुकीले है ।
"आँख और कविगण पृ० २९९ जवाहर लाल चतुर्वेदी साहित्य सेवा सदन, काशी स १९८९ वि०

मुख—प्रेम-व्यापार मे आन्तरिक भावनाओ की बदलती हुई स्थिति का स्पष्ट प्रभाव मुख द्वारा लक्षित हो जाता है। मुख आकर्षण का केन्द्र है, ज्ञानेन्द्रियो का सगम स्थल है, भावो के वहन करने का माध्यम है और आकृष्ट कर लेने का प्रमुख साधन है। विभिन्न अगो और भगिमाओ मे आह्वान और निषेध का मुख ही सचालक है। सात्विक अलकारो की शोभा मुख पर विराजती है। शोभा विधायक अन्य गुण मुख पर ही विकास पाते है। इससे मुख-च्छबि का विवेचन स्वय होने लग गया था। मुख की गुणपरक विशेपताओ का वर्णन सभी कवियो ने किया है। कमल की कोमलता, शरद की ज्योत्स्ना, गुलाब की सुगन्धि, रति का रूप, स्वर्ण की कान्ति और सुधा का स्वाद लेकर मुख का निर्माण हुआ है, जिसकी शोभा निरखकर कृष्ण भी चेरे बन जाते है।[1] मुख पर ही शोभा, कान्ति, दीप्ति, आदि की चमक दिखाई पडती है। मुख पर कपोलो की लालिमा, और गोलाई की शोभा का वर्णन है। हसते से कपोलो का प्रभाव व्यञ्जित है। "कीनै 'मतिराम' विहसौहे से कपोल गोल बोलन अमोल इतनोई दु ख दै गई।" ठाकुर की दृष्टि इस शोभा पर ठहर नही पाती "ठहरै नही डीठि फिरै ठठकी, इन गोरे कपोलन गोलन पै।"[2] श्रीकृष्ण इन्हे दर्पण समझकर अपना प्रतिबिम्ब देखते है। प्यारी के गोल कपोल मन को मुग्ध कर लेते है, "लेत मन मोल कहे दृगन के तोल ऐसे, गोरे-गोरे गोल बने प्यारी के कपोल है।[3] गोराई के साथ सोने की आरसी कहकर उसके चिकने पन और पारदर्शी गुण का सकेत किया गया है। "सुबरन आरसी के सीसे से अमोल कैसे गोरे-गोरे गोल है कपोल अलबेली के।"[4] स्पष्ट है कि कपोल की सुन्दरता के लिये मृदुता, कोमलता, सुकुमारता और कान्ति के साथ उसकी गोलाई की महत्ता है। सम्पूर्ण रूप मे कहा सकता है कि ऊर्ध्वागो मे नेत्र-मुख कपोलादि काम-साधक अ ग होने से आकर्पण के केन्द्र हे और इन्ही के सौन्दर्य का सभी सौन्दर्य मे प्रमुखतम स्थान है।

मध्य भाग के अ गो मे स्तनो का महत्त्व निर्विवाद है। मुख्यत इसके आकार और गुण का वर्णन है। इसके आकार वर्णन मे क्रमश विकास क्रम का ध्यान रखा गया है। काम सहायक अग होने के कारण यं.नोत्तेजक उपा-

---

1 रीति काव्य सग्रह पृ० ३६३/२८ ठाकुर

2 रीतिकाव्य सग्रह पृ० ३५६ ठाकुर

3 रस-रत्नाकार पृ० ६५६

4 रस-रत्नाकार पृ० ६६०

दान के रूप मे इनका ग्रहण किया गया है। कमल, पूगफल, विल्व, गुच्छ, कुम्भ, पहाड, घडा, शिव, चक्रवाक, जबीर आदि उपमानो मे आकार की महत्ता स्वीकार की गई है। इन उपमानो द्वारा इन्हे उन्नत, पुष्ट, विस्तृत, विशाल और दृढ बताने की चेष्टा की गई है। नख-शिख के आकार परक वर्णन के अतिरिक्त स्तनो के निरपेक्ष सौन्दर्य वर्णन मे इसे नारी के शोभन और आकर्षक अवयव के रूप मे स्वीकार किया गया है। स्तनो के अंकुरित और क्रमश. विकसित होने मे आकर्षण और यौवन का विकास व्यक्त होता है। यौवन के प्रतीक इन स्तनो को देखकर नायक के आकर्षण और रीझ की बात वताई गई है।[1] इससे नायिका की अवस्था का सकेत मिलता है। 'उचके कुच कोर' 'उठली छतियाँ' आदि का प्रयोग उसके वय सन्धिकाल के अछूते सौन्दर्य को व्यक्त करता है। चक्रवाक, शिव, घडा जैसे उपमानो से पूर्ण यौवन का वोध हो जाता है।

रीतिकाल मे स्तनो के सौन्दर्य-वर्णन मे दो दृष्टियाँ अपनाई गई है। (१) नायक का आकर्षण (२) प्रेमोत्तेजक व्यापार और अनुभावो की अभिव्यक्ति रूप मे स्तनो के सौन्दर्य का वर्णन। इन व्यापारो से शारीरिक आकर्षण का ज्ञान होता है। अनुभावो से मानसिक आकर्षण की अभिव्यक्ति होती है।

---

1 (क) राधा महरानी जी के सुन्दर उरोज आछे,
जाकी छवि देखि रीझै नन्दजी के लाला है।
श्री राधा जी का नख-शिख। कालिका प्रसाद स्वर्णकार
मतवाक्विन प्रेस इलाहाबाद सन् १८६६ ई०

(ख) उचके कुच कोरन पै पद्माकर ऐसी छवि कछु छाई रही।
ललचाइ रही सकुचाइ रही, मुख नाइ रही, मुसकाइ रही।

(ग) एरी वृषभानु की कुमारी तेरे कुच किधौ,
रूप अनुरूप जातरूप के करस है।
केशवग्रन्थावली। पृ० २०१ हि० ए० १९५४

(घ) याही है प्रमान 'तोष' उपमान आनप्यारी,
तरुनाई तरु ताके फल कुच तेरे है।
रस–रत्नाकार पृ० ६३७

(ङ) सोहत रग अनग की अगनि, ओप उरोज उठे छतिया की।
जोवन ज्योति सी यो दमकै, उकसाइ दई मानो वाती दिया की।
सनेहसागर पृ० ४९

(च) अङ्गादर्श-छद ३१-रगनारायणपाल भारत जीवन प्रेस सन् १८९३ ई०

नख-शिख के अन्तर्गत शारीरिक आकर्षण की ही चर्चा की जाती है। शारीरिक सौन्दर्य का यह वर्णन सभी कवियो ने उत्तेजक रूप मे किया है। इसकी प्रभाव मूलक व्यञ्जना अपूर्व है। मध्य भाग के अन्य अगो मे वाहु, हाथ, नाभि, त्रिवली, रोमावली, कटि, पीठ आदि का वर्णन है। इन अगो के वर्णन मे प्राय परम्परा-निर्वाह का आग्रह ही अधिक दीख पडता है। इनका सौन्दर्य परक आकर्षक वर्णन न होकर कथन मे उपमानो के आधिक्य की व्यञ्जना ही अधिक मिलती है। इससे इनके स्वरूप का चित्र-विधान नही होने पाता केवल पाण्डित्य या चली आती हुई परिपाटी का अनुसरण मात्र हो जाता है।

अधोभाग के अगो मे भी परम्परा का पालन ही दीख पढता है। इनमे कमर के नीचे के अगो का वर्णन होता है। इनमे जघा, नितम्ब, लक, पद, कटि आदि की अनोखी कल्पनाएँ की गई हे इन कल्पनाओ द्वारा लाये गये उपमानो के माध्यम से सौन्दर्य का विम्ब उपस्थित नही होता अपितु चमत्कार की प्रवृत्ति ही लक्षित होती है। नीवी, कटि और नितम्बो के वर्णन मे कल्पना की उडान का सहारा लिया गया है।[1] सौन्दर्य-चित्रण पर दृष्टि रम नही सकी है। कल्पना और अलकार का आग्रह अधिक है, इसके उपमान रूप मे चक्रवाक, द्विप, रूप का नगाडा, रतिश्रम थामने का ठौर, कामदेव के दरवाजे का चबूतरा और तम्बूरा कहा गया है। कटि-सौन्दर्य मे उसकी क्षीणता की ओर दृष्टि गई है। इसके लिये केहरि, कटि, मृणाल के तार, मकरी के तार, आदि उपमानो का सहारा लिया गया है। केशव ने इसे कपट जैसे अमूर्त अस्तित्व के समान कहा है "कौन है सवारी वृषभानु की कुमारी यह, तेरी कटि निपट कपट कैसो हितु है।" तोपनिधि के अनुसार इसका अस्तित्त्व ही नही है।[2] ऐसे वर्णनो द्वारा काव्यात्मक बिम्ब-विधान नही हो पाता है। अत स्पष्ट है

---

1 (क) राधिका के बरनै को नितम्बनि हारि रही रसना कवि जे तके।
कै नृपशभु जु मेरु की भूमि मे रेत के कूरा भये नदी सेत के।
कैधो तमूरन के तबला रंगि औंधे धरै कवि रभा के लेत के।
कचन कीच के पाथे मनोहर कै भरना है मनोज के खेत के।
नख-शिख पृ० ५ नृपशभु

(ख) रस-रत्नाकर पृ० ६२८–६२९

2 जैसे भूमि अम्बर के मध्य मे न खभ कोऊ,
तैसे लोल लोचनी के अक मे न लक है।

कि इन अगो के वर्णन मे क्षीणता, कोमलता आदि का सकेत कर दिया गया है, परन्तु कवियो की दृष्टि इसमे रम नही सकी हे। यही कारण है कि सौन्दर्य का चित्र-विधान नही हुआ है। केवल अंग-वर्णन से सन्तुष्टि मात्र हो जाती है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त वर्णन के आधार पर यह निर्णय लिया जा सकता है कि किसी भी युग मे किये गये नख-शिख का अन्तिम उद्देश्य शृङ्गार के आलम्बन के सौन्दर्य का वर्णन है। साहित्य मे अधिकाश सौन्दर्य-चित्र रमणी को ही अपना आलम्बन बनाते हैं। रीतिकालीन साहित्य मे नख-शिख वर्णन की एक वैज्ञानिक पद्धति है, जो अन्य किसी काल के साहित्य मे उपलब्ध नही है। सभी अगो के वर्णन मे शरीर के अनुपात का ध्यान रखकर सौन्दर्य की अभिव्यक्ति करना नख-शिख के नाम से प्रसिद्ध है। सौन्दर्य की सूक्ष्म चेतना के साथ अगो की बारीकी और उसे समझाने के लिये नई-नई कल्पनाओ का उद्भव हुआ है। सौन्दर्याभिव्यक्ति की यह परम्परा नख-शिख-देवरति-और शिख-नख-मानव-रति-इन दो पद्धतियो मे रही है। रीतिकाल मे कवियो ने नख से शिख तक या शिख से नख तक इन दोनो ही वर्णन-प्रणालियो को अपनाया है।

अग-वर्णन की इस प्रणाली मे कवियो के दो दृष्टिकोण दीख पडते है। प्रथम अगो का सहज और अप्रस्तुतो के योग से स्वाभाविक वर्णन और दूसरा सौन्दर्य-प्रसाधनो के साथ अ ग-विशेष की शोभा का वर्णन है। इससे अग–विशेष मे आभूषणो द्वारा सौन्दर्य की वृद्धि के साथ तत्कालीन अभिरुचि एवं आभूषणो विषयक सामाजिक प्रवृत्ति का ज्ञान भी हो जाता है। इन दो सिद्धियो के साथ रूप-सौन्दर्य को बढाना प्रमुख उद्देश्य है। नख-शिख की इस परम्परा मे नायक और नायिका दोनो का ही चित्रण हुआ है। एक ओर जहाँ नायिका का शारीरिक सौन्दर्य प्रसाधनो से बढता है, वही उसके मानसिक सौन्दर्य की ओर भी दृष्टि गई है। ऐसे स्थलो पर आन्तरिक वृत्तियो की चर्चा की गई है। इस प्रकार नायक और नायिका दोनो का ही रूप–वर्णन मिल जाता है। इस वर्णन मे विस्तार एव कल्पना-बुद्धि का पर्याप्त योग है। चमत्कार की प्रवृत्ति भोगवादी दृष्टिकोण को लेकर अग्रसर हुई है। कवियो का सूक्ष्म निरीक्षण सवेदन शील रहा है। सौन्दर्यांकन के विभिन्न पहलुओ का इन्हे पूर्ण ज्ञान था।

आगे चलकर नख-शिख वर्णन मे केवल परम्परा का निर्वाह होने लगा

सौन्दर्य-निरूपण के लक्ष्य से हटकर चमत्कार प्रदर्शन की ओर ध्यान आकृष्ट हो गया। उक्तिवैचित्र्य, बहुज्ञता प्रदर्शन और अनोखी कल्पनाओ का सहारा लिया गया। नख-शिख वर्णन मे अलकारो की महत्ता बढ गई। फिर भी इनसे व्यक्त होने वाली सौन्दर्य-वृत्ति की स्थिति के सम्बन्ध मे सन्देह नही किया जा सकता है।

सर्वाङ्ग-वर्णन— अगो का वर्णन व्यष्टि और समष्टि दृष्टि से दो प्रकार का किया गया है। जहाँ अग वर्णन की व्यष्टि प्रधान दृष्टि है, वहाँ नख-शिख की प्रणाली अपनाई गई है। समष्टि दृष्टि से सर्वाङ्ग का चित्रण हुआ है। ऐसे वर्णनो द्वारा शरीर के विभिन्न अगो का एक समष्टिगत रूप उपस्थित हो जाता है। सर्वाङ्ग का वर्णन करते हुए कहा गया है कि नायिका का भाल चन्द्र जैसा, भृकुटी कमान जैसी, कामदेव के पैने सर जैसे नयन, नासिका सरोज जैसी, दशन विजली जैसे, पकज से पग, हंस सी गति, सोना जैसा शरीर और उसमे सुगन्धि का वास है।[1] वेनी प्रवीन की दृष्टि मे अहीर की छोटी गोरी ने करि से चाल, सिंह से कटि, चन्द्रमा से मुख, कीर से नासा, पिक से बैन, मृग से नैन, अनार से दात, बिजरी से हँसी, सर्प से वेनी तथा रति की सम्पूर्ण शोभा चुरा ली है। और अब तो इसने कन्हैया का चित्त भी चुरा लिया है।[2] ऐसे सर्वाङ्ग वर्णनो मे सभी उपमानो का कथन हुआ है। यह कथन वस्तु-परिगणन की प्रणाली पर होने के कारण वर्ण्य-वस्तु का बिम्ब-विधान करने मे सर्वथा असमर्थ है। इस प्रकार के कथनो मे परम्परा-निर्वाह का आग्रह अधिक दीख पडता है। सीधे ढग से कहे गये इस छन्द मे उपमानो का सग्रह मात्र है और ऐसा सग्रह काव्यात्मक दृष्टि से उच्चकोटि का नही माना जाता है। इनमे प्रयुक्त उपमानो के गुणो का सकेत मिल जाता है। यथा 'सिंह-कटि' के कथन मे कटि की क्षीणता का आभास मिलता है। 'चन्द्रमुख' मे चन्द्रमा के प्रकाश और शीतलता का गुण वर्तमान है। अत इन उपमान परक सर्वाङ्ग-वर्णनो मे गुणो का ध्यान रखा गया है। इन गुणो द्वारा शारीरिक सौन्दर्य का सकेत मात्र मिल जाता है, बिम्ब-विधान की रुचि नही दीख पडती है, फिर भी इनसे जो सकेत मिलता है, रीतिकालीन प्रवृत्तियो को देखते हुए वह उचित ही कहा जायगा।

---

1 रस-रत्नाकर पृ० ६६८–६६

2 वही पृ० ६६६

चेष्टागत सौन्दर्य--

आत्मगत सौन्दर्य-वर्द्धक उपकरणो के अन्तर्गत आलम्बन और आश्रय के गुण और चेष्टाओ का वर्णन किया गया है। इनमे गुण की चर्चा की जा चुकी है। चेष्टाओ के द्वारा व्यक्तित्व का आकर्षण बढ जाता है। गुणो के रहने पर अनुकूल और प्रिय चेष्टाओ द्वारा रति भाव की उद्दीप्ति हो जाती है और आलम्बन अधिक सुन्दर प्रतीत होने लग जाता है। चेष्टाएँ दो प्रकार की होती है—आकर्षक और विकर्षक। इन दोनो मे आकर्षक चेष्टाओ से सौन्दर्य उत्कर्ष को प्राप्त होता है। सयोग की अवस्था मे इन चेष्टाओ की आह्लादमूलकता सर्व प्रसिद्ध है। सयोग मे इन चेष्टाओ को दो भागो मे बाटा जा सकता है—

१. विशेष चेष्टा

२. सामान्य चेष्टा

विशेष चेष्टाओ के अन्तर्गत विभिन्न अनुभावो की गणना होती है। अनुभाव भाव को सूचित करने वाले विकार को कहते है। इन विकारो का आभास सत्त्व सूचक आंगिक परिवर्तनो द्वारा होता है। शरीर के इन परिवर्तनो अथवा क्रियाओ को देखकर मन मे वर्तमान रति आदि विभिन्न भावो का ज्ञान हो जाता है। वस्तुत ये सभी क्रियाएँ आंगिक ही होती है और इनका सम्बन्ध किसी न किसी अग के सचालन अथवा स्पन्दन से रहता है। सामान्य रूप मे भाव के सूचक इन परिवर्तनो को तीन प्रकार की चेष्टाओ मे बदला जा सकता है।

१ कायिक चेष्टा।

२ मानसिक अनुभाव।

३ वाचिक चेष्टा।

तीनो प्रकार की चेष्टाओ से मानसिक भावो की ही अभिव्यक्ति होती है। इन चेष्टाओ की अभिव्यक्ति मे शरीर के किसी अग का सचालन अथवा वाणी का उपयोग होता है। शरीर का सचालन अथवा विशेष ढग से उसमे परिवर्तन करके भावो को प्रेषणीय बनाने की चेष्टा की जाती है। यह चेष्टा भावो को वहन करने एव प्रेषणीय बनाने के लिए भाषा जैसी ही एक माध्यम का कार्य करती है। अपने भावो को दूसरो तक पहुँचाने के लिए दो प्रकार के साधन प्रयुक्त होते है (१) वाणी के प्रत्यक्ष साधन को वाचिक चेष्टा का नाम दिया गया है (२) शरीर के विभिन्न अगो के माध्यम से प्रेषित चेष्टाओ को कायिक चेष्टा कहा गया है। इनके अतिरिक्त अनेक चेष्टाओ द्वारा मानसिक प्रवृत्तियो का प्रत्यक्ष और सीधा सम्बन्ध रहता है। ऐसी मानसिक भावो की

अभिव्यक्ति करने वाली चेष्टाओ को भी कायिक चेष्टा के ही अन्तर्गत मानेगे। हास-परिहास से युक्त आमोद का भाव, प्रेम-क्रीडा और छेड-छाड तथा लज्जा और निषेध आदि को इसी के अन्तर्गत मानेगे।

विशेष चेष्टापरक कायिक अनुभाव—

रति एव प्रियता के भाव को उद्बुद्ध करने वाले सौन्दर्य के उत्कर्षक शारीरिक अनुभावो को कायिक चेष्टा कहते है। इन चेष्टाओ से दो उद्देश्यो की सिद्धि होती है। प्रथम नायक या नायिका के आकर्षण को बढा देना और द्वितीय मनोगत भावो को अभिव्यक्त कर देना। इन दोनो उद्देश्यो की सिद्धि के लिए की जानी वाली क्रियाओ को ही कायिक अनुभाव मानते है। इनमे मुसकान, चितवन एव कटाक्षपात, अल्हडता और तन्द्रा, पद-निक्षेप और गति, लज्जा, निषेध, क्रीडा मूलक छेडछाड, हास-परिहास आदि की गणना होती है। क्रमश इन्ही चेष्टाओ को रीतिकालीन काव्य मे देखने का प्रयास किया जायगा।

मुसकान—आलम्बन के आश्रित विविध चेष्टाओ मे मुसकान हृदयगत भावो को अभिव्यक्त करके आश्रय को आमन्त्रण देती हुई उसे अपने मोहक रूप एव अनुभावो मे आसक्त बना देती है। अधर, ओष्ठ और नेत्रो के ईषद् विकास से मुसकान लक्षित होती है। यह एक आह्लाद मूलक अनुभाव है, जिससे मन की अनुकूलता और प्रियता का आभास हो जाता है। सयोग के प्रसंग पर मुसकान उद्दीपक हो जाती है। इससे विशेष अर्थ एव अभिप्राय की सिद्धि होती है। इस गुण के कारण आलम्बन की शोभा और आकर्षण बढ जाता है। यही कारण है कि सयोग के वर्णनो मे नायक अथवा नायिका की पारस्परिक मुसकान एक दूसरे को निकट लाने मे समर्थ हो जाती है। यह उनके आकर्षण की उत्कर्षक और सौन्दर्य को बढाने वाली एक प्रिय अभिव्यक्ति है। इसी से रीति कालीन कवियो ने मुसकान का वर्णन अनेक विधाओ मे किया है। इनमे प्रभाव-मूलक, उपहास-मूलक, क्रीडा-मूलक, व्यग्य-व्यञ्जक, सहज और आलकारिक मुसकान आदि भेद देखे जा सकते है।

प्रभावमूलक मुसकान—इसका तत्काल और सद्य प्रभाव पडता है। नायिका की मुसकान का महत्त्व अधिक होता है। देव ने एक स्थल पर प्रभाव मूलकता का अच्छा चित्र अकित किया है। राजपौरिया का रूप धारण करके राधा श्रीकृष्ण को पकड लेती है, परन्तु मुसकान उस रहस्य को खोल देती है। "छूटि गयो छल सो छबीली के विलोकनि मे, ढीली भई भौहे वा लजीली मुसकान मे।" यहाँ मुसकान के प्रभाव से ही भौहो की बकिम स्थिति ढीली पड़ जाती है और सम्पूर्ण अभिनय का रहस्य प्रकट हो जाता है।

मुसकान के प्रभाव से गोपी विभ्रमित हो जाती हैं। वह श्रीकृष्ण की मुसकान रूपी सुधा का पान करके नीद भुला बैठती है, चकित होकर देखती रह जाती है और उसकी दशा निष्कप दीप-शिखा सी हो जाती है।[1] वह तमाल को ही श्रीकृष्ण समझकर आलिंगन करने लग जाती है।[2] श्रीकृष्ण का मद मुसकान करते हुए गोपी की ओर देख लेना उसके पाँचो भौतिक तत्वो को उसके शरीर से निकाल देने का कारण बन जाता है। समीर, नीर, तेज, पृथ्वी और आकाश सभी तत्व उसे छोडकर चले जाने को तत्पर हो जाते हैं।[3] नेत्रो से जल तत्व और श्वास से समीर तत्व समाप्त हो जाता है। दूसरी गोपी श्रीकृष्ण की मुसकान को सम्भालने मे अपने को असमर्थ पाती है और त्रिवाचा मे टेर कर सबको बता देती है।[4] इस मुसकान के प्रभाव से गोपी बावली हो जाती है। "सखी सबै हँसै मुरझानि, कहूँ देखी मुसकानि वा अहीर 'रसखानि' की।" कुजन-फिरैया श्रीकृष्ण की मन्द मुसकान को देखकर गोपी उनकी चेरी हो जाती है।[5]

दूसरी ओर गोपी की मुसकान का प्रभाव श्रीकृष्ण की प्रतिक्रिया मे भी व्यक्त किया गया है। साकरी गली मे पिक-वयनी नेकु मुडकर श्रीकृष्ण की ओर देखकर मुस्कराते हुए कुछ कहना चाहती ही है कि कृष्ण एक 'कांकरी' उसकी ओर फेंक देते हैं।[6] इस प्रसग पर गोपी की मुसकान श्रीकृष्ण को प्रेरित

---

1 जा दिन तैं छबि सो मुसक्यात कहूँ निरखे नन्दलाल विलासी।
ता दिन तैं मनहि मन मैं 'मतिराम' पियैं मुसकानि सुधा सी।
नैकु निमेष न लागति नैन, चकी चितवै तिय देव तिया सी।
चन्द्रमुखी न हलै न चलै, निरवात निवास मैं दीप-सिखा सी।
रीतिकाव्य सग्रह पृ० १७६

2 रीतिकाव्य सग्रह पृ० १७७

3 साँसन ही मे समीर गयो अरु आँसुन ही सब नीर गयो ढरि।........
जा दिन ते मुख फेरि हरे हँसि हेरि हियो जु लियो हरि जू हरि।
रीतिकाव्य संग्रह पृ० २०८ छन्द ४३ देव

4 माई री वा मुख की मुसकान सम्हारि न जैहे, न जैहे न जैहैं।
री० का० सं० ह० ३३२ रसखान

5 नैकु मुसकानि 'रसखानि' की विलोकत ही,
चेरी होत एक बार कुजनि फिरैया की। री० का० स० पृ० ३३१

6 मुरि मुसुकाइ के छबीली पिक बैंनी नेकु,
करत उचार मुख बोलन को बाँकरी।

करने वाली वन जाती है और उनके मन मे छेड-छाड करने का साहस वढ जाता है। छेड-छाड की भावना को प्रेरित करने वाली मुसकान को क्रीडा-मूलक कहा जा सकता है।

क्रीड़ामूलक मुसकान—इसके मूल मे पारस्परिक प्रेम का आधिक्य रहता है। दोनो का एक दूसरे के प्रति इतना विश्वास रहता है कि वे आपस मे छेडछाड की भावना मे क्रीडार्थ मुस्करा उठते है। प्रेमगर्विता या रूपगर्विता नायिकाओ मे यह प्रवृत्ति देखी जा सकती है। यह उनकी चचल प्रकृति को व्यक्त करती है। इसी से आनन्द के सामान्य क्षणो मे मुसकान की यह शोभा देखी जा सकती है। होली के अवसर पर पद्माकर ने मुसकान के माध्यम से एक सफल चित्र प्रस्तुत कर दिया है।[1] रूप गर्विता की सहज मुसकान का वर्णन चिन्तामणि ने किया है, 'मदन के मद-माती, मोहन के नेह राती, प्यारी मुसकाती आजु डोलति भवन मे।"[2] इन सभी उदाहरणो मे मुसकान का शब्दत कथन हुआ है। कही-कही मुसकान अभिधेय न होकर व्यग्य रूप मे समक्ष आती है।

पारस्परिक क्रीडा मे नायिकाओ की क्रीडा का वर्णन करते हुए रीति कालीन कवि अपनी अभिव्यञ्जना-शिल्प को भूल नही पाता है। कही उसका मुसकान वर्णन अभिधेय रूप मे और कही व्यग्य रूप मे अपने आकर्षक सौन्दर्य से लुब्ध करने वाली बन जाती है। एक दो उदाहरण ही पर्याप्त होगे —

१ भृकुटि मटकाइ गुपाल के गाल मे आगुरी ग्वालि गडाई रही।
'ममारख' कवि री० का० स० से

२ ऐसे ही डोलत छैल भये तुम्हे लाज न आवत कामरी ओढै।

उपर्युक्त दोनो ही वर्णनो मे नायिका की मुसकान छिपी है। रस पूर्ण भावो के वाहक प्रयुक्त इन शब्दो को बिना मुस्कराहट के कहा ही नही जा सकता है। इससे स्पप्ट है कि इस वाक्य के उच्चारण मे मुख एव कपोलो का ईषद् विकास अवश्य हुआ होगा। अत यह मुसकान स्वशब्द से वाच्य न होकर व्यग्य रूप मे होने से कलात्मक सौन्दर्य और रति वर्द्धक सौन्दर्य दोनो का

ताक री कुचन वीच काँकरी गोपाल मारी,
साँकरी गली मे प्यारी हाँ करी न ना करी। री० का० स० पृ० ३९७

1 छीनि पितम्बर कम्बर ते सु विदा दई मीडि कपोलन रोरी।
नैन नचाइ कही मुसुकाइ लला फिर आइयो खेलन होरी।

2 रस-रत्नाकर पृ० ६९७ चिन्तामणि।

युगपत् ज्ञान करा देती है। रीतिकालीन काव्य मे ऐसी पक्तियाँ अनेक स्थलों पर देखी जा सकती है। क्रीडा मूलक इस मुसकान मे सहजता वर्तमान रहती है। इसमे वनावटीपन न होकर स्वभावत ही मुसकान की प्रवृत्ति वर्तमान है।

सहजमुसकान—सहज मुसकान अवस्था विशेष मे अपने आप ही स्फुरित होती रहती है। इसमे मुग्धा नायिकाओ की अकृत्रिम मुसकान का सहज सौन्दर्य वर्तमान रहता है। ऐसी मुसकान प्राय दो अवसरो पर रीतिकालीन काव्य मे वर्णित है (१) मुग्धा द्वारा अपने अंगो को देखकर प्रकट होने वाली मुसकान (२) प्रिय की चर्चा या स्मृति मात्र से उद्भूत होने वाली लज्जामूलक मुसकान।

प्राय मुग्धाएँ अपने अगो को देखकर मुस्करा उठती है अथवा सखियो के बीच ऐसा प्रसग आने पर मुसकान स्फुरित हो जाती है। "कहैं हनुमान सखियान ते दुराइ, अखियान को नचैवे लैं मुकुर मुसकाति है। अथवा "काम-कला प्रकटी अग-अग विलोकी हँसी अपनी परछाही।"[1] इन दोनो उदाहरणो मे मुसकान का कारण अवस्था जन्य सहज प्रवृत्ति है।

प्रिय की स्मृति मात्र से लज्जामूलक सहज मुसकान के सौन्दर्य का वर्णन भी मिलता है। "पिय नाम सुनै तिय द्यौसक तें, दुरिकै मुरिकै मुसकान लगी।"[2] प्रिय का नाम मात्र सुनकर मुसकान की इस प्रवृत्ति मे रतिमूलक भावना वर्तमान रहती है। इसी भावना का प्रकट रूप मुसकान है। सहज मुसकान के इस माध्यम से प्रेम की अभिव्यक्ति हो जाती है। ऐसी मुसकान को प्रेम-व्यञ्जक मुसकान कहेगे।

प्रेम व्यञ्जक मुसकान—मुसकान के द्वारा पारस्परिक प्रेम की अभि-व्यञ्जना और रति भाव का उद्दीपन होता है। काम की भावना के स्फुरित होने पर नायिका की मुस्कराहट आकर्षण की अभिवृद्धि करने वाली होती है।[3] श्रीकृष्ण की मुसकान को देखने की भावना अभिलाषा के रूप मे प्रकट हो जाती है। गोपी चाहती है कि कृष्ण एक बार मुस्करा कर मेरी ओर देखे।[4]यह मुसकान

---

1 व्रजभाषा साहित्य का नायिका भेद पृ० २३७

2 " " " " "

3 काम-कला प्रकटी अग-अंग, विलोकि हँसि अपनी परछाही।

व्र० सा० का ना० भेद पृ० २३७

4 'कालिदास' कहै नेक मेरी ओर हेरि हँसि,
माथे धरै मुकुट लकुट कर डारि दै।

कपोल एव भौहों के विकास से प्रकट हो जाती है। मतिराम ने लिखा है कि मधुर कपोल की मुसकान से नन्दलाल निहाल हो जाते है।[1] इससे सहज अवस्था के सौन्दर्य के साथ उद्दीपक गुण का सकेत भी मिल जाता है। प्रेम व्यञ्जक पारस्परिक अनुभाव मूलक चेष्टाओ मे भौहो की मुस्कराहट का चित्र बिहारी ने बडे-अच्छे ढग से प्रस्तुत किया है।[2] मतिराम की 'वृषभानुलली' श्रीकृष्ण के नेत्र मिलते ही मुसकान के सग मुख मोड कर चल देती है:—

गहि हाथ सो हाथ सहेली के साथ मे आवति ही वृषभानु लली।
'मतिराम' सुबात ते आवत नीरे निवारति भौरन की अवली।
लखिके मनमोहन सो सकुची, कह्यौ चाहति आपुन ओट लली।
चित चोर लियो दृग जोरि तिया, मुख मोरि कछू **मुसक्यात चली**।

इस उदाहरण मे मुसकान के द्वारा अन्य अनुभावो के योग से सफल प्रेम का चित्र प्रस्तुत कर दिया गया है। पारस्परिक वार्तालाप मे यही प्रवृत्ति दीख पड़ती है।[3] अचानक भेट हो जाने पर मुसकान आमन्त्रण देने वाली हो जाती है। ,'वह साँकरी कुञ्ज की खोरि अचानक राधिका-माधव भेटि भई। मुसक्यानि भली अँचरा की अली त्रिवली की बली पर दीठि गई।''[4] प्रेम व्यञ्जक इस मुसकान की अनेक अवसरो पर अभिव्यक्ति हुई है। प्रेमाधिक्य के कारण ही कभी-कभी वचन से उपहास न करके मुसकान द्वारा ही उपहास कर दिया जाता है।

उपहास और व्यंग्य मूलक मुसकान मे नायिका का नायक के प्रति अथवा एक सखी की दूसरी सखी के प्रति उपहास की प्रवृत्ति लक्षित होती है। उपहास का उद्देश्य अपमान न होकर प्रेम की अभिव्यक्ति ही होती है। ऐसे अवसरो पर नायिका अथवा सखी के स्नेह का प्रदर्शन होता है।

---

1 नेक मन्द मधुर कपोल मुसिक्यान लगी,
नेक मन्द गमन गयन्दन की चाल भौ।
बाल तन यौवन-रसाल उलहत सब,
सौतिन कौ साल भौ निहाल नन्दलाल भौ। मतिराम

2 बतरस लालच लाल की मुरली धरी लुकाइ।
सौह करै, भौहनि हँसै, दैन कहै,.नटि जाय। बिहारी सतसई

3 हँसि-हँसि करै बातै रगीले दोऊ मदमाते,
गौर स्याम अभिराम अंग-अग हिय उमग
बाढी गाढि अति सरस-परस ललचाते।

4 ममारख

उपहास मूलक मुसकान की अभिव्यक्ति अनेक प्रसगो पर हुई है। नायिका के सौन्दर्य को देखकर नाइन विस्मय विमुग्ध हो जाती है। उसकी इस दशा को देखकर नायिका की मुसकान मे यही उपहास दीख पड़ता है,[1] जो उसके सौन्दर्य को और अविक वढा देता है। इस मुस्कान की प्रेरणा नाइन की मूढता मे मिलती है।

'विभ्रम' मे भी सखी के उपहास का चित्र प्रस्तुत किया जाता है। प्रिय के आगमन आदि प्रसगो पर त्वरा के कारण भूषण वस्त्रादि का अन्य अग मे धारण कर लेना 'विभ्रम' कहा जाता है। इस मुसकान का शब्दत कथन और व्यग्य रूप मे व्यञ्जना हुई है। दोनो का एक-एक उदाहरण देखें —

१. बाँध लई कटि सो वनमाल, न किंकिनी बाल लई ठहराइकै।
राधिका के रसरग की दीपति, सग की हेरि हँसी हहराइकै।[2]

२ किंकिनी के उरहार किये तुम कौन सो जाय विहार करौगी।

इन दोनो मे प्रथम उदाहरण मे भेदभरी मुसकान का सकेत किया गया है।

व्यंग्यमूलक मुसकान मे प्राय. विप्रलब्धा नायिका की नायक के प्रति तिरस्कारपूर्ण भावना व्यक्त होती है। रति-चिन्हो को देखकर केवल मुस्कराकर अथवा मुसकान और वचन के प्रयोग से अपने आक्रोश को व्यक्त कर देती है।[3] हँसी के उड जाने मे क्रोध की अभिव्यक्ति होती है। 'गोत्र-स्खलन' प्रसग पर इस ढग का वर्णन मिलता है।

मुसकान द्वारा मान-भग अथवा पारस्परिक सन्धि का सकेत भी रीतिकालीन काव्य मे मिलता है। मानिनी राधा के मान को छुडाने मे सखिया योग

---

1 (क) देव' सुरूप की रासि निहारति, पाँय ते सीस लो, सीस ते पाँयनि।
ह्वै रही ठौरई ठाढी ठगी सी, हँसै कर ठोडी दिए ठकुराइनि।
व्र० सा० का ना० भेद पृ० २१३

2 रस-रत्नाकर पृ० २३२

3 आवै हँसी हमैं देखत लालन, भाल मे दीन्ही महावर रोरी।
एते वडे व्रजमण्डल मे न मिल, कहू माँगेहु रचक रोरी।
री० का० सग्रह पृ० २४८

(ıı) आई उनै मुँहु मैं हँसी, कोपि प्रिया सुर चाप सी भौह चढाई।
आँखिन तै गिरे आँसू के वूँद, सुहाँसु गयो उडि हस की नाई।
री. का स पृ० १७७ छद २३

देती है। श्रीकृष्ण आँख मूँद लेते है, उसके इस अभिनय को देखकर राधा मुसकरा उठती है और दोनो हृदयो मे प्रेम का प्रवाह पूर्ववत् प्रवाहित हो जाता है ।[1]

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट हो जाता है कि मुसकान के चित्रण मे रीतिकालीन कवियो ने अपनी प्रतिभा और कल्पना दोनो की सहायता ली है। इसके अनेक भेदो मे मुसकान की क्रिया मूलकता और गुण मूलकता पर विशेष दृष्टि रमी है। क्रियामूलक मुसकान मे उसके प्रभाव, उपहास और व्यग्य, क्रीडा, प्रेम व्यञ्जकता आदि द्वारा मुसकान से वढे हुए सौन्दर्य का रूप प्रस्तुत किया गया है। सहज एव स्वाभाविक मुसकान के आन्तरिक गुण और उल्लास की ओर कवियो का ध्यान गया है। सहज मुसकान मे उसके उल्लास, शोभा आदि का प्रभाव कपोल और अधरो पर दिखाया गया है "हुलास भरी मुसकानि लसै, अधरानि ते आनि कपोलनि जागै ।"

मुस्कान का वर्णन करने मे इस काल के कवियो की दो प्रवृत्ति दीख पडती है—

(१) मुसकान के गुणो का वर्णन—गुण का वर्णन करने मे जिन विशेषणो का वर्णन किया गया है वे क्रियामूलक, उपमानो से युक्त और अन्य परिचित विशेषणो से सम्पन्न है। क्रियामूलक मुसकान के लिए लजीली, हुलासभरी, उपेक्षा करने वाली, मोहक, कुटिल, आदि विशेषणो का प्रयोग हुआ है। गुणमूलक मुस्कान मे मृदुता, मिठास, माधुर्य, शुभ्रता, ताजगी, स्वाभाविकता, मोह-महिमा से युक्त, मुसकान का वर्णन है। मुसकान के वर्णन को आकर्षक बनाने के लिये उपमानो का प्रयोग हुआ है। मुसकान मे फूल, गुलकद, दाख और कलाकद की मधुरता, शहद और मिश्री की मिठास, सुधा की सरसता, अमृत फेन और फूल की उज्ज्वलता व ताजगी, कपूर की शीतलता और गन्ध द्रव्यो की सुगन्धि देखने की चेष्टा की गई है।

(२) मुसकान की क्रिया एवं स्वरूप वर्णन मे यह स्पष्ट किया गया है कि मुसकान चाँदनी सी चू पडती है, कोटि चन्द्र की कान्ति को क्षीण कर देती है। अपनी मोहकता से सौन्दर्य को प्रकाशित करती है, नायक को रिझाती

---

1 दृग मूँदि रहौ चितए जुपै मान, लला हँसि ते हम मूँदि रहे।
मुसकाइ कै राधिका आनन्द सौं, भुजमाल सौं लाल लपेटि गहे।
री का. सं १६६ छद १४

है, रसिको को प्रभावित करती है, शारदी ज्योत्स्ना के समान फैल जाती है। इसकी मिठास से रस चू पडता है। हुलासभरी मुसकान अधरो और कपोलो पर थिरकती हुई सम्पूर्ण मुख की शोभा बढ़ा देती है। मतिसम की हँसती हुई नायिका चम्पक की लताओ से गिरते हुए फूल की शोभा धारण करती है।[1] इससे स्पष्ट है कि शोभा-विधायक चेष्टा के रूप मे मुसकान का चित्राकन हुआ है। ऐसी मुसकान के सग चितवन उसकी सहयोगिनी बनकर नायिका के सौन्दर्य को शताधिक बढा देती है।

चितवन और कटाक्षपात—चितवन नेत्रो की आकर्षक चेष्टा है। मुसकान और चितवन इन दोनो चेष्टाओ से नायिका के व्यक्तित्व का आकर्षण बढ जाता है। नायिका की चितवन उसके भावो की वाहिका होती है। चितवन की अनुभाव मूलक चेष्टा के अन्तर्गत नेत्रो की टकटकी बँध जाना, उनका निर्निमेष हो जाना, भौहो का बकिम हो जाना और कटाक्षपात करना आदि क्रियाओ का समावेश होता है। चितवन का चित्रण व्यष्टि रूप मे और मुसकान के सग भी किया गया है। मुसकान युक्त चितवन की मादकता बढ जाती है। चितवन मानसिक भावो को प्रकट करने का माध्यम है, जिसका प्रधान साधन नेत्र है। भावो के अनुकूल नेत्रो की स्थिति और उनकी गति, संचालन के ढग आदि मे अन्तर आ जाता है। नेत्रो के विकास अथवा सकोच से चितवन की पृष्ठभूमि तैयार हो जाती है। रूप के आकर्षण-वृद्धि के साथ खिचाव उत्पन्न होता है। यह उद्दीपक चेष्टा है। इससे शृगार पूर्ण रस काव्य मे महत्व बढ जाता है। यह प्रेम व्यापार का प्रमुख माध्यम है, जो भ्रू निक्षेप और कटाक्षपात के माध्यम से स्पष्ट होता है। रीतिकालीन काव्य प्रेम-भावना पूर्ण काव्य है। इस काल मे प्रेम के साधक व्यापार के रूप मे नेत्र की चेष्टाओ का वर्णन रुचि-सम्पन्नता के साथ किया गया है।

रीतिकाल मे नेत्र व्यापार रूप चितवन के वर्णन मे दो दृष्टिकोणो को अपनाया गया है। (१) चितवन की चेष्टा के आधार पर उसके विभिन्न भेद और (२) उसकी मोहकता मूलक मुद्रा का वर्णन।

मुद्रा मूलक नेत्रो की स्थिति मे स्थिरता होते हुए भी उसमे तन्द्रिल सौन्दर्य की मादकता वर्तमान रहती है। इससे आलस्य और तन्द्रा की अभि-

---

1 हँसत बाल के बदन मे यो छवि कछू अतूल।
फूली चपक बेलि ते, झरत चमेली फूल। री का स पृ १८१/५४

व्यक्ति होती है। यद्यपि यह स्पष्ट रूप से चेष्टा जैसा प्रतीत नही होता, फिर भी अगो की स्पन्दनशीलता के कारण इसे चेष्टा मूलक व्यापार के अन्तर्गत ही स्वीकार किया गया है। तन्द्रा मूलक इस नेत्र-व्यापार का वर्णन आलस्य, निद्रा, रति-भुक्ता एवं खण्डिता के प्रसग पर किया गया है।

प्रात. कालीन बेला मे राधा की रूप माधुरी की तन्द्रिलता से उत्पन्न रह:केलि से स्लथ और अलसाये नेत्रो का भावमय चित्र प्रस्तुत किया गया है।[1] रति भुक्ता राधा के नेत्रो का सौन्दर्य अपने अलबेलेपन मे अपूर्व है।[2] नेत्रो के निर्निमेष हो जाने मे उसकी अनोखी शोभा वर्णित है। खण्डिता प्रसग पर श्रीकृष्ण की तन्द्रिल अवस्था का वर्णन अनेक कवियो ने किया है।

आलस्य से उनीदी आँखो के सौन्दर्य को श्री हठी ने देखने का प्रयास किया है। "आलस्य उनीदी दृग मू दि चटकाइ कर, सुन्दर सुघर सुकुमारि सेज सो रही।"[3] इन सभी उदाहरणो मे आलस्य या आनन्द युक्त मुद्रा का जो वर्णन किया गया है, उसमे प्रत्यक्षत· चितवन के सम्बन्ध मे कुछ भी नही कहा गया है, फिर भी नेत्र के इन व्यापारो अथवा स्थितियो मे अप्रत्यक्ष रूप से नेत्रो की मादकता एव मोहकता का संकेत मिल जाता है। इन मुद्रात्मक चित्रों मे सौन्दर्य के साथ आकर्षण व मोहकता है।

चितवन के प्रत्यक्ष वर्णन मे रीतिकाल की अनेक विशेषताएँ हो सकती है-

(१) **क्रिया मूलक विशेषता**—इसे व्यक्त करने के लिये प्रयुक्त विशेषणो में क्रिया का भाव लक्षित होता है। कटीली, लजीली, घातक, भाव-व्यञ्जक, हँसीली और फरकने वाली चितवन मे यही विशेपता दीख पडती

---

1 रतनारी हो थाडी आँखडिया।
प्रेम छकी रस-बस अलसानी, जानी कमल की पाँखडियाँ।

मध्यकालीन हिन्दी कवियित्रियाँ पृ १६६

2 बडी-बडी अँखियनि नीद घुरानी।
अति अनुराग भरी पिय के सग जागत रैन विहानी।...
झपि-झपि परत छवीली पलकै, आरस जुत अरसानी।..
'अलवेली अलि' चित्र रही सब नैन निमिष भुलानी।

अलवेली अली।

3 श्री राधा सुधा-शतक—६८५८ हठी जी।

है ।[1] घातक चितवन के प्रभाव की तीव्र व्यञ्जना रीतिकालीन कवियो ने की हे । मुबारक कवि तो प्रत्यक्षत. चितवन की घातक चोट का वर्णन करने लग जाते है ।[2] एक अन्य कवि ने राधा की चितवन से गिरिराज उठाये हुए श्रीकृष्ण के नखो से पर्वत के गिर जाने की आशका प्रकट की है ।[3]

(२) **गुण-मूलक विशेषता**—चितवन के अनेक गुणो की चर्चा इस काल मे की गई है । चितवन मे वक्र दृष्टि, टेढी चितवन और बकिम स्थिति का सौन्दर्य देखा गया है । चचल, लुब्ध, रसाल, आलस्ययुक्त, लाज और शील सम्पन्न चितवन के मृदुल गुणो के साथ उसकी तीक्ष्णता का वर्णन भी मिल जाता है । कोमल और मृदुल गुण-सम्पन्न चितवन मुग्धा नायिकाओ मे अधिक देखी जाती है "दृग लागे तिरछे चलन पग मन्द लागै" जैसी पक्तियो मे यह

---

1 (क) सोभा बरसीली सुभ सील सो लसीली,
सु रसीली हँसि हेरें हरै विरह तपति है । घन आनन्द

(ख) मद जोबन रूप छकी अँखिया, **अवलोकनि आरस रंग-रली ।**
घन आनन्द

(ग) बडी अँखियानि मे अजन रेख, लजीली चितौनि हियो रसपागे ।

(घ) साकरि खोरि मे काकरी की करि चोट चलो गयो लौट निहारो ।
पद्माकर

(ङ) वृषभानु कुमारि की ओर, विलोचन कोरनि सो चितवै ।
चलिवै को घरै न करै मन नेकु, घरै फिर-फेरि भरै रितवै । 'देव'

(च) फरकै लगी खजन सी अँखियाँ, भरि भायन भौह मरोरै लगी ।
द्विजदेव

2 कान्ह कै बाँकी-चितौन खुभी, झुकि कालिह की ग्वारिन झाँकी गवाच्छिन ।
काजर दै री न एरी सुहागिन, आँगुरी तेरी कटेगी कटाच्छिन ।
आँख और कविगण पृ १२ स जवाहर लाल चतुर्वेदी ।
साहित्य सेवा सदन काशी सं. १९८९

3 (क) चचल-चपल-ललचौहे-दृग मूदि राखि,
जौ लो गिरधारी गिरि नख पै धरै है री । वही पृ १६

(ख) तेरे नैनि, तेरे वस नाँही कहौ साँची मै,
लाल, ललिचैहै लखि रूप को उजारी री ।
स्वेद कम्प ह्वै है गिरि गिरिहे अबसु आजु,
लगिहैं री कलक, लोग दैहै तोहि गारी री । वही पृ १६

प्रवृत्ति लक्षित होती है। भावो की बोधक चितवन मे भौहो की मरोड द्वारा इस प्रकार की प्रवृत्ति का वर्णन है। 'कुट्टमित अलकार' मे भौहो की ऐसी ही दशा का चित्राकन हुआ है—

१. सैननि चरचि लई, गातनि थकित भई,
नैननि मे चाह करै बैनन मे नहियाँ। मतिराम

२. भौहनि त्रासति मुख नटति, आँखिन सो लपटाति। बिहारी

इन दोनो ही उदाहरणो मे निषेध मूलक स्वीकृति के भाव की अभिव्यक्ति सैन एव भौहो की मरोड द्वारा व्यक्त किया गया है। ये दोनो चितवन मूलक व्यापार ही है।

(३) प्रभाव मूलक चितवन मे इसके ऐसे गुणो की चर्चा की गई है, जिसका प्रभाव नायक या नायिका पर तत्काल पड जाता है। इनमे दॉव न चूकने वाली चितवन और आक्रोश व्यक्त करने वाली चितवन का वर्णन है।

१. मद भरी अँखियाँ लाल तिहारी।
तिन सो तकि-तकि तीर चलावति, बेधति छतियाँ आनि हमारी।
नागरीदास—आँख और कविगण २२

२ माँजै 'मुबारक' दै विष अजन, सीधे से बीधै हृदै घनश्याम के।
बान-चितै दृग तेरे पियारी, रहे सर काम के, न एकहु काम के।
आँख और कविगण पृ १८

क्रोध को व्यक्त करने मे भौहो की भगिमा का वर्णन होता है।[1]

उपर्युक्त विचारो से स्पष्ट है कि चितवन का अनेक विध रूपो मे सौन्दर्य वर्णित है। मुसकान और चितवन से सयुक्त होकर लज्जा नायिका के सौन्दर्य को बढाने मे महत्त्वपूर्ण कार्य करती है।

लज्जा—नायिकाओ मे लज्जा शील-सम्बन्धी भूषण एव मुख पर अपूर्व आभा उत्पन्न करने वाली होती है। इसे कुलवती स्त्रियो का अलकार माना जाता है। लज्जा का मूल सम्बन्ध स्त्रियो की अवस्थाओ से रहता है। वय. सन्धिकाल मे इसका आधिक्य और क्रमश अवस्था के साथ इसकी न्यूनता होती जाती है। लज्जा की मूल प्रेरणा शृङ्गार भाव अथवा भय से उद्भूत होती है। मुग्धा नायिकाओ मे लज्जा की अधिकता और काम की न्यूनता

---

1 जागि परी 'मतिराम' सरूप गुमान जनावति, भौंह के भंगनि।
लाल सो बोलति नाहिन बाल, सुपोछति आँख अगोछति अँगनि।

होती है। क्रमश बढती हुई अवस्था के साथ मध्या और प्रौढा मे काम की अधिकता और लज्जा की न्यूनता होती चली जाती है। लज्जा के बाह्य-व्यञ्जक तत्त्वो मे मुख की लालिमा, नेत्र एव मुख का नत हो जाना और मुख का फेर लेना आता है। शृङ्गार वर्णन मे आवेश के कारण मुख पर रक्त का दौरा बढ जाने से लालिमा मुख की शोभा को बढा देने मे सहायक होती है। यह कुलवती स्त्रियो की सच्चरित्रता को व्यक्त करती है, परन्तु सभी स्त्रियो मे न्यूनाधिक्य मात्रा मे लज्जा शोभा की विधायिका बन जाती है। शृङ्गार भाव के अतिरिक्त लज्जा का उदय भय अथवा अपराध भावना से भी होता है। इसमे वय की कोई सीमा नही होती परन्तु अपराधमूलक लज्जा सौन्दर्य वर्द्धक चेष्टा के अन्तर्गत नही आती है। यह एक प्रकार की आत्म-ग्लानि है। अत इसका वर्णन न करके केवल शृङ्गार मूलक लज्जा का विश्लेषण होगा।

रीतिकालीन साहित्य मे शृङ्गार मूलक लज्जा की आकर्षक चेष्टाओ का सूक्ष्मता के साथ वर्णन किया गया है। लज्जा का वर्णन प्रायः दो रूपो मे किया गया है (१) कथ्य मात्र मे लज्जा का अभिधेय रूप (२) अनुभावो के माध्यम से व्यग्य रूप मे लज्जा का सकेत।

कथ्य मात्र मे लज्जा का कथन अभिधा से होता है। इसका ज्ञान आश्रय या आलम्बन के अनुभावो से न होने के कारण यह लज्जा निरूपण का उत्तम ढग नही माना जा सकता है। इसमे दर्शन जन्य आनन्द की अनुभूति नही होती अपितु कवि अथवा आश्रय के कथन से लज्जा का आभास मात्र हो जाता है। दोनो का एक-एक उदाहरण पर्याप्त होगा :—

१ श्याम रूप सागर मे नैनवार पारथ के,
नाचत तरग अग-अग रगमगी है।
काम पौन प्रबल धुकान लोपी लाज तातै,
आज राधे लाल की जहाज डगमगी है।[1]

२. लाजनि ते गडि जात कहू, पडि जाति कहू गज की गति भाई।
बैस की थोरी, किसोरी हरे हरे या विधि नन्द किशोर पै आई।[2]

इन उदाहरणो मे अनुभावो द्वारा लज्जा का चित्राकन नही हो सका है। इससे लज्जा का बिम्ब-विधान नही होने पाता है। इस प्रकार के लज्जा

---

1 मध्यकालीन हिन्दी कवियित्रियाँ से—सुन्दरि कुंवरि बाई।

2 'नवरस,' पद्माकर—२०९, स. गुलाबराय, ना० प्र० सभा, आरा। स १९९०

के वर्णन मे लज्जा मूलक सरसता की साकारता नही आ पाती है। इसीसे रीति-कालीन कवियो ने इस ढग से इसका वर्णन कम ही किया है। इसके स्थान पर अनुभाव मूलक लज्जा का वर्णन ही अधिक मिलता है।

अनुभाव मूलक लज्जा—मानसिक भावना की अभिव्यक्ति मे लज्जा महत्त्वपूर्ण कार्य करती है। यह मन की बाह्य चेप्टा है, जो नेत्रो के माध्यम से प्रकट हो जाती है इससे नारी के सौन्दर्य की कमनीय कल्पना स्वत ही होने लग जाती है।

व्यक्तित्व के आकर्षण को वढाने मे लज्जा आवश्यक चेष्टा होती है। प्राय नेत्र या चितवन के वर्णन प्रसग पर लज्जा का आभास भी मिल जाता है।[1] लज्जा भीनी चितवन मे अपूर्व मादकता होती है। इसके प्रकट होने पर नेत्रो के विकास, मन की प्रफुल्लता और अ गो के संकुचित होने का चित्र मिलता है। इस लज्जा के वर्णन मे अनेक प्रसगो की अवतारणा रीतिकालीन साहित्य मे हुई है।

(१) गुरुजनो के सानिध्य मे प्रिय दर्शन-जन्य लज्जा।
(२) स्वाभाविक लज्जा।
(३) रति-चर्चा से उत्पन्न लज्जा।
(४) शृङ्गारिक चेष्टाओ मे भयमूलक लज्जा।

लज्जा के इन प्रसंगो का विश्लेषण करने से स्पष्ट हो जाता है कि ल जा का **निसर्गगत और लोक सानिंध्य से उत्पन्न** स्वरूप हो सकता है। निस-र्गगत या स्वाभाविक लज्जा अन्य व्यक्ति की अपेक्षा नही करती, अपितु वय सन्धि काल मे स्वतः ही उत्पन्न हो जाती है। मुग्धा नायिकाओ मे इसके कारण उनके मुख की शोभा बढ जाती है। उनकी क्रियाओ मे एक अनोखापन आ जाता है।[2] प्रिय के सानिध्य मे मुख पर सहज लालिमा फैल जाती है। वह अ गो मे समेट लेना चाहती है। नवयौवना के सुकुमार बदन पर लाज की

---

1 (क) लाजनि लपेटी चितवन चित भाय भरी,
लसति ललित लोल चख तिरछानि मे।
(ख) लाज बडी बडी सील गसीली,
सुभाय हसीली चितै चित लौपै।

2 इतै उतै सकुचित चितै, चलत डुलावत बाँह।
दीठि बचाइ सखीन की, छिनुक निहारत छाँह॥ बिहारी

ललाई, अगो का सकोच और रोमाञ्च उसकी शोभा को बढा देता है। वह इन्द्र वधूटी के समान सकुचित हो जाती है।[1] कही-कही प्रिय से छिपाने मे भी यही लज्जा दीख पडती है। लजीली ललना अपने कन्त को अपनी ओर निरखती हुई देखकर लज्जा के कारण उन्हे देख नही पाती है। परन्तु उसे दूसरी ओर देखते जानकर स्वय देखने लग जाती है।[2] ऐसे प्रसगो पर लज्जा का प्रत्यक्ष रूप उपस्थित हो जाता है। मुग्धा या मध्या नायिकाओ मे इस प्रकार की लज्जा का प्राबल्य दीख पडता है।

अन्य सन्निधि से उत्पन्न होने वाली लज्जा मे लोक-मर्यादा व स्वाभाविकता दोनो ही बनी रहती है। रह केलि स्वय मे भी एक गोपनीय क्रिया है। इस क्रिया की गोपनीयता मे एकान्त भाव की नितान्त आवश्यकता होती है, परन्तु एकान्तता भग होते ही उसकी गोपनीयता समाप्त हो जाती है। इसीसे लज्जा का स्वाभाविक रूप से उदय हो जाता है। यह लज्जा अनेक रूपो मे दीख पडती है।

गुरुजन के सानिध्य मे लज्जा के स्वाभाविक उदय का चित्र अनेक कवियो ने प्रस्तुत किया है।

१. जाति हुती गुरु लोगन मे, कहु आइ गये हरि कुञ्ज गली मे।
लाज सो सौहे चितै न सकी, फिरि ठाढी भई लगि आली अली सो।

२ बैठी हुती गुरु मण्डली मे, मन मे मन मोहन को ना बिसारति।
त्यो 'नन्दराम' जू आय गये बन ते, तहँ मोर पखा सिर धारत।
लाज तै पीठ दै बैठी बधू, पति मातु की आँखि ते आँख न टारत।
सासु की नैननि की पुतरिन मे प्रीतम को प्रतिबिम्ब निहारति।

उपर्युक्त उदाहरणो मे स्पष्ट है कि अन्य के सानिध्य मे भी प्रिय को देखने की इच्छा बनी रहती है, परन्तु इस इच्छा की पूर्ति लज्जा के कारण अन्य माध्यम से कर ली जाती है। प्रिया प्रियतम की पडती हुई छाया को सास की नेत्रो की पुतली मे देख लेती है।

---

[1] ज्यो-ज्यो परसत लाल तन, त्यो-त्यो राखे गोइ।
नवल वधू उर लाज ते, इन्द्र वधू सी होइ।
ब्र० सा० का नायिका भेद पृ० २३९/११६ मतिराम

[2] कन्त हरै सामुहे तो अन्त हेरे चन्द्रमुखी,
अन्त हेरे कन्त तब कन्त हेरे कामिनी। नवरस पृ० १७३

स्वकीया नायिका की लज्जा का वर्णन 'ननद' के सानिध्य मे अच्छे ढग से किया गया है। नायक द्वारा नायिका के शृङ्गार करते समय ही 'ननद' आ जाती है और वह नायिका उसे देखकर लज्जित हो जाती है।[1] दूसरे के सानिध्य मे अग-सकोच द्वारा मानसिक उल्लास की अभिव्यक्ति होती है। अपने मायके मे नन्दलाल को देखकर जी का ललचा उठना, सकुचाना, घूँघट न घाल सकना आदि मे यही लज्जा दीख पडती है। वह अपनी मा के पीछे छिप जाती है; सिर नीचा कर लेती है। ऐसी क्रियाओ मे शालीनता और आभिजात्यमूलक लज्जा जीवन की मर्यादाओ के बीज सौन्दर्य एव आकर्षण का कारण बन जाता है।[2] इन प्रसगो से स्पष्ट है कि लज्जा के स्वरूप को प्रस्तुत करने मे कवियो ने अनेक अनुभावो का सफल चित्रांकन किया है। मुग्धा नायिकाओ मे जिस निसर्ग सिद्ध लज्जा का वर्णन होता है, उसके गोपन के लिये कई प्रकारो का वर्णन मिलता है।

(१) प्रिय-प्रेम-मूलक भाव की अभिव्यक्ति लज्जा के कारण ही नही हो पाती है। अत बिहारी की नायिका जमुहाई लेकर उसे छिपा लेती है, ताकि सखियाँ भी उसके भाव को लक्षित न कर सके —

ललन चलन सुनि पलन मे अँसुवा झलक्यो आई।
भई लखाइ न सखिन हूँ झूठे ही जमुहाई।

ऐसे उदाहरणो मे भविष्य के उपहास जनक स्थिति से बचने के लिये गोपन की इस प्रवृति के मूल मे लज्जा का भाव ही रहता है।

(२) सामाजिक मर्यादा के कारण अपनी पति की ओर भी लगातार दूसरो के सानिध्य मे देखते जाना शालीनता के विपरीत है। अन्य वस्तु के माध्यम से प्रिय को देखकर अपने भावो को गुप्त रखने मे लज्जा का भाव कार्य करता है। ऐसी स्थिति से मणि-बिम्ब, नेत्र-बिम्ब, कपोल-बिम्ब आदि के माध्यम से प्रिय को देखकर लज्जा व शालीनता की रक्षा होती है।

---

1 देन लगे कवि 'तोष' सो प्रितम, आइ गई ननदी अभिमानी।
तैसी कछु कहि जात नही अली जैसी कछू हम आज लजानी।
नवरस पृ० २०८ तोष कवि

2 नन्द गाव ते आइगो नन्दलला, लखि लाडिली ताहि रिझाइ रही।
मुख घूँघट घालि सकै नहि माइकै, माइकै पीछे दुराइ रही।
उचके कुच कोरन पै पद्माकर, कैसी कछू छवि छाइ रही।
ललचाइ रही, सकुचाइ रही, सिर नाइ रही, मुसकाइ रही।

(क) लाज तै पीठ दै बैठी वहू पति, मातु की आँखु ते आँख न टारत ।
(ख) सासु की नैननि की पुतरीन मे, प्रीतम को प्रतिबिम्ब निहारति ।।[1]
(ग) नैन नवाइ रही हिय माल मे, लाल की मूरतिलाल मे देखी ।[2]

(३) किसी वस्तु के ओट या सहारे को लेकर प्रिय दर्शन से उत्पन्न सकोच की रक्षा की जाती है । घूँघट की ओट मे लज्जा को प्रकट करने मे अभिनय का अपूर्व आनन्द प्राप्त होता है ।

शालीनता जन्य लज्जा के कारण प्रेम को गोपनीय रखने के हेतु लज्जा का अनुभावो मे जो चित्र प्रस्तुत किया जाता है, रीतिकाल मे वह अनेक रूपो मे प्रकट हुआ है । ऐसे स्थलो पर लज्जा स्वशब्द मे वाच्य न होकर साकेतिक रूप मे व्यग्य हो जाता है । शारीरिक चेष्टाओ द्वारा इस लज्जा का आभास हो जाता है जो निम्नलिखित रूपो मे प्रकट होती है —

(१) नेत्रो का झुक जाना—प्रिय दर्शन से उत्पन्न रतिभाव के कारण नेत्र झुक जाते है ।

(क) नैन नवाय रही हिय माल मे, लाल की मूरति लाल मे देखी ।
(ख) लाज सो सौहे चितै न सकी, फिरि ठाढी भई लगि आली अलीसो ।
तोष

(ग) सकुचनि सौहे निहारि न सकियै ।
लालन सनमुख ह्वै वड भागिनि, गुरुजन डॉट निसकिये ।
आनन्दघन-पदावली १८

(च) झाँकि झरोखे सके न सकोचन, लोचन नीर हियै डर साने ।
मेरी न तेरी सुने समुझै, न वै, फेरी सी देत फिरै वरसाने ।
नवसतरग—बेनी प्रवीन पृ० ६२ पद ४४७

(२) लज्जा के उदय होने पर बचनो मे कृपणता आ जाती है और वोलते नही बनता ।

(क) सुन्दरि जानि के मन्दिर के पिछ्वारे है सुन्दर ठाढे कन्हाई ।
चाहै कछु कह्यौ पै सकुचै तव कीनी है बातनि मे चतुराई ।
सुन्दर—शृङ्गार पद ७१

(ख) लखि के मनमोहन सो सकुची, कह्यो चाहति आपनि ओट लली ।
चित चोर लियो दृग जोरि तिया, मुख मोरि कछू मुसकात चली ।

1 ब्रजभाषा साहित्य का नायिका भेद छद २८६ नन्दराम
2 ब्रजभाषा साहित्य का नायिका भेद छद २८५ मतिराम

(३) नेत्रो के माध्यम से अपने अभिप्राय को व्यक्त कर लेने मे भी वचनो की कृपणता और अन्य लोगो की उपस्थिति का आभास मिलता है।

कहति, नटति, रीझति खिझति, मिलति, खिलति लजिजात।
भरैं भौन मे करत है नैननि ही सब बात। बिहारी

(४) प्रिय के सानिध्य मे लज्जा के कारण वाणी स्फुरित नही होती है, परन्तु प्रिय के चले जाने के पश्चात् इस लज्जा के प्रति मन मे चिन्ता वनी रहती है। एक गोपी कथ्यमात्र से इस लज्जामूलक चिन्ता के भाव को व्यक्त करती है।

हाय इन कुन्जनि मे पलटि पधारे स्याम,
देखन न पाई वह मूरति सुधामई।
आवन समै मे दुखदायिनी भई री लाज,
चलन समै मे चल पलन दगा दई।—द्विजदेव

इसमे सानिध्य के कारण नेत्रो का नय जाना और विछोह के अवसर पर नेत्रों की चचलता व दगा देने की बात से लज्जा व्यग्य रूप मे वर्णित है।

(५) 'लीला' अलकार मे मतिराम ने लज्जा का चित्राकन किया है। नायक की पगडी पहनती हुई नायिका देख लिये जाने पर लज्जित हो जाती है—

प्यार पगी पगरी पिय की घर भीतर आपन शीश सँवारी।
एते मे ऑगन ते उठिकै तहँ आय गयो 'मतिराम' बिहारी।
देखि उतारन लागी प्रिया, प्रिय सौहन सो बहुर्यो न उतारी।
नैननि बाल लजाइ रही, मुसक्याइ लई उर लाइ पियारी।

उपर्युक्त विचारो से स्पष्ट हो जाता है कि लज्जामूलक चेष्टा की अभिव्यक्ति मे रीतिकालीन कवियो ने उसके अभिधेय एव व्यग्य रूप को प्रस्तुत किया है। लज्जा के माध्यम से मन की संकोचमूलक प्रवृत्ति का आभास होता है। इससे इसकी अभिव्यक्ति अनुभावो के माध्यम से ही होती है। अत अनुभावो द्वारा इसकी अभिव्यक्ति न होकर केवल कथन मात्र से लज्जा का वर्णन कर देना सौन्दर्य का जनक नही हो पाता है, अपितु शारीरिक आकर्षक चेष्टाओ द्वारा इस लज्जा का सकेत देना सौन्दर्य एव आकर्षण का कारण बनता है। ऐसी अनुभाव मूलक चेष्टाओ मे नेत्रो का झुक जाना, मुख का आरक्तिम होना, वचन की कृपणता, ओट मे हो जाना, मुख पर घूँघट डाल लेना, पीठ फेर लेना, वाणी का स्फुरित न होना, केवल नेत्रो से ही बात करना आदि का वर्णन किया गया है। इस लज्जा के दो कारण—स्वाभाविक एव लोक-सानिध्य वताया जा चुका है। लज्जा का यह स्वरूप स्वकीया और परकीया

दोनो मे ही दीख पडता है। परकीया मे अभिसार के समय लज्जा का कारण अन्य लोगो द्वारा देख लिये जाने की आशका है। इससे यह भयमूलक लज्जा है। स्वकीया मे यह सामाजिक अपराध नही माना जाता है। इससे इस लज्जा से नायिका का आकर्षण बढता है। स्वकीया या मुग्धादि नायिकाओ मे अनुभावो के द्वारा लज्जा से उत्पन्न सौन्दर्य एवं आकर्षण द्वारा शोभा बढाई गई है। इन्ही अनुभावमूलक चेष्टाओ मे 'निषेध' का सौन्दर्य नायक के मन के उल्लास एव आवेश को बढाकर नायिका के आकर्षण की अभिवृद्धि करने मे सहायक होता है।

निषेध-मूलक सौन्दर्य—लज्जा के प्रकरण मे यह स्पष्ट किया जा चुका है कि नायिकाओ मे शालीनता के कारण अनेक अनुभाव या चेष्टामूलक आकर्षक क्रियाएँ होती रहती है। इन क्रियाओ के माध्यम से उनके मानसिक आकर्षण का ज्ञान होता है। लज्जा के उदय मे अभिनव यौवन का आगमन महत्वपूर्ण है। इस वय की उपस्थिति एव इससे उत्पन्न मानसिक आकुलता से उनमे आकर्षण की वृद्धि हो जाती है। इसका सम्बन्ध यौन-भावना से बना रहता है। यही कारण है कि यौवन आगमन के पूर्व नायिका की इच्छाओ की वास्तविक अस्वीकृति और यौवन आ जाने पर निषेध मूलक स्वीकृति या कृत्रिम अस्वीकृति प्रकट होती है। इससे प्रिय के नेत्रो मे प्रेमिका का आकर्षण बहुत बढ जाता है।

रीतिकाल मे लज्जा से उद्भूत इस स्वीकृति मूलक निषेध का अच्छा अकन हो सका है। प्राय किसी अशालीन कार्य की स्वीकृति देने मे स्त्रियाँ अधिक लज्जा का अनुभव करती है। इसी से स्वीकृति देना उनके लिए बहुत कठिन कार्य हो जाता है परन्तु व्यावहारिक जीवन मे स्वीकृति की महत्ता होने से साकेतिक स्वीकृति या निषेध मूलक स्वीकृति की परम्परा चल पडी होगी। गोपनीय कार्यो की स्वीकृति सामाजिक मर्यादा का उल्लघन माना जाता है। इसी से हाँ मूलक ना की महत्ता बढ गई। इस अस्वीकृति से दो अभिप्रायो की सिद्धि होती है (१) नायक के मन मे नायिका के प्रति आकर्षण की वृद्धि (२) अस्वीकृति के बाद अभिलाषा को व्यक्त करने का उचित अवसर मिलता है, क्योकि इस निषेध मे वास्तविकता न रहकर कृत्रिमता और शालीनता जन्य अस्वीकार ही अधिक रहता है।

रीतिकालीन हाँ मूलक ना के सौन्दयाकन मे दो प्रकार की पद्धति अपनाई गई है (१) वचन-निषेध (२) क्रिया-निषेध। इन दोनो मे वचन-निषेध मे वाणी का प्रयोग किया जाता है। मुग्धा अथवा मध्या नायिकाओ का यह

निषेध उनकी वाणी से प्रकट होता है। ऐसे निषेध का वर्णन दधि वेचन प्रसग पर अथवा पारस्परिक छेड-छाड की क्रीडा एवं उल्लासमय वातावरण के बीच होता हैं। एक दो उदाहरण पर्याप्त होगे--

१ नैकु नेरे जाइ करि बातन लगाई करि,
कछु मन पाइ हरि वाकी गही बहियाँ।
सैननि चरचि गई अगनि थकित भई,
नैनन मे चाह करै, वैनन मे नहियाँ। मतिराम

२. आई जु चालै गोपाल घरै, ब्रजबाल बिसाल मृनाल सी बाँही।
त्यौ 'पद्माकर' सूरति मे रति छ्वै न सकै कित हू पर छाँही।
सोभित सभु मनो उर ऊपर, मौज मनोभव की मन माँही।
लाज बिराजि रही अखियाँनि मे, प्रान मे कान्ह जवान मे नाँही।
ब्रजभाषा साहित्य का नायिका भेद। पृ० २४२ छन्द १२८, १२६

इन दोनो ही उदाहरणो मे वचन विपेध केलि-प्रसग एव छेड छाड के अवसर पर वर्णित है।

सहज स्वभाव के रूप मे अभिलाषा मूलक निषेध द्वारा मुग्धा के मानसिक सौन्दर्य का चित्राकन शभु कवि ने किया है।

"देख्यौ चहै पिय को मुख पै अँखियाँ न करै जिय की अभिलाखी।
चाहति 'शम्भु' कहै मन मे, वतियाँन सो सो नहिं जाति है भाखी।
भेटिवे को फरकै भुज, पै कहि जीभते जाइ नही-नही भाखी।
काम सँकोच दुहून वहू बलि, आज दुराज-प्रजा करि राखी।"
ब्रजभाषा साहित्य का नायिका भेद। पृ० २४१

इस उदाहरण मे अन्य की प्रत्यक्ष सन्निधि के विना ही प्रिय की काल्पनिक मूर्ति के प्रति अपनी अभिलाषाएँ व्यक्त की गई है। वह प्रिय के स्पर्श से उत्पन्न सुख का अनुभव तो करना चाहती है, परन्तु उसकी जवान से 'नाही' शब्द का उच्चारण हो जाता है।

अभिलाषा मूलक वचन-निषेध के अतिरिक्त प्रभावमूलक वचन-निपेध का वर्णन किया गया है। इस वर्णन मे निषेधगत सौन्दर्य का प्रभाव बताया गया है।

१ लहि सूने घर कर गह्यौ, दिखा दिखी की ईठि।
गडी सु चित नाही करनि, करि ललचौही दीठि। विहारी

२ दै गल वाँही जु नाही करी, वह नाही गोपाल के भूलत नाही। देव

प्रथम उदाहरण मे वताया गया है कि 'नाही' चित्त मे गड जाती है और दूसरे उदाहरण मे 'नाही' की स्मृति सदैव वनी रहती है। इन दोनो मे

निषेध का प्रभावमूलक वर्णन किया गया है। मुग्धा और मध्या मे यह निषेध स्वाभाविक शालीनता के कारण उत्पन्न होता है।

शालीनताजन्य लज्जा की अभिव्यक्ति वचन निषेध के अतिरिक्त क्रिया-निषेध द्वारा भी हो सकी है। यह अनुभाव-मूलक निषेध है। इससे नायक के मन मे नायिका के प्रति ललक का भाव उत्पन्न होता है और उसकी भावनाएँ उद्दीप्त होती है। इस निषेध की महत्ता प्रेम प्रसगो पर अधिक वढ जाती हैं। यह निषेध कई रूपो मे व्यक्त हुआ हैं।

१ नेत्रो के सचालन द्वारा निषेध।

२. विभिन्न अगो के सचालन से निषेध।

३. क्रिया द्वारा निषेध।

नेत्र सचालन के माध्यम से व्यक्त निषेध का सौन्दर्य अपूर्व होता हैं। इसमे भौंहो की वकिम अवस्था द्वारा निषेध की अभिव्यक्ति होती है। विहारी ने ऐसे निषेध द्वारा एक आकर्षक चित्र स्थित किया है—

भौहनि त्रासति मुख नटति, आँखिन सो लपटाति।
ऐंचि छुड़ावत कर इची आगे आवति-जाति॥

इसमे भौंहो द्वारा त्रास दिखाने मे निषेध का यही भाव व्यक्त होता है। इस निषेध की अभिव्यक्ति 'सैन' द्वारा की गई है। नेत्र-सकेत से मुख का ईषद् विकास आकर्षण को वढाने मे सहायक होता है। इस निषेध मे गम्भीरता का भाव न रहकर मुसकान की तरलता और हृदय की प्रफुल्लता भी व्यक्त हो जाती है।

नेत्र से इतर विभिन्न अगो के संचालन द्वारा निषेध की भावना व्यक्त हुई है। प्राय इस निषेध मे हाथो का प्रयोग होता है।[1] इसमे नायिका द्वारा कृत्रिम अवहेलना का भाव व्यक्त होता है। नायिका अपने अगो को छिपा लेती है। प्रिय की दृष्टि के स्पर्श का निषेध कर अपनी अस्वीकृति व्यक्त करती है।[2] मुख से क्रोध दिखाकर, हाथो से प्रिय के मुख को हटाकर या अपना मुख दूसरी तरफ करके निषेध के इसी भाव को व्यक्त किया गया है।

इन अनुभाव मूलक चेष्टाओ से भिन्न अन्य क्रियाओ द्वारा भी निषेध का आकर्षक सौन्दर्य व्यक्त होता है। नायक द्वारा पानी माँगे जाने पर नायिका

---

1 अलक सवारन व्याज मे परस्यौ चहत कपोल।
मृदुल करनि डारति झटकि, रसमय कलह कलोल। ध्रुवदास

2 जो अग चाहत रसिक प्रिय इन नैननि सो छ्वाई।
सोठा सुन्दरि पहिले ही, राखत वसन दुराई। ध्रु० व० रस० पद ४०

उसके भावो को समझकर उसके पास नही जाती है और द्वार के पास ही जल रखकर चली आती है।[1] उसकी इस क्रिया मे निषेध का साकेतिक अर्थ प्रतीत होता है। इससे अभिलाषा की वृद्धि और आकर्षण की प्रबलता बढती है। इसी प्रकार कई अन्य कवियो ने भी प्रेम-प्रसग मे निषेध द्वारा चेष्टा-मूलक सौन्दर्य का अकन किया है —

चंचल चतुर छरकायल छबीली बाम,
अचल छुवै न दीनौ स्याम अभिराम कों।
पाटी पग धरि गई, चेटक सौ करि गई,
नटी लौ उछरि गई, छरि गई स्याम कों।

ब्र० सा० का भेद पृ० २४०/१२२ कालिदास

इन पक्तियो से स्पष्ट हो जाता है कि निषेध मूलक सौन्दर्य की अभिव्यक्ति मे कवियो ने अभिधा एव व्यञ्जना का प्रयोग किया है। बचन-निषेध मे अभिधा और अनुभाव अथवा नायिका की क्रियाओ द्वारा अभिव्यञ्जित निषेध मे व्यञ्जना का प्रयोग हुआ है। इस निषेध को मुग्धा या मध्या नायिकाओ की स्वाभाविक क्रिया कहते है। इस चेष्टा की अभिव्यक्ति मे नायिका की शालीनता व्यक्त होती है। प्राय यौवनागम पर शालीनता का यह भाव बडा प्रबल रहता है, जो क्रमश. काम भावना की वृद्धि के साथ कम होता चला जाता है। इस निषेध मे लज्जा, प्रेम और विश्वास का अपूर्व भाव बना रहता है। इसी से इन निषेधो से नायक के मन मे विकर्षण का भाव उत्पन्न न होकर आकर्षण का भाव ही उत्पन्न होता है। इस आकर्षण की स्पष्ट अभिव्यक्ति पारस्परिक हास्य-विनोद आदि मे होती है।

हास्य-विनोद—पारस्परिक प्रेम-भाव की पूर्णता मे नायक-नायिका का हास्य-विनोद दोनो के बीच हृदय की निष्कपटता और एकता की अभिव्यक्ति करता है। प्रेम-व्यापारो मे हास्य-विनोद से उसके घनत्व और आकर्षण मे वृद्धि होती है। हास के द्वारा वाणी की मधुरता एक विशिष्ट अर्थ को व्यजित करती है, जिसका सम्बन्ध रह केलि से होता है। हास्य-विनोद मानसिक आकर्षण का वाह्य प्रकाशन है, जो वचन-वक्रता अथवा वचन की

---

1 केलि की रैनि अघाने नही, दिन हू मे लला पुनि घात लगाई।
प्यास लगी कोऊ पानी दै जाइयो, भीतर बैठि के बात सुनाई।
जेठी पठाई गई दुलही हँसि, हेरि हरै 'मतिराम' पठाई।
कान्ह के बोल पै कान न दीनो, सो गेह की देहरी पै धरि आई।

ब्र० सा० का ना० भेद पृ० २४०

मधुरिमा से व्यक्त हो जाता है। इस परिहास का उद्देश्य प्रिय की अवहेलना नही, अपितु प्रेम की अभिव्यञ्जना ही होती है। इसी से प्रेम पूर्ण हास्य-विनोद या नोक-झोक कलह का कारण नही है, अपितु आकर्षण का साधन है।

रीतिकालीन हास्य-विनोद मे कवियो की मूल दृष्टि पारस्परिक आकर्षण के बढाने मे अधिक थी। वे नायक-नायिका की नोक-झोक एव व्यग्य-विनोद का चित्र निम्नाकित रूपो मे प्रस्तुत करते हैं —

१. छेड-छाड के रूप मे-क्रियामूलक।
२ कटाक्ष या व्यंग्य मूलक ।
३. प्रशसा मूलक।
४ उपहास मूलक।

इनमे छेड-छाड के रूप मे चित्रित नोक-झोक द्वारा दोनो के पारस्परिक प्रेम का ज्ञान होता है। शरीर एवं वचन दोनो की ही क्रियाशीलता दिखाई गई है। इसका वर्णन तीन अवसरो पर हुआ है (१) श्रीकृष्ण और गोपी की पारस्परिक नोक-झोक मे। (२) गोपी द्वारा श्रीकृष्ण की अचगरी का वर्णन सखी से करने मे। (३) दान प्रसग पर। इनमे पहले मे शारीरिक प्रेममूलक चेष्टा और दूसरे मे वचन की प्रगलभता व्यक्त हुई है। एक-एक उदाहरण पर्याप्त होगा :—

(१) वह साकरी कुञ्ज की खोरि अचानक राधिका माधव भेट भई।
मुसक्यानि भली अँचरा की अली, त्रिवली की वलीपर दीठि गई।
झहराइ झुकाइ रिसाइ 'ममारख' वाँसुरिया हँसि छीनि लई।
भृकुटी मटकाइ गुपाल के गाल मे आँगुरी ग्वालि गडाइ गई।

(२) मेरी गही उन चूनरी मोहन, मै हू गह्यो उनको तव फेटा।
मेरौ गह्यो उन हारि झपेटि के, मैं हू गही वन माल झपेटा।
आजुलौ 'वेनी प्रवीन' सही जे भई सखियानि मे घाल समेटा।
मोसों कह्यो अरी कौन की वेटी है, मैं हू कह्यो तू है कौन को वेटा।
री० का० सग्रह पृ २५०

इनमे प्रथम उदाहरण मे श्रीकृष्ण और रावा समभाव से छेड-छाड मे संलग्न हैं और दूसरे मे एक दूसरे के उत्तर प्रत्युत्तर का वर्णन सखी से किया गया है। दोनो मे ही सम्पूर्ण चित्र प्रस्तुत हो सका है। प्रेम पूर्ण विनोद का एक अच्छा पद देव ने लिखा है। सखियो के सग साँकरी गली मे जाती हुई राधा को जानकर श्रीकृष्ण आ जाते है और पुकार कर कहते हैं कि आप तो हमारा कोउ जान-पहचान की मालूम पड रही है। इसे सुन राधा ने मुँह फेर कर उत्तर दिया कि आप यहाँ से चले जायँ, आप हमे जानते है और मैं भी

आपको जानती हू ।" [1] इस प्रसग के सौन्दर्य को एक भुक्तभोगी ही जान सकता है ।

दान-प्रसग पर वचनो की प्रसन्नतापूर्ण परिहास एव प्रेम पूर्ण फटकार से आकर्षण की योजना की गई है । गोपी कहती है कि "तुम्हे ही नई तरुणाई मिली है जो दिन रात छके रहते हो । आप अपना दान लो और मुझे जाने दो । मै तुम्हारी बाते अच्छी प्रकार जानती हू ।" [2] इस कथन मे नायिका की प्रगल्भता से सौन्दर्य- चित्र मोहक हो जाता है । रसखान ने तो मतिराम के इस साकेतिक भाव को और स्पष्ट करने की चेष्टा की है । गोपी कहती है कि हे कान्ह ! यदि तुम दूध और माखन चाहते हो तो तुम जितना दूध पीना चाहो पीलो और जितना माखन चाहो, खालो, परन्तु मै तुम्हारे हृदय की बात जानती हू । तुम 'गोरस' के माध्यम से जिस रस को चाहते हो, वह तुम्हे रच मात्र भी प्राप्त न हो सकेगा ।

'छीर जो चाहत चीर गहे, ए जू लेहु न केतक छीर अचैहौ ।
चाखन के हित माखन माँगत, खाहु न माखन केतिक खैहौ ।
जानत है जिय की 'रसखानि' सु काहे को एतिक बात वढैहौ ।
गोरस के मिस जो रस चाहत, सो रस कान्ह जू नेक न पैहो ।[3]

वचन माधुर्य एव द्वयार्थक रूप मे प्रयुक्त 'गोरस' शब्द से अभिव्यञ्जनात्मक सौन्दर्य स्पष्ट होता है । प्रगल्भता पूर्ण फटकार द्वारा शृङ्गारिक चेष्टाओ

---

1 लागी प्रेम डोरि खोरि साँकरी ह्वै कढि आई,
नेह सो निहोरी जोरि आली मनभावती ।
उतते उताल 'देव' आये नन्द लाल,
इत सौहे भई वाल नव लाल सुख सानती ।
कान्ह कह्यो टेरिके कहाँ, ते आई को हौ तुम,
लागति हमारे जान कोई पहिचानती ।
प्यारी कह्यो फेरि मुख हरि जू चलेई जाहु,
हमैं तुम जानत, तुम्है हू हम जानती । देव

2 ऐसी करौ करतूति वलाय, त्यौ नीकी वडाई लहौ जग जाते ।
आई नई तरुनाई तिहारी ही, ऐसे छके चितवौ दिन रातै ।
लीजिये दान हौ दीजिये जान, तिहारी सवै हम जानति घातै ।
जानौ हमैं जनि वै वनिता जिनसौ तुम ऐसी करौ वलि वातै ।
मतिराम

3 रीति काव्य संग्रह से पृष्ठ ३३२/१९ रसखानि

का सौन्दर्य व्यक्त हो जाता है। श्रीकृष्ण स्वय भी छेड-छाड करने मे प्रगल्भ है। मून कवि ने लिखा है कि मुस्कराकर बोलने को तत्पर छबीली के कुचो के बीच मे ताक कर कृष्ण कॉकरी मार देते है और वह हॉ या ना कुछ भी न कहकर द्विविधा की स्थिति मे पडी रह जाती है।[1]

कटाक्ष या व्यग्य रूप मे छेड-छाड की प्रवृत्ति भी प्रेममूलक ही कही जायगी। यह प्रवृत्ति दो रूप मे लक्षित होती है (१) नायिका द्वारा नायक पर कटाक्ष करना। (२) सखी द्वारा नायिका से परिहास करना।

नायिका द्वारा नायक पर कटाक्ष प्राय रति चिह्नो के देखकर किया है। इस कटाक्ष मे नायिका की नायक के प्रति अवहेलना व्यक्त की गई है। इसका उद्देश्य उसका अपमान करना नही है अपितु इससे उसकी अभिलाषा वढती है और वह नायिका की ओर आकृष्ट होता है। इस प्रकार का वर्णन रीतिकाल मे अधिक हुआ है। 'वेनी-प्रवीन' का एक उदाहरण ही पर्याप्त होगा —

"आवै हँसी हमे देखत लालन, भाल मे दीन्ही महावर घोरी।
एतै वडे व्रजमडल मे न मिली कहू माँगेहुँ रचक रोरी।

रीति काव्य सग्रह पृष्ठ २४८

इस उदाहरण मे रति चिह्नो को देखकर श्रीकृष्ण की रसिकता पर करारा व्यग्य किया गया है। इसकी चोट सीधे हृदय मे जाकर प्रविष्ट हो जाती है और श्रीकृष्ण निरुत्तर हो जाते है।

सखी द्वारा इसी प्रकार के रस-प्रसग के सकेत से भावनाओ का सौन्दर्य व्यक्त किया गया है। गौने के दिन विछुवा पहनाते समय सखी परिहास के माध्यम से कटाक्ष करती है कि "यह बिछुआ प्रियतम के कानो के समक्ष सदा वजता रहे।" इसे सुनकर वनावटी क्रोव से नायिका अपना हाथ चलाना चाहती है, परन्तु हाथ उठ ही नही पाता है।[2]

---

1 मुरि मुसकाई के छबीली पिक-वैनी नेक,
करत उचार मुख वोलन को वाक री।
ताक री कुचन वीच काँकरी गोपाल मारी,
साँकरी गली, मे प्यारी हॉ करी न ना करी।

री का स पृ ३९७

2 कचन के विछुवा पहिरावत, प्यारी सखी परिहास वढायौ।
पीतम स्रौन समीप सदा वजै, यो कहि के पहिले पहिरायौ।

मतिराम–री का कवियो की प्रेम व्यञ्जना पृ १८९ से

प्रशसामूलक हास्य मे अगो की विशेपता को व्यक्त करते हुए छेडछाड से उत्पन्न विनोद की अभिव्यक्ति हुई है। इसमे एक ओर श्रीकृष्ण को छेडा जाता है और दूसरी ओर उनकी प्रशसा की जाती है। रघुनाथ कवि की गोपी कहती है कि "हे बडी आँखो वाले ग्वाल, तू खडा हो जा मै तुझसे कुछ कहना चाहती हू।"[1]

उपहास के द्वारा हास्य-विनोद के भाव व्यक्त किये गये है। यहाँ चेष्टा के द्वारा मानसिक भावनाओ का प्रकटीकरण है। यह उपहास श्रीकृष्ण के छैलापन और उनके रग का किया गया है। श्रीकृष्ण एक ओर तो छैला वनते हैं और दूसरी ओर कामरी ओढे हुए है। उनके इस विरोधी स्वरूप को देखकर गोपियाँ उपहास करती है कि इस वेश मे घूमते हुए तुम्हे लज्जा नही प्रतीत होती है "ऐसे ही डोलत छैल भये, तुम्हे लाज न आवत कामरि ओढे।"[2] एक अन्य गोपी श्रीकृष्ण के काले रग का उपहास करती हुई अपनी प्रेम मूलक भावना व्यक्त करती है कि हे कृष्ण तुम्हारे स्नान करने से ही कालिंदी काली हो गई है यदि इस कालिन्दी मे भूल से भी साडी धोलूँ तो काली हो जायगी। यदि यह सॉवरा रग मेरे सुन्दर अगो मे लग जायगा तो मेरे अगो की गोराई समाप्त हो जायगी।

> न्हातई न्हात तिहारई स्याम कलिन्दियौ स्याम भई वहुतै है।
> धोखेहु धोयहौ या मै कहू तो यहै रग सारिन मै सरसैहै।
> सॉवरे अग को रग कहू यह मेरे सुअगन मे लगि जैहै।
> छैल छबीले छुओगे जो मोहिं, तो गातन मेरे गोराई न रैहै।[3]

इन विचारो से स्पष्ट हो जाता है कि मानसिक आकर्षण की अभिव्यक्ति मे हास-परिहास पूर्ण आमोद एव छेडछाड द्वारा मन की दूरी हटकर निकटता बढ जाती है। कायिक चेष्टाओ से भिन्न इनके स्वतन्त्र अस्तित्व की कल्पना मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उचित नही कही जा सकती है, फिर भी सौन्दर्य की जनक चेष्टाओ को सुविधा के लिये कायिक और मानसिक चेष्टाओ मे बाँटकर स्पष्ट किया गया है। कारण यह है कि केवल शारीरिक आकर्पण ही सब कुछ नही

---

1 रीझी सरूप सौं भीजी सनेह यो बोली हरै रस आखर भारे।
ठाढ हो तोसो कहौगी कछू अरै ग्वाल बडी-वडी ऑखिन वारे।
री. का स० पृ० ३९९ रघुनाथ

2 रस-रत्नाकर पृ० २२९

3 रीति काव्य सग्रह पृ ४१०

है, मानसिक आकर्षण का भी महत्त्व निर्विवाद रूप से है। अब वाचिक चेष्टा का सकेत करके इस प्रसग को समाप्त किया जायगा।

वाचिक चेष्टा—मानसिक भावो की अभिव्यक्ति वाचिक चेष्टा द्वारा भी की गई है। वाचिक चेष्टा का अर्थ वचन द्वारा मानसिक भावनाओ की अभिव्यक्ति है। यह वचन चेष्टा द्वारा प्रकट होने वाली मन की क्रिया है। इसे दो रूपो मे देखा जा सकता है (१) वचन-विदग्धा नायिका मे (२) स्वर माधुर्य मे।

वचन-विदग्धा नायिका चतुरता से पर पुरुष के अनुराग विषयक कार्य को सम्पन्न करती हुई सकेत स्थल, समय आदि का ज्ञान करा देती है। वचन का यह वैदग्ध्य दो प्रकार से व्यक्त हुआ है। (१) अन्य सखी के माध्यम से (२) स्वय नायिका के नायक से निवेदन करने पर।

(१) अन्य सखी के माध्यम से व्यक्त वचनो मे सहेट की चर्चा की गई है। कृष्ण को आया जानकर नायिका अपनी सखी से ऊँचे स्वर मे कहती है कि मैं तारो की छाया मे कातिक नहाऊँगी, तू भी बशीवट पर मुझे मिल जाना।[1] इसी प्रकार घर के पिछवारे स्थित कृष्ण को जानकर दूसरी गोपी 'देवी के चौहरे' की पूजा करने की बात कहकर सकेत स्थल का ज्ञान करा देती है।[2] ऐसे प्रसगो पर साक्षात् सकेतित अर्थ से भिन्न एक प्रतीयमान अर्थ का अभिव्यञ्जनात्मक सौन्दर्य भी वर्तमान रहता है। कभी नायक की ओर से भी दूती द्वारा सकेत स्थल का ज्ञान करा दिया जाता है।[3]

(२) स्वय दूतिका का कार्य करती हुई कृष्ण को गोदोहन के बहाने से आमन्त्रित करने मे यही वचन-वैदग्ध्य दिखाई पडता है।

१. जब लौं घर को धनी आवै घरै, तब लौं इतनी करि दैबो करौ।
'पद्माकर' ये बछरा, अपने बछरान के सग चरैबो करौ।
अब औरन के घर सो हम ते तुम दूनी दुहावनी लैबी करौ।
नित साँझ सकारे हमारी हहा, हरि गैयाँ भले दुहि जैबो करौ।[4]

---

[1] व्रजभाषा साहित्य का नायिका भेद पृ० २७३

[2] सुन्दर-शृङ्गार पद ७१

[3] नखत से फूलि रहै, फूलन के पुज घन
कुंजन मे होति जहाँ दिन हू मे राति है।
ता बन की बाट कोऊ सग न सहेली साथ,
कैसे तू अकेली दधि बेचन को जाति है। रसराज २६७ मतिराम

[4] व्र० साहित्य का नायिका भेद पृ. २७६/२७४

२. कवि 'ग्वाल' चराय लै आवनी है अरु बाँधनी पौरि सुहावनी है।
मन भावनी देहौ दुहावनी मैं, यह गाय तुही पै दुहावनी है।[1]

वचन-वैदग्ध्य के साथ ही नायिका के स्वर का माधुर्य भी नायक को आकर्षित कर लेने का साधन है। उसके कण्ठ स्वर को सुनने मे नायक की उत्सुकता व्यक्त हो जाती है। उसकी वाणी की रसालता, स्निग्धता, प्रफुल्लता, अमृतमयता आदि गुणो से नायक का मन आकृष्ट हो जाता है। ऐसा उदाहरण रीतिकालीन काव्य मे कही भी देखा जा सकता है। दूसरी ओर नायक के वचन-माधुर्य का रस लेने के लिये नायिका भी अनेक उपाय करती दीख पडती है।[2] इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि वाचिक चेष्टा या स्वर माधुर्य आकर्षण को बढाने मे सहयोग देने वाली क्रियाओ के रूप मे ग्राह्य है। इसमे वचन-विदग्धा नायिका का सौन्दर्य अधिक होता है। भाव प्रकाशन की इस वाचिक क्रिया से मन का अनुराग व्यक्त हो जाता है और स्वर माधुर्य से मन खिचकर एक दूसरे पर केन्द्रित हो जाता है।

(ख) सामान्य चेष्टा—

चेष्टापरक सौन्दर्य विवेचन के आरम्भ मे सम्पूर्ण शृगार मूलक चेष्टाओ को विशेष चेष्टा और सामान्य चेष्टा मे विभाजित किया गया था। विशेष चेष्टा को तीन वर्गो—कायिक, मानसिक और वाचिक–मे विभाजित करके उनका विश्लेषण प्रस्तुत किया जा चुका है। यहाँ इन चेष्टाओ से भिन्न अन्य सामान्य चेष्टाओ का सक्षिप्त सकेत करके प्रबन्ध की शृङ्खला को बनाये रखने का प्रयास किया जायगा।

सामान्य चेष्टा के अन्तर्गत यौवनावस्था के अलकारो का ग्रहण हुआ है। इस अवस्था मे अनेक शारीरिक एवं मानसिक परिवर्तन होते है। इन परिवर्तनो से नायिका के व्यक्तित्व मे मोहकता आ जाती है। वह आकर्षक प्रतीत होने लगती है। यह परिवर्तन सभी नायिकाओ मे समान रूप से होता है। इन परिवर्तनो का ज्ञान उसकी अनेक चेष्टाओ से होता है। इन चेष्टाओ मे भी समानता रहती है। अपनी इस सामान्य स्थिति के कारण ही इन्हे सामान्य चेष्टा के अन्तर्गत माना गया है।

इन अलकारो की सख्या बीस मानी गई है। इनकी तीन कोटियाँ

---

1 ब्रज साहित्य का नायिका भेद पृ २७७/२७६

2 बतरस लालच लाल की, मुरली धरी लुकाय।
सौह करै, भौहनि हँसै, दैन कहै, नटि जाय। विहारी

अगज, अयत्नज और स्वभावज की गई है। अगंज मे हाव, भाव, हेला की गणना होती है। अयत्नज मे शोभा, कान्ति, दीप्ति आदि अलकारो की गणना होती है। ये शारीरिक गुण है जो अपने आप ही स्वाभाविक रूप मे नायिका मे उत्पन्न हो जाते हैं। ये कृति साध्य नही है। इनका विकास चेष्टा के रूप मे न होकर गुण के रूप मे होता है। इससे चेष्टापरक क्रिया के अन्तर्गत इनका समावेश नही हो सकता है। लीला, विलास, विच्छित्ति, बिब्बोक, किल किंचित्, विभ्रम ललित, विहृत, मोट्टायित, कुट्टमित आदि की गणना स्वभावज अलकारो के अन्तर्गत होती है। ये अलकार स्वभाव सिद्ध होते हुए भी कृति साध्य है। यौवनावस्था मे स्वभाव से ही इसकी उत्पत्ति होती है, फिर भी इनमे यत्न की महत्ता वर्तमान रहती है। ध्यान रखने की बात है कि अगज और स्वभावज अलकारो द्वारा व्यक्त विभिन्न चेष्टाओ मे शारीरिक व्यापार की प्रधानता बनी रहती है। शरीर का कोई न कोई अग इनका आधार बना रहता है।

अगज अलकार अपने नाम से ही शारीरिक महत्ता का प्रतिपादन करते है। यह कामज अलकार है। इनमे सभोग की इच्छा को प्रकाशित करने वाले भृकुटि नेत्र आदि के विलक्षण व्यापार को 'हाव' कहते है। यह स्वाभाविक चेष्टा नायिका की भाव-भगिमा द्वारा प्रकट होती हे। इससे उसका सौन्दर्य बढ जाता है। इन चेष्टाओ की महत्ता शृङ्गाररस मे ही रहती है, अन्य रसो मे नही। 'भाव' यौवनारम्भ पर निर्विकार चित्त मे उत्पन्न हुए प्रथम काम विकार को कहते है। इन दोनो मे हाव मे शारीरिक व्यापार और भाव मे हृदय की प्रधानता रहती हे। हाव की योजना रीतिकालीन साहित्य मे अधिक दीख पडती है। बिहारी, मतिराम और देव की हाव योजना आकर्षक है। यह स्त्रियो की एक स्वाभाविक शृङ्गार चेष्टा है। मानसिक व्यापार ही भ्रू-निक्षेपादि से प्रकट होकर हाव सज्ञा को धारण करते है। दोनो का एक-एक उदाहरण ले—

(१) "हौ अलि आज बडे तरके भरिके घट गोरस को पग धारो।
त्यो कब को धौ खर्‌यो री हुतौ, 'पद्‌माकर' मोहित मोहिनी वारो।
साँकरी खोरि मे काँकरी की करि चोट चलो फिर लौटि निहारो।
ता खिन तें इन आँखिन ते न कढ्यो वह माखन चाखन हारो।

(२) गहि हाथ सो हाथ सहेली के साथ मे आवति ही वृषभानु लली।
'मतिराम' सुवात ते आवत नेरे, निवारति भौंरनि की अवली।
लखि के मनमोहन सो सकुची, कह्यो चाहति आपुनि ओट लली।
चित चोर लियो दृग जोरि तिया, मुख मोरि कछू मुसक्यात चली।

प्रथम उदाहरण मे काँकरी मारकर पुन. लौटकर देखना मोहक 'हाव' की योजना करता है और दूसरे से वृषभानु लली के निर्विकार चित्त मे मनमोहन का प्रेम उत्पन्न होने से सकोच की अभिव्यक्ति हो गई है, जिससे शारीरिक व्यापार के रूप मे वह मुख मोड कर मुस्कराती हुई चली जाती है। इस चेष्टा से आकर्षण बढता है। इससे यह सौन्दर्य वर्द्धक चेष्टा हुई। 'हाव-मूलक' आगिक चेष्टा ही सुव्यक्त होकर 'हेला' कही जाती है।

'भाग के भीर अभीरनि मे गहि गोविन्दै लै गई भीतर गोरी।
भाई करी मन की 'पद्माकर' ऊपर डारि अबीर की झोरी।
छीनि पितम्बर कम्बर ते सु विदा दई मीडि कपोलन रोरी।
नैन नचाइ कही मुसकाइ लला फिर आइयो खेलन होरी।

उपर्युक्त उदाहरणो से स्पष्ट है कि अगज अलकारो की योजना मे रीतिकालीन कवियो ने सदर्भ विशेष या एक लघु कथा का समावेश कर दिया है। इसीसे इन नायिकाओ मे इन चेष्टाओ द्वारा अपनी अभिरुचि को प्रकट करने का वर्णन सभी कवियो ने किया है। ये नायिकाए -भ्रू, नेत्रादि का स्वच्छन्दता से प्रयोग करके नायक को रिझाने मे सदैव तत्परता दिखाती है। उनके इस विलासमय आकर्षण और सौन्दर्य को वढानेवाली चेष्टाओ मे युग की प्रवृत्तियाँ पूर्णत दीख पडती है। रीतिकालीन इन अलकारो मे अभिव्यञ्जनात्मक सौन्दर्य भी पूर्णत दीख पडता है, जिससे प्रेमिका के हृदय की सजीवता मूर्तिरूप धारण करके स्पष्ट हो जाती है। उसमे चित्र-विधायिनी शक्ति एव गुण से इसका महत्त्व बढ जाता है। प्राय ऐसे प्रसंगो पर वातावरण की सृष्टि द्वारा मादकता की सृष्टि की गई है।

स्वभावज अलकारो मे लीला विलास आदि केवल दश अलकारो की ही गणना होगी। साहित्यदर्पण कार द्वारा कहे गये शेष तपन मौग्ध्य आदि मे कायिक चेष्टाए सुव्यक्त न होकर मानसिक भावो की ही प्रधानता होती है। इससे उनकी गणना चेष्टा के अन्तर्गत नही होती है। स्वभावज अलकार स्वाभाविक होते हुए भी कृति के द्वारा साध्य है। इनमे लीला विलासादि मे शारीरिक व्यापार रहता है और मोट्टायित, कुट्टमित, विब्बोक, विहृत मानसिक भावो की अभिव्यक्ति करने वाले व्यापार है। रीतिकालीन काव्य मे इन अलकारो का स्वच्छन्दता के साथ प्रयोग किया गया है।

इन सभी अलकारो द्वारा शारीरिक क्रियाओ से सौन्दर्य की अभिवृद्धि होती है। इन अलकारो को व्यापार की दृष्टि से अनेक भागो मे बाँट सकते है—

(१) त्वरामूलक चेष्टा मे 'विभ्रम' का नाम लिया जा सकता है। प्रिय-आगमन प्रसग पर जल्दी के कारण वस्त्रभूषणादि को अन्य अगो मे धारण कर लिया जाता है। इसकी प्रतिक्रिया मे सखियो का उपहास अथवा विनोद का भाव छिपा रहता है। इसमे एक ओर प्रसन्नता और दूसरी ओर नायिका की जल्दीबाजी का मजाक रहता है। यथा.—

स्याम सो केलि करी सिगरी निसि सोवत प्रात उठी थहराय कै।
आपने चीर के धोखे बधू, पहिरो पट पीत भट्ट भहराय कै।
बाँधि लई कटि सो बनमाल न किंकिनी वाल लई ठहराय कै।
राधिका के रसरङ्ग की दीपति सग की हेरि हँसी हहराइ कै।

रस-रत्नाकर पृ० २३२

(२) प्रसाधनमूलक चेष्टा मे विच्छित्ति और ललित की गणना होगी। कान्ति को बढाने वाली अल्प रचना 'विच्छित्ति'[1] कही जाती है। स्वाभाविक शोभा होने पर ही आकर्षक एव अल्प-रचना सौन्दर्य की वृद्धि कर सकती है। सयोग के अवसर पर शृ गार द्वारा अ गो का विन्यास भ्रू विलास की मनोहरता और आँगिक क्रियाओ की सुकुमारता 'ललित'[2] कही जाती है। इन दोनो मे ही शारीरिक रचना द्वारा स्वाभाविक सौन्दर्य को बढाने की चेष्टा की जाती है। इससे सौन्दर्य साधक इन चेष्टाओ द्वारा सयोग का आकर्षण बढता है।

(३) अनुकरणमूलक चेष्टा मे 'लीला' का नाम लिया जा सकता है। इसमे रम्य-वेश, क्रिया और प्रेमपूर्ण वचनो द्वारा नायिका और नायक के

---

1 वारने सकल एक रोरी ही की आडपर,
हा-हा न पहरि आभरन और अग मे।.........
स्वेत सारी ही सो सब सो तो रग्यो स्याम रग,
स्वेत सारी ही मे स्याम रग लाल रग मे। मतिराम

2 सजि ब्रजचद पै चली यो मुखचद जाको,
चद चादनी को मुख मन्द सो करत जात।
कहै 'पदमाकर' त्यो सहज सुगध ही के,
पु ज वन कु जन मे कज से भरत जात।
धरत जहाँ ही जहाँ पग है पियारी तहाँ,
मजुल मजीठ ही के माठ से धरत जात।
बारन ते हीरा सेत सारी की किनारिन ते,
हारन ते मुक्ता हजारन भरत जात।

पारस्परिक अनुकरण की महत्ता होती है। वेप-परिवर्तन द्वारा नई कान्ति एव छवि को धारण करने की भी चेष्टा की जाती है। इससे एक दूसरे के भिन्न रूप का आस्वादन मिल जाता है।[1] लीला के द्वारा प्रेम-व्यापार मे सान्द्रता उत्पन्न हो जाती है और नायक-नायिका की निकटता बढती है। यह प्रेम-भाव की अभिवृद्धि करने वाली चेष्टा है।

(४) अभिव्यक्ति मूलक चेष्टा मे भावो का वाह्य प्रकाशन किया जाता है। इसमे कुट्टमित, विब्बोक और विहृत की गणना होगी। कुट्टमित मे निषेध का सौन्दर्य रहता है। यह रति को बढाने वाली एक कृत्रिम क्रिया है। प्रिय के द्वारा केश, स्तन, मुख, अधर आदि काम अ गो के-स्पर्श से हृदय मे प्रसन्न होते हुए भी कृत्रिम अनिच्छा को अ गो के सचालन और सीत्कार आदि के द्वारा व्यक्त किया जाता है। इसमे भावो की अभिव्यक्ति विपरीत व्यापार द्वारा की जाती है, परन्तु उसका उद्देश्य प्रतिकूलता उत्पन्न करना न होकर नायक की भावनाओं को अधिक उद्दीप्त करना होता है। 'विव्बोक' मे रूप और प्रेम गर्व के कारण अथवा पति की रसिकता के कारण उसका अनादर कर दिया जाता है। इसमे मानसिक लगाव बना होते हुए भी केवल वचनो द्वारा प्रिय का अनादर करके उसके दोष का कथन किया जाता है। यह भी 'कुट्टमित' की ही भाँति स्वीकृतिमूलक अस्वीकृति पूर्ण क्रिया है। कुट्टमित मे वचन निषेध या अनुभाव निषेध होता है और 'बिब्बोक' मे अवहेलना मूलक निषेध होता है। रीतिकाल मे 'विब्बोकगत' इस निषेध की चार प्रकार की प्रवृत्तियाँ वर्णित है—

---

1 रूप रच्यौ हरि राधिका को, उनहू हरि रूप रच्यौ छबि छावत।
गावत तान तरग दुहू-दुहू भाव बताय दुहून रिझावत।
त्यौ 'भुवनेश' दुहून के नैन, दुहून के आनन पै टक लावत।
छाइ रही छबि वैसेई री, सुनो जो हुती चद चकोर कहावत।

2 तेरी परतीति ना परति अब समुख हू,
छैल जू छबीले मेरी छूजे जिन छतियाँ।
रात सपने मे जनु बैठी मै सदन सूने,
गोपाल तुम मेरी गहि लीनी बहियाँ
कहै कवि 'तोष' तब जैसो-तैसो किन्ही अब,
कहत न बनि आवे तैसी हम पहियाँ।
तुम न विहारी नेकु मानो मन हारी अरु,
कहि, कहि हार रही नाही अरु नहियाँ। नवरस पृ० २४६

(क) विपरीत लक्षणा द्वारा अस्वीकृति से स्वीकृति का बोध करा देना। इसमे स्पष्ट रूप से किसी कार्य को करने के लिए नायिका मना करती है, परन्तु उसके इस निषेध से आमन्त्रण की ध्वनि निकलती रहती है। प्रयुक्त क्रिया शब्दो से निषेधात्मक अर्थ न निकलकर स्वीकारात्मक अथवा आमंत्रण देने वाला अर्थ ध्वनित होता है—

"ऐ अहीर वारे तो सो जोरि कर कोरि-कोरि,
विनय सुनावौं वलि वाँसुरी बजावै जनि।
बासुरी बजावै तो बजाउ मो बलाय जानै,
बडी-बडी आँखिन तै एक टक लावै जनि।
लावै तो लाव टक 'तोष' मोसो कहा काम,
परि नाम दौरि-दौरि मेरी पौरि आवै जनि।
आवै है तो आव हम आइवो कबूलो पर,
मेरे गोरे गात मे असित गात छ्वावै जनि।

इस छद मे निषेध द्वारा सभी कियाओ को सम्पन्न करने का निमत्रण देना स्पष्ट रूप से व्यजित है। इनका विपरीत लक्षणा से अर्थ लगकर यह भाव होगा कि हे अहीर के बालक इन सभी क्रियाओ को तू अवश्य सम्पन्न करले।

(ख) रूप अथवा प्रेमगर्विता द्वारा प्रिय का अनादर करके अपने प्रेम भाव की अभिव्यक्ति की जाती है।[1] प्राय रूप लुब्ध नायक नायिका के सौन्दर्य की प्रशसा करता है। नायिका समान रूप मे प्रयुक्त प्रसिद्धतम उपमानो की महत्ता को जानकर भी उस समता से अपनी अप्रसन्नता व्यक्त करती है। इस अप्रसन्नता मे अपने प्रेम अथवा रूप के गर्व की भावना रहती है। दिये गये उदाहरण मे राधा कहती है कि श्रीकृष्ण नित्य ही मेरे मुख को चन्द्रमा के समान कहते है तो फिर मेरा मुख देखने की 'क्या आवश्यकता है, वे तो चन्द्रमा ही देखा करें।" इन पक्तियो से स्पष्ट है कि इस अभिव्यक्ति मे नायिका का असीम विश्वास वर्तमान है। उसी के बल पर वह गर्व से युक्त इन वचनो के बोलने का साहस सचित कर पाती है।

(३) प्रिय के उपहास द्वारा उनका अनादर करने की चेष्टा मे भी 'विव्वोक' की अभिव्यक्ति होती है। यह प्रेम व्यजक अभिव्यक्ति कही जा सकती

---

1 मेरो मुख चन्द सो बतावै ब्रजचद रोज,
कहौ ब्रजचद जू सो चन्द देखिवो करै। रस रत्नाकर २३०

है। इससे विनोद के साथ ही मन के प्रेम-भाव की सान्द्रता एवं गहन अनुराग का ज्ञान हो जाता है।

ऐसे ही डोलति छैल भये, तुम्हे लाज न आवति कामरि ओढे।

रस-रत्नाकर पृ० २२६

इस प्रेमपूर्ण मीठी झिडकी मे अनुराग-लिप्त हृदय बरबस स्पष्ट हो जाता है।

(४) प्रेम गर्विता का आक्रोश पूर्ण अनुराग भी इसी भाव की अभिव्यक्ति करता है। सोती हुई नायिका का शृङ्गार नायक करता है। इसी बीच मे वह जाग जाती है और भौहो की भगिमा तथा अनबोले बचन से अपने रूप का गुमान व्यक्त कर देती है—

"जागि परी 'मतिराम' सरूप गुमान जनावति भौह के भंगनि।
लाल सो बोलति नाहिन बाल, सु पोछति आँखि अगोछति अगनि।

इस उदाहरण से स्पष्ट है कि नायक के प्रसाधन की स्पष्ट स्वीकृति न देकर अपने प्रेम गर्व के कारण अनादर द्वारा अस्पष्ट स्वीकृति देती है।

'विहृत' मे शालीनता का भाव वर्तमान रहता है। इस शालीनता से 'लज्जा' की उत्पत्ति होती है। लज्जा के कारण अभिलाषा का अभिव्यक्त न हो सकना ही 'विहृत' कहा जाता है। यह एक मानसिक भाव है जो चिन्ता के रूप मे अभिव्यक्त होता है। प्राय मुग्धा नवोढा नायिकाएँ प्रिय के समक्ष अपनी अभिलाषा को लज्जा के कारण व्यक्त नही कर पाती हैं। उनके मन की बातें मन मे ही रह जाती है, प्रिय के जाने के बाद अनभिव्यक्त अभिलाषा ही चिन्ता मे बदल जाती है। वचन और नेत्रो का असहयोग ही इसका मुख्य कारण माना जाता है। यथा—

बोलि हारे कोकिल बुलाय हारे केकी गन,
सिखै हारी सखी सब जुगुति नई-नई।
'द्विजदेव' की सौ लाज बैरिन कुसग इन,
अगन ही आपने अनीति इतनी ठई।
हाय इन कुञ्जनि मे पलटि पधारे स्याम,
देखन न पाई वह मूरति सुधा मई।
आवन समैं में दुखदायिनी भई री लाज,
चलन समैं मे चल पगेन दगा दई।

इसके अन्तिम पक्ति मे लज्जा और चंचल नेत्रो के असहयोग की भावना को स्पष्ट किया गया है । इसी असहयोग के कारण नायिका ने अपनी चिन्ता व्यक्त की है ।

(५) वैशिष्ट्यमूलक चेष्टा मे विलास, किलकिञ्चित और मोट्टायित आते है । इन तीनो चेष्टाओ मे प्रिय सम्बन्ध से एक विशेषता उत्पन्न हो जाती है यह मानसिक भावो की अभिव्यक्ति मे सहायक होती है । प्रिय के दर्शन से अथवा सयोग से स्थान, आसन, मुख नेत्रादि की चेष्टाओ मे तात्कालिक उत्पन्न वैशिष्ट्य को विलास कहते है । यह वैशिष्ट्य अवस्थागत,[1] औत्सुक्यमूलक[2] और प्रेम व्यजक[3] हो सकता है । अवस्थागत वैशिष्ट्य मे प्रिय दर्शन से उत्पन्न अतृप्ति और दर्शन की अभिलाषा बनी रहती है । किसी बहाने से प्रिय दर्शन का अधिक से अधिक लाभ ले लेने की चेष्टा की जाती है । प्रेम व्यंजक चेष्टाओ मे पारस्परिक प्रेम चेष्टाओ का वैशिष्ट्य रहता है । इन सभी विशेषताओ से युक्त चेष्टा को 'विलास' कहा गया है ।

'किलकिञ्चित' मे भावो की शवलता का वैशिष्ट्य होता है । प्रेमाधिक्य के कारण विपरीत भावो की स्थिति भी बनी रहती है । भय, प्रीति, परिहास आदि अनेक भाव व्यक्त हो जाते है । अत प्रिय समागम से उत्पन्न प्रसन्नता के कारण गर्व, अभिलाष, कृत्रिम रुदन, मुस्कराहट, भृकुटि, भय, त्रास क्रोध आदि की मिश्रित क्रिया को 'किलकिञ्चित' कहते हैं । इन क्रियाओ द्वारा प्रेम के आधिक्य की व्यञ्जना होती है । छेडछाड मूलक, या परिहास मूलक क्रियाओ द्वारा भी प्रिय की ओर से किसी प्रकार के अनिष्ट की आशका नही रहती है । इसी से नायिका की प्रगल्भ चेष्टाएँ भी वर्णित होती है । ऐसी

---

[1] आइ है खेलन फाग इहाँ, वृषभानु पुरा ते सखी सग लीने ।
त्यो 'पद्माकर' गावती गीत, रिझावति भाव बताय नवीने ।
कचन की पिचकी कर मे लिये, केसर के रग से अग भीने ।
छोटी सी छाती छुटी अलकै, अति वैस की छोटी बडी परवीने ।

[2] बँसुरी सुनि देखन दौरि चली, जमुना जल के मिस वेगि तवै ।
कवि देव सखी के सकोचन सो, करि ऊठ सु औसर को वितवै ।
वृषभानु कुमारि मुरारि की ओर, विलोचनि कोरनि सो चितवै ।
चलिवे को घरै न करै मन नैकु, घरै फिर-फेरि भरै-रितवै ।

[3] हँसि-हँस करै बातै रगीले दोऊ मदमाते ।
गौर-स्याम अभिराम अग-अग हिय उमग बाढ़ी, अतिसरस पास ललचाते ।

चेष्टाओ मे प्रिय को देखकर मुसकराना, भृकुटि मटकाना, गाल मे अँगुली गड़ा देना आदि क्रियाओ का वर्णन किया गया है।[1]

'मोट्टायित' मे भावो के गोपन के लिये चेष्टा की जाती है। प्राय: देखा जाता है कि प्रिय सम्बन्धी अपनी आसक्ति के व्यक्त हो जाने पर स्त्रियाँ उसे छिपाना चाहती है। यह भावना दो रूपों मे प्रकट होती है (१) अन्य मनस्कता दिखाकर (२) किसी माध्यम से भावो को छिपाकर।

प्रियतम से सम्बन्वित चर्चा के विभिन्न अवसरों पर उसे सुनने में दत्त चित्त होती हुई भी ऊपर से सुनने मे अरुचि या अन्यमनस्कता दिखाई जाती है। यही अन्यमनस्कता उसकी इस चेष्टा को आकर्षक बना देती है।

अन्य माध्यम से अपने भावो को छिपाने की चेष्टा की जाती है। श्याम को देखकर शरीर में कम्प का भाव उत्पन्न हो जाता है, परन्तु शीत का नाम लेकर नायिका सिर पकड़ कर बैठ जाती है—

श्याम विलोकत काम ते, भयो कम्प तन आय।
शीत नाम लै लाज ते, बैठि गई सिर नाय।

गोपन की यह प्रवृत्ति सखियो के समक्ष और स्वय प्रिय से भी छिपाने मे दीख पडती है। सखियो से छिपाने की चेष्टा का वर्णन बिहारी ने गमिष्यत् पतिका के प्रसग पर किया है। ललन का चलना सुनकर नायिका की पलको मे आँसू झलक आते है, परन्तु वह जमुहाई लेकर सखियो से आँसुवों को लक्षित होने से बचा लेती है।[2]

प्रिय से अपनी भावनाओ को छिपाने मे भी यही प्रयास नायक-नायिका दोनो द्वारा किया जाता है। दोनो एक दूसरे के रूप को सुनकर मानो सग ही रहने लगे हो, वे दोनो अग मे उत्साह बढाकर ध्यान मे ही एक दूसरे को देखने

---

1 वह साँकरी कुञ्ज की खोरि अचानक, राधिका माधव भेट भई।
मुसक्यानि भली अँचरा की अली, त्रिवली की बली पर दीठि गई।
झहराइ झुकाइ रिसाइ 'ममारख' बाँसुरिया हँसि छीनि लई।
भृकुटी मटकाइ गुपाल के गाल मे आगुरी ग्वालि गडाइ गई।

2 ललन-चलन सुनि पलन मे असुवाँ झलक्यौ आइ।
भई लखाई न सखिन हूँ, झूठे ही जमुहाइ। बिहारी

लग जाते है,[1] परन्तु इसका ज्ञान किसी को भी नही हो पाता है। यह भी एक विशिष्ट क्रिया है। इन्ही क्रियाओ के माध्यम से सौन्दर्य की अभिवृद्धि की जाती है।

इस विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि सयोग के अवसर पर विभिन्न आलकारिक चेष्टाओ द्वारा नायिका को आकर्षक बनाने की चेष्टा की जाती है। शारीरिक सौन्दर्य की अतिशय रमणीयता और चेष्टामूलक अनुभावो की सफलता से ही प्रिय के सदर्भ मे नायिका का यौवन अनुकूल भावो को उद्बुद्ध करने मे सहायक सिद्ध होता था। इसी से रीतिकालीन कवियो ने नायिका के गुणमूलक एव चेष्टापरक विविध हावो द्वारा उसकी नैसर्गिक शोभा को और अधिक मादक बनाकर उसके सौन्दर्य के माध्यम से नायक को आकर्षित करने मे अपने अनुभव-गत रसिकता का मूर्त रूप प्रस्तुत कर दिया है। इन आत्मगत तत्त्वो के साथ बाह्य तत्त्वो द्वारा भी रूप सौन्दर्य की अभिवृद्धि की जाती है। ऐसे तत्त्वो मे प्रसाधन गत सौन्दर्य और तटस्थ सौन्दर्य का नाम लिया गया है।

प्रसाधनगत सौन्दर्य—

शारीरिक एव मानसिक सौन्दर्य के उत्कर्ष के लिये दो प्रकार के साधनो का सकेत किया जा चुका है। इनमे सौन्दर्य साधक कुछ उपकरण आलम्बन के शरीर से सम्बन्धित होते है और अन्य शरीर से बाहर अपना स्वतन्त्र अस्तित्त्व रखते हैं। इस दृष्टि से इन उपकरणो को आत्मगत और बाह्य उपकरण कहते है। आत्मगत उपकरण आलम्बन के शरीर से सम्बन्धित होने से स्वाभाविक या निसर्गगत उपकरण है। इनमे गुण और चेष्टा का वर्णन अभी तक किया जा चुका है। गुण यौवनावस्था मे स्वत ही स्फुरित हो जाते है। इन गुणो मे रूप, सौन्दर्य, शोभा, छवि, नवीनता आदि तथा यौवनावस्था के स्वभावज अलकारो की गणना होती है। चेष्टा मानसिक भावो को प्रेषणीय बनाने के लिये कायिक क्रियाएँ है। इनसे व्यक्तित्व का आकर्षण बढता है और नायिका की इन क्रियाओ से नायक के मन मे प्रेम एव रतिभाव की उद्दीप्ति होती है। इन चेष्टाओ को 'कामज' चेष्टाओ का नाम देना असगत नही कहा जा सकता है। ये आत्मगत चेष्टा होने से स्वाभाविक या नैसर्गिक है।

आत्मगत चेष्टाओ से इतर आलम्बन मे स्थित न रहने वाले सौन्दर्य

---

[1] रूप दुहूँ को दुहून सुन्यौ सु रहै तब ते मनो सग सदा ही।
ध्यान मे दोऊ दुहून लखै, हरषै अग-अग उछाही। पद्माकर

साधक उपकरणो को बाह्य साधन माना गया है। इन साधनो द्वारा प्राप्त सौन्दर्य अर्जित सौन्दर्य है। बाह्य होने के कारण इन उपकरणो को सौन्दर्योत्कर्ष का कृत्रिम साधक मानते है। ऐसा होने पर भी सौन्दर्य को बढाने मे इनकी महत्ता निर्विवाद है। इन उपकरणो मे प्रसाधनगत उपकरण एव तटस्थ साधनो की चर्चा होगी।

प्रसाधनगत उपकरणो के अन्तर्गत षोडश शृंगार का वर्णन होता है। यह वर्णन अनेक कवियो ने किया है। सभी ने सोलह शृङ्गार प्रसाधनो को बताया है, परन्तु उनके नामो मे कही-कही अन्तर दीख पडता है। आचार्य वल्लभदेव ने मज्जन, चीर, हार, तिलक, अञ्जन, कुण्डल, नासा मौक्तिक, केश, कञ्चुक, सुगन्धि, ककरण, चरणराग, मेखला, ताम्बूल, दर्पण आदि को षोडश शृंगार कहा है।[1] उज्ज्वल नीलमणिकार के अनुसार स्नान, केशरचना, अगराग, कुसुम, हाथो मे कमल, ताम्बूल, बिन्दु, चिबुक, अञ्जन आदि षोडश शृङ्गार है।[2] रामचन्द्र वर्मा ने उपटन, मजन, मिस्सी, स्नान, सुबसन, केश-विन्यास, माँग-भरना, अजन, महावर, बिन्दी, तिल, मेहदी, गन्ध द्रव्य, आभूषण, फूलमाला और पान रचना को षोडश शृंगार कहा है।[3] रीतिकालीन कवियो मे केशवदास[4] सरदार कवि[5] बलभद्र[6] आदि ने षोडश शृङ्गार का वर्णन किया है। कबीर[7] जायसी[8], तुलसी[9] चन्द्र बरदाई[10] और ढोला मारू रा दूहा[11] मे षोडश शृंगार

---

1 आद्यौ मञ्जन चीर हार तिलक नेत्राञ्जन कुण्डल,
नासामौक्तिक केशपाशरचनासत्कञ्चुक नूपुरौ।
सौगन्ध्य करकङ्करण चरणयोरागोरणन्मेखला।
ताम्बूल करदर्पन चतुरता शृङ्गारका षोडशा। वल्लभदेव

2 उज्ज्वल नील मणि—पृ० ७७ निर्णय सागर प्रेस।

3 प्रामाणिक हिन्दी कोशा सभा १९८० वि० पृ० ४७।

4 केशव ग्रन्थावली—भाग १ रसिक प्रिया छद ४३ स० विश्वनाथ प्रसाद

5 रसिक प्रिया टीका पृ० ५१

6 बलभद्र पृ० २६९ छद ६५ पूना विश्वविद्यालय हस्तलिखित प्रति

7 कबीर ग्रन्थावली पृ० ७४ ना० प्र० सभा १९२८।

8 जायसी ग्रन्थावली पृ० १३१ चौथा सस्करण ना० प्र० सभा।

9 रामचरित मानस पृ० १३६ स० १९८० वि० सभा

10 काशी से प्रकाशित पृथ्वीराजरासो पृ० ६६—६८।

11 ढोला मारू रा दूहा छद ३९४

की चर्चा है। प्रसिद्ध सगीतज्ञ तानसेन ने भी इन शृङ्गारो की चर्चा की है।[1]

इन शृङ्गारो के नाम मे कही-कही अन्तर है, परन्तु इसकी सख्या के सम्बन्ध मे किसी प्रकार का कोई मतभेद नही है। सभी लोगो ने शृङ्गार प्रसाधनो की सख्या सोलह मानी है। इन प्रसाघनो के प्रयोग एव उद्देश्य मे भी समान भाव दीख पडता है। सभी विचारको ने इसके सौन्दर्य साधक गुण का अनुमोदन किया है। इनके धारण करने के अनेक उद्देश्य बताये जा सकते है। शृङ्गार मूलक ये प्रसाधन रस की दृष्टि से उद्दीपक और रूप के उत्कर्षक है। नायिका भेद की दृष्टि से इन्ही प्रसाधनो से नायिका की विशेष स्थिति और भेद का ज्ञापन होता है। वस्त्रादि प्रसाधनो से शरीर के विभिन्न अगो की रक्षा, उपगूहन, यौन अगो का आकर्षक प्रदर्शन और नायक को आकृष्ट करने की चेष्टा की जाती है। वेश रचना द्वारा शालीनता की रक्षा और लौकिक मर्यादा का पालन किया जाता है। इन उपकरणो से सहज एव नैसर्गिक सौन्दर्य की वृद्धि होती है,आलम्बन की मानसिक स्थिति का प्रकाशन होता है, नायक का आकर्षण एव उसके प्रेम की उद्दीप्ति होती है, अलकरण प्रवृत्ति का विकास होता है और प्रेम के प्रकाशन मे इनका योग रहता है। मूलत इन प्रसाधनो से प्रमुख दो उद्देश्यो की सिद्धि होती है (१) शारीरिक सौन्दर्य की अभिवृद्धि करना (२) विशेष अभिप्राय एव भावो की अभिव्यक्ति करना। इन्ही दोनो उद्देश्यो का सकेत यहाँ होगा।

१. प्रसाधनो का अभिप्रायमूलक प्रयोग —

षोडश शृङ्गार के अन्तर्गत वस्त्र, आभूषण और अन्य लगाये जाने वाले उपकरणो का सकेत किया जा चुका है। इन उपकरणो का सामान्य प्रयोग शरीर को सजाने अथवा आकर्षक बनाने के लिये होता है, परन्तु कभी-कभी इनसे एक विशेष अभिप्राय की सिद्धि होती है। ऐसे स्थलो पर वस्त्राभूषण या अन्य प्रसाधक उपकरण नायक अथवा नायिका की विशेष मन स्थिति या अवस्था को व्यक्त करते है। वस्त्रो की विभिन्न स्थितियाँ अन्तप्रर्वृत्ति को व्यक्त करती हैं। उदाहरणार्थ नीवी बद का खुलना अथवा उसका कसकर बँधा होना, मेखला का शिथिल होना या विगलन, कचुकी के बन्द टूटने आदि मे नायिका की परिवर्तित होती हुई धारणा पुष्ट हो जाती है। इसी प्रकार प्रसाधक उपकरणो के अस्थान अथवा विपरीत स्थान पर लगे होने से भी नायक के चरित्र और नायिका की प्रतिक्रिया सम्भावित की जा सकती है। नायक के मस्तक पर महावर, आँखो मे पीक, अधरो मे अञ्जन और अगो मे अन्य स्त्री के आभूषणो या वेणी के दाग उसके बहुनायकत्व की सूचना देते है। इस दृष्टि से

---

[1] अकबरी दरबार के हिन्दी कवि पृ० १७९ सरयूप्रसाद अग्रवाल

विचार करने पर आभूषणो व अन्य प्रसाधक उपकरणो के दो अभिप्राय हो सकते है —

(१) सौन्दर्य-वर्द्धक उपकरण के रूप मे ।

(२) भाव या स्थिति के बोधक उपकरण के रूप मे ।

इन दोनो अभिप्रायो की अभिव्यक्ति मध्यकालीन साहित्य मे हुई है। शृङ्गार का सौन्दर्योत्कर्षक रूप सर्वविदित है, परन्तु यही शृङ्गार कोप-विधायक रूप से भी प्रस्तुत हुआ है। कही पर उल्लास को सूचित करता है और कही विपरीत मानसिक भावो की अभिव्यक्ति हो जाती है। इससे शृङ्गार द्वारा मानसिक भावो की व्यञ्जना होती है। इसी रूप मे यहाँ पर शृङ्गार का विचार होगा।

शृङ्गार एवं प्रसाधनो की भाव-बोधकता —शृङ्गार एव अन्य प्रसाधनो द्वारा दो प्रकार की भाव-स्थितियो का चित्रण हुआ है।

(१) उल्लासमूलक स्थिति ।

(२) दु ख मूलक मानसिक स्थिति ।

प्रिय के मिलन की अभिलाषा अथवा उसकी सम्भावना मात्र से हृदय मे जो प्रसन्नता होती है, उसका ज्ञान वस्त्राभूषणो से हो जाता है। किसी विशेष परिस्थिति मे आभूषण आनन्द को उत्पन्न करने वाले होते है। ऐसा प्राय अभिसारिका अथवा आगत्-पतिका नायिका के प्रसग पर देखा जा सकता है। स्वकीया नायिका की सज्जा से प्रिया-प्रियतम के सम्बन्धो का ज्ञान होता है। मानवती नायिका का प्रसाधन अभिप्राय-विशेष की अभिव्यक्ति करता है। इससे स्वीकृति अथवा निषेध का आभास मिल जाता है। इस प्रकार का ज्ञान 'काव्य-अभिप्राय' के नाम से बताया जा सकता है। इसका मध्यकाल मे निम्न-लिखित रूपो मे प्रयोग हुआ है।

(१) रति अथवा प्रेम के प्रसग पर वस्त्रो की स्थिति का वर्णन है। अगिया या कचुकी नायिका की रतिमूलक भावनाओ की वाहिका होती है। प्रिय के मिलन की सम्भावना से अँगिया के बन्द का टूटना या उसमे कसाव आ जाना मानसिक उल्लास का द्योतक है।[1] मिलन की अवस्था मे मानसिक

---

1 (क) कसि आई कचुकी उकसि आयो दोऊ उर ।
नवरस तरंग—बेनी—१५/८८

(ग) भावतो आवत ही सुनिकै, उठि ऐसी गई हद छागता जो गुनी ।
कचुकी हूँ मे नही मटनी बटनी कुच की अब नो भई दो गुनी ।
भिखारीदास १, १२४/१६३

उल्लास के कारण स्तनो मे उभार का आ जाना स्वाभाविक हो सकता है, परन्तु इसी बात को बढाकर सचमुच मे अँगिया को फटता हुआ वर्णन कर देना[1] केवल अतिशयोक्ति मात्र ही हो सकती है, क्योंकि लोक–व्यवहार मे ऐसा नही देखा जाता है।

इन्ही वस्त्रो के द्वारा मानसिक उल्लास का वर्णन दूसरे ढग से भी किया गया है। प्रिय के मिलन पर गाठ का शिथिल हो जाना नायिका की स्वीकृति का सूचक है। स्वकीया-नायिका या मुग्धा की विभिन्न क्रियाओ से इसका ज्ञान होता है। नीवी-बद का शिथिल होना, उसकी गाँठ खुलना, बढते हुए यौवन और रति इच्छा का प्रकाशन माना जा सकता है —

१ गति भारी भई, बिधि कीवी कहा, कसि बाँधत हू कटि नीबी ढहै।

भिखारीदास

२ घरी-घरी यह घाघरि परति ढीलियै जाति।

पद्माकर ग्रन्थावली ८५।३१

३ प्रिय भेटिबे को उमगी छतियाँ, सु छिपावती हेरि हियौ हँसिकै।
अँगिया की तनी खुलि जाति घनी, सुवनी फिरी बाँधति है कसिकै।

सुजान० ३५–२१ देव

४ ललकि गहति लखि लाल को, लली कचुकी बन्द।
मिस ही मिस उठि-उठि हँसति अली चली सानन्द।

भिखारीदास १,६४।४५

उपर्युक्त चौथे उदाहरण मे 'लाल' को देखकर कचुकी के बन्द का छूना रति इच्छा का प्रकाशन है। इसी प्रकार नीवी का स्पर्श, उसका उकसाना या खीचना आदि रागदीप्त स्थिति का सूचक है।[2] कभी-कभी इनकी विपरीत क्रियाओ द्वारा असहमति की सूचना मिल जाती है। जैसे नीवी की शिथिलता

---

[1] झारि डार्‌यौ पुलक प्रसेद हुँ निवारि डार्‌यौ,
रोके रसना हू त्यो भरी न कछू हाँगी री।
एतै पै रह्यौ न भान मोहन लट्ट पै भट्ट,
टूक-टूक ह्वै के जो छट्टक भई आँगी री।

पद्माकर ग्र० १४७/२७६

[2] (क) कसिवै मिस नीविन के छिन तो, अग-अगन दास दिखाइ रही।

भिखारीदास

(ख) जी बँधि ही बँधि जात है,
ज्यो-ज्यो सुनीवी तनीन की बाँधति छोरति।

से रति इच्छा का प्रकाशन होता है, उसी प्रकार उसका कसकर बँधा होना नायिका के क्रोध का सूचक है। ऐसी स्थिति मे या तो उसके मन मे मान की प्रवृति रहती है या असहमति की भावना कार्य करती है।[1] हार के धारण करने मे गाढालिगन के बाधक होने से इसे भी असहमति का सूचक ही माना जाता है और उसके न पहनने से आलिगन की कामना व्यक्त होती है।[2] इस प्रकार यह स्पष्ट है कि वस्त्राभूषणो द्वारा मन की उल्लासमय स्थिति का ज्ञान होता है।

इस उल्लास के कारण आगिक परिवर्तनो का वर्णन रीतिकाल मे हुआ है। अनुकूल एव प्रतिकूल स्थितियो मे शरीर मे कसाव आ जाने तथा कृशता का वर्णन हुआ है। प्रिय मिलन की अनुकूल स्थिति मे आगिक परिवर्तन भोग सूचक होते है और प्रतिकूल परिस्थिति मे अग की कृशता प्रधान हो जाती है। अनुकूल स्थिति मे आनन्द का अनुभव होता है, जो कई रूपो मे प्रकट हो जाता है। इसमे उमग से शरीर मे पुष्टता आ जाने का वर्णन है फलस्वरूप बलय आदि टूट जाते है।[3] अगो मे थिरकन उत्पन्न हो जाती है। यह थिरकन आनन्द को व्यक्त करती है। अग मे उमग आ जाती है, कचुकी कसने लग जाती है, दोनो कुच उकम्प आते है।[4] यह सभी वर्णन आनन्दमूलक है। कही-कही दु ख मूलक भावना भी व्यक्त हो जाती है।

वस्त्राभरणो द्वारा दु ख की व्यञ्जना प्रोपित-पतिका नायिका के प्रसग पर होती है। ऐसे स्थलो पर ककण, बाजूबन्द आदि की शिथिलता विरह-जन्य कृशता का सूचक हो जाती है। यथाथ जगत् मे इसकी वास्तविकता न रहते हुए भी काव्यात्मक जगत् मे इसका प्रतीकात्मक महत्त्व विरह की अभिव्यञ्जना के लिए होता है। इसमे विरह जन्य दौर्बल्य की उत्कृष्ट भावना व्यक्त हो जाती है। बहुधा प्रोषित पतिका नायिका के प्रसंग मे आभरणो के

---

1 ऐसे सयान सुभायन ही सौ, मिली मनभावते सो मन भोरे।
मान गो जानि सुजान तबै, अगिया की तनी न छुटी, जब छोरे।
मतिराम—रसराज ६६/१२७

2 और सिंगार सजै तो सजौ इक हार हहा हियरे मति गेरो।
पद्माकर ग्रन्थावली—१२८/२२२

3 सरकी सारी सीसते, सुनतहि आगम नाह।
तरकी बलया कचुकी दर की फरकी बाँह। रामसहाय सतसई २५२

4 (क) भावते को सुनि आगम आनन्द अगन-अगन मे उमह्यो है। रसराज

(ख) कसि आई कचुकी उकसि आयो दोऊ कुच,
गसि आई वलया सो फँसि आयो भुजवन्ध। नवरस-वेनी १५/८८

शिथिल हो जाने का वर्णन है ।[1] केशवदास ने राम की कृशता का वर्णन मुद्रिका के माध्यम से उत्तम व्यग्य प्रणाली मे किया है ।[2]

विचारो की यह प्रतिकूलता कोप-व्यञ्जक रूप मे वर्णित है । प्राय भोग चिह्नो को देखकर नायिका के मन मे विपरीत विकर्षक भावनाएँ उत्पन्न होती है । ऐसे स्थलो पर प्रसाधन सौन्दर्य-वर्द्धक न होकर नायिका के क्रोध की व्यञ्जना कराने मे समर्थ हो जाते है । प्रसाधक उपकरणो का इस स्थिति मे वर्णन कई रूपो मे किया गया है ।

(१) स्वकीया नायिका के रति प्रसग पर आभूषणो से कई अर्थो की सिद्धि बताई गई है । नायक द्वारा नायिका के शृङ्गार मे प्रेमाधिक्य की व्यञ्जना होती है । विपरीत रति की अवस्था मे वेष-परिवर्तन रीतिकाल का एक प्रिय विषय रहा हे । इससे नायक के ऊपर नायिका के पूर्ण आधिपत्य की व्यञ्जना हो जाती है । मतिराम तोप आदि अनेक कवियो ने इस प्रकार का वर्णन किया है ।[3] इस वेप-परिवर्तन से नारी के कामाधिक्य की व्यञ्जना होती है । कभी-कभी वहुनायकत्व के प्रसग पर यह वेप स्वकीया के मान का कारण वन जाता है । वहुधा भूल या असावधानी के कारण नायक के शरीर पर प्रसाधन चिह्न रह जाते हैं । स्वकीया के प्रसग पर यह उसकी लज्जा का कारण बनता है, क्योकि समाज के प्रति गोपनीयता का भाव स्थिर नही रह पाता और उसकी क्रियाओ का ज्ञान सवको हो जाता है ।[4] नायिका का वेष-परिवर्तन उसके

---

1 दास चली करते बलया, रसना चली लक ते लागा अवारन ।
प्रान के नाथ चले अनतै, तनतै नहिं प्रान चले केहि कारन ।।
भिखारीदास ग्र० १, १३२/१६९

2 तुम कहि बोलत मुद्रिके मौन होति यहि नाम ।
ककन की पदवी दई, तुम विनु या कहँ राम । केशव—रामचन्द्रिका ।

3 (क) राघा हरि हरि राधिका बन आये सकेत ।
दम्पति रति विपरीत सुख सहज सुरति हूँ लेत ।
विहारी रत्नाकर दोहा १५५

(ख) राधे हरि हरि राधे रूप की सुरति कीन्हे,
रति विपरीत विपरीत रति ह्वै गई ।
तोप—सुधा निधि ११२/३३१

4 लाल-भाल विंदी दिये उठे प्रात अलसात ।
लोनी लाजनि गडि गई, लखे लोग मुसकात । मतिराम सत० दो० ६५०

अनुराग का सूचक है।[1]

खण्डिता प्रसग पर नायक के शरीर पर ये प्रसाधन कोप को बढाने वाले होते है। इसकी दो प्रकार की प्रतिक्रिया वर्णित है (१) अनुत्साह मूलक (२) व्यग्य मूलक। अनुत्साह की स्थिति मे नायिका कुछ न बोलती हुई भी अपने मान को उदासीनता के माध्यम से प्रकट कर देती है। व्यग्य मे वचन और क्रियाओ द्वारा यह भावना व्यक्त की जाती है। क्रिया द्वारा मान का वर्णन सूर ने एक स्थल पर बहुत अच्छा किया है।[2] वचनो द्वारा मान एव व्यग्य दोनो की ही सूचना मिल जाती है। यथा —

(१) पलनु पीक अजन अधर, धरें महावर भाल।
　　आजु मिलै सुभली करी, भले बने हौ लाल।

बि० रत्नाकर दोहा २२

(२) आवै हँसी हमे देखत लालन, भाल मे दीन्ही महावर घोरी।
　　एतै बडे ब्रज मण्डल मे न मिली कहूँ रचक माँगेहु रोरी।

'नवरस' से

पहले उदाहरण मे प्रशसामूलक व्यग्य है और दूसरे मे स्पष्ट रूप से नायक को अपराधी सिद्ध करते हुए उस पर व्यग्य किया गया है। इन उदाहरणो मे प्रसाधन द्रव्यो के अस्थान या विपरीत स्थान पर लग जाने के कारण ये कोप-विधायक मण्डन हो जाते है। नायक की पलको पर पान का पीक, भाल व अँगुलियो मे महावर, अगो पर आभूषण या बेनी के दाग इसी भाव को उद्दीप्त करते है। ये मण्डन विपरीत रति के समय स्वय लगाये जाते है या परकीया के सम्पर्क मे अनायास लग जाते है। स्वकीया के सम्बन्ध से ये आनन्द-विधायक और परकीया-सम्बन्ध से कोप-विधायक हो जाते है। इन मण्डनो के अतिरिक्त वस्त्राभूषणो का शृङ्गारिक प्रसगो पर साकेतिक महत्त्व होता है।

रीतिकालीन काव्य मे कई आभूषणो की ध्वनि आदि के सम्बन्ध मे विशेष सावधानी बरती जाती थी। ध्वनि दो प्रसगो पर विशेष अवस्था की सूचक होती थी :—

---

1 मेरे सिर कैसी लगै, यो कहि बाँधी पाग।
　सुन्दरि रति विपरीत मे, प्रकट कियौ अनुराग।

मतिराम सतसई सप्तक दोहा ३६७

2 प्यारी चितै रही मुख पिय कौ।
　अजन अधर कपोलन बिन्दन, लाग्यो काहू तिय कौ।
　×　×　×　×　×　×
　तुरत उठी दरपन कर लीन्ही, देखो बदन सुधारौ। सूरसागर

(१) सयोग प्रसग पर।
(२) अभिसार प्रसग पर।

सयोग के अवसर पर किंकिणी के मुखर होने या नूपुर के मौन होने मे विशिष्ट साकेतिक प्रसगो की अभिव्यक्ति होती थी। विहारी और पद्माकर आदि ने इसके द्वारा विशिष्ट भावो के उद्रेक की अभिव्यञ्जना की है।[1] प्राय किंकिणी वजने के माधुर्य से विपरीत रति की कल्पना की जाती थी।

अभिसार के अवसर पर विशिष्ट प्रकार के वस्त्र या आभूषण पहने जाते थे। उनकी व्यावहारिक उपयोगिता सर्वमान्य थी। अभिसार की क्रिया परकीया सम्बन्ध से ही होती थी। अत इममे गोपनीयता को इसका अनिवार्य तत्व मानते थे। इसी गोपनीयता के लिये कृष्णाभिसारिका काले रग के प्रसाधन, शुक्लाभिसारिका श्वेत प्रसाधन और दिवाभिसारिका दिन की उज्वलता मे मिल जाने वाले सौन्दर्य के उपकरणो का प्रयोग करती थी। इन तीनो प्रकार की अभिसारिकाए अपनी गति को गुप्त रखने के लिये शब्द या झनकार करने वाले आभूपणो को यथा सम्भव दूर रखती थी। मुग्धा नायिका मे झिझक अधिक होने के कारण पूर्णतया ऐसे आभूपणो का वहिष्कार हो जाता था।[2] प्रौढाएँ आभूषणो की झनकार से चिन्तित नही होती थी "गूजरी वजावै रव रसना सजावै, कर चूरी झनकावै गरो गहति गहकि कै।[3]

अभिसार के समय परिस्थिति मे मिल जाने वाले वस्त्राभूषणो पर ध्यान जाता था। सामाजिक नियमो के विपरीत होने से अभिसार को सर्व स्वीकृति प्राप्त नही थी। इसी कारण गोपनीयता की भावना से युक्त आभरणो को धारण करने की परम्परा चल पडी। कृष्णाभिसारिका साँवरी होकर

---

1 (क) करत कुलाहल किंकिणी, गह्यौ मौन मजीर।
विहारी रत्नाकर दोहा १२६

(ख) कहैं पद्माकर त्यौं करत कुलाहल,
न किंकिनी कतार काम दुंदव सी दै रही। पद्माकर

2 किंकिनी छोरि छपाई कहूँ, कहूँ वाजनी पायल पाँय ते नाही।....
लाजनि तै गडि जात कहूँ अडि जाति कहूँ गज की गति भाई।. ..
वैस की थोरी किसोरी हरै-हरै या विधि नन्द किसोर पै आई।
पद्माकर ग्र० १३०।२३०

3 देवकृत सु० विनोद ६१।५६

श्याम के पास अभिसरण करती है ।[1] शुक्लाभिसारिका के श्वेत पुष्प, श्वेत अम्बर धारण करने का वर्णन है । वह झनकार वाले आभूषणो को दूर करके श्रीकृष्ण के पास ऐसे आती है कि कोई उसे देख नही पाता ।[2] यहाँ स्पष्ट रूप से प्रसाधन सामग्री का अन्तर वर्णित है । परिस्थिति के अनुसार गोपन-मनोवृत्ति की प्रेरणा से सामाजिक विधि-निषेधो के पालनार्थ दुग्ध-धवल साडी, पुष्पो या मोती के आभरण तथा श्वेत वस्त्रो का प्रयोग होता है । दिवाभिसारिका के प्रसग पर इन वस्त्राभरणो मे पुन परिवर्तन हो जाता है । दिन के प्रकाश मे जरतारी की साडी का प्रयोग वर्णित है ।[3] क्योकि इसकी झलमलाहट प्रकाश मे मिल जाती है । ग्रीष्म ऋतु मे दिवाभिसारिका का वर्णन होता है । इस ऋतु मे ध्वनि करने वाले आभूषणो की झनक तीव्र गति से चलती हुई वायु मे मिलकर अलग से श्रुति-गोचर नही हो पाती । इससे आभूषणो के धारण मे ध्वनि-विषयक सावधानी की उपेक्षा भी हो जाती है ।[4]

अत' स्पष्ट है कि वस्त्राभरण एव प्रसाधन सामग्रियो का उपयोग रूप को आकर्षक बनाने और विशेष परिस्थिति मे अपनी मनोवृत्ति को व्यक्त करने के लिये होता है । वस्त्रादि के आकर्षक गुणो के कारण यह सौन्दर्य-वृद्धि मे सहायक होता है । भाव या परिस्थिति के बोधक रूप मे वस्त्रादि से नायक या नायिका के चारित्रिक गुणो पर प्रकाश पडता है । भिन्न परिस्थिति मे भिन्न आभूषणादि मनोगत भावो को अभिव्यक्त करते है । इनसे मानसिक उल्लास

---

1 सामरी पामरी की दै खुही बलि, सामरै पै चली सामरी ह्वै कै ।
पद्० ग्र० १३३।२४३

2 सिख-नख फूलन के भूषण विभूषित कै,
बाँधि लीनी बलया विगत कीन्ही बजनो ।
तापर सँवारयो सेत अम्बर को डम्बर,
सिधारी स्याम सन्निधि बिहारी काहू न जनी । भिखारी०ग्र० १२५।१६७

3 सारी जरतारी की झलकि झलकति तैसी,
केसर को अंग राग कीन्हो सब तन मैं ।
तीछन तरनि की किरनि तै दुगुन जोति,
जागति जवाहिर जटिल आभरन मैं । ललित०-मतिराम छद ६०

4 मद मंद चली नन्दनन्दन पै प्रवीन बेनी ग्रीषम दुपहरी अरी रही है ।
सदली दुकूल फहरात भुज मूलन पै फूलन के भूषन सुगन्धि झरि रही है ।
नूपुर झनक जैसे सनक समीर तीर, चहुँ ओर भौरनि की भीर भरि रही है ।
नव० तरग २६।१७२

या क्रोध का आभास मिल जाता है। आभूषणादि का भावो की अभिव्यक्ति से सम्बन्धित यह विशेष उपयोग है। इनसे मानसिक प्रवृत्तियो का उद्घाटन होता है। यहाँ प्रसाधन बाह्य सौन्दर्य का व्यञ्जक न होकर आन्तरिक भावनाओ का उद्घाटक है। अन्य स्थलो पर शोभा-विधायक उपकरण के रूप मे इनके प्रयोग का वर्णन है। वहाँ सौन्दर्य-साधक उपकरण होने से इन्हे प्रसाधन गत सौन्दर्य के अन्तर्गत माना गया है।

प्रसाधनों का सौन्दर्य साधक प्रयोग

सौन्दर्य-साधक प्रसाधन गत उपकरणो का वर्णन करते हुए रीतिकालीन काव्य मे दो प्रकार की पद्धतिया अपनाई गई है.—

(१) षोडश शृङ्गार के परिगणन वाले छदो के सृजन से राधा अथवा अन्य नायिका के सौन्दर्य का वर्णन।

(२) एक या दो उपकरणो की सहायता से व्यष्टि रूप मे सौन्दर्य-साधक उपकरणो का वर्णन।

इन दोनो पद्धतियो मे प्रसाधनो की गणना वाले छदो मे कवियो ने अपने षोडश शृङ्गार के ज्ञान को ही दिखाया है। ऐसे छदो से किसी प्रकार की कोई सौन्दर्य-वृद्धि नही होती। इनसे केवल इन उपकरणो का ज्ञान मात्र हो जाता है। केशवदास, बलभद्र आदि कवियो ने इस प्रकार के छदो को प्रस्तुत किया है।[1] पद्माकर ने कुछ ही प्रसाधनो का नाम लिया है। ग्वाल कवि

---

1 (क) प्रथम सकल सुचि मज्जन अमल बास,
जावक सुदेश केश-पास को सुधारिबो।
अगराग भूषण विविध मुख-बास,
राग-कज्जल कलित लोल लोचन निहारिबो।
बोलनि हसनि मृदु चातुरी चित्तौनि चारु,
पल-पल प्रति-प्रति पतिव्रत प्रतिपालिवे।
'केसोदास' सविलास करहु कुँवरि राधे,
इहि विधि सोलह सिगार सिगारिबो। रसिक प्रिया

(ख) करिदन्त धावन उबटि अग उबटन,
मज्जन कै देह अगुछानु अगु छाई है।
करिकै तिलक माँग पाटी पारी 'बलभद्र'
भली, भाल बन्दन को वेदुरी बनाई है।

ने भी 'रसरग' मे गणना वाले पद को लिखा है।[1] बकसी हंसराज के 'स्नेह सागर' (पृ० ८०–८१) और सोमनाथ के रासपचाध्यायी[2] मे भी गणना वाले उपकरणो का उल्लेख है। इन सभी प्रसगो को देखने से स्पष्ट है कि इन अवतरणो द्वारा कवियो ने सौन्दर्य-साधना का प्रयास नही किया है, अपितु इन साधनो के वर्णन मात्र का ही उद्देश्य व्यक्त किया है। कही पूर्ण सोलह साधनो और कही छंदो मे मात्रादि की आवश्यकतानुसार कम साधनो या उपकरणो का उल्लेख मात्र होने के कारण इन उपकरणो के प्रयोग से उत्पन्न सौन्दर्य का बिम्ब-विधान नही होने पाता। इससे परम्परा-निर्वाह की शुष्कता और आचार्यत्व की प्रवृत्ति का ही सकेत मिलता है। कुछ कवियो ने व्यष्टि रूप मे प्रसाधक उपकरणो के प्रयोग से सौन्दर्य बढाने की चेष्टा की है।

आलम्बन के सौन्दर्य को आकर्षक बनाने के लिये आरम्भ से ही सौन्दर्य प्रसाधनो का प्रयोग होता रहा है। इनसे दो प्रमुख उद्देश्य की पूर्ति होती रही है। प्रथम शृङ्गारिक उपकरणो से अपने आभिजात्य तथा सौन्दर्य का प्रकाशन और द्वितीय इनके प्रयोग से सुखद अनुभूति की उत्पत्ति द्वारा नायक का आकर्षण। इन दोनो ही उद्देश्यो मे रीतिकालीन कवियो की सफलता असदिग्ध है।

अंजन दै नैन देखि दर्पन चिबुक चिन्ह,
अधर तम्बोर की अधिक छबि छाई है।
मेहदी करन एडि माँजि कै महावर दै,
सोरह सिंगारन की मूल चतुराई है। रस-रत्नाकर ७०४

1 प्रथम न्हवाय चीर चुनि पहिराय भाय,
बेनी हूं बनाय फूल गधनि गहत है।
माँग सीसफूल खौरि कजरा सुनथ डारै,
पत्रावली करत कपोलन महत है।
'ग्वाल' कवि बीरी ठोढ़ी विन्दु हार फूल,
गैंद किंकिनी महावर दै आनन्द लहत है।
राइ नोन करत निहारत रहत मोहि,
सारे है सिंगारन सिंगारत रहत है।

रसरग-पचम उमंग छद ३ ग्वाल

2 भारतवासी प्रेस दारागज सन् १९३९ मे प्रकाशित प्रयाग। पृ० ४४-४५

इन कवियो द्वारा प्रयुक्त शृङ्गार साधनो की तीन कोटियाँ की जा सकती है—

(अ) शरीर पर लगाये जाने वाले सौन्दर्य के उपकरण ।

(आ) शरीर पर धारण किये जाने वाले सौन्दर्य साधक उपकरण ।

(इ) अन्य उपकरण ।

(अ) शरीर पर लगाये जाने वाले उपकरण--ऊपर बताये गये सौन्दर्य साधक सोलह उपकरणो मे से अनेक उपकरणो को शरीर मे लगाकर सौन्दर्य की वृद्धि की जाती है । इन उपकरणो के प्रयोग मे उनके उद्देश्य की दृष्टि से उन्हे तीन वर्गों मे बाट सकते हैं .—

(क) मृदुता उत्पन्न करने वाले सौन्दर्य-साधक उपकरण ।

(ख) रूपाकर्पण को बढाने वाले सौन्दर्य-साधक उपकरण ।

(ग) सौभाग्य सूचक सौन्दर्य-साधक उपकरण ।

(क) शारीरिक कोमलता को बढाने वाले उपकरणो का आलम्बन से भिन्न स्वतंत्र अस्तित्व होता है । इनके प्रयोग से शरीर कोमल, मसृण और स्पर्श-सुखद बन जाता है । इनमे उवटन, अङ्गराग और सुगन्धित द्रव्यो का प्रयोग वर्णित है । षोडश शृङ्गार मे इनका बहुत महत्त्व है । राजानक रुय्यक के अनुसार रत्न, हेम, अंकुश, माल्य, मण्डन, द्रव्य-योजना और प्रकीर्ण ये सात अलकार अगराग से सम्बन्धित है ।[1] इन सभी मण्डनो को साधन के रूप मे स्वीकार किया गया है । द्रव्य अलकार के अन्तर्गत चन्दन, कस्तूरी, कुंकुम, अगरु, पटवास, ताम्बूल अजन, गोरोचन आदि बताये गये है । गन्ध द्रव्यो के प्रयोग से घ्राणेन्द्रिय की तृप्ति होती है और उसकी सुगन्धि मन को भी आकृष्ट कर लेती है । इन उपकरणो की प्राप्ति का स्रोत जीव-जन्तु, जड-पदार्थ और रासायनिक सश्लेषण है । मृग से कस्तूरी आदि और वनस्पतियो से पुष्पादि की प्राप्ति होती है । अनुलेपन विविध द्रव्यो के सश्लेषण आदि से बनाया जाता है ।

अगराग का मूल उद्देश्य गोरे वर्ण की शोभा को निखार देना है । अनुलेपन का प्रयोग प्रिय-मिलन के पूर्व होता है । स्त्री और पुरुष दोनो ही

---

1 रत्न हेमाशुके माल्य मण्डन द्रव्य-योजने ।
प्रकीर्णं चेत्यलङ्करा सप्तवेते मयामता ।
निर्णय सागर काव्यमाला–पचमो गुच्छ पृ० १५८

अंगरागादि का प्रयोग करते थे, परन्तु रीतिकालीन काव्य मे स्त्रियो द्वारा प्रयुक्त अगराग की अधिक चर्चा हुई है।

कस्तूरी अगरु, केशर, मलाई, सन्तरे के छिलके आदि को एक मे पीस-कर अगराग बनाने की परम्परा रही है। इससे शरीर मे सुगन्धि रहती है और यह सुगन्धि मन को तृप्त करती रहती है। रीतिकालीन साहित्य मे ऐश्वर्य एव वैभव परक सामाजिक स्थिति का प्रभाव सर्वत्र दीख पडता है। इसी से केसर के प्रयोग का वर्णन अनेक कवियो ने किया है।[1] कान्तिमान् स्वर्णाभा से युक्त शरीर मे केशर का लेप आकर्षण एव सुगन्धि से मन को आप्लावित कर देता है। इन सुगन्धित पदार्थो का प्रयोग सखी द्वारा, स्वयं नायिका द्वारा या नायक के द्वारा नायिका के अगो मे किया जाता है। इससे इसके भोग परक दृष्टिकोण की ही पुष्टि होती है। प्राय अभिसारिकाएँ अभिसार के समय अगराग एव सुगन्धित पदार्थो का लेपन करके प्रिय-मिलन को जाती थी। सखियाँ इस सुगन्धि के सहारे नायिकाओ के पीछे जाती हुई बताई गई है।[2] नायक के शरीर की सुगन्धि उसके अन्य नायिका के साथ रति प्रसग को उद्घाटित कर देती है। ऐसे स्थलो पर रति-चिन्ह के रूप मे सुगन्धि की उपयोगिता हो जाती है। कुञ्जादि इस सुगन्धि से भर जाता है।[3] सुगन्धि युक्त नायिका का आकर्षक चित्र उपस्थित हो सका है।[4] सौन्दर्यवर्द्धक उपकरण के रूप मे सुगन्धित द्रव्यादि के प्रयोग से तत्कालीन वैभव की स्मृति हो जाती है। राधा का मुख सुगन्धिपूर्ण है।[5] मुखवास से रुचि बढती है। जमुना को

---

1 'मतिराम ग्रन्थावली' रसराज छद २०१, देव–'भावविलास' छद १०५, रघुनाथ 'रसिक-मोहन' छद ४०१ 'सुन्दरी-तिलक' छद २९६।

2 विहारी

3 सजि ब्रज चद पै चली यो मुखचद जाको,
चद चाँदनी को मुख मन्द सो करत जात।
कहै 'पदमाकर' त्यो सहज सुगन्ध ही के,
पुञ्ज वन कुजन मे कुञ्ज से भरत जात। जगदविनोद छद २८३

4 भेटी गुजरेटी अहिरेटी कान्ह भानु-वेटी
अतर लपेटी लेटी शीतल महल मे।
श्री राधा सुधा शतक छद ७१ हठी

5 रति मे न सती मे न रंभा रमा जानकी मे,
जेसी है सुगन्ध प्यारी राधा खास अग मे।
श्री राधिका जी नख-शिख छद ६६ कालिका प्रसाद

जाती हुई नायिका के पीछे भौरो का झुण्ड चलने लग जाता है ।[1]

रीतिकालीन अन्य गन्ध-द्रव्यो मे कस्तूरी, चोवा, चन्दन, अगरु, अतर एव विभिन्न फूलो आदि के फुलेल के प्रयोग का वर्णन है। अभिसारिका का रहस्य उसकी सुगन्धि अथवा अग-ज्योति से खुल जाता है। मिलनोत्सुका नायिकाओ मे ही केश, मुख, शरीर आदि को सुवासित करने का वर्णन है।[2] इस प्रकार अगरागादि के प्रयोग से एक ओर शरीर मे कोमलता उत्पन्न की जाती है और दूसरी ओर सुगन्धि द्वारा प्रिय को आकर्षित करने की चेष्टा की जाती है। इस दृष्टि से इन पदार्थों के प्रयोग का मूल उद्देश्य प्रिय के सम्बन्ध मे उनका उपयोगिता मूलक होना ही है। इसी को ध्यान मे रखकर सुगन्धि, अगराग, अनुलेपन, उवटन आदि का प्रयोग अभिसारिका, वासक सज्जा आदि नायिकाएँ शृङ्गार के सौन्दर्य साधक उपकरणो के रूप मे करती थीं।

इन सुगन्धित पदार्थों का वर्णन अनेक स्थलो पर अनेक कवियो द्वारा किया गया है। मृगमद,[3] चदन,[4] घनसार,[5] केशर[6] आदि द्वारा इन्ही

---

[1] रस-रत्नाकर पृ० ६९३

[2] मतिराम रसराज छद १७२

[3] रैन अधेरी नीलपट, मृगमद चर्चित अग।
सघन घटा सी लखि परै, रँगी स्याम के रग।
—री का स पृ १४१ कृपाराम

[4] (क) चदन चढाउ जिन ताप सी चढति तन,
कुमकुम न लाउ अग आग सी लगति है।
—री का स पृ १४७ केशव

(ख) अगन मे चदन चढाय घनसार सेत,
सारी छीर फेन की सी आभा उफनति है।
—री का स पृ १७३ मतिराम

[5] (क) सीरे करिबै को पिय नैन घनसार कैधो,
बाल के वदन विलसत मृदु हास है।
—ललितललाम, मतिराम

(ख) घसिहो घनसार पटीर मिलै, मिलै बात कही न बनावटी ऊ।
—बेनी प्रवीन

(ग) घनसार पटीर मिलै-मिलै नीर, चहै तन लावै न लावै चहै।
—बेनी प्रवीन

[6] (क) केसरि कुसुम हू ते कोरी जो न होती,
तो किसोरी सो कुसुम सर कौनी भाँति जीततो। देव

उद्देश्यो की सिद्धि की जाती थी। इन पदार्थों की फैलती हुई सुगन्धि से वातावरण में भोगमूलक भावना फैलती है और उसकी तीव्र प्रतिक्रिया होती है। ऐसी नायिकाओ के पीछे भौरो का झुण्ड लग जाता है और पहरा देने वाले पहरुओ के मन मे भी औत्सुक्य जाग्रत हो जाती है।[1] अगो से निकलती हुई सुगन्धी की झकोर प्रवाहित होने लगती है।[2]

अन्त मे कहा जा सकता है कि शारीरिक कोमलता को अर्जित करने के लिये उबटन, अगराग अनुलेपन आदि को सौन्दर्य साधक उपकरणों के रूप मे प्रयोग किया जाता है। इनसे शरीर मे कोमलता आती है, वातावरण मे मादकता फैलती है, नायक के मन मे रतिमूलक भावना का उद्भव होता है और भोग परक उद्देश्य की सिद्धि होती है। इनके प्रयोग से नायिका का आकर्षण बढता है, स्पर्श सुखदता आती है, घ्राणेन्द्रिय की तृप्ति होती है। नायिका के सहज सुगंध मे उसके 'पद्मिनी' होने की बात का समर्थन मिलता है। अनुलेपनादि से प्राप्त सुगन्धि नैसर्गिक न होकर कृत्रिम है। इस कृत्रिम सुगन्धि से भी भोगपरक भावना का प्रकाशन होता है और रतिमूलक भाव की उद्दीप्ति होती है। रीतिकालीन कवियो का यही उद्देश्य था और इसमे उन्हे पूर्ण सफलता मिली है।

(ख) रूपाकर्षण को बढ़ाने वाले सौन्दर्य-साधक शृंगार के उपकरण—षोडश शृङ्गार के अन्तर्गत सौन्दर्य को बढाने वाले अनेक उपकरणो का वर्णन रीतिकालीन साहित्य मे मिलता है। इन उपकरणो मे अञ्जन, तिल, जावक, मेहदी की गणना होगी। अजन नेत्रो मे और तिल की रचना कपोल या चिबुक के ऊपर की जाती है। पैरो मे लगाने के लिये महावर या जावक का प्रयोग होता है। सौन्दर्य वर्द्धक इस उपकरण का प्रयोग स्त्रियाँ अपनी एंडी को रँगने मे करती है। आँखो का अजन और पग मे महावर सौन्दर्य को बढाने वाला होता है। शृङ्गार-साधन मे यह महत्वपूर्ण उपकरण है। इससे कई बातो का ज्ञान होता है—

(ख) केसर रंग रगे पट धारि, चली वृषभानुलली, बिमला सी।
—पृ ३२५/४७७ ब्र, सा का नायिका भेद

1 रीति काव्य सग्रह पृ० २०२

2 जमुना के तीर बहै सीतल समीर तहाँ, मधुकर करत मधुर मद सोर है।
कवि 'मतिराम' तहाँ छबि सी छबीली बैठी, आँगन मे फैलत सुगध की झकोर है।
—रीति काव्य संग्रह पृ० १७३

(१) नायिका की एडी की लालिमा और इससे नाइन को धोखा हो जाना।

(२) जावक के भार से नायिका के सौकुमार्य की अभिव्यक्ति।

(३) जावक लगाने मे नायक के प्रेम का प्रदर्शन एव नायिका का रूप गर्विता एव प्रेम गर्विता होने का संकेत।

(४) जावक द्वारा नायक के अन्य नायिका के साथ रहने का सकेत।

(१) जावक का रग नायिका की एडी के रग से मिल जाता है। इससे महावर लगाने को आई हुई नाइन भ्रम मे पड जाती है। वह निर्णय नही कर पाती कि किस पग मे महावर लग चुका है। नाइन के इस भ्रम के माध्यम से नायिका की शारीरिक अरुणिमापरक सौन्दर्य की व्यञ्जना हुई है।[1]

(२) जावक सौकुमार्य को व्यञ्जित करने के साधन के रूप मे भी प्रयुक्त हुआ है। जावक के भार से नायिका का पग मन्द गति से धरा पर पडता है।[2] इसी भार से स्वय नायिका भी जान पाती है कि उसके किस पग मे जावक लग चुका है।[3] जावक के भार की इस असहनीयता द्वारा उसकी कोमलता अभिव्यञ्जित है। कोमल शरीर आकर्षण एव स्पर्श-सुख का साधन होता है।

(३) जावक को शृङ्गार प्रसाधक रूप मे प्रयोग करके नायक-नायिका अपनी प्रेम-भावना की अभिव्यक्ति करते है। रीतिकालीन साहित्य मे प्रिय द्वारा जावक लगाया जाना सौभाग्य का सूचक माना जाता है। इसे देखकर अन्य स्त्रियाँ स्पृहा करती है। ऐसे वर्णन मे रीतिकालीन नायिकाओ की दो मानसिक प्रवृतियाँ व्यक्त हो जाती हैं (क) ऐसी नायिका जो प्रिय से जावक लगवा कर अपने प्रेम की प्रशसा सखियो से सुनती है।[4] (ख) ऐसी नायिकाएँ जो प्रिय द्वारा पैरो का स्पर्श किया जाना सामाजिक मर्यादा के कारण अनुचित समझ

---

1 पाँय महावर देन को, नाइन बैठी आय।
फिरि-फिरि जानि महावरी, एडी मीडति जाय। बिहारी

2 ब्रजभाषा साहित्य का नायिका भेद पृ० २१२/१३ द्विजदेव

3 (क) बोझिल सो यह पाँव लगै, तब यौं मुसुकाइ कह्यौ ठकुराइन। रघुनाथ
(ख) आप कह्यौ अरी दाहिनै दै मोहि, जानि परै पग बाम है भारी।
री० का० सग्रह पृ० २२७

4 आपुहि पाँइन देत महावर, बेनी गुहै और बैनी डुलावै।
आपुहि बीरी बनाइ खवावै, अनेक विलासन रीझि रिझावै।
री. का स पृ १६५/८ चिन्तामणि

कर उसका निवारण कर देती है और अपने प्रेम-प्रदर्शन द्वारा पैरो के स्पर्श करने से प्रिय को विरत कर देती है।[1] इन दोनो ही प्रवृत्तियो मे स्वकीया नायिका का प्रेम-गर्व और अपने प्रिय के प्रति असीम विश्वास का भाव लक्षित होता है। इससे ऐसे प्रसगो पर जावक भाग्य सूचक सौन्दर्य का उपकरण बन जाता है। यही जावक अस्थान पर लगा होने से नायिका के क्रोध का कारण भी बनता है। इससे नायक की रसिकता और परस्त्री गमन की सूचना मिल जाती है। खण्डिता नायिका के चित्रण मे ऐसा वर्णन मिलता है।[2] नायक के मस्तक पर लगा हुआ जावक उसकी गुप्त रति-क्रीडा के रहस्य को प्रकट कर देता है। जावक का अर्थ यदि इस उपभोग मूलक अभिप्राय की सिद्धि मे न ले, तो नायिकाओ द्वारा इसके प्रयोग से उनके सौन्दर्य की वृद्धि होती है। ऐसे प्रसगो पर मीलित अलकार के प्रयोग से नायिका की स्वाभाविक लालिमा को जावक की लालिमा से तद्रूप कर देते है। इससे नायिका की कोमलता, अरुण कान्ति, शोभा एव आभिजात्य का आभास मिलता है। इसके विशेष अभिप्राय मूलक प्रयोग से पर-रति की व्यञ्जना होती है। रीतिकालीन साहित्य मे जावक का वर्णन दोनो रूपो मे किया गया है।

मेहदी को षोडश शृङ्गार मे समाविष्ट कर लेने की धारणा का विकास परवर्ती कवियो की देन है। षोडश शृङ्गार का विवेचन करते हुए आरम्भिक

1　ह्वै के रस-बस जब दीवे कौ महावर को,
　'सेनापति' स्याम गह्यौ चरन ललित है।
　चूमि हाथ नाथ के लगाइ रही आँखिन सो,
　कही प्राणपति यह अति अनुचित है।
　　　　　　　　　　'कवित-रत्नाकर' सेनापति

2　(क) अजन अधर देखि जावक लिलार भए,
　　　बाल के सु नैन महालाल रंग सराबोर।
　　　　　　　　　　ब्र. सा ना भेद पृ. ३३२/५०४

　(ख) जावक लिलार ओठ अंजन की लीक सोहै,
　　　खैयन अलीक लोक-लीक न बिसारियै।
　　　　　　　　　　मतिराम ब्र० सा० ना० भेद पृ ३३२/५०५

　(ग) काहे को नटत, वेई बैनन प्रकट होत,
　　　अनुराग जिन की लिलार धरि आए हो।
　　　　　　　　　　सोमनाथ ब्र० सा० ना० भेद पृ. ३३३/५०६

युग मे तथा सस्कृत कवियों द्वारा इसकी गणना इन शृङ्गारिक उपकरणों मे नही की गई थी। बाद मे तत्कालीन समाज के प्रभाव के कारण इसे सौन्दर्यो-त्कर्ष का प्रमुख साधन स्वीकार कर लिया गया होगा। इसी से इसकी गणना षोडश शृङ्गार के अन्तर्गत होने लगी होगी। इससे उत्पन्न शारीरिक लालिमा और सुगन्धि मन को आकृष्ट करने मे सफल होती है। इस दृष्टि से मेहदी के प्रयोग के दो उद्देश्य दीख पडते है—

(१) नायिका के सौन्दर्य की अभिवृद्धि।

(२) मेहदी से उत्पन्न सौन्दर्य द्वारा नायक की मन स्थिति का वर्णन।

सौन्दर्य-साधन के रूप मे वासकसज्जा नायिका द्वारा इसका प्रयोग वर्णित है।[1] अन्य नायिकाओ द्वारा भी सौन्दर्य को बढाने के साधन के रूप मे मेहदी का उपयोग होता है। देव की नायिका सौभाग्य के अन्य चिह्नो के साथ मेहदी का प्रयोग करती है।[2]

मेहदी द्वारा नायक के अतिशय प्रेम की व्यञ्जना की गई है। वह प्रेम मे पूर्ण होकर अपने ही हाथो से मेहदी रचा देता है। नायिका इस कार्य के लिये नायक को निवारण करती हुई कहती है कि तुमने अगो मे अगरागादि लगाया, मैंने मना नही किया, परन्तु हे प्रवीण, तुमसे अपने पैरो मे मेहदी नही लगवाऊँगी।[3] इन उक्तियो मे स्वकीया का निर्मल और मर्यादित प्रेम-भाव व्यञ्जित किया गया है। नायिका प्रिय द्वारा अपने पैरो का स्पर्श किया जाना अनुचित मानती है। इसी से इस कार्य का निवारण अपनी प्रेमपूर्ण और मधुर उक्तियो से कर देती है।

सौन्दर्योत्कर्षक इन उपकरणो मे तिल, अजन, मेहदी और जावक का सकेत हुआ है। इनमे जावक सौभाग्य सूचक उपकरण के रूप मे भी प्रयुक्त हुआ है। अन्य उपकरणो से शारीरिक शोभा एव आकर्षण को बढाने का प्रयास

---

[1] मेहदी रचाइ कर, पाँवनि महावर दै, देखति कनैखनि सखिन खुबहतई।
देव भेद पृ० ३११/४११

[2] भूषण भेष जराउ जरे परे छोरि सुगध तमोर बिसारेई।
पैन्हे फिरै पियरे पट फीके सुनीकै लगै मुख ही के उज्यारेई।
बदन बेदी लिलार लसै चुरी चार सोहाग की रासि पसारेई।
लाज लगै अरविन्दन 'देव' रची मेहदी कर बिन्दु निहारेई। देव

[3] अग राग और अगनि, करत कछू वरजी न।
पै मेहदी न दिखाइहौ, तुमसो परम प्रवीन। पद्माकर

किया गया है। इनका प्रयोग सौन्दर्य वर्द्धक और विशेष अभिप्राय के सूचक उपकरणो के रूप मे किया गया है। इनमे अजन, जावक आदि द्वारा नायक की रसिकता का ज्ञान कराया गया है तथा स्वकीया के लिये अथवा अन्य नायिका के लिये इन उपकरणो के प्रयोग से सौन्दर्य एव आकर्षण को बढा कर नायक को लुब्ध करने की चेष्टा की गई है।

(ग) सौभाग्य सूचक सौन्दर्य के उपकरण—

शरीर पर लगाये जाने वाले शृङ्गार के उपकरणो को तीन वर्गों—मृदुता उत्पन्न करने वाले, आकर्षण बढाने वाले और सौभाग्य की सूचना देने वाले–मे विभाजित किया गया था। इनमे दो का वर्णन किया जा चुका है। षोडश शृङ्गार मे कुछ ऐसे उपकरण भी माने जाते है जिनसे दो उद्देश्यो की सिद्धि होती है (१) सौन्दर्य को बढाकर व्यक्तित्व को मोहक बनाना (२) सौभाग्य की सूचना देना। सभी उपकरणो मे प्रसाधन का गुण तो रहता ही है। उनके बिना इनकी गणना शृङ्गार प्रसाधन मे हो ही नही सकती है। इस वर्ग के उपकरणो से स्त्रियो के सौभाग्य की सूचना भी मिलती है।

सौभाग्य सूचक षोडश शृङ्गार के अन्तर्गत इन उपकरणो मे सिन्दूर, बिन्दी और तिलक की गणना होती है। सिन्दूर का प्रयोग केवल विवाहित सधवा स्त्रियाँ ही करती है। बिन्दी और तिलक रचना द्वारा सौभाग्य की ही सूचना मिलती है। बिन्दी, चंदन, कुमकुम, केशर, कस्तूरी, गोरोचन, रोरी, ईंगुर, सिन्दूर से बनाई जाती है। इनमे रोरी, कुमकुम, सिन्दूर और ईंगुर की बिन्दी विवाहिता स्त्रियाँ लगाती है। रीतिकालीन साहित्य मे बन्दन शब्द रोरी, सिन्दूर और गोरोचन आदि की बिन्दी के लिये प्रयुक्त होता है। मुग्धा अनूढा के प्रसग पर बन्दन का अर्थ गोरोचन से लगाया गया है।[1] इस सहज शृङ्गार मे बेंदी, तमोल अजन आदि की अनिवार्यता का समर्थन मिलता है।[2]

तिलक अमगल को हटाने के लिये तथा मुख-शोभा बढाने के लिये प्रयुक्त होता है। आडा-तिलक का यही उद्देश्य था। इसे केशर का बनाते थे।

---

1 (क) करि चदन की खौरि दै, वदन बेंदी भाल
दरप भरी दिन द्वैक मे दरपन देखति बाल।
भिखारी० ग्र० १/ पृ० ७/३२

(ख) अजन नैन बिंदी मुख मे कहि, तोष सो बदन माँग सॅवारी।,
तोष-सुधानिधि पृ० १२३/२६३

2 बिहारी-रत्नाकर ६७६ वाँ दोहा।

ऐपन के आडा तिलक का वर्णन सतसई मे है।[1] इसे ही खौर तिलक भी कहते है। बीच मे खुरचे हुए आडे तिलक को खौर कहते है। पत्रावली रचना का कार्य आज भी नवलवधू के मस्तक पर होता है। इसे बुन्दकी कहते है। ललाट, कपोल, वक्षदेश आदि अगो पर चदन, केशर, कस्तूरी से चित्रित करने का वर्णन इस साहित्य मे मिलता है।

सिन्दूर मगल सूचक द्रव्य के रूप मे प्रयुक्त होता है। यह विवाहिता स्त्रियो का प्रथम लक्षण है। मागो पर सिन्दूर और ललाट पर उसका टीका उसके सधवात्त्व की सूचना देते है। रीतिकालीन साहित्य मे सिन्दूर की चर्चा अनेक स्थलो पर है। यह चर्चा दो रूपो मे है (१) सामान्य वर्णन मे (२) सिन्दूर के प्रभाव की व्यञ्जना मे।

सामान्य वर्णन मे सिन्दूर के प्रयोग की बात कही गई है। अन्य प्रसाधनो के साथ इसका भी प्रयोग नायिकाएँ करती थी।[2] कही पर केवल माँग सँवारे जाने का सकेत है। ऐसे स्थलो पर इससे उत्पन्न या बढ जाने वाली शोभा का कम वर्णन हो सका है। प्रभावमूलक व्यञ्जना मे इसे कामदेव की दुधार के समान कहकर इसकी घातक और अचूक चोट का सकेत किया गया है।[3]

इससे स्पष्ट हो जाता है कि बैदी,[4] टीका, गोरोचन और रोरी [5] आदि

---

[1] विहारी रत्नाकर छद ६३

[2] (क) सुथरे सम्हारे वार सैन्दुर सी माँग भरि,
सीसफूल-जोति सब जोतिन सो आगरी।
ब्र मा ना भेद पृ० २१४/२२

(ख) माँग सँवारत काँघई लै, कचभार भिजावत अग-समेत हौं।
ब्र सा ना भेद पृ० ३०८/३९८

[3] काली पटियो के बीच मोहिनी की माँग है,
कि सान पर ठाढा कामदेव का दुधारा है।

[4] (क) बैंदी बर बीर नग हीर गन हीरन की,
'देव' झमकन मे झमक भरि भारी सी। ब्र सा ना भेद पृ० २१५

(ख) फूलन सो बाल की बनाय गुही बैनी लाल,
भाल दई बैदी मृगमद की असित है।
ब्र सा ना भेद पृ० ३०८/३९९

(ग) केसर लाइ सँवारि कै आड निहारि कै नेह-नदी तरिवौ करै।
ब्र. सा, ना. भेद पृ० ३०९ /४०१

को प्रसाधनो के रूप मे प्रयुक्त किया जाता रहा है। सभी मगलसूचक है। लगाये जाने वाले उपकरणो द्वारा तीन उद्देश्यो की सिद्धि बताई गई है (१) शरीर मे मृदुता लाना (२) रूप का निखारना (३) सौभाग्य को सूचित करना। इन तीनो उद्देश्यो मे रीतिकालीन साहित्यकार सफल हुआ है। इन सभी वस्तुओ के प्रयोग मे भोगमूलक प्रवृत्ति लक्षित होती है। इसीसे इस साज-सौन्दर्य के द्वारा नायक के हृदय मे उद्वेलन उत्पन्न करने की चेष्टा की गई है। प्रिय-मिलन की आकाक्षा वाली स्त्रियाँ ही इनका प्रयोग करती हुई दिखाई पडती है। सहज शृङ्गार के साथ इन उपकरणो की विशेष अभिप्राय-मूलक सज्जा को भुलाया नही जा सकता है। यह अभिप्राय रीतिकालीन साहित्य मे दो रूपो मे वर्णित है (१) मिलन के उत्साह मे इसका सुखद उपयोग किया गया है। ऐसी स्थिति मे अपने रूप को अधिक आकर्षक बनाकर नायक के समक्ष अपने को प्रस्तुत कर देना प्रमुख उद्देश्य था। उस काल मे पुरुष अनेक स्त्रियो से सम्पर्क रखते थे। अत जो स्त्री अधिक बन-सवर कर आकर्षक दीख पडती थी, उसी की महत्ता सर्वोपरि रहती थी। इस दृष्टि से इनका उपयोगितामूलक प्रयोग होता था।

(२) रति-चिह्नो के रूप मे ये ही उपकरण मानसिक विकर्षण के कारण बन जाते थे। ऐसा वर्णन खण्डिता या अन्य सभोग दु खिता नायिकाओ के प्रसग पर हुआ है। अपने पति के अगो पर स्त्री द्वारा लगाये गये इन उपकरणो को देखकर या पर स्त्री के वदन पर रति-चिह्नो को देखकर इस प्रकार का मानसिक विकर्षण उत्पन्न होता है। ऐसा वर्णन इस काल के साहित्य मे मिल जाता है।

लगाये जाने वाले सौन्दर्य-साधक उपकरण ही वियोग की अवस्था मे अपनी सुखदता और आकर्षण को छोड देते है। मिलनोत्सुका नायिका के लिये ये ही उपकरण उद्देश्य साधक है, परन्तु विरहिणी के द्वारा इनके प्रयोग का निवारण किया गया है। ऐसी स्थिति मे इनके द्वारा प्रतिकूलता ही वर्णित की गई है, फिर भी इनके अनुकूल और सुखद प्रयोग के सम्बन्ध मे किसी प्रकार का प्रतिवाद उत्पन्न नही हो सकता है। सौन्दर्य-साधक इन उपकरणो के साथ शरीर पर धारण किये जाने वाले उपकरणो द्वारा भी सौन्दर्य की वृद्धि की जाती है।

---

1 रोचन, रोरी रची मेहदी, 'नृपशभु' कहै मुकता सम होति है।
ब्र. सा. ना भेद पृ० २१५/२८

(आ) शरीर पर धारण किये जाने वाले सौन्दर्य के उपकरण—

षोडश-शृङ्गार के अन्तर्गत सभी उपकरणो को तीन वर्गो मे बाँटा गया था। इनमे शरीर पर लगाये जाने वाले उपकरणो का विश्लेषण प्रस्तुत किया जा चुका है। इन पक्तियो मे शरीर पर धारण किये जाने वाले उपकरणो का विश्लेपण होगा। इन उपकरणो को दो वर्गों मे विभाजित कर सकते है। यह विभाजन वस्तुओ की उपयोगिता के आधार पर किया गया है—

(क) वैभव के प्रदर्शक एवं सौन्दर्य को बढाने वाले उपकरण।

(ख) शरीर की रक्षा करने वाले उपकरण।

वैभवगत उपकरण के अन्तर्गत उसका विभाजन प्राप्ति के स्रोत के आधार पर वर्गों मे हो सकता है—

(१) धातु या खनिज के रूप मे प्राप्त होने वाले उपकरण—अलकार आदि।

(२) वनस्पतियो से प्राप्त होने वाले उपकरण—फूल माला आदि।

(३) जीवो से प्राप्त होने वाले उपकरण—मोती, मोरपख आदि।

शरीर की रक्षा करने एव उसको ढकने के लिये मनुष्य निर्मित वस्त्रादि का प्रयोग किया जाता है। क्रमश इन सब पर विचार किया जायगा।

(१) **अलंकार**—रीतिकालीन साहित्य मे युग की भोगपरक दृष्टि सर्वत्र लक्षित होती है। नायिकाए अपने सौन्दर्य और यौवन को प्रभावशाली एव ऐन्द्रिय बनाने के लिये सदैव से प्रयत्न करती चली आई है। इसके लिये निसर्गगत सहज एव कृत्रिम अर्थात् अर्जित सौन्दर्य की अभिरुचि देखी जाती है। सहज सौन्दर्य मुग्धा-नायिकाओ मे स्वत ही प्रतिभासित होता रहता है। मध्या और प्रौढा नायिकाओ मे सहज सौन्दर्य की अपेक्षाकृत कमी पड जाती है। इसी कमी की पूर्ति हेतु षोडश-शृङ्गार की व्यवस्था की जाती है। मुग्धाओ के शृङ्गार का वर्णन भी विशेप अवसरो पर किया गया है। इन अलकरणो से अनेक उद्देश्यो की सिद्धि बताई गई है।

(अ) अलकारो द्वारा नायिका के सौन्दर्य का उत्कर्ष दिखाना।

(आ) मादक वातावरण की सृष्टि करना और प्रेमोद्दीपन करना'

(इ) विशेष अभिप्राय की अभिव्यक्ति करना।

अलकारो के प्रयोग से नायिका का रूप पहले की अपेक्षा अधिक बढ जाता है। ऐसा वर्णन अनेक स्थलो पर हुआ है। इनसे मादक वातावरण की

सृष्टि होती है। किकिणी, नुपूर, बिछुवा, क्षुद्रघटिका आदि द्वारा नादात्मक सौन्दर्य उत्पन्न होता है। इससे उत्पन्न ध्वनि वातावरण की सृष्टि करती हुई नायक के मन मे मादकता और आकर्षण का सचार करती है। अलकारो का अनुरणन नायक मे औत्सुक्य और जिज्ञासा को उत्पन्न करता है। इसके श्रवण मात्र से रमणी की मोहक मूर्ति साकार हो उठती है।[1] अभिसार एव समागम प्रसग पर अलकारो के अनुरणन से उत्पन्न ध्वनि द्वारा मादकता की सृष्टि की गई है। इसीसे अभिसार के अवसर पर प्रौढा अभिसारिका निर्भय होकर प्रिय मिलन के लिये झकार की चिन्ता न करती हुई जाती है। मुग्धा मे सकोच, लोक-लाज और भय की मात्रा अधिक होती है इससे वह झकार करने वाले आभूषणो को या तो उतार देती है अथवा उसका शब्द होने से रोक रखती है। सामान्य अभिसारिका मे इस प्रकार का कोई भी बन्धन नही होता। इससे इसके आभूषणो द्वारा मादकता फैलती हुई चलती है। मतिराम, देव, पद्माकर बेनी प्रबीन आदि कवियो ने आभूषणो के झकार के विषय मे नायिकाओ की अवस्था और परिस्थिति का ध्यान रखा है। इससे उत्पन्न मादक वातावरण के कारण नायक और नायिका दोनो के मन मे प्रेम का उद्दीपन हो जाता है। समागम के समय इस झकार से रस की दीप्ति हो जाती है।[2] नुपूरादि की झकार सहजरति और क्षुद्रघटिका का झकार विपरीत रति को व्यक्त करता है। इससे स्पष्ट है कि अलकारो के प्रयोग और झकार द्वारा विशेष स्थिति और अभिप्राय की व्यञ्जना भी होती है। इससे नायिका की अवस्था का ज्ञान होता है। प्रौढा नायिकाए झकार की चिन्ता नही करती हे, परन्तु मध्या और मुग्धा की झनकार को सुनकर सखियाँ उनका परिहास करने मे चूकती भी नही है। इसीसे लज्जाशीला नायिका लोगो के सो जाने तक प्रतीक्षा करने को

---

1 किकिनी पायल पैजनियाँ, बिछुआ घुँघरू मिल गाजन लागे।
(क) मानो मनोज महीपति के दरबार मरातम बाजन लागे।
सुन्दरी तिलक छद ४३

2 किकिनी नेवर की झनकारनि चारु पसार महारम जालहि।
काम कलोलनि मै 'मतिराम' कलानि निहाल कियो नदलालहि।
(ख) भूषन कनक घुँघरुनु की घनक रति
कूज की झनक बढै लालसा प्रसग की। तोषसुधानिधि छद ६९
(ग) भाव-विलास छद ३९ देव।

कहती है ।[1] उसे भय है कि आभूषण की ध्वनि से सखियाँ जान जायेगी और प्रात काल उसका परिहास होगा । इसके वितरीत प्रोढाए इस झनकार की चिन्ता नही करती है । 'साजिसिंगारिन सेज चढी, तवही ते सखी सव सुद्धि-भुलानी । कचुकी के वद छूटत जाने न नीवी की डोरि न टूटत जानी । ऐसी विमोहित ह्वै गई है जनु जानति रातिक मै रति मानी । साजी सवै रसना रस केलि मे वाजी कवै विछुवानि की वानी ।[2] इन विचारो से स्पष्ट हो जाता है कि अलकारो के प्रयोग मे ऐन्द्रिय दृष्टिकोण सदैव वना रहा है । इससे उत्पन्न मदिर वातावरण रमणी के प्रति आकर्षित करके नायक को अधीर वना देता है । इसके साथ ही आभूषणो के विभिन्न अ गो मे प्रयोग से उत्पन्न सौन्दर्य को भी जान लेना चाहिए ।

सौन्दर्य साधक अलकारो की सख्या अनेक मानी गई है । इनमे वारह आभूषणो को प्रमुखता प्रदान की गई है । इन आभूषणो मे शीशफूल, टीका, वाली, वेसर, श्रीकण्ठ, हार, वाजूवन्द, चूडी, ककन, अ गूठी, किंकिणी और नूपुर का वर्णन है । वलभद्र ने भी वारह आभूषणो का समर्थन किया है ।[3] इन आभूषणो का प्रयोग मस्तक, कान, नाक, गला, वाहु, कटि और पैरो मे होता है । रीतिकालीन साहित्य मे प्राय स्त्रियो के आभूषणो का ही वर्णन

---

1 झाँझरियाँ झनकैंगी खरी खनकैंगी चुरी तनकौ तन तोरे ।
'दास' जू जागती पास अली परिहास करैंगी सवै उठि भोरै ।
सौह तिहारी है भागी न जाऊँगी आई हौ लाल तिहारेई धौरे ।
केलि के रैनि परी है घरीक गई करि जाहु दई के निहोरे ।
मुन्दरी तिलक छद ३९

2 भावविलास छद ४७ देव

3 वेनी भाल माँगश्रुत नासिका के 'वलभद्र'
कव के कनक सुवरन अपार है ।
भुज पहुँचानि कर पल्लव के कौन गनै,
उरन के मण्डल जित हमेल हार है ।
कटि मुरवान के सु हाथन कौ अगुरी,
कि विछियानि दे केणित कोऊ नकार है ।
चारि मन धातु रसुगधवार अलकार,
वारह आभरण ये सोलह सिंगार है ।
वलभद्र पृ० २६६/६५ पूना विश्वविद्यालय से प्राप्त हस्त लिखित प्रति

किया गया है। कुछ कवि इस परम्परा के अपवाद मे पुरुषो के प्रसाधनो की ओर आकृष्ट दीख पडते है। ऐसे कवियो मे हठी और बकसी हसराज आदि की गणना की जा सकती है।

अलकारो के धारण करने की कई प्रवृत्ति रीतिकाल मे दीख पडती है (१) सौन्दर्य की अभिवृद्धि (२) वैभव और ऐश्वर्य का प्रदर्शन (३) आत्म-तुष्टि का भाव। इन तीनो ही प्रवृत्तियो मे रीतिकालीन कवि सफल हुए। इन अलकारो की प्राप्ति के स्रोत पशु, खनिज धातु एव रत्नादि है। पशुओ से प्राप्त होने वाले पदार्थो मे मोती और मोर पखो की गणना होगी और खनिज पदार्थों के रूप मे स्वर्ण, चादी, हीरा, आदि अन्य रत्नो की गणना होती है।

आभूषण रूप मे प्रयुक्त बहुमूल्य रत्नो आदि के प्रयोग से वैभव के प्रदर्शन की वृत्ति सन्तुष्ट होती है। इनका प्रयोग स्त्रियाँ प्रसाधन के रूप मे करती आ रही है। इससे अपने रूप को बढाकर प्रिय को रिझाने का प्रयास किया जाता है। इन बहुमूल्य रत्नादि के धारण करने से सामाजिक मर्यादा एव वैभव का ज्ञान भी होता है, परन्तु रीतिकालीन कवियो की दृष्टि इन अलकारो के सौन्दर्यविर्द्धक गुण की उपयोगिता को समझकर ही किया गया है। रीतिकालीन नारी के आभूषणो मे मोती के हार, नथुनी, कचन के बिछुआ,[1] नग, गजमुक्ता की नथुनी, हीरा, मोती की माँग, कनक-किंकिनी और मोती की माला आदि आभूषणो की चर्चा की गई है।[2] इन आभूषणो मे मोती के प्रयोग के प्रति अधिक रुचि दिखाई पडती है।[3] समकालीन सामाजिक

---

1 (क) कचन के बिछुवा पहिरावत, प्यारी सखी परिहास बढायौ।
रीति० का९ सं० पृ० १९५/९९ मतिराम

(ख) तिय निपट लटी कटि मे, चटकीली कनक किंकिनी खनकै रास।
पचाध्यायी पृ० ४४ सोमनाथ भारतवासी प्रेस, प्रयाग १९३९ ई०

2 (क) हारन ते हीरे ढरैं, सारीके किनारिनते,
बारनते मुकुता हजारन झरत जात।
री० का० स० २२३/१३ पद्माकर

(ख) कहै 'पद्माकर' सुगन्ध सरसावै सुचि,
विथुरी विराजे बार हीरन के हार पर।
री० का० स० २३२/९ पद्माकर

3 (क) मोतिन को मेरो तोर्‌यो हरा, गहि हाँथन सो रही चूनरी पोढे।
री० का० सग्रह पृ० १९६/२१ मतिराम

वैभव को प्रदर्शित करने मे रत्नादि का प्रयोग केवल आभूषणो तक ही सीमित न रखकर उसके द्वारा चौकी तखत आदि बनाये जाने का वर्णन मिलता है।[1] कवियो ने हीरा, मोती, लाल, स्वर्ण आदि बहुमूल्य पदार्थो के विभिन्न आभूषणो द्वारा इसी वैभव को स्पष्ट किया है। वैभव परक अन्य पदार्थो मे सुगन्धित द्रव्य और वस्त्रादि का प्रयोग भी किया गया है। दरबारी वातावरण और सामन्ती जीवन के आडम्बर और दिखावे का प्रभाव कवियो की मस्तिष्क पर इतना अधिक हो गया था कि हठी जैसे कवियो की दृष्टि 'अलंकारो' से उत्पन्न सौन्दर्य या शोभावृद्धि की ओर जाती ही नही थी। वैभव से मिलकर शारीरिक

(ख) हिये **हार मोतिन** को सोहे अरु फूलन की माला।

सनेह सागर पृ० १८ बकसी हसराज

(ग) छोटी नथुनी बडे **मोतीयान**, बडी आँखियानि बडे सुघरे है।

री० का० स० पृ० ३५६/५ ठाकुर

(घ) बेदी ज्योति चहुँ निसि फैले मोतिन माँग भराई।

सनेह सागर पृ० ८० बकसी हसराज

(ड) मोल तोल छबि एकके गुही मोतिन की हार।

री० का० स० पृ० १३६/११

(च) नाक नथुनी के गजमोतिन की आभा केधो'
देहव त प्रगटित हिए को हुलास है।

री० का० स० १६८/३०

(छ) मोतिन की हार गरै, मोतिन सोमाँग भरै,
मोतिन सौं बैन गुही 'हठी' सुख साज की।

श्री राधा सुधाशतक छद ६

1 (क) चामीकर चौकीपर चपक वरन 'हठी'
अग की चमकै चारु चचल चलावती।

श्री राधा सुधा शतक वद २१

(ख) हीरन तखत बैठी राधे महरानी हठी,
रभा रति रूप गिरि धसक धरा परै।

श्री राधा सुधा शतक छद १६

प्रभा और ज्योति का चित्र प्रस्तुत करने मे इनकी कल्पना शक्ति अवश्य ही सचेष्ट थी ।[1]

इससे स्पष्ट हो जाता है कि सभी अगो मे अनेक आभूषणो को धारण करके शोभा-वृद्धि या ऐश्वर्य का प्रदर्शन होता था । शरीर के बारह अगों[2] मे बारह आभूषणो को धारण करते थे। रघुनाथ कवि ने बारह अगो मे इन आभूषणो के धारण करने का एक ही पद मे विवरण दिया है । मुग्ध-नायिकाओ के शहज सौन्दर्य मे एक ही आभूषण से अग शोभा बढ जाती है "और आभरण अब काहै को सजैगी वीर एक ही मे बाढी अग-अग छवि तुन्द है ।" बेनी प्रवीन के इस कथन से निसर्गगत शोभा की व्यञ्जना की गई है । इन आभूषणो के साथ ही जीव-जन्तुओ से प्राप्त होने वाले वस्तुओ को भी प्रसाधन के रूप मे प्रयोग किया जाता रहा । ऐसे प्रसाधनो को प्रकृति से प्राप्त होने वाले उपकरणो के अन्तर्गत स्वीकार किया गया है ।

(२) प्रकृति से प्राप्त उपकरण

सौन्दर्य के साधक उपकरणो मे से अनेक उपकरणो की प्राप्ति प्रकृति से हो जाती है । ऐसे उपकरणो मे फूल, मोर पख, मुंजामाल और बनमाल का वर्णन रीतिकाल मे मिलता है । फूल द्वारा सजाने की प्रवृत्ति स्त्री और पुरुष दोनो मे पाई जाती है । मोर पखादि का प्रयोग केवल कृष्णपक्ष मे ही वर्णित है । विपरीत शृङ्गार के समय राधा द्वारा मोर पखादि को धारण करके शोभा को बढाने की चेष्टा की गई है । मोर पख श्री कृष्ण का प्रिय-प्रसाधन है ।[3] इसके अभाव मे उनका शृङ्गार अधूरा रह जाता है । इसी के

---

1 जात रूप तखत पर बैठी रूप रासि राधे,
अंगन की प्रभा प्रभाकर को लजावती ।

श्री राधा सुधा शतक छद २५

2 सीस माल श्रुति नासिका, ग्रीवा कटि उर बाहु
मूल मणि अँगुरी चरन बारह भूषण चाहु ।

काव्य-प्रभाकर पृ० ३०९ सन् १९९९ जगन्नाथ दास भानु

3 (क) मोर के पखौवन को मजुल मुकुट माथे,
तैसिये लकुट कर कजनि ढरति है ।

बेनी प्रवीन पृ० १२४ नवरसतरग

साथ गुंजामाल को धारण करके प्रकृति प्रेम को व्यक्त किया गय है ।[1] मोरपख गुञ्जामाल वैजयन्तीमाल उनके प्रिय प्रसाधन है। वनमाल का प्रयोग भी श्रीकृष्ण करते थे ।[2] इन प्रसाधनो से स्पष्ट है कि मोर पखो को मस्तक पर, गुञ्जामाल, बनमाल और वैजयन्ती माल को गले मे धारण करते थे । मोर पखो का मुकुट, टटिया, किरीट आदि बनाया जाता था । पखो की चन्द्रकनि से श्रीकृष्ण की शोभा बढ जाती थी । प्रत्येक अवसर पर श्रीकृष्ण मोर पखो को अवश्य धारण करते ये । यहाँ तक कि उनके वीर-वेष के साथ भी शोभा-

---

(ख) मोर मुकुट की टटिया लीन्है, कीन्है नैन डिठौना ।

सनेह सागर पृ० १६

(ग) गुञ्ज गरे सिर मोर पखा, 'मतिराम' यो गाय चरावत डोलै ।

रीतिकाव्य सग्रह १६६/२१

(घ) मोर पखा 'मतिराम' किरीट मनोहर मूरति सो मनु लैगो ।

रीतिकाव्य सग्रह १६६/२५

(ङ) मोर मुकुट की चन्द्रकनि, यो राजत नन्दनद ।

गीकाव्य सग्रह पृ० २८८/८२

1 (क) सखि, सोहत गोपाल के उर वैंजयन्ती माल ।

रीतिकाव्य सग्रह पृ० २८७/६४

(ख) माल गरे गुञ्जन की कुञ्जन को वसिवो ।

रीतिकाव्य सग्रह पृ० २६३

(ग) मनो निसानो दृगनि दई गुञ्ज की माल ।

रीतिकाव्य सग्रह पृ० २१८/२६ रसलीन

(घ) गुञ्जन के अवतस लसै सिर, पच्छन अच्छ किरीट वनाओ ।

रीतिकाव्य सग्रह पृ० १६५/१४ मतिराम

2 (क) मोरपखा 'मतिराम' किरीट मे कठ वनी वनमाल सुहाई ।

रीतिकाव्य सग्रह पृ० १६६/२६ मतिराम

(ख) मेरो गह्यो उन हार झपोटि के, मैं हूँ गही वन माल झपेटा ।

रीतिकाव्य संग्रह पृ० २५०/१६ वेनीप्रवीन

(ग) कल कानन कुण्डल मोर पखा, उर पै वनमाल विराजति है ।

रसखान

विधायक मोर पखो का वर्णन अवश्य ही होता था। प्रत्येक ब्रजवासी इसी रूप मे श्रीकृष्ण को देखने का अभ्यस्त हो गया था। यही कारण है कि इस प्रसाधन से युक्त श्रीकृष्ण की शोभा को देखकर गोपिया अपनी सुधि-बुधि भूल जाती है, उनके नेत्र निर्निमेष हो श्रीकृष्ण को देखने लग जाते है और वृषभानु की किशोरी राधा तो बौरी हो जाती है।[1] प्रकृति से प्राप्त अन्य प्रमुख प्रसाधन मे फूलो का महत्त्व है, जिसे स्त्री-पुरुष दोनो ही प्रयोग मे लाते थे।

फूल—वनस्पति से प्राप्त होने वाले प्रकृति सुलभ पदार्थों मे फूलो द्वारा आज भी अपने को प्रसाधित करने की परम्परा है। फूलो मे नागरिक जीवन का वैभव एव ऐश्वर्य न होकर स्वच्छन्द और मुक्त जीवन का अबाध उपयोग है। इसी से प्रकृति-सुलभ इस उपकरण के प्रति नागरिक एव ग्राम्य जीवन दोनो की ही अभिरुचि व्यक्त होती है। फूलमालादि धारण करने के कई उद्देश्य दीख पडते है—

(१) सुगन्धित एव अनुकूल वातावरण की सृष्टि।
(२) अपने रूप को आकर्षक बनाकर प्रिय को रिझाना।
(३) घ्राणेन्द्रिय की तृप्ति और लोगो का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करना।

इन सभी उद्देश्यो की सिद्धि के लिए कृष्ण साहित्य मे फूलमालादि का प्रचुरता से प्रयोग किया गया है। गोपियाँ फूलो से अपने को सजाती है। फूलो की माला को ही आधार बनाकर श्रीकृष्ण पर व्यग्य करती है।[2] रूप

---

1 सूघै न सुबास रहै राग रग नै उदास,
भूलि गई सुरति सकल खान पान की।
कवि 'मतिराम' इक टक अनिमेष नैन,
बूझै न कहति बात समुझै न आन की।
थोरी सी हसनि मैं ठगौरी तेने डारी स्याम,
बौरी कीनी गोरे तै किसोरी वृषभानु की।
तब ते बिहारी वह भई दै परवान कीसी
जब मैं निहारी रुचि मोर के पखान की। "रसखान"

2 फूलन की माल मौसो कहत गुलाब' ऐसी,
फूलन को माल मेलि राखत न क्यो गरै।
मेरो मुख चद सौ बतावै ब्रजचद रोज,
कहो ब्रजचद जू सो चद देखिबौ करै। ब्र सा ना भेद पृ. २९६/३५७

गर्विता का प्रेम एव रूप-गर्व व्यक्त किया गया है। श्रीकृष्ण स्वय फूलो की माला बनाकर पहनाते है।[1] फूलो से निर्मित अलकारो द्वारा सभी अपना शृंगार करती है। बहुमूल्य आभूषणो के बीच के बिना शृंगार अधूरा ही रह जाता है। इसी से हीरे और मोती के अवतस तथा स्वर्ण के भूषणो की छवि के साथ चमेली और चपक की शोभा भी बनी रहती है।[2] फूल मालादि से युक्त श्रीकृष्ण की शोभा को देखकर गोपियाँ नेत्रो के लाभ का फल पा लेती हैं।[3]

अत स्पष्ट हो जाता है कि सौन्दर्य प्रसाधक उपकरणो की दो कोटियाँ रीतिकालीन साहित्य मे वर्णित है। (१) ऐसे उपकरण जो वैभव के प्रतीक तथा रूप के उत्कर्षक हैं। इनमे बहुमूल्य धातु एव रत्नो आदि के आभूषण का वर्णन है। स्वर्ण, हीरा, मोती, आदि के आभूषण इसी श्रेणी मे आते हैं। इन आभूषणो के प्रयोग से अ ग मे उत्पन्न होने वाली ज्योति एवं प्रकाश आदि का चित्र भी अ कित किया गया है। (२) दूसरी कोटि मे प्रकृति से प्राप्त किये जाने वाले सौन्दर्यसाधक उपकरणो की गणना होती है। इन उपकरणो मे सादगी और शोभा रहती है। इनसे वैभव परकता का ज्ञान न होकर मुक्त प्रकृति के उपयोग का ज्ञान होता है। ऐसे उपकरणो मे मोरपख बनमाला गु जामाला और फूल के विभिन्न आभरणो से उत्पन्न शोभा का वर्णन है। इन सभी आभूषणो आदि के धारण करने का उद्देश्य रूपोत्कर्ष द्वारा स्वय रिझना और प्रिय को रिझाना है। पद्माकर की गोपी राधा से ऐसे ही साज सजने को कहती है, जो गोपाल की आँखो मे प्रिय लगे।[4] इन प्रसाधनो के साथ वस्त्रादि के धारण द्वारा भी रूप का आकर्षण बढाया जाता है।

---

1 (क) हीरन मोतिन के अवतसनि, सोन के भूषण की छवि छावै।
हार चमेली के फूलन मे तिनमे रुचि चपक की सरसावै।
ललित ललाम ३३२

(ख) हिये हार मोतिन को सोहे, अरु फूलन की माला।
सनेह सागर पृ. १९

2 ब्रजभाषा साहित्य का नायिका भेद पृ० २०८/२९९ सेनापति।

3 आजु को रूप लखै नंदलाल कौ, आजुहि नैननि को फल पायो।
रसराज २३८ मतिराम

4 (क) मागि सवारि सिंगारि सुवारिन, बेनी गुही जु छत्रानि लौ छावै।
'त्यो पद्माकर' या विधि औरहु साजि सिंगार जु स्याम को भावै।

(२) शरीर की रक्षा करने वाले सौन्दर्य साधक उपकरण—

शरीर की शोभा को बढाने वाले उपकरणो मे धारण किये जाने वाले उपकरणो का महत्त्व सदा से रहा है। भूषण वस्त्र और फूलमालादि मे वस्त्र शरीर के आच्छादन के लिए प्रथम आवश्यक उपकरण है। इसका प्रयोग तीन दृष्टियो से किया जाता है। (१) अलकरण की प्रवृति (२) शालीनता (३) शरीर की रक्षा।

इनमे शरीर रक्षा-परक उपयोगिता तो स्पष्ट है। शालीनता मूलक प्रवृत्ति भी प्रबल रूप मे दीख पडती है। शालीनता का सामाजिक दृष्टि से महत्त्व है और इसके मूल मे लज्जा वर्तमान रहती है। यौन-अगो के ढकने और आकर्षण की दृष्टि से उसे उत्तेजक बनाने के वस्त्रो का महत्त्वपूर्ण योग रहता है। इससे अगो की रहस्यात्मकता बनी रहती है। देखने वालो के मन मे कौतूहल और जिज्ञासा का सचार होता रहता है। उपगूहन और प्रदर्शन दोनो ही भावनाए समानान्तर गति से चलती रहती है। इससे आलम्बन की मानसिक प्रवृति का ज्ञान होता है, प्रेम की उदीप्ति होती है और सहज सौन्दर्य मे उत्कर्ष आता है, अलकरण की प्रवृत्ति तृप्त होती है। इस वेशभूषा से स्वाभाविक शोभा बढती है। शोभा वृद्धि के लिए इन उपकरणो मे वस्त्र से कई उद्देश्यो की सिद्धि हो जाती है।

वस्त्रो के प्रयोग से उत्कर्ष को प्राप्त शोभा द्वारा नायक को आकृष्ट करने की चेष्टा की जाती है। इसीसे सौतो को शृगार करते हुए देखकर नायिका के मन मे भय उत्पन्न हो जाता है कि सौत नायक को अवश्य ही आकृष्ट कर लेगी। मिलन के प्रसग पर वेश-भूषा की व्यावहारिकता यथार्थ जीवन पर निर्भर है। वेश के आधार पर ही नायिका के कई भेद—वासक सज्जा और अभिसारिका—किये गये। उत्कण्ठिता और विप्रलब्धा नायिकाओ मे भी वस्त्रादि की महत्ता रहती है। प्राय मध्या और प्रौढा नायिकाए साज-सज्जा

रीझै सखी लखि राधिका को रग जा अग जो गहनो पहिरावै।
होत यो भूषित भूषणगात ज्यो डॉकट ज्योति जवाहिर पावै।

जगद् विनोद ६३/२५१

(ख) श्रीनदलाल गोपाल के कारण, कीन्हे सिंगार जो राधे बनाई।

सुन्दरी तिलक ६६/६८७

के प्रति अधिक सचेष्ट रहती है। मुग्धा की शालीनता स्पष्ट रूप से कुछ करने मे उन्हे रोकती है। वस्त्रो का चटकीलापन सामान्य नायिका मे अधिक पाया जाता है, क्योकि उसके समक्ष सामाजिक वन्धन या नियन्त्रण का कोई प्रश्न ही नही रहता। इससे वह यथारुचि अपने को अधिक से अधिक आकर्षक बनाने की चेष्टा करती है।

अभिसारिका नायिकाओ के वेश-वर्णन मे कवियो की रुचि रही है। रीतिकाल मे प्राय दो अवसरो पर वेश से उत्पन्न शोभा का वर्णन किया गया है। (१) दूती के कथन मे नायिका के सौन्दर्य तथा वेशादि का आकर्षक वर्णन (२) प्रत्यक्ष दर्शन के वाद नायक द्वारा नायिका के वेश की प्रशसा। इन सभी शोभाओ के लिए वस्त्रो का आकर्षक और समुचित प्रयोग आवश्यक था। इसी से रीतिकालीन कवियो ने वस्त्रादि वर्णन मे इसका ध्यान रखा है। इस युग का कवि वस्त्रो के चुनाव मे अनुरूप एव प्रतिरूप रग–योजनाओ, वस्त्रो के कटाव आदि के माध्यम से अ गो की सुडौलता और आकर्षण को वढाने की चेष्टा किया करता था। वह विविध प्रकार की सजावटो द्वारा शरीर को आकर्षक बनाता था। तत्कालीन वैभव परक समाज की प्रचलित परम्पराओ का स्पष्ट प्रभाव इन वस्त्रो पर दीख पडता है।

इस युग के प्रयुक्त वस्त्रो मे साडी, चोली, अगिया, चूनरी आदि प्रमुख है। पुरुषो के वस्त्रो मे पीताम्बर, चीर, वागा आदि का वर्णन है। इन वस्त्रो का प्रयोग केवल शरीर रक्षा के लिये ही न होकर उसकी सजावट के लिये भी होता था। इससे रगो की विशेपता महत्वपूर्ण स्वीकार की गई है। वस्त्र वारीक, झिलमिल और स्वर्णादि के तारो से खचित होते थे।

श्वेत, श्याम और हरे रग की साडी का वर्णन है।[1] श्वेत वस्त्रो के

---

1 (क) सेत सारी सोहत उजारी मुखचद की सी,
मलहनि मंद मुसकान की महमही। रसराज १७६ मतिराम

(ख) उजरई की उजारी गोरे तन सेत सारी,
मोतिन की ज्योति मो, जुन्हैया मानो वाढी है।
रीं० का० स० ३३६/५ आलम

(ग) गेह सो सनेह मैं सिधारी स्याम सारी सजि,
राजनि अन्धेरी न सजनी कोऊ साथ मे।
री० का० स० पृ० २४८/११

(घ) सेत वसन मे यो लसै, उघरत गोरे गात।
री० का स० पृ० १८१/५१ मतिराम

आकर्षण को बढाने के लिये विभिन्न उपमानो और अप्रस्तुतो द्वारा उसका चित्र प्रस्तुत किया गया है। श्वेत साडी के तत्काल प्रभाव का वर्णन है। स्वय कृष्ण भी उस रग मे रग जाते है।[1] इन रगो के अतिरिक्त केसरिया, कुसुम्मी आदि रगो से रगे वस्त्रो का प्रयोग किया जाता था।

वस्त्रो के प्रयोग मे शरीर शोभा बढाने के साथ ऐश्वर्य और वैभव का प्रदर्शन भी होता था। यह प्रदर्शन जरतास के काम द्वारा होता था।[2] 'जरतास' मे सोने के महीन तारो द्वारा वस्त्रो पर कारीगरी अकित की जाती थी। इससे शरीर पर भी उसके प्रकाश द्वारा सौन्दर्य की अभिवृद्धि होती थी तथा झिलमिलाते हुए चमक मे नायिका की शोभा कई गुनी बढ जाती थी।

चोली, कचुकि या अगिया का प्रयोग शरीर को उन्नत बनाने, यौन दृष्टि से आकर्षक दीखने और उभार लाने के लिये किया जाता था। इससे यौन अंग का महत्व बढता है, स्तन पुष्ट और कटि प्रदेश क्षीण दीखने लगता है। इसकी कोर को सुनहरी किनारी से मढकर इसकी शोभा बढा देते है। मूल रूप मे कचुकी के प्रयोग द्वारा स्तनो को उन्नत और आकर्षक बनाने तथा उसके द्वारा नायक को आकर्षित करने की चेष्टा की गई है। सभी स्त्रियाँ गोटा लगे हुए कटावदार व 'बादले' के काम से युक्त उभार देने वाली चोली का ही प्रयोग करती थी। इमसे अनेक अभिप्रायो की सिद्धि बताई गई है।[3] कचुकी के प्रयोग

---

1 (क) स्वेत सारी ही सो सबै सौते रगी स्याम रग,
सेत सारी ही सो रगे स्याम लाल रग मे। रसराज ३५७

(ख) लाल मन बूडिबै को देवसिरि सौत भई,
सौतिन चुनौटी भई वाकी सेत सारी रीं। काव्य-निर्णय दास

2 (क) सारी जरतारी की झलके झलकति तैसी,
केसरी के अ ग राग कीने सब तन मे। रसराज २०१ मतिराम

(ख) सारी जरतारी अ ग तैसी सग आलिका।
री० का० स० पृ० २५०/१७ बेनी प्रवीन

3 (क) कचुकी मे कसे आवे उकसे उरोज बिंदु,
बदन लिलार बडे बार घुमडे परत।

(ख) आँगी कसे उकसे कुच ऊँचे, हँसे हुलसै फुफदीन की फू दे।

(ग) भावते को सुनि आगम आनन्द, अ गन-अ गन मे उमह्यो है,—
गाढ़ी भई कर की मुंदरी, अ गिया की तनीन तनाव गह्यो है।
रसराज पृ० ३२० मतिराम

मे भावो की प्रेषणीयता, प्रियदर्शन की उमग, अ गो का उभार आदि व्यक्त किया गया है। इसका रंग श्वेत, श्याम, हरा[1] और केसरिया होता था। ये सभी रग गोरे वदन पर अच्छे लगते थे। कंचुकी के वर्णन की इस विशदता के मूल मे यही भावना काम करती है कि इसका प्रयोग वक्ष प्रदेश के लिये होता है, जो एक आकर्षक अ ग है और इसी अ ग के सहारे से नायक खिचा हुआ चला आता है। इस कचुकी के साथ चटकीले रग की चूनरी से शोभा बहुत बढ जाती थी।[2] इससे स्पष्ट हो जाता है कि वस्त्रो के प्रयोगादि के सम्बन्ध मे रीतिकाल का कवि सचेष्ट था। इसके प्रयोग का मुख्य रूप से दो ही उद्देश्य दीख पडता है—

(१) शालीनता जन्य लज्जा एव शरीर के विभिन्न अंगो की रक्षा।

(२) यौन दृष्टि से अधिक आकर्षक दीखने का प्रयास। इन दोनो ही उद्देश्यो मे रीतिकाल का कवि पूर्णत सफल हुआ।

सौन्दर्य के इन उपर्युक्त उपकरणो के सग षोडश शृङ्गार के अन्तर्गत अन्य भी अनेक प्रसाधनो का वर्णन किया गया है। इन प्रसाधनो को न तो धारण किया जा सकता है और न शरीर पर लगाया ही जा सकता है, अपितु इनका उपयोग अन्य रूप मे ही होता है। इसी रूप मे वे सौन्दर्य साधक उपकरण बन जाते है।

(घ) रजनी मधि प्यारी ने गौन कियो, निरखी अ गिया पिय रग भरी।
खरी खीन हरे रग की अ गिया, दरकी प्रगटी कुच कोर सिरी।
सुन्दरी तिलक पृ० २५८

(ङ) अँगिया की तनी खुलि जाति धनी,
सुवनी फिरि बाँधति है कसि के।
सुजान-विनोद पृ० ३५ देव, सभा, काशी

[1] (क) छोरी धरी हरी कचुकी न्हान को, अ गन ते जगे जोति के कौधे।
पद्माकर

(ख) खरी खीन हरे अँगिया, दरकी प्रकटी कुच कोर सिरी।
सुन्दरी तिलक पृ० २५८

[2] चुई सी परत चपल सी चै चपल,
चख-चचल चितौनि चटकीली चारु चूनरी। री० का० स० २५१/२५

(इ) सौन्दर्य के उत्कर्षक अन्य शृङ्गार-प्रसाधन—

प्रसाधन गत सौन्दर्य के अन्तर्गत षोडश शृङ्गार की चर्चा की जा चुकी है। ये शृङ्गार प्रसाधन शरीर पर धारण किये जाने पर, लगाये जाने पर अथवा अन्य प्रकार से शारीरिक शोभा के विधायक बनते है। इनमे आरम्भिक दो वर्गों का विवेचन किया जा चुका है। यहाँ षोडश शृङ्गार के अन्तर्गत अन्य प्रकार से शारीरिक शोभा को वढाने वाले उपकरणो का सकेत होगा।

इन उपकरणो के अन्तर्गत स्नान, केश-विन्यास और ताम्बूल रचना का प्रयोग वर्णित है। डिठौना और दर्पण द्वारा मुख शोभा वढाने अथवा निरखने का वर्णन मिलता है। डिठौना यद्यपि षोडश शृङ्गार मे वर्णित नही है, फिर भी इसके द्वारा शोभा की वृद्धि ही होती है। रीतिकालीन कवियो ने गोरे वदन पर डिठौने की श्याम शोभा से युक्त मुख को चन्द्रमा के समान देखा है।[1] इस साहित्य मे इसके माध्यम से नजर लगने से वचाने का भाव व्यक्त हुआ है।[2]

पान या बीरी के प्रयोग के दो उद्देश्य प्रतीत होते है (१) मुख बास द्वारा अनुकूल स्थिति उत्पन्न करना (२) अधरो की लालिमा बढा देना। कभी-कभी यह लालिमा इतनी अधिक वढ जाती है कि अधरो की निजी लालिमा अलग से लक्षित ही नही होती है।[3] पान की पीक गले मे उतरती हुई अच्छी लगती है।[4] पान खाने का अनेक अवसरो पर वर्णन है—(१) किसी का आदर सत्कार करने मे[5] (२) शोभा वढाने मे (३) स्वाधीन पतिका

---

1 विधु सम सोभा सार लै, रच्यौ बाल मुख इन्दु।
दियौ इन्दु मै अक मिस राहु हेतु मसि बिन्दु। विक्रम सतसई दो० २८६

2 (क) लौने मुँह दीठि न लगै, यो कहि दीनि ईठि।
दूनी ह्वै लागन लगी, दियै दिठौना दीठि।
बिहारी रत्नाकर दो० २८

(ख) निठुर दिठौना दीन्हे नीठि निकसन कहै,
डीठि लगिवे के डर पीठ दै गिरति है। सुजान-विनोद ६/१५

3 पान पीक अधरान मे सखी लखी न जाय।
कजरारी आँखियानि मे कजरा री न लखाय।

4 खरी लागति गोरे गरै, धसति पान की लीक।
मनौ गुलीबन्द लाल की लाल लाल दुति लीक। बिहारी

5 को है ज्योतिषी है, कछू जोतिषै विचारत हो ?
ये ही शुभधाम काम जाहिर हमारो है!

नयिका द्वारा शृङ्गार करने मे।[1] इन अवसरो द्वारा अनुकूल भावनाओ का वर्णन है, परन्तु प्रतिकूल परिस्थितियो मे पान द्वारा दुखद वातावरण एव भाव की अभिव्यक्ति हुई है। यह अभिव्यक्ति विरह प्रसंग पर अथवा गोत्र-स्खलन[2] प्रसग पर हुई है। यह पान का सौन्दर्यमूलक प्रयोग नही है। अन्य स्थलो पर इससे मुख की शोभा ही वढाई गई है।

स्नान द्वारा नायिका के मादक और अनावृत सौन्दर्य को देखने की ही अधिक चेप्टा की गई है। सद्य स्नाता का चित्र कही-कही प्रस्तुत हुआ है। अन्यत्र केवल स्नान का नाम मात्र ले लिया गया है। ऐसे स्थलो पर यह वर्णन के अनुरोध से ही प्रस्तुत किया गया है।[3] इससे शोभा का विकास नही बताया गया है। फिर भी इतना तो मानना ही पडेगा कि स्नान द्वारा निर्मलता से शारीरिक कान्ति का विकास होता है। केश-विन्यास से सुन्दरता आती है। प्रिय द्वारा किये गये इस विन्यास मे उसका अनन्य प्रेम व्यक्त होता है।

षोडश शृङ्गार मे दर्पण महत्त्वपूर्ण होता है। सभी शृङ्गार कर लेने के बाद नायिका की आत्मतुप्टि के लिये दर्पण का देखना आवश्यक है। इसकी व्यावहारिक उपयोगिता के सम्वन्ध मे दो मत नही हो सकते है। अपने रूप एव शृङ्गार को देखकर नायिका स्वय सन्तुष्ट हो जाती है, तो उसका रूप नायक को अवश्य ही आकर्पित कर लेने मे समर्थ हो सकेगा। दर्पण का दो प्रभाव वर्णित है। (१) नायिका स्वय अपने रूप पर रीझती है और (२, दर्पण के माध्यम से प्रिय को देखने की चेप्टा की गई है। यथा —

आवौ बैठ जावौ, पानी पीवौ, पान खावौ फेर,
होय के सुचित नेक गणित निकारौ तो। री० का० स० पृ० ३६१

1 ब्रजभाषा साहित्य का नायिक भेद पृ० ३०६ छद ३८७;
पृ० ३०८ छद ३९५-३९६-३९८-४०३

2 (क) बूझत ही वह गोपी गुपालहिं, आजु कहू हँसि के गुण गार्थाहं।
ऐसे मे काहू को नाम सखी, कहि कैसे धो आइ गयो व्रजनार्थाहं।
खाति खवावति ही जू वीरी, सु रही मुख की मुख हाथ की हाथनि।
केशवदास

(ख) वार-वार वरजति वावरी है वारौ प्रान,
वीरो ना खवाऊँ वीर विप सी लगति है। केशवदास

3 ब्र० सा० का नायिका भेद ३०९ छद ४०१ तथा पृ० ३१८ छय ४४६

(१) 'केशव' एक समै हरि राधिका आसन एक लसै रग भीनै।
आनन्द सो तिय आनन की द्युति देखत दर्पण मे दृग दीने।

(२) माल गुही गुन लाल लटै लपटी लर मोतिन की सुख दैनी।
ताहि विलोकत आरसी लैकर, आरस सो इक सारस नैनी।

केशव री० का० स० पृ० १४६

उपर्युक्त षोडश-शृङ्गार वर्णन के आधार पर हम यह निर्णय ले सकते है कि आलोच्य काल के कवियो ने इनके प्रयोग मे दो बातो का ध्यान रखा है (१) वैभव एव ऐश्वर्य का प्रदर्शन (२) शारीरिक रूपाकार के आकर्षण को अधिक से अधिक बढाकर अपने प्रिय को रिझाने का प्रयास। इन दोनो ही बातो मे रीतिकालीन कवियो को पूर्ण सफलता मिली है। प्रयोग किये जाने वाले प्रसाधनो द्वारा यह बताने की चेष्टा की गई है कि इनके द्वारा शरीर मे कोमलता के उद्भव से स्पर्श-सुख की अनुभूति होती है तथा दृश्य रूप मे आकर्षण एव मोहकता बढ जाती है। इससे स्पर्श-जन्य सुखदता और दृश्य सुखदता दोनो की ही उपलब्धि होती है। लौकिक जीवन मे नायक-नायिका का यह सुख ही उनके लिए काम्य आकाक्षा है और इसकी तृप्ति मे रीतिकालीन कवि पूर्णत. सफल हुआ है।

तटस्थ-सौन्दर्य—रीतिकालीन कवियो ने तटस्थ सौन्दर्य के अन्तर्गत प्राकृतिक शोभा का वर्णन किया है। बहुधा शरीर या प्रस्तुत वर्ण्य वस्तु के उपमान के रूप मे प्रकृति का ग्रहण हुआ है। उपमानो के ऐसे प्रयोग से प्रस्तुत का सौन्दर्य तो बढता ही है, अप्रस्तुत के गुणो का भी ज्ञान होता है। उनकी कोमलता, हृदय-आवर्जकता, स्पर्श-सुखदता आदि अनेक गुणो का ज्ञान होता है। सादृश्य मूलक अलकारो मे इस प्रकार के अप्रस्तुतो का अधिक प्रयोग मिलता है। नायक या नायिका के अग-वर्णन या उसके उठते हुए यौवन के विकास को पुष्पो के खिलने के समान बताकर पुष्प की प्रफुल्लता, विकास, शोभा, सुगन्धि आदि अनेक तत्त्वो का एक साथ वर्णन कर दिया जाता है। अप्रस्तुतो के सफल प्रयोग से ही प्रस्तुत के रूप मे निखार उत्पन्न होता है। एक उदाहरण देखे—

"कनक लता श्रीफल अरी, रही विजन वन फूलि।
ताहि तजत क्यो बावरे, अरे मधुप मति भूलि। वाणीभूषण

इस वर्णन मे सोने की लता, श्रीफल आदि के कथन से नारी का सम्पूर्ण रूप-चित्र उपस्थित कर दिया गया है। ऐसे स्थलो पर प्रकृति के ये

उपकरण शोभा विधायक रूप मे प्रयुक्त हो जाते हैं। इनके प्रयोग से नारी के रूप-चित्र का जो बिम्ब-विधान होता है, उसकी व्यञ्जना करने मे ये उपमान सहायक होते है और प्रयुक्त इन अप्रस्तुतो द्वारा अभिव्यञ्जना-शिल्प इतनी सजी-सँवरी रहती है कि अश्लीलता की गन्ध नही मिलती। गुण और धर्म साम्य का आधार लेकर वर्णन को अनुभूतिमय बनाया जाता है। कही-कही तो केवल उपमानो के माध्यम से ही प्रस्तुत का रूप उपस्थित किया जाता है।

'कोक नद पद कज कोष से गुलफ गोल,
जघ कदली से लक केहरि विसाल सो।
पान सो उदरि नाभि कूप सी गभीर गुर,
उर नवनीतपानि पल्लव रसाल सो।
ग्वाल कवि लसति लतान सी भुजाहै वैस,
कवु सो गरो है मुख नील कज जाल सो।
स्याम के सचौर जौन गज सो सुजघ वारो,
सुसि सो मुकुट सब तन है तमाल से।[1]

उपर्युक्त छद मे कोकनद, कोप, कदली, केहरि, पान, कूप, रसाल, लता, कवु, नील कज, गज आदि के कथन मे उसके प्रति सौन्दर्य विषयक धारणा व्यक्त होती है। साहित्यिक परम्परा मे इन प्रयुक्त शब्दो का गुण बोधक जो प्रतीकात्मक अर्थ है उससे प्रस्तुत का रूप-चित्र गुणो के आधार पर सौन्दर्योत्कर्षक हो जाता है।

प्रकृति आदि तटस्थ सौन्दर्य के व्यञ्जक पदार्थो का वर्णन दो अवसरो पर हुआ है। (१) सयोग के अवसर पर (२) वियोग के अवसर पर। सयोग मे तटस्थ सौन्दर्य की अभिव्यञ्जना दो दृष्टियो या अवसरो पर की गई है। प्रथम नायिका या नायक के अग-प्रत्यग वर्णन के चाक्षुष रूप या उसके सूक्ष्म रूप वर्णन मे कान्ति, छवि, लावण्य आदि के अकन मे उपमान रूप मे इनका प्रयोग हुआ है। इन उपमानो द्वारा शरीर की विभिन्न छवियाँ अकित की गई है। इनसे शरीर की मृदुता, कोमलता, अग दीप्ति आकार आदि का बोध होता है। यह बोध रागात्मक अनुभूति मे परिवर्तित होकर आलम्बन के रूप को अधिक बढा देता है। बहुधा मानव जब अपनी प्रशसात्मक भावनाओ की तृप्ति मानव मात्र के कथन से नही कर पाता, तभी उसे प्रकृति की शरण मे जाना

पडता है। वह मन एव ज्ञानेन्द्रियो के अनुभव क्षेत्र मे आने वाली प्रकृति प्रदत्त वस्तुओ मे सुन्दरता एव तत्सम्बन्धी सभी गुणो का अनुभव करके प्रस्तुत को उत्तम से उत्तम बनाना चाहता है। कलाकार का यह विचार है कि इससे सुन्दरता की उसकी मानसिक कल्पना प्रेषणीयता का गुण पाकर दूसरो के मन मे भी उसी प्रकार की भावानुभूति उत्पन्न कर देती है। इस दृष्टि से प्रकृति आदि तटस्थ पदार्थो का उपयोग सौन्दर्य एव आकर्षण को बढाने के साधन के रूप मे होता है। इसे तटस्थ सज्ञा इस कारण प्राप्त होती है कि सौन्दर्य-साधक ये उपकरण आलम्बनगत न होकर आलम्बन से अलग होते है, परन्तु अपनी इस तटस्थता मे भी सौन्दर्य के उपकारक होते है। इनसे रति की भावनाएँ उद्दीप्त होती है। अत तटस्थ सौन्दर्य का यह प्रियता मूलक उपयोग है, क्योकि इनके प्रयोग से आलम्बन या आश्रय की बढी हुई छवि आकर्षण का कारण बनकर प्रिय के मन मे अनुकूल भावनाओ का सचार करने मे समर्थ होती है।

प्राकृतिक साधनो द्वारा सयोग की अवस्था मे भावनाएँ उद्दीप्त होती है। नदी तट, वन, उपवन आदि से प्रिय मिलन की आकाक्षा बलवती हो जाती है। ऐसे स्थलो पर इनका चयन उद्दीपन की दृष्टि से किया गया है। ये वातावरण का निर्माण करके उसकी मोहकता बढाने मे सहायक सिद्ध होते है। इस दृष्टि से ये सौन्दर्य परक होते हुये भी साक्षात् रूप मे न होकर अवान्तर रूप मे ही होते है। इनकी सौन्दर्य मूलकता उद्दीपन की सरणि से होकर आगे आती है। इस प्रकार का उदाहरण कही से भी लिया जा सकता है।[1]

---

1 (क) पाय रितु ग्रीषम विछायत बनाय,
वेप-कोमल कमल निरखत दल टकि-टकि।
इदीवर कलित ललित मकरद रची,
छूटत फुहारे नीर सौरभित सकि–सकि।
'ग्वाल कवि' मुदित विराजत उसीर खाने,
छाजत सुरा मे सुधा सुपमा को छकि-छकि।
होत छवि नीकी वृपभान-नदिनी की सोह,
भानु-नदिनी की ते तरगन को तकि-तकि।

ब्रजभापा साहित्य का ऋतु सौन्दर्य

(ख) 'रसिक-विहारी' चारु हार मृदु फूलन के,
मरस सुगध चाह अमित वढावै है।" वही पृ ७२

प्राकृतिक उपकरणो की सौन्दर्य मूलकता एवं मृदुता का ज्ञान नायिका की कोमलता व्यक्त करते समय कराया गया है। ऐसे चित्रो के अप्रस्तुत विधानो मे अनुभूति की भावना ही अधिक प्रधान रहती है। नायिका की कोमलता का कथन इन्ही उपमानो द्वारा हुआ है। उसके श्रम की व्यञ्जना मे फूलन के हार, तारक वृन्द, कुन्द, चन्द आदि का ग्रहण हुपा है—

'मैंने तो कही ही वह अति सुकुमार नारि,
हार-हार जाति हार फूलन के धारे है।
तुम्हे जक लगी लाल इहाँ ही बुलाइवे की,
याते जाय कहे प्रेम वचन तिहारे है।
'ग्वाल' कवि नैक चलि वैठि गई, सी करि,
कैसी कर समूह वाके वदन पसारे है।
तारन. के वृन्दन को करत हुतो कुन्द,
चद आज चढि चद पर चमकत तारे है।[1]

'चन्द्रमा पर तारो का चढना' यह अप्रस्तुत योजना वस्तु को सुन्दर वना देने मे समर्थ है। इसी के माध्यम से मुख रूपी चन्द्रमा पर स्वेद कण रूपी तारो की व्यञ्जना की गई है।

प्रसाधन से युक्त प्रकृति के उपकरण से रूप निखर जाता है। उसमे अनोखी मोहकता आ जाती है, दीप्ति फैलने लगती है—

सेत सारी सोहत उजारी मुख-चद की सी,
मलहनि मंद मुसक्यान की महमही।
अँगिया के ऊपर ह्वै उलही उरोज ओप,
उर 'मतिराम' माल मालती डहडही।
माँजे मजु मुकुट से मजुल कपोल गोल,
गोरी की गुराई गोरे गातन गहगही।
फूलनि की सेज वैठी दीपति फैलाय लाय,
वेला को फुलेल फूली वेलि सी लहलही।

यहाँ नायिका को लता का समान फूली हुई वताकर उसकी कोमलता, अगो की प्रफुल्लता और विकास का स्पष्ट सकेत है। अन्य शब्दो के प्रयोग मे

---

1 रसरग-ग्वाल प्रथम उमग छन्द ६५

भी सौन्दर्य की यही भावना दीख पडती है। इन सभी प्रयोगो से स्पष्ट है कि प्रत्येक युग का कवि अपने आलम्बन रूप नायक अथवा नायिका के रूप-सौन्दर्य की उत्तमता के वर्णन के लिये प्रकृति आदि से विभिन्न वस्तुओ का सग्रह करके अपनी इस भावना की तृप्ति करता है। आलम्बन से भिन्न सभी प्रेमोद्दीपक पदार्थ, वस्तु या व्यक्ति आदि को तटस्थ साधन के रूप मे स्वीकार किया गया है। इससे ये सभी साधन आत्मगत न होकर परगत है और इसी रूप मे इनका सकेत किया गया है।

अन्त मे यह कहा जा सकता है कि रीतिकालीन कवियो की सौन्दर्य चेतना बहुत ही सचेष्ट थी। उन्होने कलात्मक अभिव्यक्ति के माध्यम से रूप-सौन्दर्य का हृदय ग्राही और चमत्कार-प्रधान जो चित्र प्रस्तुत किया है, वह अपनी अभिव्यञ्जना मे सर्वथा नवीन, आकर्षक एव रस की अनुभूति कराने वाला है। यही कारण है कि शुद्ध साहित्यिक दृष्टि से इस काल के काव्य मे रूप-सौन्दर्य की पूर्ण अभिव्यक्ति अपनी सफलता की उद्घोषणा करती रहती है। ऐसे काव्य मे अकित रूप-सौन्दर्य मे अवगाहन करता हुआ सहृदय एक अनिर्वचनीय सुख का अनुभव करके उसमे पूर्ण तन्मय हो जाता है और यही इस काव्य की सफलता है।

उपसंहार

उपसंहार—

मध्यकालीन हिन्दी साहित्य मे रूप-सौन्दर्य के स्पष्टीकरण के हेतु जिस साहित्यिक क्षेत्र को ग्रहण किया गया है, उसे भक्तिकाल और रीतिकाल मे विभाजित कर दिया गया है। इसकाल के आलम्बन के रूप-सौन्दर्य को वर्णन करने के लिये आलम्बन के शोभा-विधायक धर्मो की चर्चा की गई है। इनके अन्तर्गत यौवन, रूप, लावण्य, सौन्दर्य, अभिरूपता, सुकुमारता आदि की गणना होती है।

सौन्दर्य के विधायक तत्त्वो मे आलम्बन के गुण और उसकी चेष्टा मे अलकृति और तटस्थ का नाम लिया नया है। इन चारो को उद्दीपन के अन्तर्गत माना गया है। इनसे आलम्बन का रूप-सौन्दर्य उत्कर्ष को प्राप्त होता है। आलम्बन का गुण आश्रय को आकृष्ट करने का प्रधान कारण होता है। उसकी चेष्टाओ से भावनाएँ उद्दीप्त होती हैं, आलम्बन की मोहकता बढती है और आश्रय मुग्ध होकर अनायास ही खिचा हुआ चला आता है। चेष्टा के अन्तर्गत आश्रय को मोहित कर लेने वाले हाव, मुसकान चितवन आदि तथा अनेक अलकारो—लीला, विलास, कुट्टमित आदि की गणना होती है। हाव एवं अलकारो के समुचित विधान से रूप आकर्षक हो जाता है और आलम्बन की शोभा उद्दीपक बन जाती है।

अलकृति के अन्तर्गत शोभा-विधायक वाह्य प्रसाधनो की चर्चा हुई है षोडश-श्रृंगार सौन्दर्य को बढाने मे सदा से मान्य रहा है। इसमे धारण किये जाते वाले, अन्य प्रकार के (स्नान, दर्पण, पान) और शरीर पर लगाये जाने वाले उपकरणो की गणना होती है। वस्त्र, आभूषण, अगरागादि द्वारा आज भी स्त्रियाँ अपने सौन्दर्य को मुखरित करके आकर्षण को बढाती है। इस बढे हुए आकर्षण का मुख्य उद्देश्य लोगो को अपनी ओर खीच लेना होता है।

'तटस्थ' तत्त्व को सौन्दर्य साधक उपकरण न मानकर उद्दीपक माना गया है। इसमे प्रकृति के विभिन्न अगो—चन्द्र, चन्द्रिका, वाग, तरु, कोकिल, मलय—पवन, एकान्त आदि—द्वारा मानव की रतिमूलक भावना को उद्दीप्त करने की चेष्टा की जाती है। प्रकृति के माध्यम से नायक—नायिका की अनुकूल अथवा प्रतिकूल मानसिक स्थितियो का चित्रण होता है। प्रकृति भाव की व्यञ्जना मे सहायक होकर आती है। यह सौन्दर्य—वर्णन का सीधा अथवा

प्रत्यक्ष साधन 'नही है' अपितु प्रकृति की पृष्ठभूमि मे व्यक्ति ही अपनी भावनाओ की तृप्ति का एक साधन पा लेता है। ऐसी स्थिति मे नायिका माध्यम का कार्य सम्पन्न करती है और नायक अपनी ही भावना का उपभोग करता है। इससे प्रकृति सौन्दर्य-साधक न होकर भावनाओ की उद्दीपक ही रही है। इस रूप मे प्रकृति को प्रस्तुत करना इस प्रबन्ध का उद्देश्य नही है। इसी कारण केवल मानवीय रूप-सौन्दर्य के स्पष्टीकरण हेतु गुण, चेष्टा और प्रसाधनो से उत्कर्ष को प्राप्त सौन्दर्य को ही विश्लेषित करके मध्यकालीन साहित्य मे इस का स्वरूप प्रस्तुत किया गया है।

मध्यकालीन साहित्य मे केवल नारी के ही रूप-सौन्दर्य को प्रश्रय न देकर पुरुष-सौन्दर्य को भी वर्णन का विषय बनाया गया है। भक्तिकालीन कवियो ने पुरुष के बाह्य एव आन्तरिक सौन्दर्य का मोहक चित्र प्रस्तुत किया है। रीतिकाल मे नारी-सौन्दर्य की प्रमुखता होते हुए भी पुरुष सौन्दर्य सर्वथा आँखो से ओझल नही रहा है। प्रेम के आलम्बन रूप मे कृष्ण-विषयक रचनाओ मे पुरुष सौन्दर्य का यदा-कदा चित्रण मिल जाता है। 'ग्वाल' जैसे कवियो ने तो स्वतत्र रूप से श्रीकृष्ण के नख-शिख सौन्दर्य की अभिव्यक्ति करने के लिये पूरा ग्रन्थ पुरुष-सौन्दर्य के ऊपर लिखा है। ऐसे स्थलो पर परम्परा का पालन होते हुए भी प्रभावोत्पादकता है परन्तु ऐसे ग्रन्थो की सख्या कम है। मुक्तक काव्य मे श्रीकृष्ण की शृ गार मूलक चेष्टाए कम वर्णित की गई है। रसखान जैसे कवियो ने अनुभावो का वर्णन किया है, परन्तु प्रसाधन-गत सौन्दर्य के उपकरणो पर दृष्टि जम नही सकी है। बाह्य आकर्षण के वर्णन की परम्परा भी कम दीख पडती है क्योकि रीतिकाल की भोगपरक दृष्टि पुरुष अगो के सौन्दर्य मे हटकर नारी सौन्दर्य के उद्घाटन मे लगी रही।

इस काल की नायिका के सौन्दर्य वर्णन मे मुख्यत' गुण गत लावण्य एवं उसके प्रभाव का सफल और सजीव चित्रण हुआ है। इससे सौन्दर्य-चित्रण मे अनुभूतिपरक सचाई दीख पडती है। यह सचाई युग से प्रभावित वैभव और ऐश्वर्य के विलास परक उपकरणो और रूप मे चमक और ज्योति उत्पन्न करने वाले साधनो से लाई गई है। नायिका के सहज लावण्य द्वारा स्वच्छन्द धारा के कवियो ने रूप सौन्दर्य का यथार्थ और मर्मस्पर्शी रूप भी प्रस्तुत किया है। इन दोनो पद्धतियो से सौन्दर्य पूर्णत्व को पहुँच जाता है। यह पूर्णता नारी और पुरुष दोनो के ही सौन्दर्य-वर्णन द्वारा लाई गई है। यद्यपि पुरुष-सौन्दर्य का वर्णन प्रधान रूप से न होकर प्रसगत ही हुआ है, फिर भी ग्वाल आदि कविनों ने रीतिकालीन परम्परा के विपरीत कृष्ण को आलम्बन बनाकर पुरुष-सौन्दर्य की अभिव्यक्ति मे नवीन प्रयोग द्वारा नवीन दृष्टि दी है।

रीतिकालीन कवियो ने सौन्दर्याभिव्यक्ति के लिये 'सुन्दर' के प्रतीक रूप मे कुछ वस्तुओ को ग्रहण कर लिया है। इन्ही के माध्यम से मानवीय जीवन को आधार बनाकर मासल-सौन्दर्य के प्रमुख आलम्बन रमणी की दैहिक रूप की सज्जा और कामोत्तेजक अगो का आकर्षक रूप-चित्र उपस्थित किया गया है। यह चित्र किशोर अथवा किशोरी का है, क्योकि शृ गार के सार रूप मे यही अवस्था सर्वोत्तम मानी गई है। ऐसा मासल, वाह्य और हृदय-आवर्जक चित्र अन्य स्थलो पर प्राप्त नही हो पाता है! नवल अगनाओ की मकरध्वज के वाणो से विद्ध छवि की अभूतपूर्व आकर्षक कल्पना, वय' सन्धि और यौवन के उठान के वर्णन के प्रति सचेष्टता और वीर्य-विक्षोभक अगो का मासल सौन्दर्य इस युग की अनिवार्य विशेषता है।

इन अगो मे स्तन, नितम्ब, नयन आदि का वर्णन है। वक्ष के अनावृत सौन्दर्य से नारी अगो की शोभा बढाई गई है। इसके लिये अनेक चित्र और विशेषणो के साथ उपमानो का प्रयोग है। कडे कुच, ठाडे और उठते हुए उरोज, उचके कुच कोर, अछूत उरोज आदि विशेषणो से मासल सौन्दर्य का उत्तेजक एव ऐन्द्रिय रूप उपस्थित किया गया है। यौवन मे इन अगो द्वारा सौन्दर्य का उत्कर्ष दिखाया गया है। इसी अवयवपरक सौन्दर्य के साथ अगो मे प्रतिभासित होने वाले लावण्य की ओर भी ध्यान आकृष्ट किया गया है। इससे गुणपरक अकृत्रिम सौन्दर्य के सहज रूप के साथ कुल की अभिजातता से सौकुमार्य की व्यञ्जना होती है। वैभव और ऐश्वर्य के माध्यम से सौन्दर्य की अभिव्यक्ति हुई है। गार्हस्थ सौन्दर्य को देखने का प्रयास किया गया है। उस युग की सामाजिक भावना पार्थिवता का पक्ष ग्रहण करती है, परन्तु भक्तिकालीन अपार्थिव आलम्बन से सौन्दर्य का भाव-पक्ष भक्तिकाल मे अधिक प्रवल हो जाता है। यही कारण है कि भक्तिकाल के अपार्थिव आलम्बन श्रीकृष्ण रीतिकाल मे सामान्य मानव हो जाते है और युग की परिवर्तित सौन्दर्य-वृत्ति के कारण विलास-भावना को प्रश्रय मिल जाता है। रीतिकाल मे भोग-भावना के प्रधान साधन नारी के सौन्दर्य का वर्णन करने के लिए कही-कही तो नाप-जोख वाली प्रणाली अपनाई गई और अभिव्यञ्जनात्मक सौन्दर्य द्वारा चमत्कार उत्पन्न किया गया है। यह चमत्कार स्थूलता को आधार बना कर प्रदर्शित हुआ है। स्थूलता भाव और अभिव्यक्ति दोनो मे दीख पडती है। नवीन रूप-रचना न होकर परम्परा का ही निर्वाह हुआ है। दृश्य-विस्तार और उसके उद्घाटन मे अतिशयोक्ति की महत्ता बढने लगी। स्थूल रेखाओ मे सौन्दर्य की अभिव्यक्ति अलकरण के माध्यम से होने लगी। इसी के साथ कोमल व मादनभाव को प्रश्रय मिला। इन सबके मूल मे उक्ति-वैचित्र्य का

प्राधान्य हो गया । रूप दर्शन मे 'अखियाँ मधु की मखिया" बन गई । अलकार प्रियता से उपमानो की गणना होने लगी । इससे सौन्दर्य का सहज रूप स्फुरित नही हो सका और ऐसे सभी वर्णनो मे निसर्गगत सौन्दर्य की हत्या हो गई । यहाँ तक कि भक्तिकालीन सौन्दर्य के आश्रय और आलम्बन को भी रीतिकालीन विचित्र कल्पनाओ से व्याप्त कर दिया गया । आराध्य का रूप-सौन्दर्य स्वाभाविक न रहकर कृत्रिम बन गया । प्रकृत उपमनो के स्थान पर उक्ति वैचित्र्य का महत्व बढ गया । सौन्दर्य-वर्णन की रुचि सम्पूर्ण मध्यकाल मे एक समान ही थी, परन्तु उसके आलम्बन और अभिव्यक्ति के ढग मे महान् अन्तर आ गया ।

भक्तिकालीन सौन्दर्य-चेतना के कारण कवियो ने अपने आराध्य श्री कृष्ण के विश्वजित भुवन मोहन व्यक्तित्व का भावान्दोलित जो स्वरूप उपस्थित किया, वह सौन्दर्य की इयत्ता मे न बँधकर असीम था । उनका रूप-सौन्दर्य विश्व के सभी प्रसिद्धतम उपमानो से बढकर है । वह केवल नख-शिख का शुष्क या मासल सौन्दर्य नही है, अपितु भावो का निसर्ग-सिद्ध सौन्दर्य है । बाह्य-सौन्दर्य तो सहायक बनकर अपने आप ही अनायास आ गया है । इससे भक्तिकाल मे शाश्वत सौन्दर्य के अप्रतिम रूप-दर्शन-जन्य आनन्द की अजस्र धारा प्रवाहित होने लगती है । श्रीकृष्ण का माधुर्य एव सौन्दर्य मानवीय रूप मे भी अनन्त-अलौकिक सौन्दर्य की अभिव्यक्ति करता है । श्रीकृष्ण का मानवीय सौन्दर्य भौतिक उपकरणो के माध्यम से और आध्यात्मिक सौन्दर्य शाश्वत एव चिरन्तन तत्त्वो से निर्मित हुआ है । प्रकृति के सभी उपमान ऐसे सौन्दर्य की अभिव्यक्ति मे व्यर्थ हो जाते है । कवि आलम्बन के रूप को स्पष्ट करने मे दिव्य दृष्टि रखकर आगे बढता है ।

श्री कृष्ण के मानवीय रूप-सौन्दर्य की अभिव्यक्ति तथा अग-वर्णन और सौन्दर्य-चित्रण मे उसकी समष्टिगत चेतना जागरूक रही है । वहाँ अंगो के सौन्दर्य वर्णन की अनेकता मे एकता वर्तमान है । प्रत्येक अंग अपने आप मे पूर्ण मात्र नही है, अपितु वह सामूहिक सौन्दर्य मे योग देने वाली छबि का स्रोत भी है । इससे अनन्त मुग्धता का भाव अनेक रूपो और रेखाओ मे अभिव्यक्त किया गया है । कही कही यही सौन्दर्य अलौकिकता की परिधि मे आ जाता है । इस काल मे चमत्कार के अभिव्यञ्जनात्मक सौन्दर्य के स्थान पर रूप की भावात्मक और सचेतन उपस्थिति हुई है । रीतिकालीन सौन्दर्याङ्कन मे अलौकिकता रूढि एव चमत्कार मे बदल गई, सौन्दर्यानुभूति मे भौतिकता का महत्व बढ गया, अलौकिक कल्पना का ह्रास हुआ और पुरुष-सौन्दर्य के स्थान पर नारी-सौन्दर्य

चित्रण कवियो का प्रमुख लक्ष्य बन गया। इसमे भक्तो की सौन्दर्य-भावना आध्यात्म-लोक की सुखमय कल्पना के स्तर से गिरकर रीतिकालीन इहलोक की वास्तविक सुन्दरता मे बदल गई। राधा-कृष्ण का सौन्दर्य-माधुर्य गोचर और लौकिक रूप का आकर्षण उत्पन्न करने लगा। मानसिक भावो की तुलना मे अभिव्यञ्जनात्मक सौन्दर्य की रुचि बढ गई। इससे वस्तु का बिम्ब उपस्थित नही हो पाता और बहुधा रूढि का पालन मात्र रह जाता है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि भक्तिकाल के सौन्दर्य-विधान मे भाव की महत्ता है और यह सौन्दर्य वर्णन प्रयत्न साध्य न होकर कवि के अन्त करण से स्वय सभूत है, परन्तु रीतिकाल मे प्रयत्न एव बौद्धिक चेतना की अभिव्यञ्जनागत-शिल्प के कारण रूप सौन्दर्य बहुधा उक्ति-वैचित्र्य और चमत्कार मे बदल जाया करता है।

सम्पूर्ण मध्यकाल पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि आरम्भ मे पुरुष-सौन्दर्य अकन की प्रवृत्ति बाद मे नारी-सौन्दर्याङ्कन मे बदल जाती है। भक्तिकाल मे नारी के रूप-सौन्दर्य का वर्णन स्वतन्त्र रूप से न होकर श्रीकृष्ण के सदर्भ मे हुआ है। इससे उसके असत् रूप का भोगपरक मासल-सौन्दर्य भौतिक धरातल पर प्रमुख नही हो पाता है। कवियो ने उसके बाह्य-आवरण की असारता और वीभत्सता के बीच उदात्त गुणो का आदर्श और मोहक रूप प्रस्तुत किया। इस युग की सम्पूर्ण शोभा सुन्दरता और रूपाकर्षण आदि श्रीकृष्ण के लिये ही थी, इसीसे उसके मूल मे भक्ति की भावना वर्तमान रहती है। इसके विपरीत रीतिकालीन साहित्य मे आदर्श एवं भक्ति को प्रश्रय न देकर पारस्परिक आकर्षण उत्पन्न करने वाले शरीर के विभिन्न अगो, प्रसाधक उपकरणो आदि का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया गया। बाह्य-शरीर के मासल-सौन्दर्य और कामोद्दीपक चेष्टाओ की प्रवृत्ति बढ गई। श्रीकृष्ण का लीलापरक रूप लुप्त होने लगा और वह मात्र 'मन-मोहन' बन कर रह गये। मोहिनी राधा नायिका के सामान्य स्तर पर आ गई और उनके रूप-वर्णन मे नख-शिख की प्रधानता हो गई।

रीतिकालीन सूक्ष्म दृष्टि के कारण अनुभावो आदि के सौन्दर्य का मोहक-चित्र उपस्थित हो सका है। इसमे स्थूल एव भौतिक दृष्टि सदैव कार्य करती रहती है। मानसिक सौन्दर्य के साथ बाह्य-शारीरिक सौन्दर्य की सफल अभिव्यञ्जना हुई है। बाह्य-सौन्दर्य-वर्णन मे नायिका के अग-प्रत्यग, रूप-रग, कान्ति, गठन, आयु, सौकुमार्य, चेष्टा, वेशभूषा, प्रसाधक उपकरण आदि को आधार बनाया गया है। शारीरिक गुणो मे मध्यकालीन सभी कवियो ने

शारीरिक शोभा, तनद्युति, ज्योति, छवि, लावण्य आदि का अनुपम चित्र उपस्थित किया है । यह छवि अ गो मे स्वत प्रकाशित होती हुई बताई गई है । इसके और अधिक उत्कर्ष के लिए ग्रह-नक्षत्र, पशु-पक्षी, बनस्पति, बहुमूल्य पदार्थो आदि को अप्रस्तुत रूप मे लाया गया है । इन उपमानो मे कमल, चाँदनी, बिजली किरण, मोती, हीरा, चकोर, हरिण, चक्रवाक, कदली, कलकलता आदि का प्रयोग किया गया है । सुगन्धित द्रव्यो मे केशर, कस्तूरी, मृगमद, कपूर आदि द्वारा आकर्षण बढाया गया है । इन सभी पदार्थो एव उपकरणो तथा आलम्बनगत गुणो और विभिन्न चेष्टाओ से रूप-सौन्दर्य की सफल व्यञ्जना हो सकी है । अत कहा जा सकता है कि रूप-सौन्दर्य की आकर्षक और यथार्थ अभिव्यक्ति करने मे मध्यकालीन कृष्ण-साहित्य के कवि पूर्णत सफल हुए है ।

परिशिष्ट

ग्रन्थानुक्रमणिका-आलोच्य एवं सहायक ग्रन्थ

१.	अनुराग पदावली	गीता प्रेस, गोरखपुर।
२	अनुराग वाग	दीनदयाल गिरि।
३.	अष्टछाप पदावली	सोमनाथ गुप्त।
४.	अष्टछाप पदावली	प्रभूदयाल मीतल।
५.	अष्टछाप पदावली	विद्या-विभाग, कांकरौली।
६.	अष्टछाप परिचय	प्रभुदयाल मीतल।
७.	अंग-दर्पण	रसलीन।
८	अगादर्श	रगनारायण पाल
९	आलम केलि	सम्पा० भगवान दीन
१०	आँख और कविगण	सम्पा० जवाहरलाल चतुर्वेदी
११	कवित्त-रत्नाकर	सेनापति
१२	कवितावली	तुलसीदास
१३	कामायनी	जयशकर प्रसाद
१४,	काव्य-प्रभाकर	जगन्नाथदास भानु
१५	कुम्भनदास-जीवनी और पद	विद्या-विभाग, काकरौली
१६	केलिमाल और सिद्धान्त के पद	स्वामी हरिदास।
१७	केशव-ग्रन्थावली	सम्पा० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
१८.	कृष्ण जू को नख-शिख	ग्वाल कवि
१९.	कृष्णदास पदावली	सम्पा० व्रजभूषण शर्मा कांकरौली।
२०	कीर्तन-सग्रह भाग १,२	लल्लूभाई छगनलाल देसाई, अहमदावाद।
२१.	गोविन्द स्वामी-जीवनी और पद	विद्या-विभाग, कांकरौली
२२	घनानन्द-ग्रन्थावली	सम्पा० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
२३.	चत्रभुजदास-पद सग्रह	विद्या-विभाग, कांकरौली
२४	छीतस्वामी-जीवनी और पद	विद्या-विभाग, कांकरौली
२५	जगद् विनोद	पद्माकर
२६.	जायसी-ग्रन्थावली	सम्पा० आचार्य रामचन्द्र शुक्ल।
२७	जुगल-सनेह पत्रिका	चाचा वृन्दावनदास

२८—तोष सुधा-निधि	तोष, भारत जीवन प्रेस, काशी
२६. दास-ग्रन्थावली	सम्पा० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
३०. नख-शिख	ग्वाल कवि
३१. नख-शिख	नृप शभु । नारायण प्रेस मुजफ्फर पुर ।
३२. नन्ददास ग्रन्थावली	सम्पा० ब्रजरत्न दास ।
३३. नन्ददास ग्रन्थावली	सम्पा० उमाशकर शुक्ल
३४ निम्बार्क माधुरी	सम्पा० विहारी शरण
३५. परमानन्द सागर	सम्पा० गोवर्धन शुक्ल
३६. पल्लव	सुमित्रा नन्दन पत
३७ पृथ्वीराज रासो	चन्द्र वरदाई
३८ व्रजनिधि ग्रन्थावली	सम्पा० पुरोहित हरिनारायण शर्मा
३६. व्रजभाषा साहित्य का ऋतु-सौन्दर्य	सम्पा० प्रभुदयाल मीतल
४०. व्रजभाषा साहित्य का नायिका-भेद	सम्पा० प्रभुदयाल मीतल
४१. व्रज माधुरी सार	सम्पा० वियोगी हरि ।
४२. वलभद्र कवि	हस्तलिखित प्रति पूना विश्वविद्यालय, पूना ।
४३. विहारी-रत्नाकर	सम्पा० जगन्नाथ दास रत्नाकर ।
४४ व्यालीस-लीला	ध्रुवदास
४५. भक्त कवि व्यास जी	सम्पा० वासुदेव गोस्वामी
४६. भारतेन्दु ग्रन्थावली	सम्पा० व्रजरत्नदास
४७ मतिराम-ग्रन्थावली	सम्पा० कृष्ण बिहारी मिश्र
४८. युगलशतक	श्री भट्ट
४६ रस तरग	ग्वाल कवि
५०. रस खानि	सम्पा० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
५१. रस-प्रबोध	रसलीन
५२. रस-रत्नाकर	देव
५३ रसराज	मतिराम
५४. रस-विलास	देव
५५. रामचरित मानस	तुलसीदास
५६. रास पचाध्यायी	सम्पा० सोमनाथ
५७. रीतिकाव्य सग्रह	सम्पा० जगदीश गुप्त
५८. विद्यापति-पदावली	रामवृक्ष वेनीपुरी

५९. सनेह-सागर — बकसी हसराज, सम्पादक लाला भगवानदीन

६०. सूर सागर — नागरी-प्रचारिणी सभा।

६१. सूर-सागर — वेंकटेश्वर प्रेस।

६२ सगीत–अष्टछाप — सम्पा० गोकुलानन्द तैलग।

६३ शिख–नखावली — राम सहायदास

६४ शृङ्गार-सतक — ध्रुवदास

६५. श्री राघा सुधा शतक — हठी

६६. श्री राधिका जी का नख-शिख — कालिका प्रसाद।

६७. हित-चौरासी — हित हरिवंश।

सहायक-ग्रन्थ

६८. अकबरी दरबार के हिन्दी कवि — सरजू प्रसाद अग्रवाल।

६९ अवध के प्रमुख कवि — ब्रजकिशोर मिश्र।

७०. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय — डा. दीनदयाल गुप्त।

७१ अष्टछाप काव्य का सास्कृतिक मूल्याकन — डा मायारानी टडन।

७२ आधुनिक काव्य मे रूप-विधाएँ — डा निर्मला जैन।

७३. आधुनिक काव्य मे सौन्दर्य-भावना — शकुन्तला शर्मा।

७४. आधुनिक हिन्दी कविता मे प्रेम-सौन्दर्य — डा. रामेश्वर खण्डेलवाल।

७५ उदात्त-सिद्धान्त और शिल्पन — जगदीश पाण्डेय।

७६. कविवर पद्माकर और उनका युग — डा ब्रजनारायण सिंह।

७७ कविवर परमानन्द और वल्लभ-सम्प्रदाय — गोवर्धन नाथ शुक्ल।

७८. काव्य मे उदात्त तत्व — डा. नगेन्द्र।

७९ काव्यात्मक बिम्ब — अखौरी ब्रजनन्दन प्रसाद।

८० घनानन्द और स्वच्छन्द काव्य- — मनोहरलाल गौड़।

दरबारी संस्कृति और हिन्दी मुक्तक	डा. त्रिभुवन सिंह।
८२. देव और उनकी कविता	डा. नगेन्द्र।
८३. प्रकृति और काव्य (हिन्दी)	डा. रघुवश।
८४. प्रामाणिक हिन्दी कोश	रामचन्द्र वर्मा।
८५ पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ	सम्पा. वासुदेवशरण अग्रवाल।
८६. ब्रजभाषा के कृष्ण काव्य मे अभिव्यञ्जना शिल्प	डा. सावित्री सिन्हा।
८७. ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन	डा. सत्येन्द्र।
८८. भारतीय साधना और सूर साहित्य	डा. मुन्शीराम शर्मा।
८९. मतिराम-कवि और आचार्य	डा. महेन्द्रकुमार।
९०. मध्यकालीन हिन्दी कवियित्रियाँ	डा. सावित्री सिन्हा।
९१. महाकवि मतिराम	डा. त्रिभुवन सिह।
९२. मूल्य और मूल्याकन	रामरतन भटनागर।
९३. राधावल्लभ सम्प्रदाय-सिद्धान्त और साहित्य	डा. विजयेन्द्र स्नातक।
९४. रीतिकालीन कवियो की प्रेम-व्यञ्जना	डा वचन सिंह
९५. रीतिकालीन काव्य मे लक्षणा का प्रयोग	डा. अरविन्द पाण्डे।
९६. सत्य, शिव, सुन्दरम् भाग १ और २	डा. रामानन्द तिवारी।
९७ और उनका साहित्य	डा. हरवशलाल शर्मा।
ी झाँकी	डा. सत्येन्द्र।
तत्व (हिन्दी)	अनुवादक डा. आनन्द प्रकाश दीक्षित
त्व और काव्य सिद्धान्त	अनु मनोहर काले।
ासा (हिन्दी)	अनु रामकेवल सिंह।
	डा हरद्वारीलाल शर्मा।
का तत्व	डा कुमार विमल।

संस्कृत-ग्रन्थ

१०४. अभिज्ञान-शाकुन्तलम् कालिदास ।
१०५. अलकार-कौस्तुभ कर्णपूर ।
१०६ उज्ज्वल नील मणि रूप गोस्वामी ।
१०७ उत्तर-राम चरितम् भवभूति ।
१०८. उपनिषद् (कठ, मुण्डक, छान्दोग्य, मैत्रेय
१०९. औचित्य विचार चर्चा आचार्य क्षेमेन्द्र ।
११०. कालिदास-ग्रन्थावली सम्पा सीताराम चतुर्वेदी ।
१११. काव्य-प्रकाश व्याख्याकार आचार्य विश्वेश्वर ।
११२. काव्य-प्रकाश ज्ञान मण्डल लिमिटेड ।
११३. काव्यालकार सूत्र-वृत्ति वामन ।
११४. किरातार्जुनीयम् भारवि ।
११५. कुवलयानन्द अप्पय दीक्षित ।
११६ कोश अमर, वाचस्पत्य और हलायुध ।
११७. गीत गोविन्द जयदेव ।
११८. दशरूपकम् धनञ्जय, व्याख्या भोलाशकर व्यास
११९. ध्वन्यालोक व्याख्याकार रामसागर त्रिपाठी ।
१२०. ध्वन्यालोक व्याख्याकार आचार्य विश्वेश्वर ।
१२१. ध्वन्यालोक व्याख्याकार बदरीनाथ शर्मा ।
१२२. नागानन्द हर्ष ।
१२३ प्रताप रुद्रीयम् विद्यानाथ ।
१२४. पुराण पद्म, वायु, वामन, कूर्म, गरुड, ब्रह्मवैवर्त्य, श्रीमद्भागवत, ब्रह्म, ब्रह्माण्ड, विष्णु ।
१२५. ब्राह्मण कौशितकी, ऐतरेय, शतपथ ।
१२६. बाल्मीकि-रामायण अनु. चतुर्वेदी द्वारिका प्रसाद शर्मा ।
१२७. भास नाटक चक्रम् भास ।
१२८ महाभारत वेद व्यास ।
१२९. मनुस्मृति मनु ।
१३०. मालती-माधवम् भवभूति
१३१. रस-गङ्गाधर व्याख्या, बदरीनाथ झा ।

	ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद ।
१३३. साहित्य-दर्पण	व्याख्या. सत्यव्रत सिंह ।
१३४. सहिता	वाजसनेयी, तैत्तिरीय ।
१३५. शिशुपाल-वध	माघ ।
१३६. शृङ्गार-तिलक	रुद्र-भट्ट ।
१३७ हरिभक्ति रसामृत सिन्धु	रूप गोस्वामी, अच्युत ग्रन्थ माला ।
१३८ हिन्दी दशरूपक	टीकाकार डा. गोविन्द त्रिगुणा
१३६. Encychlopaedea Brittanica Vol IX	
१४०. Essay on Study of Greek Poetry	Fr. V. Schelegela,
१४१. From the style in Poetry	W. P. Ker.
१४२. From the philosophies of Beauty	E. F. Carritt.
१४३. History of Aesthetics	George, Bosanquette
१४४. The Critique of judgement	Immanuel Kant.
१४५. The Sense of Beauty	G Santayana